2005 — 2006
~~२~~ 57 — 57
1948 — 1949

सन 1948 — 1949

NO

2005 - 2006
- 57 - 57
1948 1949

सन 1948 - 1949

गुरुकुल पत्रिका

तमसो मा ज्योतिर्गमय

सम्पादक—

श्री रामेश वेदी

श्री सुखदेव

वर्ष १
संख्या १

गुरुकुल-पत्रिका

भाद्रपद
२००५

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति।
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

शिक्षा पर श्री मुन्शी	श्री धुरेन्द्र
संसार की कुछ निराली बातें	राजा महेन्द्रप्रताप
रज्जुनिर्माण का मनोरञ्जक इतिहास	श्री पी. के. गोडे
आनन्द कहां है ?	श्री स्वामी कृष्णानन्द जी
मृत्यु का मार्ग (कहानी)	डॉ. प्राणजीवन मेहता
प्राचीन भारत में गणतन्त्र	श्री हरिदत्त वेदालङ्कार
जीवन का यथार्थ स्वरूप	स्वामी सत्यदेव परिव्राजक
ताम्रलिप्ति का विद्यापीठ	श्री शङ्करदेव विद्यालङ्कार

इस के अतिरिक्त—आचार्य रघुवीर, श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति प्रभृति प्रतिष्ठित लेखकों व कवियों की अनेक सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

वार्षिक मूल्य ५) गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार। एक प्रति का ॥)

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

अवतरणिका

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

'गुरुकुल पत्रिका' गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का मुख पत्र होगा। वह गुरुकुल की प्रतिध्वनि भी होगा और प्रतिबिम्ब भी।

गुरुकुल साधारण शिक्षणालय नहीं है। वह अंग्रेजी राज्य-काल में प्रचलित शिक्षा-पद्धति के विरोध में प्रतिवादरूप में स्थापित किया गया था। गुरुकुल की जो विशेषताएं थीं, वे मैकाले द्वारा निर्दिष्ट शिक्षण-पद्धति के विद्वानों की दृष्टि में पागलपन की टुकड़ियां थीं। गुरुकुल-शिक्षा का आधार था वेद, जिसे १६ वीं शताब्दी का शिक्षित भारतीय अशिक्षित अर्द्ध नग्न जंगलियों के गीत मानता था। गुरुकुल शिक्षाप्रणाली का सब से आवश्यक अंग ब्रह्मचर्य था. जिसे उस युग के विद्वान् उपहास्य वस्तु समझते थे, जब गुरुकुल के संस्थापक ने यह कहा कि यहां सब प्रकार की शिक्षा अपनी मातृभाषा में दी जायगी तो कालिजों के प्रोफेसर बड़े ध्यान से वक्ता के मुंह की ओर देखते थे और सोचते थे कि वैसे तो ये सज्जन सर्वथा सावधान प्रतीत होते हैं, फिर ऐसी बेतुकी बात क्यों कहते हैं।

गुरुकुल उस युग की सरकारी और लोकप्रिय शिक्षा-प्रणाली के क्रियात्मक प्रतिवाद के लिए खोला गया था। लगभग ५० वर्ष व्यतीत हो गये इस बीच में भारत के भाग्यों में तरह-तरह के उलट फेर हुए। गुरुकुल के लिए भी तरह तरह के पवन चले, कभी अनुकूल तो कभी प्रतिकूल। उन सब को सहता हुआ गुरुकुल निरन्तर आगे ही आगे बढ़ता गया, यहां तक कि वह छोटी सी पाठशाला से बढ़ कर एक विशाल विश्वविद्यालय बन गया। साथ ही देश की दशा में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। हमारा देश पराधीनता की बेड़ियों को काट कर स्वतन्त्र हो गया, जिस से गुरुकुल और राज्य के बीच में आदर्श भेद की जो दीवार खड़ी थी वह हट गई और आज न केवल भारतीय राष्ट्र अपितु भारतीय राज्य भी गुरुकुल के आदर्शों से सहमत हो रहा है।

गुरुकुल के जो आधारभूत सिद्धान्त हैं, उन के प्रकाशन और प्रचार के लिए तथा जिस भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि पर गुरुकुल खड़ा है, उस की विशद व्याख्या के लिए 'गुरुकुल-पत्रिका' का आयाजन किया है। गुरुकुल आन्दोलन और गुरुकुल सम्बन्धी कार्यों की मासिक प्रगति भी इस में रहा करेगी। इस दृष्टि से अपनी सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा से प्रेम रखने वाले प्रत्येक भारतीय को मानसिक भोजन देना 'गुरुकुल-पत्रिका' का प्रधान लक्ष्य होगा। मेरी प्रभु से प्रार्थना है कि वे हमारे इस संकल्प को पूर्ण करें।

भारतीय-संस्कृति का भविष्य

श्री हरिदत्त वेदालङ्कार

भविष्य बतलाना ज्योतिषियों का कार्य है। इतिहास का विद्यार्थी भगवती श्रुति की इस उक्ति में आस्था रखता है—भविष्यत् भूत के गर्भ में है (भव्यं भूते प्रतिष्ठितम् अथर्व १७। ।१६) वह अतीत की घटनाओं के ऊहापोह से भविष्यत् की संभावनाओं को प्रकट कर सकता है। प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति के विकास और ह्रास के कारणों की मीमांसा से वर्तमानकाल में उस के भविष्य का निर्देश संभव है।

प्राचीन काल में विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना है। ज्ञान का सूर्य पहले यहीं उदित हुआ। एशिया के एक बड़े हिस्से में ज्ञान और सभ्यता की ज्योति जगाने वाले भारतीय थे। भारतीय आवासकों और धर्मदूतों ने साइबेरिया के तुषारावृत प्रदेशों से सिंहल के तट तक तथा सोकोतरा से से सेलीबीज़ तक के विशाल भूखण्ड पर एक विलक्षण सांस्कृतिक साम्राज्य की स्थापना की। किन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि मध्ययुग में इस संस्कृति का इतना अधःपतन हुआ कि यह भारत में भी स्वाधीनता की रक्षा नहीं कर सकी। इसके उत्कर्ष और अपकर्ष के क्या कारण थे?

जातियों के उत्थान और पतन में विचारधाराओं का बड़ा महत्व होता है। राष्ट्र के निर्माण या ध्वंस में ये प्रमुख स्थान रखती हैं। १९१४-१८ के प्रथम विश्वयुद्ध के बाद मित्रराष्ट्रों द्वारा पादाक्रान्त जर्मनी कुछ समय में सारी दुनियां से टक्कर लेने योग्य हो गया। मित्रराष्ट्र छः वर्षों के भीषण युद्ध के बाद उसे परास्त कर सके। उसके सहसा शक्तिशाली होने का एक कारण यह भी था कि हिटलर ने जर्मन नवयुवकों में विश्व पर प्रभुत्व पाने की भावना भरी थी। भारतीय संस्कृति के उत्थान और पतन में दो पृथक् और विरोधी विचारधाराओं का बड़ा हाथ रहा है। पहली आशावाद की वैदिक विचारधारा है, दूसरी निराशावाद की। पहली दुनियां के सुखों को पाना, आपत्तियों से जूझना और उन पर विजय पाना चाहती है दूसरी संसार को दुःखमय समझ, इससे भाग कर जंगलों में जाने तथा मोक्ष प्राप्त करने का उपदेश देती है। पहली के लिए संसार सत्य है; दूसरी के लिए मिथ्या। जब तक पहली विचारधारा का प्राधान्य रहा हम आगे बढ़ते रहे। छठी श० ई० से दूसरी विचारधारा प्रबल हुई, वैराग्य और परलोकवद के कारण संसार से घृणा की जाने लगी, अतः संसार ने भी भारत की उपेक्षा की। वह उन्नति की दौड़ में पिछड़ गया। तेरह सौ साल तक हम मोह-निद्रा में पड़े रहे।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद हम एक चौराहे पर खड़े हैं, एक मार्ग का वरण कर हमने आगे बढ़ना है। इसी पर हमारा भविष्य अवलम्बित है। क्या हम गतिशील वैदिक विचारधारा को अपनायेंगे या वैराग्यमूलक निवृत्तिप्रधान वेदान्त और भक्तिमार्ग के साथ मोहवश चिपटे रहेंगे? मध्ययुग में भारतवर्ष के अधःपतन का एक बड़ा कारण परलोकवाद, भ्रान्तविश्वास, दूषित विचारधारायें और थोथी आध्यात्मिकता थी।

इस समय ज्ञान का सूर्य पश्चिम में चमक रहा है। वैज्ञानिक आविष्कारों से मानवजीवन का कायापलट हो गया है। विज्ञान ने मनुष्य को ऐसा गुरुमन्त्र प्रदान किया है जिससे प्रकृति की गुप्त निधियों के द्वार सहज में ही खुल जाते हैं. देवताओं की अलौकिक शक्ति सुगमता से प्राप्त हो जाती है। आज कामधेनु और कल्पवृक्ष कल्पना का विषय नहीं रहे किन्तु बहुत कुछ सत्य बन गए हैं। समुद्र-मन्थन देवताओं और असुरों की पौराणिक गाथा नहीं किन्तु जलपोतों का दैनिक कार्य बन गया है। पहले मनुष्य प्रकृति का खिलौना था ; आज वह बहुत अंशों में उसका अधीश्वर है। पहले वह बेबसी बेकारी में जीवन को भार समझते हुए जन्ममरण के बन्धन से छूट कर ऐसे काल्पनिक स्वर्गलोक में जाना चाहता था जहां किसी प्रकार का अभाव या सन्ताप न हो ; किन्तु अब यदि वह चाहे तो विज्ञान द्वारा भूतल पर ही स्वर्ग अवतीर्ण कर सकता है। हमारे देश की पुरानी परपाटी यही है कि हम दूसरों के प्रत्येक ज्ञान और सचाई को लें तथा उसमें वृद्धि करके दूसरों को दें। जो कार्य मध्ययुग में भारत ने गणित और ज्योतिष के क्षेत्र में वह आज ज्ञान विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में होना चाहिये। इसी प्रकार भारत दूसरों का गुरु बन सकता है और प्राचीन काल की भांति अन्य राष्ट्रों की धर्मविजय कर सकता है। हमारी परम्परा दूसरे देशों को शस्त्र से जीतने और खून बहाने की नहीं रही किन्तु उनको ज्ञान का नया आलोक देने की रही है। इसका पालन करना हमारा कुलधर्म है। यदि हम इस भावना से अग्रसर होंगे तो विश्व का नेतृत्व कर सकेंगे।

किन्तु इसमें मध्यकाल की दूषित विचार-धारायें मुख्य बाधा हैं। आज हमें भाग्यवाद के विश्वास को तिलाञ्जलि देनी होगी वैराग्य का तर्पण करना होगा, अन्ध विश्वासों की होली जलानी होगी। जातीय जीवन को दुर्बल बनाने वाले अस्पृश्यता आदि कलङ्कों का परिमार्जन करना होगा। पाप-पुण्य की अत्यधिक विचिकित्सा के दलदल से बाहर निकालना होगा। संन्यास के स्थान पर कर्मवाद की विचारधारा को प्रधानता देनी पड़ेगी। परलोक से इहलोक की ओर मुँह मोड़ना पड़ेगा। इसकी यह कह कर अवहेलना नहीं की जा सकती कि यह जड़वाद की ओर कदम बढ़ाना होगा। पश्चिम में विज्ञान की हिंस्र दानवी शक्ति की ओर संकेत कर अध्यात्मवाद का समर्थन नहीं किया जा सकता। कहा जाता है कि प्राचीनता में सयम है, गति नहीं, आधुनिकता में सिर्फ गति ही गति है, संयम नहीं। एक जगह लगाम है, घोड़ा नहीं, दूसरी जगह घोड़ा है, लगाम नहीं। योरोप ने गतिशील विज्ञान का आश्रय लेकर संयमशील धर्म को छोड़ दिया है। इसी कारण वहां अणुबम आदि के रूप में सृष्टि का संहार करने वाली रुद्र की भैरव मूर्ति प्रकट हो रही है।

किन्तु अध्यात्मवाद और प्रकृतिवाद दोनों आवश्यक हैं, दोनों का उचित सामंजस्य होना चाहिए। प्रकृतिवाद अध्यात्मवाद के बिना अंधा है, अध्यात्मवाद प्रकृतिवाद के बिना लंगड़ा है। अन्धपंगुन्याय दोनों का सम्मिश्रण होना चाहिये। धर्म का लक्ष्य पारलौकिक ही नहीं किन्तु ऐहिक उन्नति भी है। 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सधमः। पश्चिम में अनर्थ और उत्पात इस लिए है कि वहां केवल जड़वाद है, भारत में दुःख और द्वन्द्व का कारण यह है कि यहां केवल योग साधन और प्राणायाम है। स्वामी

विवेकानन्द कहा करते थे—भारत को वेदान्त भुलाने की आवश्यकता है; पश्चिम को अध्यात्म सीखने की ज़रूरत है।

आज प्राचीन संस्कृति के पुनरुज्जीवन पर बड़ा बल दिया जा रहा है किन्तु यदि हम उसके साथ चिपटने का प्रयत्न करेंगे, प्राचीन काल की शानदार विजयों पर अभिमान करेंगे, उन्हीं से सन्तुष्ट होकर बैठ जायेंगे तो यह प्राचीन संस्कृति के साथ घोर अन्याय होगा। मिथ्याभिमान मध्ययुग में हमारी निष्क्रियता और पतन का कारण बना, आज भी वह हमारी उन्नति में बाधक होगा। हमारे पूर्वज भले ही कुछ हों किन्तु सोचना तो यह है कि हम क्या हैं? यदि वे संसार के नेता थे तो हमारा उनके वंशज होने का अभिमान तभी सार्थक होगा जब हम भी विश्व के गुरु बनें। यह काम कोरी बातों से नहीं किन्तु उनकी भावनाओं और गुणों का अनुकरण करने से होगा।

आज हमारी संस्कृति का कल्याण उनकी संचरणशीलता तथा निरन्तर अग्रसर होने की भावना को अपनाने से होगा। वर्तमान शोचनीय अवस्था के लिए नक्षत्रों देवताओं या भाग्य को दोष देना व्यर्थ है, ऐतरेय ब्राह्मण के शब्दों में देवता उसीके साथ चलते हैं जो अग्रसर होकर चल पड़ा है (इन्द्रइच्चरतः सखा ७।१५।१।) यह कहना बेकार है कि कलियुग में ये बातें नहीं हो सकती। 'सो रहना ही कलियुग है, निद्रा छोड़ कर जग पड़ना ही द्वापर है, उठ खड़ा होना ही त्रेता है और अग्रसर होना ही सत्ययुग है'। भाग्य पर लांछन लगाना ठीक नहीं। भाग्य है क्या वस्तु? 'जो बैठा रहता है उसका भाग्य भी बैठा रहता है, जो उठ खड़ा होता है उसका भाग्य भी उठ खड़ा होता है. जो सोया पड़ा रहता है, उसका भाग्य भी सोया रहता है, जो अग्रसर होता है, उसका भाग्य भी अग्रसर रहता है, ऐत० ७।१५।३।)। किन्तु कुछ क्रियात्मक पग उठाये बिना हम सांस्कृतिक प्रसार के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकते।

चीन ने पिछली शती में जब अफ़ीम के दुष्परिणामों को अनुभव किया तो इसे राजनियम द्वारा वर्जित ठहराया अपने देश में इसके आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिये। प्रायः सभी सभ्य देशों में मादक द्रव्यों पर प्रतिबन्ध हैं, हमारे देश के कई प्रान्तों में छोटी आयु के बच्चों के धूम्रपान के विरुद्ध कानून बने हुए हैं, कांग्रेसी सरकारें मदिरा निषेध के कार्यक्रम को बड़ी तेज़ी से कार्यान्वित कर रही हैं किन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि समूची जाति को निष्प्राण बनाने वाली दूषित विचारों की मदिरा पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लागू किया गया। इसका पाठशालाओं, विद्यालयों, देवालयों, तीर्थों और मठों में वितरण किया जाना है। शासकवर्ग साम्प्रदायिक विद्वेष लाने वाले साहित्य का उग्रता से दमन कर रहा है किन्तु निराशा को फैलाने वाले विचारों और दुःखवादी दर्शनों पर प्रतिबन्ध लगाने की ओर किसी का ध्यान नहीं है। इसके विपरीत हम 'सर्वं दुःखमेव विवेकिनः' का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थों को भारतीय वाङ्मय का अभिमान समझते हैं। बचपन से विद्यार्थियों को 'अथमनर्थं भावय नित्यम्—'भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्' स्तोत्र रटवाते हैं 'अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः, 'भाग्यं फलति सर्वत्र' का पाठ कराते हैं, सन्तोषामृत और अध्यात्मवाद की अफ़ीम गोलों से उन्हें पोस्ती बनाते हैं। इस पर अविलम्ब कड़ा प्रतिबन्ध

लगाने की आवश्यकता है।

यह न समझा जाना चाहिए कि हम अध्यात्मवाद के विरोधी हैं। अध्यात्मवाद के प्रति हमारी अगाध श्रद्धा है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह अमृत है किन्तु अमृत भी अति मात्रा में विष हो जाता है। हम यह भूल गये हैं कि बिना शरीर के आत्मा की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। आत्मा के बिना शरीर निष्प्राण है; शरीर के बिना आत्मा निराधार है। हमारी भयङ्कर भूल यही है कि हम केवल आत्मा के साथ चिमटे रहना चाहते हैं। मध्यकाल में अपनी पराजय का गम गलत करने के लिए हम उग्र तथा कोरे अध्यात्मवाद की मदिरा का पान तथा वेदान्त और वैराग्य की निष्क्रिय बनाने वाली अफीम का सेवन करते रहे. यदि अब भी वही गलती दुहरायेंगे तो भारतीय संस्कृति का भविष्य बड़ा अन्धकारमय होगा, हमारा कल्याण इहलोक और परलोकवाद का समन्वय करने में है। अब तक चूँकि हमनें परलोक पर बहुत अधिक ध्यान दिया है इसलिए कुछ समय तक उसकी उपेक्षा से किसी बड़ी हानि की सम्भावना नहीं है। किन्तु प्राचीन परम्परा और रूढ़ियों के मोह से उस मार्ग पर चलते रहने से 'महती विनष्टिः' अवश्य होगी अतः इस समय आशावादी वैदिक विचारधारा के प्रसार तथा दुःखवादी वैराग्य आदि के विचारों को रोकने तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलने की तीव्र आवश्यकता है। 'नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय। इसी से भारतीय राष्ट्र की उन्नति तथा उसके सांस्कृतिक प्रसार का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

वर्तमान हिन्दी-साहित्य की छोटी कहानियाँ

प्रोफ़ेसर रामचरण महेन्द्र एम० ए०

हिन्दी की पुरानी कहानियां प्रायः भारी भरकम, घटनाचक्र से भरी हुई लम्बी रचनाएं होती थीं। कथावस्तु के विस्तार को आवश्यकता से अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता था; चरित्र के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की ओर लेखक की वृत्ति कम होती थी; कभी-कभी आवश्यक विस्तार पाठक को अप्रिय हो जाता था। इस प्रकार की कहानियां आकार की दृष्टि से उपन्यास सी प्रतीत होती थीं। इन कहानियों के उदाहरण सदल-मिश्र के "नासकेतोपाख्यान", या इंशा की "रानी केतकी की कहानी" से दिये जा सकते हैं।

इस के पश्चात् जासूसी. एय्यारी, एवं नाना प्रकार के घटना-चक्रों से परिपूर्ण कहानियों का युग आया। उस में भी विस्तार तथा प्लौट में नाना शृङ्खलाएं जोड़ कर संवेदनाएं-उपसंवेदनाएं उपस्थित करना, पाठक का अधिक समय ले कर उस का मनोरञ्जन करना हमारा उद्देश्य बना रहा। घटनावलि का विकास उस युग में जनता को विशेष रूप से आकर्षित करता रहा।

आज युग बदल चुका है। पाठकों के पास लम्बी कहानियां पढ़ने के लिए अवकाश नहीं है। वह चार घंटे तक सारी रात्रि खराब कर थियेटर या नाटक के स्थान पर सिनेमा में अपना मनोरञ्जन कर लेता है। उसे भारी भरकम उपन्यासों में समय बरबाद करने की फुरसत नहीं। वह थोड़ी देर में कहानी पढ़ लेता है और अपने कार्य में जुट जाता है। पांच अङ्कों के नाटकों के स्थान पर वह रेडियो नाटिकाओं या एकांकियों से संतुष्ट

है। अवकाश की कमी के साथ कहानी के आकार में भी संकोच होता जा रहा है। आज की कहानी में विस्तार कम से कम रखा जाता है। लेखक थोड़े से शब्दों में पात्रों का चरित्र चित्रण करता है। उस का कथोपकथन इस ढंग से लिखा जाता है कि प्रत्येक शब्द तथा वाक्य चरित्र-चित्रण में सहायता करता है। इन्हीं के सहारे वातावरण या स्थिति परिस्थिति का निर्माण होता चलता है।

वर्तमान हिन्दी साहित्य की छोटी कहानियां एक प्रकार से पश्चिमीय आदर्शों के प रणाम हैं। अंग्रेज़ी साहित्य में (Short Story) लघु-कथाओं की परिपाटी बहुत पुरानी है; कहानी-सा हत्य अधिक विकसित है ; कहानी-शिल्प की परिभाषा भी निर्धारित है। रूप, आकार, भाव इत्यादि का अनुकरण हम ने पश्चिम की लघु कहानियों से किया है। विशेषतः अमेरिकन कहानी-साहित्य का प्रभाव हिन्दी की लघु-कहानियों पर स्पष्ट दिखाई देता है। आकार की दृष्टि से हम इस अनुकरण में काफ़ी सफल हुए हैं किन्तु मूल-तत्त्व (Plot-germ) की दृष्टि से हमारी कुछ छोटी कहानियां केवल संकोच मात्र रह जाती हैं। इन में जीवन की कोई विस्तृत व्याख्या नहीं मिलती। छोटी परिधि में पात्र या घटना का संक्षिप्त चित्रण उपलब्ध होता है। लेखक ज वन के बहुत से उलझे हुए ताने-बाने से बचता है, मनोविज्ञान और यथाथवाद से उसे मूल सहायता प्राप्त होती है।

छोटी कहानियों के प्रकाशन में 'हंस' का विशेष स्थान है। 'हंस' ने पहली बार हिन्दी में छोटी कहानियों को प्रविष्ट कराया। सर्वश्री प्रकाशचन्द गुप्त, रांगेय राघव, राजेन्द्र सकसेना, विनोदशंकर व्यास इत्यादि कुछ लेखकों ने ये नवीन प्रयोग प्रारम्भ किये। टेकनीक आप का नवीन है किन्तु आप की कला की आत्मा भारतीय है। श्री विनोदशंकर व्यास बड़ी सावधानी से कहानी का प्रारम्भ कर स्वाभाविक प्रसार का ध्यान रखते हैं। इन की गति में विशेष क्षिप्रता है। श्री प्रेमचन्द जी के शब्दों में, 'व्यास जी की भाषा में चोट होती है और चित्र कुछ ऐसे Elusive होते हैं, मानों स्वप्नचित्र हैं और इस लिए उन में रोमानी झलक होती है।' आप की छोटी कहानियों का सार पुंजीभूत तीव्र संवेदना है।

श्री राजेन्द्र सक्सेना की कुछ छोटी कहानियां 'हंस' 'राष्ट्रभाषा', 'वीणा' इत्यादि में बड़ी सफल निकली हैं। इन पर मराठी एवं गुजराती साहित्यकारों का प्रभाव प्रत्यक्ष है। आप का एक कहानी संग्रह 'पगडंडियां' ऐसे अनेक चित्रों से परिपूर्ण है जिन में कहानी का संचालन प्रत्येक क्रम पर सार की ओर अग्रसर होता है। इन में चरित्र की झांकी बड़ी स्वाभाविक है।

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी हिन्दी में तूफ़ानी कलाकार हैं। आप की छुटपुट लकीरें बड़ी प्रभावशाली और चित्रोपम होती हैं। बेनीपुरी की कहानियों के परिणामों में आकस्मिकता का सा चमत्कार रहता है। यह आकस्मिकता अत्यन्त स्वाभा वक होती है। बेनीपुरी के विशेषज्ञ अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। टेकनीक के किये आप के अन्वेषण हिन्दी कहानी की उन्नति में विशेष सहायक होंगे।

श्री रांगेय राघव की कला में ओज, बल और शक्ति है। आप की छोटी कहानियों में पाश्चात्य कथाशैली की झलक है। उन के चित्र सम्बद्ध चमत्कार-पूर्ण हैं। आप के कुछ रिपोर्ताज़ बड़े सुन्दर हैं। श्री विजयकुमार मुंशी, श्री प्रभाकर माचवे, श्री रामविलास शर्मा इत्यादि कई अन्य कलाकार इस ओर झुक रहे हैं। वर्तमान हिन्दी साहित्य की छोटी कहानियों का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

सरदार पटेल : एक दृष्टि में

डॉक्टर सत्यकाम

एक प्रसिद्ध इतिहास लेखक का यह वाक्य प्रसिद्ध है कि,—'वाटर्लू के युद्ध का निर्णय रण-क्षेत्र में न हो कर कैम्ब्रिज के क्रिकेट-मैदानों में हो चुका था।' किन्तु यह मानना पड़ेगा कि,—'भारत के स्वातन्त्र्य-संग्राम का निर्णय एक स्कूल की चार-दीवारी के अन्दर हुआ था।'

तब गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में अपने 'सत्याग्रह' के प्रयोग शुरू न किये थे; और नाही नेहरू-परिवार के मोती और जवाहर ने स्वराज्या-न्दोलन में अपना योग-दान दिया था—जब कि नाड़ियाद मिडल स्कूल की चार दीवारी में नटखट वल्लभ ने भारतीय स्वातन्त्र्य-सग्राम की दिशा निश्चित कर दी! स्कूल के एक अध्यापक पुस्तकों का व्यापार करते थे और लड़कों को अपने पास से ही पुस्तक खरीदने पर मजबूर करते थे। वल्लभ ने पहले तो इस के विरोध में आवाज़ उठाई, अध्यापक को समझाया बुझाया, किन्तु मामला बढ़ता देख कर स्कूल के विद्या-र्थियों का संगठन किया, और समस्त अध्यापक स्तम्भित रह गये, जब कि निरन्तर पांच-छः दिन तक स्कूल का कार्य बन्द रहा। हैडमास्टर को अन्त में झुकना पड़ा और यह अनुचित व्यापार बन्द हो गया।

इस 'सत्याग्रह' का सेनानी वल्लभ भाई ही 'भारतीय-स्वातन्त्र्य-सत्याग्रह' का 'सरदार' बना और उस में भी अन्त में वह विजयी हुआ।

× × ×

बड़ौदा के हाई स्कूल में—

वल्लभ ने संस्कृत व गुजराती में से पर्याय के तौर पर गुज़राती को पसन्द किया। संस्कृत के अध्यापक खिझ से गये, बोले,—'पधारो महापुरुष!' पर उन्हें ज्ञात न था कि जिसे वे आज महापुरुष सम्बोधन कर रहे हैं—वह कभी वास्तव में महापुरुष कहलायेगा।

'कहां से पधारे?'—मास्टर साहब ने छूटते ही प्रश्न किया।

'करमसद से!'—वल्लभ ने सीधेपन से उत्तर दिया।

मास्टर बोले,—'संस्कृत छोड़ कर गुजराती ले रहे हो, किन्तु नहीं जानते कि गुजराती बिना संस्कृत के अच्छी तरह नहीं आती?'

वल्लभ संभल कर बोला,—'पर, मास्टर साहब! यदि हम सब ही संस्कृत पढ़ लें तो आप किसे पढ़ायेंगे?'

मज़ाक ने मनमुटाव का रूप धारण किया। मॅट्रिक के वल्लभ को पहाड़े लिखने का दण्ड मिला। गुजराती में पहाड़े को 'पाड़े' कहते हैं। 'पाड़े' का दूसरा अर्थ है—'भैंस का बच्चा'।

एक दिन मास्टर ने पूछा,—'वल्लभ। तुम 'पाड़े' कर के लाये?'

वल्लभ ने छूटते ही कहा,—'मास्टर जी! पाड़े लाया तो था, पर दरवाज़े पर आते ही उन में से एक दो भड़क पड़े थे और उन के भड़कते ही सारे भाग गये।'

मास्टर जी ने ऊपर शिकायत की,—'मैंने ऐसा उद्धत लड़का पहले नहीं देखा'। परन्तु हैडमास्टर ने उसे साफ़ बरी कर दिया। उन का अन्त तक भी यह मत था,—'मैंने ऐसा विद्यार्थी कभी नहीं देखा!'

× × ×

गोधरा की अदालत में—

मुकद्दमा लड़ते २ वल्लभ के पास अचानक एक तार आया। बन्द लिफ़ाफ़ा

उस ने पाते ही मेज़ पर रख दिया। थोड़ी देर बाद शान्त चित्त हो कर दबी उत्सुकता के साथ उस ने लिफ़ाफ़ा खोला और फिर उसी भांति बन्द कर के जेब में रख दिया। अदालत ने साश्चर्य देखा कि न तो उस के चेहरे पर मुस्कान थी, नाही विषाद की रेखा—वह अपने कार्य में तत्पर रहा। अदालत से लौटते समय जज व साथी वकीलों ने उस तार की चर्चा की—यह तार उन की प्राणप्यारी पत्नी के नश्वर देह के अवसान के सम्बन्ध में था।

× × ×

'गुजरात-वल्लभ' सरदार-पटेल के लिए काका कालेलकर ने ठीक ही लिखा था—'जब किसान व्याकुल होने लगता है, तब वल्लभ का भी खून खौलने लगता है। अगर हिन्दुस्तान किसानों का राष्ट्र है तो वल्लभ उस का राजा है।' और सचमुच आज वह राष्ट्र का राजा है।

यह सच है कि वल्लभ का त्यागमय जीवन उस के रग-रग में प्रवेश पा चुका है—उस ने सर्वस्व राष्ट्र-हिताय अर्पण कर दिया है। नागपुर एवं बोरसद-सत्याग्रहों की शानदार विजय एवं गुजरात-बाढ़ की निःस्वार्थ सेवा के बाद 'बारदोली-विजय' ने उसे 'कराची कांग्रेस' के समय 'देश का सरदार' बना दिया। बड़ों की लड़ाई बड़ों से होती है, उन के पराक्रम महान् होते हैं।

'सिंहः शिशुरपि निपतति,
मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु।
प्रकृतिरियं हि सत्ववतां,
न खलु वयस्तेजसो हेतुः॥'

× × ×

आज देश स्वतन्त्र है, और सरदार पटेल उस का शासक—गृहमन्त्री—है। जिस स्थैर्य, धैर्य और सुमति से राष्ट्र की डगमगाती नौका को उस ने स्थिर किया और आगे बढ़ाया—बढ़ती उमर, अनुभव और लोकप्रीति के साथ २ उस के कदम स्थिर हों, आगे बढ़े और राष्ट्र का भविष्य समुज्ज्वल हो—राष्ट्र की यही कामना है। सरदार की सादगी और तेजस्विता राष्ट्र में अनुप्राणित हो और राष्ट्र संकटावस्था में सबल हो—विश्व की त्रस्त मानवता इसी आशा में है।

शिक्षा का सन्देश

राजा महेन्द्र प्रताप

हमारी शिक्षा जो हम विद्यालय में पढ़ते हैं वही केवल शिक्षा नहीं। शिक्षा तो उसी दिन से आरम्भ होती है जिस दिन से हम जन्म लेते हैं और मरने तक हम कुछ न कुछ सीखते ही हैं। शास्त्रों ने यह भी लिखा है कि बच्चा मां के पेट में भी सीखता है। और एक अमेरिकन ने तो यहां तक कहा है कि तीन सौ वर्ष पहले से यह निश्चय होता है कि कोई बच्चा कैसा बनेगा। और सब धर्म यह मानते हैं कि जैसा हम इस जीवन में करते हैं वैसा अगले आने वाले जीवन में फल पाते हैं। और हमारे करने न करने पर हमारी शिक्षा की छाप रहती है। अर्थात् शिक्षा का यह महत्व है कि इसी के अनुसार हम को नरक अथवा स्वर्ग मिलता है।

गुरुकुल अथवा विद्यालय शिक्षा देता है। उस के अध्यापक विद्यादान देते हैं। पुस्तकें पढ़ाते हैं। पुस्तकालय विद्या का भण्डार है। और फिर जो वहां से कोई पत्रिका निकले वह तो शिक्षा का सन्देश ही संसार में फैलायगी। बड़े हर्ष की बात है कि गुरुकुल विश्वविद्यालय गुरुकुल-पत्रिका निकाल रहा है। मैं उसे बधाई देता हूं और आशा प्रकट करता हूं कि वह सदा हीं शिक्षा के सन्देश को फैलाता रहेगा।

जीव-विज्ञान के हिन्दी शब्द

श्री चम्पत स्वरूप

जीव-विज्ञानीय पारिभाषिक शब्दावलि के निर्माण के लिये समय समय पर अनेक प्रयत्न होते रहे हैं। यद्यपि यह कार्य अभी तक अभीष्ट सीमा तक नहीं पहुंच सका, किन्तु जिन हिन्दी प्रेमियों ने इस विषय में उत्साह दिखाया है और हिन्दी की सफल या असफल थोड़ी या बहुत सेवा की है, वे हर प्रकार से धन्यवाद और प्रशंसा के पात्र हैं। देश को स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद भारत के विश्वविद्यालयों में शीघ्रता से शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होती जा रही है। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक है कि वैज्ञानिक साहित्य-निर्माण में तीव्र प्रगति हो। अनेक हिन्दी प्रेमी विद्वान् तथा संस्थाएं अपना अत्यन्त अमूल्य समय तथा शक्ति इस दिशा में लगा रही हैं। नागपुर के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर रघुवीर तथा भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग के नाम इस विषय में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डाक्टर रघुवीर की 'एलिमेण्टरी इङ्गलिश इण्डियन डिक्शनरी ऑफ़ साइण्टिफिक टर्म्स' नामक पुस्तक तथा भारतीय हिन्दी-परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित 'अंग्रेजी-हिन्दी वैज्ञानिक शब्दकोष' का कुछ अंश छपकर पाठकों के सामने आ चुका है। इन दोनों पुस्तकों में दिये हुए जीवविज्ञानीय तथा साधारण शब्दों पर प्रकाश डालना तथा इस सम्बन्ध में अपने कुछ सुझाव रखना इस लेख का मुख्य उद्देश्य है।

शब्दों की सरलता

पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिये कि उन्हें यथासम्भव लोक प्रचलित व सुगम रूप में ही रखा जाये। निम्नलिखित तालिका से यह बात स्पष्ट हो जायगी कि डाक्टर रघुवीर ने कई स्थानों पर इस नियम की कितनी अधिक उपेक्षा की है और हिन्दी में प्रचलित सरल शब्दों के स्थान पर, जटिल, कठिन, अप्रचलित और दुरूह शब्द रखे हैं—

	डाक्टर रघुवीर द्वारा प्रयुक्त शब्द	प्रस्तावित सरल शब्द
above	उपरि	ऊपर
dark blue	असित नील	गहरा नीला
dark red	असित रक्त	गहरा लाल
clay	मृत्, मृत्तिका	मिट्टी
cleft	दीर्ण	चिरा हुआ
ox	वृषभ	बैल
rabbit	शशक	ख़रगोश
dozen	द्वादशक	दर्जन
yard	यष्टि	गज़

साधारण और प्रचलित अंग्रेजी शब्द

'रेल', 'टिकट' और 'स्टेशन' जैसे बहुत से अंग्रेज़ी शब्द हमारी बोलचाल की भाषा में इतने प्रचलित हो गये हैं कि उनके स्थान पर नये विचित्र हिन्दी शब्द गढ़ना हास्यास्पद होगा। उदाहरणार्थ डाक्टर रघुवीर के कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं—

Africa	कालद्वीप
Australia	दक्षिण द्वीप
Aptil	चतुर्थ मास
December	द्वादश मास
Cowrie	कपर्द
Inch	प्रांगुल

अंग्रेज़ी के नामों के अनुवाद करने की अपेक्षा तो यही अच्छा है कि हम चैत्र, वैशाख आदि देशी महीनों के नाम प्रयोग में लायें।

खोज करने वाले का नाम

बहुत से वैज्ञानिक नियम, सिद्धान्त, उपकरण, अवयव, जन्तु और पौदे आदि उनकी खोज करने वाले विद्वानों के नाम से प्रसिद्ध हैं। हिन्दी-शब्द निर्माण में विद्वानों के नामों को यथोचित स्थान न देना उनके प्रति अत्यन्त अन्याय तथा अश्रद्धा होगी। डाक्टर रघुवीर के कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं जिनमें खोज करने वाले का नाम बिल्कुल ही हटा दिया गया है

Charle's and Gay Lussac's law — ताप-वाति-परिमा-नियम।
Boyle's law — नपीड-वाति-परिमा-नियम
Beckmann's thermometer — अतिसूक्ष्म तापमान
Bunsen burner — पिनाल दाहक
Brownian movement — कणिकापिगति
Fallopian tube — गर्भाशयनाल

इस विषय में भारतीय हिन्दीपरिषद् की नीति अधिक ग्राह्य है क्यों कि उसने विद्वान् वैज्ञानिकों के प्रति पूर्ण कृतज्ञता दिखाई है जैसे कि इस परिषद् के नीचे दिये हुए कुछ शब्दों से स्पष्ट है—

Bilharzia — बिलहार्जिया कृमि या बिलहार्जम्
Barlow's table — बारलो की तालिका
Becquerel ray — बेकरल किरण
Benedict s solution — बेनेटिक्स का घोल
Betz cell — बेट्स कोषाणु

पूर्व-निर्मित शब्द

प्राचीन तथा अर्वाचीन समय में विज्ञान के विभिन्न विषयों पर भारतीय विद्वानों द्वारा हिन्दी और संस्कृत में बहुत से ग्रन्थ लिखे गये हैं। आयुर्वेद की पुस्तकों से शरीरक्रिया-विज्ञान, रसायन, वनस्पति-शास्त्र आदि विषयों का बहुत सा वर्णन मिलता है। बहुत से अंग्रेज़ी-हिन्दी तथा अंग्रेज़ी-संस्कृत कोष भी तैयार हुए हैं। इन सब पुस्तकों से हमें आधुनिक विज्ञान के बहुत से शब्द प्राप्त हो सकते हैं। इन में से बहुत से शब्द तो प्रतिदिन के प्रयोग में भी आने लगे हैं। प्रत्येक नये शब्द-निर्माता का यह कर्तव्य है कि वह अपने शब्द-कोष में पूर्वनिर्मित तथा पूर्वप्रचलित शब्दों को यथोचित स्थान दे। यदि इन शब्दों से ठीक काम चल सके तो व्यर्थ ही नये शब्द न गढ़े जाँय। इसी प्रकार जो भी विभिन्न संस्थाएं तथा विद्वान् इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं उन सबको एक दूसरे का सहयोग प्राप्त होना चाहिये ताकि यथासम्भव उनके कार्यों में पारस्परिक सामंजस्य स्थापित हो सके। ऐसा करने से शब्दनिर्माण का महान् कार्य सरलता तथा शीघ्रता से पूरा हो सकेगा। प्रसन्नता की बात है कि भारतीय हिन्दी-परिषद् इसी प्रकार कार्य कर रही है।

नये शब्द

वैज्ञानिक भाषा में तथा साधारण भाषा में भी जो अंग्रेज़ी शब्द प्रयोग में आ रहे हैं, उन सब का कोई न कोई मूल-स्रोत तथा कारण अवश्य है जिस के आधार पर उन शब्दों का उद्भव हुआ। अपनी भाषा में जब हमें इन के लिये नये शब्द गढ़ने पड़ें तो हमारे शब्दों का आधार भी यथासम्भव वही मूल-स्रोत होना चाहिये। उदाहरण के लिये हम प्रसिद्ध शब्द 'Amoeba' लेते हैं। इस शब्द का मूल-स्रोत यूनानी भाषा का शब्द amoibe' है जिस का अर्थ है 'परिवर्तन'। Amoeba को यह नाम इसलिये दिया गया है कि उस की आकृति इसके अनुसार निरन्तर परिवर्तन-शील होती है।

अच्छा हो यदि हिन्दी में भी यही भाव व्यक्त हो सके। 'विपरिणामी' और 'विपर्यासी' आदि बहुत से शब्द प्रस्तावित किये जा सकते हैं। डाक्टर रघुवीर का 'कामरूपी' शब्द भी अत्यन्त सुन्दर तथा उपयुक्त है तथा इन डाक्टर जी के निम्न-लिखित शब्द भी ध्यान देने योग्य हैं: –

Cruciferae राजिका कुल, स्वस्तिक कुल,
Labiatar तुलसी कुल, द्व्योष्ठ कुल

मेरी सम्मति में 'राजिका कुल' और 'तुलसी कुल' की अपेक्षा 'स्वस्तिक कुल' और 'द्व्योष्ठ कुल' शब्द अधिक अच्छे ही नहीं बल्कि आवश्यक भी हैं क्योंकि 'राजिका कुल' और 'तुलसी कुल' शब्दों द्वारा उन रचनात्मक विशेषताओं का स्पष्टीकरण नहीं होता जो 'स्वस्तिक कुल' और 'द्व्योष्ठ कुल' शब्दों से अभिव्यक्त होती हैं।

शब्दों को रूढ़ करना

कभी-कभी कुछ अंग्रेज़ी शब्दों के लिये हमारी भाषा में एक या एक से अधिक शब्द होते हैं जिन के अर्थों से वह भेद स्पष्ट नहीं होता जो कि अंग्रेज़ी शब्दों में होता है। उदाहरणार्थ अंग्रेज़ी के दो शब्द 'insect' और 'worm' को लीजिये। साधारण बोलचाल की भाषा में इन दोनों के लिये 'कीड़ा' शब्द प्रयोग होता है। कीड़े के लिये संस्कृत में दो शब्द 'कीट' और 'कृमि' हैं। ऐसी अवस्था में सर्वोत्तम मार्ग यही है कि 'insect' के लिये कीट' और 'worm के लिये कृमि को रूढ़ कर लिया जाय।

नियमबद्धता तथा एकतानता

अच्छी पारिभाषिक शब्दावलि की यह विशेषता है कि उस के शब्दों में नियमबद्धता तथा एकतानता हो। दो-चार उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

निम्नलिखित शब्द डाक्टर रघुवीर के कोष से लिये गये हैं:—

Acrania अकरोटयः Craniata कपालिन
Cranium कर्पर Acephala अकपालाः
Cephalata शीर्षवन्त Cephalon शीर्ष. कपाल
apex शीर्ष apical शीर्ष–
apical growth अग्रवृद्धि skull करोटि
epicranium शिरोपरिभीति

इन्हें देखने से यह प्रतीत होता है कि शब्द निर्माण में कोई नियम तथा एकतानता नहीं है। 'Cranium' के लिये 'कर्पर' शब्द निश्चित करने के बाद यही उचित था कि Acrania', Craniata' तथा epicranium' शब्द भी कर्पर से ही बनाये जाते। ऐसा न कर के 'Acrania' में 'करोटि', 'Craniata' में 'कपाल' तथा 'epi-cranium' में 'शीर्ष' शब्दों का प्रयोग किया गया है, मानों 'skull', cranium', cephalon तथा 'apex' सब शब्द एक ही अर्थ रखते हों। 'Apex' के लिये शीर्ष शब्द का प्रयोग हो जाने के बाद 'apical growth' के लिये 'शीर्षवृद्धि' शब्द 'अग्रवृद्धि' शब्द की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है और 'cephalon' के लिये 'शीर्ष' शब्द को छोड़ कर केवल 'कपाल' ही पर्याप्त है। 'cephalon' के लिये 'कपाल' शब्द का प्रयोग कर के 'Cephalata' के लिये 'शीर्ष वन्त' शब्द की अपेक्षा 'कपालवन्त' शब्द अधिक नियमानुकूल जान पड़ता है।

डाक्टर रघुवीर तथा भारतीय हिन्दी परिषद् दोनों के ही कोषों में द्विनाम पद्धति (binomial nomenclature) के शब्दों में किसी निश्चित नियम या व्यवस्था का पालन नहीं किया गया। इस पद्धति के अनुसार

प्राणियों की प्रत्येक जाति का नाम दो शब्दों से व्यक्त किया जाता है। पहिला उस का गण-नाम (generic name) और दूसरा उस का जातिनाम (specific name) होता है। गणनाम पहिले लिखा जाता है और जाति-नाम उस के बाद। गणनाम अधिकतर संज्ञा होती है और जातिनाम विशेषण। उदाहरणार्थ मेंढक के लिये साधारण बोलचाल का अंग्रेज़ी शब्द 'frog' है किन्तु द्विनाम पद्धति के अनुसार उस का नाम लेटिन भाषा से निर्मित 'Rana tigrina' है। इस पद्धति को हिन्दी भाषा में भली प्रकार से समझाने के लिये हमें भी इन्हीं नियमों के अनुसार शब्द रखने चाहिए। हिन्दी शब्दों का मूलस्रोत लेटिन या यूनानी भाषा न हो कर सस्कृत भाषा ही होगी 'Frog' के लिये 'मेंढक' और 'Rana tigrina' के लिये 'मण्डूक व्याघ्रीय' शब्द प्रयोग किये जा सकते हैं। अब डाक्टर रघुवीर के निम्नलिखित शब्दों की ओर ध्यान दीजियेः—

१ Abrus precatorius गुंजा
२ Butea Frondosa किंकुश
३ Delphinium निर्विषी-ति
४ Delphinium denudatum निर्विषी
५ Dioscorea aculeata मध्वालु
६ " hiruta यवद्वीपालु
७ Drosera कीटाश-ति
८ Entam oeba अन्तःकामरूप्याति
९ Eugenia जम्बुति
१० Eugenia jambolana जम्बुल
११ Eurotium नील हरि-क
१२ Felis tigris विडालाति व्याघ्र
१३ Hydra जलीयकाति
१४ Hydra viridis हरि जलीयक
१५ " vulgaris निर्वर्ण जलीयक
१६ " fusca बभ्रु जलीयक

इस द्विनाम शब्द समूह में किसी भी प्रकार का नियम देखने को नहीं मिलता। शब्द संख्या एक, दो, चार, पांच, छः और दस में दो नामों के स्थान पर एक ही नाम से काम चला लिया गया है। शब्द संख्या तीन, सात, आठ, नौ, बारह और तेरह में गणनाम में 'ति' प्रत्यय लगाया है किन्तु अन्य शब्दों में वह बिल्कुल ही छोड़ दिया गया है तथा शब्द संख्या ग्यारह में 'ति' के स्थान पर 'क' प्रत्यय लगाया है। शब्द संख्या बारह में नामों का क्रम द्विनाम पद्धति के अनुसार है किन्तु शब्द संख्या चौदह, पन्द्रह और सोलह में जातिनाम पहिले और गणनाम पीछे लिखा गया है।

भारतीय हिन्दी परिषद् के भी निम्नलिखित शब्दों पर विचार करने से द्विनामां में नियम भंग स्पष्ट हो जायगाः—

१ Bignoniaceae मयूरध्वजस्य कुल
२ Bignonia indica मयूरध्वजा भारतीया
३ Basella उपष्टंभम्
४ Basella alba उपष्टंभा विश्वतुलसी
५ Basella rubra उपष्टंभम् पद्मरागम्
६ Bathyctena गभीरकंकता
७ Bathynella गभीरभव्या
८ Bdellostona जलूकामुख
९ Bdelloura जलूकापुच्छा

जिस प्रकार अंग्रेज़ी भाषा में द्विनामों के लेटिन या यूनानी रूप ले लिये गये हैं उसी प्रकार भारतीय हिन्दी परिषद् ने भी संस्कृत रूपों को लेने का प्रयत्न किया है किन्तु ऊपर लिखे शब्दों से स्पष्ट है कि यह प्रयत्न कितना असफल है। इस असफलता का विशेष कारण यह है कि लिंगों का निर्धारण हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं में भिन्न प्रकार से होता है। शब्द संख्या आठ में संस्कृत रूप न रख कर केवल हिन्दी

रूप ही रखा गया है। शब्द संख्या छः सात और नौ में यह नहीं कहा जा सकता कि किस आधार पर स्त्रीलिंग प्रयोग किया गया है। शब्द संख्या एक में 'Bignonia' को पुल्लिंग या नपुंसक लिंग रूप देकर शब्द संख्या दो में उसको स्त्रीलिग रूप दे दिया गया है। इसी प्रकार शब्द संख्या तीन व पांच में 'Basella' नपुंसकलिंग है किन्तु वही 'Basella' शब्द संख्या चार में स्त्रीलिंग बन गया है।

पाठकों के विचारार्थ मैं अपने बनाये हुए कुछ द्विनाम शब्द नीचे देता हूं। ये शब्द केवल प्रस्ताव स्वरूप हैं। मेरा यह दावा नहीं है कि ये शब्द सर्वमान्य होंगे। यदि अन्य विद्वान इस विषय में अपने विचार मुझ तक पहुंचाने की कृपा करें तो मैं उनका कृतज्ञ होऊंगा---

Amoeba proteus विपरिणामी प्रोतुस
Ascaris lumbricoides अन्त्रस्थ मृक्तिकरसम
Anclystoma duodenale अरालमुखी ग्राहणी
Balantidium coli स्यूतोपम बृहदन्त्री
Chaos diffluens संवर्त विलीयमान
Chaos chaos संवर्त संवर्ततीय
Coenus cerebrelis सार्वपुच्छी मस्तिष्कीय
Distomum hepaticum द्विमुख याकृत
Dracunculus medinensis व्यालोपम मदनी
Entamoeba coli अन्त्रविपरिणामी बृहदन्त्री
,, histolytica ,, धातुच्छायक
,, dysenteriae ,, प्रवाहिकर
Euglena viridis सुतारका हरित
Fasciola hepatica पट्टक याकृत
Glossina palpalis जिह्वी स्पर्शश्रृंगीय
,, morsitans ,, मोरसितनिक
Hydra vulgaris उदोरग प्राकृत
,, viridis ,, हरित
,, fusca ,, पिशंग
Plasmodium vivax सापुंज ससत्व
,, malariae ,, पूतिवायव
,, falciparum ,, लवित्रोपम
Periplaneta americana परिभ्रामी अमेरिकन
Rana tigrina मण्डूक व्याघ्रीय
,, temporoтia ,, अशाश्वत
,, cyanophilietis ,, श्यामल
,, esculenta ,, भोज्य
Stylopyga orientalis स्तंभकट प्राच्य
Trypanosoma gambiense कायवेधी गेम्बीय
Taenia solium पट्टसम सज
,, saginata ,, पीवर
,, serrata ,, अनुक्रकच
,, coenurus ,, सार्व पुच्छीय
,, echinococcus ,, शल्यकगुली
Trichina spiralis चिकुरिया सर्पिल

शब्दों में क्रियात्मकता

अच्छे कोष का यह गुण होना चाहिये कि यदि उसके आधार पर पुस्तकें लिखी जायँ तो उस कोष के शब्द उन पुस्तकों में सरलता से प्रयोग किये जा सकें। इसका अर्थ यह है कि पुस्तकें लिखना भी उतना ही आवश्यक है जितना कोष बनाना। यदि एक कोष किसी पूर्वलिखित पुस्तक के आधार पर बनाया जाय तो वह उन कोषों की अपेक्षा अधिक अच्छा होगा जो कि ऐसे किसी आधार पर नहीं बनाये गये हैं। भाषा की वास्तविक कठिनाइयां पुस्तक लिखने पर ही दूर हो सकती हैं। इसलिये उत्साही संस्थाओं तथा विद्वानों को इस ओर भी पूरा ध्यान देना चाहिये।

वलभी का विद्यापीठ

शङ्करदेव विद्यालङ्कार

भारत के दक्षिण-पश्चिम में प्राचीन काल में सौराष्ट्र देश में 'वलभी विद्यापीठ' की प्रतिष्ठा और सुकीर्ति उसी प्रकार देश-देशान्तरों में फैली हुई थी, जिस प्रकार मगध के नालंदा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों की। पाँचवीं से आठवीं शती तक वलभी मैत्रक राजाओं की राजधानी रहा। आज भी इस राजनगरी के ध्वंसावशेष भावनगर राज्य में 'वला' नामक ग्राम के रूप में विद्यमान हैं। वहीं पर एक समय दक्षिण-पश्चिम भारत का एक सुविख्यात शिक्षा-केन्द्र स्थापित था। वलभी विद्यापीठ की स्थापना राजकीय दानों से हुई थी। प्रथम बिहार राजकुमारी दद्दा (ध्रुव प्रथम की बहिन की कन्या) द्वारा स्थापित किया गया था। इसके पश्चात् सन् ५८० में राजा धारसेन ने एक नवीन विहार बनाने के लिए दान दिया और आचार्य भदन्त स्थिरमति द्वारा बप्पपाद नामक विहार स्थापित किया गया। चीनी पर्यटक ह्यूनत्सांग का कथन है कि वलभी में सौ संघाराम थे जिन में लगभग छः सहस्र भिक्षु निवास किया करते थे। ये भिक्षु हीनयान सम्मतीय संप्रदाय को मानने वाले थे। ये सब राजा ध्रुव भट्ट की संरक्षा में रहते थे जो कि बौद्ध-धर्म का परम भक्त था। राजधानी के समीप ही एक बड़ा भिक्षुमठ स्थापित किया गया था।

चीनी-यात्री इत्सिंग के मतानुसार नालन्दा और वलभी भारत के ऐसे शिक्षा-केन्द्र थे जहाँ पर विद्यार्थीगण अपनी शिक्षा की पूर्ति के लिए दो या तीन वर्ष तक निवास किया करते थे। इस समय का संकेत सूचित करना है कि यह समय उच्च शिक्षा (जिसे हम आजकल के अर्थों में कालेज की शिक्षा कह सकते हैं) के लिए ही था। नालन्दा की तरह वलभी में भी भारत के प्रत्येक प्रान्त से दूर-दूर से छात्र आकृष्ट हुआ करते थे। वहाँ पर एकत्र हो कर वे शास्त्रीय विषयों पर चर्चायें और वाद-विवाद किया करते थे। और अन्त में उनकी शास्त्र चर्चाओं के सार को वलभी के गुरुजन सम्पुष्ट किया करते थे। ह्यूनत्सांग का कथन है कि आचार्य स्थिरमति और गुणमति एक समय वलभी के विद्यामठ के अध्यक्ष थे। इस विद्यामठ में एक उत्तम ग्रन्थशाला भी थी। इस ग्रन्थशाला के लिए गुहसेन प्रथम की ओर से राजकीय सहायता मिली थी। नालन्दा के छात्रों की तरह वलभी के विद्यार्थी भी स्नातक होने के बाद राज्य दरबारों में उपस्थित हो कर अपनी योग्यता प्रदर्शित किया करते थे। इत्सिंग के कथनानुसार इन स्नातकों को शासन-संबन्धी अनेक पदों पर नियुक्त किया जाता था। इससे सिद्ध होता है कि वलभी में केवल धार्मिक विषयों की ही शिक्षा नहीं दी जाती थी अपितु न्यायशास्त्र, राजनीति-शास्त्र वार्ता (कृषि, पशुपालन और वाणिज्य) और चिकित्साशास्त्र आदि विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी। एक दृष्टि से वलभी नालन्दा का प्रतिस्पर्धी भी था। ह्यूनत्सांग का कथन है कि वलभी के भिक्षुगण अधिक हीनयान संप्रदाय के सिद्धान्तों में निपुणता प्राप्त किया करते थे जब कि नालंदा वाले महायान पर विशेष ध्यान देते थे।

कथा-सरित्-सागर की साक्षी से वलभी की ख्याति और अधिक सम्पुष्ट होती है। वहाँ पर आता है कि वसुदत्त नामक ब्राह्मण ने अपने

षोडषवर्षीय पुत्र विष्णुदत्त को विद्याध्ययन के लिए वलभीपुर भेजा था। यह ब्राह्मण गंगा की घाटी में अन्तर्वेदी प्रदेश का निवासी था।

अन्तर्वेद्यामभूत् पूर्वं वसुदत्त इति द्विजः।
विष्णुदत्ताभिधानश्च पुत्रस्तस्योदपद्यत ॥
स विष्णुदत्तो वयसा पूर्णषोडशवत्सरः
गतुन्म् प्रववृते विद्या-प्राप्तये वलभीपुरम् ॥

इससे हम जान जाते हैं कि एक कर्तव्य-परायण ब्राह्मण पिता की दृष्टि में उस समय बनारस और नालंदा अपने पुत्र की शिक्षा के लिए उतने उपयुक्त नहीं थे जितना कि वलभीपुर का विद्यापीठ। इस प्रकार वलभी अपने समय में भारत का एक प्रतिष्ठित शिक्षणालय था। ऐसे समृद्ध और विख्यात विद्याकेन्द्र का विलय किस तरह और किस समय हो गया इसका कुछ पता नहीं चलता। विचारकों का मत है कि इसकी भी वही गति हुई जो नालंदा आदि विद्या-केन्द्रों की हुई है। अर्थात् बाह्य आक्रान्ताओं के द्वारा ये विध्वस्त कर दिये गये।

भारत में ऐनकों का इतिहास

श्री पी० के० गोडे

अभी हाल ही में भारतीय संस्कृति के प्रेमी एक मित्र ने मुझ से अनुरोध किया कि मैं भारत में ऐनकों के प्रचलन पर कलम उठाऊं। मैंने उन्हें वचन दिया कि इस विषय का अध्ययन मैं इस दृष्टिकोण से करूंगा कि ऐनकों के विषय में कई भ्रान्तियों का निराकरण हो सके। हमारे विचारशील व्यक्ति, भी जो इस बात पर विश्वास रखते हैं कि हमारे पूर्वज दृष्टिदोष के लिए कोई साधन अवश्य प्रयोग में लाते थे, इन भ्रान्तियों से बच नहीं सके हैं। भारत में ऐनकों के इतिहास के तथ्य जुटाते समय उन के भारतीयेतर क्षेत्रों से प्रचार के इतिहास का भी मैंने अनुशीलन किया है ताकि मैं अपने विषय को सुचारु रूप से ऐतिहासिक धरातल पर खड़ा कर सकूँ और बता सकूँ कि आज के उन्नत राष्ट्रों में इस का प्रचलन कैसे प्रारम्भ हुआ। यह तो मानी हुई बात है कि इन राष्ट्रों के औसत व्यक्ति की अध्ययन सम्बन्धी प्रवृत्तियों को ऐनकों के उपयोग से अत्यधिक लाभ पहुँचा है। और उन के प्रचलन से नेत्र-विशेषज्ञ भी अपने बन्धु ऐनक-निर्माताओं और ऐनक-विक्रेताओं से भी अधिक मालामाल हो गये हैं। ऐनकों के इस सर्वमान्य लाभ के होते हुए भी इस देश का एक निर्धन व्यक्ति नेत्र-विशेषज्ञ के पास जाना यथाशक्ति स्थगित किये रहता है क्योंकि वह उस की भारी फीस नहीं दे सकता। ऐनकों का यह पहलू कितना दुःखदायक है!

अब मैं ऐनकों के साधारण इतिहास तथा भारत में उनके प्रचार के इतिहास पर विशेषतया विचार करूँगा —

१. शॉर्टर ऑक्सफोर्ड इङ्गलिश डिक्शनरी के १६६२ वें पृष्ठ पर 'Spectacle' (ऐनक) शब्द की व्याख्या इस प्रकार दी है 'एक साधन जो दोषपूर्ण दृष्टि की सहायता करता है अथवा जो नेत्रों की धूल, प्रकाश आदि से रक्षा करता है। इस में एक फ्रेम में जड़े हुए दो ताल होते हैं। यह नाक पर रक्खी जाती है और दो डण्डियों के द्वारा कानों

पर अटका दी जाती है।' इस शब्द का प्रयोग और इस की व्युत्पत्तियां उसी शब्दकोश में इस प्रकार दी गई है—

१६४० ईस्वी–'मैंने बहुत पढ़ा, बहुत लिखा, लेकिन कभी ऐनक नहीं पहनी परन्तु आज सायङ्काल तो मैं भी एक हरी ऐनक खरीद लाया हूँ।' —सेमुअल पपीज़

१६०७ ईस्वी–'स्पेक्टेकल्ड'– जिस के पास ऐनक हो अथवा जिस ने ऐनक पहन रखी हो।

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होगा कि ईस्वी सन् १६०० से पूर्व ही इंग्लैण्ड में उपनेत्रों का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था।

२. सर विलियम फॉस्टर की पुस्तक 'सप्लिमेण्टरी केलेण्डर ऑफ डौक्यूमेण्ट्स इन दि इण्डिया ऑफिस' में हमें क लेख मिलते हैं जिस में उस समय से आयात माल का वर्गीकरण किया गया है जब से महारानी एलिजाबेथ ने कम्पनी को सनद दी थी। २३ फरवरी, १६१६ के प्रमाणपत्र, संख्या २५६ से हमें ज्ञात होता है कि कम्पनी की ओर से विलियम बिडल्फ आगरा और अजमेर की फैक्टरियों का मुख्य प्रबन्धक नियुक्त किया गया था। उस समय अजमेर में ही दरबार लगता था। लेख संख्या ३३०, तिथि २२ सितम्बर, १६१६ में, जो केरिज़ बार्कर और मिण्टफोर्ड ने सूरत में ठहरे हुए बिडल्फ के नाम भेजा था, से पता चलता है कि उन्होंने बिडल्फ को आदेश दिया कि वह अजमेर जा कर आसफखान से उस माल के सम्बन्ध में बात करे जिस की वहां पर्याप्त मांग हो, क्योंकि बिडल्फ ने अपने पहले तीन पत्रों में सूचना दी थी कि 'कम्पनी का कांच का सामान शराब, ऐनक, साधारण ताल आदि नहीं बिक रहे और इस ने निवेदन किया कि उपर्युक्त माल अब और अधिक न भेजा जाय। वेनिस के गोदाम का माल तो किसी प्रकार आसफखान के मत्थे मढ़ ही दिया है।'

ऊपर दिये लेख से प्रतीत होगा कि महारानी एलिजाबेथ द्वारा कम्पनी को अधिकारपत्र दिए जाने के १६ वर्ष के भीतर ही, अर्थात् १६१६ में, कम्पनी के एजेण्टों द्वारा भारत में ऐनक लाये गये। अब यह हिन्दी अनुसंधानकर्त्ताओं का कार्य है कि वे हिन्दी साहित्य से ऐनक विषय के प्रमाण ढूँढ निकालें। ऐनकों के विषय में कई उदाहरणों की फारसी साहित्य में भी मिलने की आशा है और मेरा तो यह विश्वास है कि यदि प्रस्तुत विषय में विद्वानों की रुचि हो तो वे उन्हें ढूँढ ही लेंगे।

३. इस से प्रथम कि मैं संस्कृत एवं मराठी से ऐनकों के विषय में १६०० से पूर्व और पश्चात् के कुछ उद्धरण दूं, मैं अपने पाठकों का ध्यान डॉ० अलबर्ट न्यूबर्जर की टिप्पणियों की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ जो उन्होंने अपनी पुस्तक 'टेक्निकल आर्ट्स् ऐण्ड साइन्सेज़ ऑफ़ दि एन्शिएण्टस' में दी है। रोमन लोगों की कांच की सामग्री की विवेचना करते हुए डॉ० न्यूबर्जर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि 'बहुत प्राचीन समय में ऐनकों का पता नहीं था, नांही उन्नतोदर एवं नतोदर तालों की ओर संसार का ध्यान गया था। प्लिनी से पता चलता है कि सम्राट् नीरो असियुद्ध को देखने के लिए एक प्रकार की पौलिशदार मणियों का प्रयोग करता था। और जो थोड़े बहुत ताल टायर, नोला, पम्पई और ट्रौय के ध्वंसावशेषों में पाये गए हैं, वे ऐनकों के ताल नहीं अपितु चमड़े की पेढ़ियों को सजाने के लिये प्रयुक्त किये जाते थे।

परन्तु तब भी यूनानी और रोमन लोग जल से भरे कांच के घड़ों की प्रकाश-विस्तारक शक्ति से अवश्य परिचित थे और चर्मकार दीपक की लौ को केन्द्रित करने के लिए उन्हें काम में लाते थे।'

(४) संस्कृत साहित्य में कई स्थानों पर सूर्यकान्त, सूर्यमणि और दीपोत्पल का उल्लेख है। वहां चन्द्रकान्त और चन्द्रमणि का वर्णन भी मिलता है। आप्टेकोश में सूर्यकान्त को अग्निमणि भी कहा गया है। महाकवि कालिदास का निम्न पद्य देखिये—

शमप्रधानेषु तपोधनेषु,
गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्ता–
स्तदन्यतेजोऽभिभवाद्वमन्ति ॥४१॥

इस पद्य से यह प्रतीत होता है कि सूर्यकान्त के गुण भी उपनेत्र के तालों से मिलते हैं। सम्भवतः कालिदास के समकालीन हिन्दुओं को इस का ज्ञान था। भर्तृहरि का भी इस भाव का पद्य मिलता है—

यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः
प्रज्वलति सवितुरिनकान्तः।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृत-
निकृतं कथं सहते ॥

हम सूर्य की रश्मियों को एकत्रित करने वाली इस सूर्यमणि की रोमन लोगों के जल-पूरित कांच के घढ़ से तुलना कर सकते हैं जो दीपक की लौ को केन्द्रित करने का प्रयास था।

वाग्भट्ट ने 'अष्टाङ्ग हृदय' में लिखा है—

त्वगूदाहोवर्तिगोदन्तसूर्यकान्तशरादिभिः।

यहाँ सूर्यकान्त त्वग्दाह का एक साधन है जो चिकित्साशास्त्र के प्रयोग की वस्तु है। हेमाद्रि ने सूर्यकान्त की व्याख्या करते हुए उसे स्फटिक कहा है। 'अष्टाङ्ग हृदय कोश' (श्री. के. एम. वैद्य, त्रिचूर, १९३६) में सूर्यकान्त के विषय में निम्न पद्य संगृहीत हैं–

(अ) किसी अज्ञात लेखक का–

'शुद्धः स्निग्धो निर्व्रणो निस्तुषोन्त–
र्यो निर्धृष्टो व्योमनैर्मल्यमेति
यः सूर्यांशुस्पर्शनिष्ठ्यूतवह्निः
जात्यः सोयं कथ्यते सूर्यकान्तः।'

(ब) नरहरि के राजनिघण्टु में (१४५० ई०)

'अथ भवति सूर्यकान्तस्त-
पनमाणस्तपनश्च रविकान्तः।
दीप्तोपलोऽग्निगर्भो ज्वलनाश्मा-
ऽर्कोपलश्च वसुनामा।'

गुणाः–'सूर्यकान्तो भवेदुष्णो
निर्मलश्च रसायनः।
वातश्लेष्महरो मेध्यः
पूजनाद्रवितुष्टिदः।'

यद्यपि उपर्युक्त पद्यों से सूर्यकान्त क चिकित्सा सम्बन्धी प्रयागों के लिये अग्नि या गर्मी उत्पन्न करने के लिये प्रयोग तो स्पष्ट ही है, लेकिन अपने पूर्वजों द्वारा इस के उपयोग का विचार तब तक समझ में नहीं आ सकता जब तक कि संस्कृत तथा अन्य भाषाओं के उद्धरणों पर एक साथ ध्यान न दिया जाय। सूर्यकान्त एक काल्पनिक मणि ही है, यह मैं नहीं मानता। हां, इस के पीछे कुछ गाथाएं अवश्य जोड़ दी गई हैं। यदि मेरा यह दृष्टिकोण स्वीकार किया जाय तो क्या पुरातत्त्ववेत्ताओं को भारतीय खण्डहरों की खुदाई में ये मणियां मिली हैं? सूर्यकान्त का अध्ययन कांच एवं पत्थर के उन मनकों के साथ सम्बन्धित है जो कि खुदाई के कई अवसरों पर बड़ी संख्या में पाये गये हैं।

(५) मैं पहले अजमेर में ऐनकों के आयात एवं क्रय-विक्रय के विषय में लिख आया हूं। अब देखना यह है कि क्या ऐनकों का प्रचलन १६१६ ई. से पूर्व ही हो चुका था? इस सम्बन्ध में मैं एक तथ्य उद्धृत करता हूँ, जिस से सिद्ध होता है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा अजमेर में उपनेत्र-व्यवसाय के १०० वर्ष पूर्व ही विजयनगर में उन का प्रचलन था।

सोमनाथ कवि ने अपने समकालीन व्यासराय (१४४६-१५३९) की जीवनी लिखी है। ग्रन्थ के सम्पादक वेन्केबाराय लिखते हैं कि व्यासराय ने एक हस्तलिपि को पढ़ने के लिये 'उपलोचन-गोलक' का उपयोग किया था। मूल सन्दर्भ इस प्रकार है—

'करकमलमधुप घोराणकायामिव पुस्तक-विभागरेखायाम् निभृतनिद्दिप्तचच्च पंनासिका-नालभागप्रतिफलितेनेव। नयनयुगलेन स्वच्छ-तरोपलोचनगोलकेन अनुमित वाधकदशा-तिशयम्।'

उन्नतोदर ताल वाले ऐनकों के लिये 'उपलोचन गोलक' एक बढ़िया शब्द निंमित किया गया है। संस्कृत में ऐनक का पर्यायवाची कोई शब्द नहीं है, क्योंकि पोर्चुगीज़ों के आने से पहले भारत में ऐनकों को कोई नही जानता था। प्रश्न किया जा सकता है कि व्यासराय को ये ऐनक कहां से प्राप्त हुये? क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूँ कि पोर्चुगीज़ों ने ये ऐनक भी उन अनेक उपहारों के साथ भेंट किये जिनका वर्णन सोमनाथ ने किया हैं।

(६) इस स्थिति में 'इन्साइक्लोपीडिया-ब्रिटेनिका' पर दृष्टिपात करना उपयोगी होगा। वहां ये स्थल विचारणीय हैं —

(i) प्लिनी और अन्य लेखकों ने जल-पूरित घटों का वर्णन किया है, जिनसे आतशी शीशे का उपयोग लिया जाता था।

(ii) ई. वाइल्ड कहता है कि पूर्वजों को ऐनकों का कतई ज्ञान न था।

(iii) सर्वप्रथम प्रामाणिक उल्लेख मेसनर (१२६०-८०) का मिलता है जिसने बलपूवक कहा कि वृद्ध पुरुष ऐनकों का प्रयोग करते हैं।

(iv) १२८२ ई. में निकोलस बुल्ट नाम के एक पादरी ने एक सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए ऐनकों का प्रयोग किया था।

(v) पहला चित्र जिस में ऐनक चित्रित किये गये हैं, १३६० ई. का है और यह त्रिविजों के साननिकोलो के गिर्जे में है।

(vi) २३ फरवरी १३०५ ई. में अपने एक सरमन में गियोरडिनी द रिवेल्टी ने घोषणा की थी कि 'ऐनकों की खोज हुए अभी २५ ही वर्ष हुए हैं।'

(vii) ऐनकों का प्रचलन १२८० से किञ्चित पूर्व से ही माना जाता है।

(viii) ताल बनाने की प्रक्रिया १५८५ ई. के लगभग प्रचलित थी।

यदि योरोप में ऐनकों का निर्माण १२५० ईस्वी के आस पास हुआ और तब से ही यह चला आ रहा है तो १५२० ई. में व्यासराय द्वारा उनका उपयोग बहुत कुछ समझ आता है, क्योंकि वह पोर्चुगीज़ व्यापारियों के निकट सम्पर्क में था। पोर्चुगीज उसे यूरोप की यह भेंट देते ही; वह कृष्णदेव राय का गुरु जो था!

अब मैं १७ वीं शती में दक्षिण में उन के प्रचलन के विषय में मराठी साहित्य के कतिपय उद्धरण दूंगा ।

आजकल मराठी में चलने वाला 'चालशी' शब्द ऐनकों के लिये प्रयुक्त होता है । दाते और कर्वे के शब्दकोश में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है—

चालशी–सी, चालिशी–सी (१) दृष्टि-हीनता जो ४० वर्ष की आयु में अनुभव होने लगती है ।

(२) ४० वर्ष की आयु ।

(३) ऐनक ।

प्रयोग : –साधु रामदास (१६०८–१६८२) ने अपने दास-बोध में लिखा है—

नेत्रीं होति राजणवाडिया ।
चालसी लागे प्राणिया ।
या नांव आध्यात्मिक ॥४६॥

प्रश्न उठता है कि यदि साधु रामदास को १७ वीं शती में ऐनकों का ज्ञान था, तब अपने "लेखनक्रियानिरुपण" में मध्यम आकार के अक्षर लिखने के लिये क्यों कहा है ? उत्तर स्पष्ट है, इस युग के ऐनक सब प्रकार के दृष्टिविकारों के लिये उपयोगी नहीं होते थे ।

(८) १५२० ई. के लगभग सोमनाथ ने जिस 'उपलोचन गालक' का उल्लेख किया है उसका पर्यायवाची रूप 'ऐनक' आज दक्षिण में प्रचलित है । यह शब्द १७वीं और १८ वीं शती में भी व्यवहृत होता था । शब्दकोष में निम्न पद्य संगृहीत हैं—

मराठी कवि मोरोपन्त (१७२६–६४) ने ऐनकों को 'होय भला इष्टार्थग्रह उपनेत्रेंचि कीं भला बुबलें' कह कर महिमा गाई है ।

(६) पट्टाभि सीतारामैय्या ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'फ़ैदर्स ऐण्ड स्टोन्स' में ऐनकों का वर्णन करते हुये लिखा है कि–'रोल्डगोल्ड के ऐनक और वल्केनाइट एवं एबोनाइट की रंग-बिरंगी फ्रेमें आंख, नाक और चेहरे के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने की आधुनिक कलात्मक अभिरुचि के द्योतक न हो कर (मायोपिया) एवं वृद्धावस्था की दूर दृष्टि के ही सूचक हैं । वृद्धावस्था में दूर की वस्तुओं का स्पष्ट न दीखना आज का ही रोग नहीं है, यह मनुष्य के पीछे उसकी उत्पत्ति से चिपटा आया है । हमारे पूर्वज ४० वर्ष की आयु के बाद होने वाली दृष्टिदोष की चिकित्सा के लिये दोनों ओर से उन्नतोदर पत्थर व्यवहार में लाते थे । महाराष्ट्र में लोग इसे 'चालिशी' पुकारते हैं और उड़ीसा में 'चालसा' । गुजराती इसे 'बेतावन' के नाम से जानते हैं और आन्ध्र में 'चतवार' के नाम से ।

(१०) 'इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ़ इण्डिया' के १३ वें भाग के ४६२ पृष्ठ पर क्वार्ट्ज़ के ऐनक-व्यवसाय के सम्बन्ध में ऐसा लिखा है कि -

'तंजौर' तालुके में, तंजौर से ७ मील दूर, वाल्लभ वड़ाकुसेदी कस्बे में क्वार्ट्ज पत्थर पाया गया है । ग्रामीण लोग इससे ऐनक बनाते हैं ।

सचमुच यह एक बड़े व्यवसाय की सूचना देता है, जो कि इम्पीरियल गज़ेटियर के प्रकाशन के समय, अर्थात् १८८६ के लगभग भारत में प्रचलित था । क्या कोई दक्षिणी विद्वान् इस पर प्रकाश डालेंगे ?

(११) पेशवा दफ़्तर के संग्रह-संख्या ३४ के पत्र-संख्या ११०, तिथि १७३८ के लगभग में हमें 'दूरबीन नली' का उल्लेख मिलता है । जलयान उस समय इस का उपयोग किया करते थे । उसी 'पत्र-संग्रह' में यूरोप से आने

वाली दूरबीनों, तश्तरियों और अन्य कांच के सामान का वर्णन भी है। 'पत्र-संख्या' १०६, में इंग्लैण्ड से एक अधूरे कैमरे का भी भारत में आना सिद्ध होता है। इन सब उद्धरणों से सिद्ध होता है कि१६००ईस्वी से यूरोप से कांच का माल भारत में आने लगा था। यदि इन उद्धरणों की, सोमनाथ के ऐनकों के वर्णन से तुलना करें तो प्रतीत होता है कि पोर्चुगीज़ लोगों के भारत में आने से पूर्व यहां ऐनकों का प्रचलन न था।

(१२) डा० डगलस गुथरी अपनी 'हिस्ट्री ऑफ़ मैडिसिन' में लिखते हैं—

पृष्ठ ११४ फ्रैन्च लेखक बर्नार्ड डी गोर्डन (१२८५) ने 'लिटियम मैडिसिनी' ग्रन्थ लिखा था। इस में प्रथम बार ऐनकों का उल्लेख पाया जाता है।

पृष्ठ १२१—रोगर बेल्कन(ई० १२१४-९४) को दूरबीन, अनुवीक्षण यन्त्र, ऐनक, और बारूद के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है।

पृष्ठ १८८-९.—'रोगर बेकन प्रथम व्यक्ति था जिस ने मैलपिगी और लोवन हॉक को ऐनकों के लिये तालों का उपयोग सुझाया। हॉलैण्ड का रहने वाला ऐनक-निर्माता जाचिरियस जानसन ट्यूब में एक ताल लगा कर दूसरा ताल रख रहा था कि दूरबीन बन गई। गेलिलियो ने इसे बाद में परिष्कृत रूप दिया था।'

(१३) पिछले दिनों ऐनकों के इतिहास की जानकारी के लिये मैंने त्रिची की टेक्नॉलॉजिकल परीक्षण-शाला के. श्री. ए. एन. गुलाटी एम. एस. सी, से पत्र-व्यवहार किया था। यहाँ मैं उन के पत्र में से कुछ अंश देता हूँ—

(१) डॉ० जी. फिन्डले ने 'जर्नल ऑफ़ रॉयल माइक्रोस्कोपी' में 'औषध-शास्त्र पर अनुवीक्षण यन्त्र का ऋण' नाम का एक लेख लिखा था। डा० साहब का कहना है कि—

(क) यदि तालों का आविष्कार शुद्ध चिकित्सा-शास्त्र के उपयोग के लिये नहीं किया गया था, तो भी उसका प्रथम प्रयोग मायोपिया दूर करने के लिए किया गया।

(ख) रोगर बेकन (१२१४-९४) ने विकृत दृष्टि के लिये तालों के उपयोग का सुझाव प्रस्तुत किया है। बर्नार्ड डी गोडन नामक चिकित्सक ने उस के इस सुझाव को तत्क्षण क्रियात्मक रूप दिया और स्वनिर्मित उपनेत्रों को 'ओकसल बेरेलिसन' का नाम दिया।

(२) टी. टी. वाटरमैन ने सिद्ध किया है कि पारसेलीन बारूद, छाप की कल, नाविक दिग्दर्शक यन्त्र और कागज़ की मुद्रा की तरह ऐनकों के आविष्कार के लिये भी हम चीनियों के ऋणी हैं।

(३) रोमन सम्राट् नीरो का शिक्षक सेनेका जलपूरित कांच के घटों की बढ़ी हुई शक्ति को जानता था।

(४) अब तक सब से प्राचीन ताल निमरोद के महल के खण्डहरों में मिले जो कि बेबिलोन में था।

मेरे एक दूसरे मित्र श्री डा० एच० गोज़ ने, जो बड़ौदा अजायबघर और चित्रशाला के अध्यक्ष हैं, मुझे सूचना दी कि 'जहांगीर चित्रावली' में, जिसे डा० साहब और डा० कुहनल ने प्रकाशित किया है,अकबर के बाद के एक चित्रकार का ऐनक धारण किए हुए एक चित्र है।

—०—

श्री अञ्चल

वनफूल

फूल कांटों में खिला था सेज पर मुरझा गया !

जगमगाता था उषा-सा कंटकों में वह सुमन
स्पर्श से उस के तरंगित था सुरभिवाही पवन
ले कपूरी पंखुरियों में फुल्ल मधु-ऋतु का सपन

फूल कांटों में खिला था सेज पर मुरझा गया !

प्रखर रवि का ताप झंझा के असह झोंके कठिन
कर न पाये उस तरुण संघर्ष-कामी को मलिन
किन्तु झाड़ी से अलग रह न पाया एक दिन

फूल कांटों में खिला था सेज पर मुरझा गया !

जो अडिग रहता अड़ा तूफ़ान में बरसात में
टूट जाता है वही तारा शरद की रात में
मुक्त जीवन की प्रगति भी द्वन्द्व में—संघात में

फूल कांटों में खिला था सेज पर मुरझा गया !

शुभ कामनाएं

'मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि 'गुरुकुल-पत्रिका' आप के सम्पादकत्व में निकल रही है। इस शुभ अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएं स्वीकार कीजिए। मेरे सांस्कृतिक विषयों पर गवेषणात्मक लेखों के रूप में सहयोग से निश्चिन्त रहें।'

पी. के. गोडे
क्यूरेटर—भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना।

'कुल की प्रवृत्तियों के साथ मेरा स्वाभाविक स्नेह है। गुरुकुल के हर प्रयत्न में मेरी वैष्णव-भावना श्रद्धानन्द जी को, उन के परम संकल्पों समेत प्रतिबिम्बित पाती है। अतः मैं आप के प्रयत्नों का स्वागत करता हूं।'

माखनलाल चतुर्वेदी
संपादक—कर्मवीर, खण्डवा।

'मुझे विश्वास है, कि पत्रिका जनता में जागृति और प्रगति उत्पन्न करने को ओर अपनी पूरी शक्ति लगायेगी।'

सेठ गोविन्ददास
सदस्य—विधान परिषद, जबलपुर।

'समाज' परिवार की ओर से मैं 'गुरुकुल-पत्रिका' के प्रकाशन का हार्दिक स्वागत करता हूं। गुरुकुल जैसी संस्था से प्रकाशित होने वाली पत्रिका संस्था के अनुरूप ही अपनी मर्यादा स्थापित करेगी और पत्र-जगत् में उच्च आदर्श उपस्थित करेगी, ऐसा विश्वास रखते हुए उस की सफलता की मनोकामना करता हूं।'

परमेश्वरीलाल गुप्त
संपादक—समाज, बनारस।

'गुरुकुल-पत्रिका' के संपादक आप हुए हैं, इस का अर्थ यह है कि यह एक ऊंचे स्टैण्डर्ड की एवं अत्यन्त उपयोगी पत्रिका होगी। मैं हृदय से इस की सफलता चाहता हूँ।

चिरंजीत
संपादक—मनोरञ्जन, देहली

प्रगतिशील गुरुकुल

श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति

प्रत्येक जाति और देश में वहां की सभ्यता और जीवन के आदर्शों के अनुकूल एक विशेष प्रकार की शिक्षा-प्रणाली का विकास हो जाया करता है। प्राचीन भारतीय आर्यों ने अपनी सभ्यता और जीवन के आदर्शों के अनुकूल 'गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली' का विकास किया था। अनेक ऐतिहासिक कारणों के परिणाम-स्वरूप पिछले २-३ सहस्र वर्षों के काल में भारतीय लोग जहां अपनी पुरानी सभ्यता, संस्कृति, धर्म और जीवन के आदर्शों को छोड़ बैठे वहां वे अपनी पुरानी गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली को भी भूल बैठे। ऋषि दयानन्द ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्राचीन भारतीय सभ्यता, संस्कृति और धर्म के पुनरुद्धार का बिगुल बजाया और इस के लिये अपनी पुरानी गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली की पुनः स्थापना पर अत्यधिक बल दिया।

अमर शहीद स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने ऋषि दयानन्द के चरणों में बैठ कर उन के उपदेशों और शिक्षाओं से प्रेरणा ग्रहण की थी। इस प्रेरणा के फलस्वरूप स्वामी जी ने सन् १६०० में गुरुकुल की गुजरांवाला में स्थापना की। सन् १६०२ में स्वामी जी गुरुकुल को गुजरांवाला से उठा कर कनखल के सामने गङ्गा के पार चण्डीपहाड़ की तलहटी में कांगड़ी ग्राम की भूमि में ले आये। और तब से गुरुकुल, गुरुकुल कांगड़ी के नाम से प्रसिद्ध हो गया। स्वामी श्रद्धानन्द जी के महान व्यक्तित्व और गुरुकुल के परीक्षण की नवीनताओं के कारण गुरुकुल शीघ्र ही भारतभर में एक प्रसिद्ध संस्था हो गया और उस की कीर्ति विदेशों में भी पहुँच गई। उस समय शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल जितना अधिक चर्चा का विषय था उतना अधिक चर्चा का विषय कोई अन्य संस्था नहीं थी।

गुरुकुल ३२ विद्यार्थियों के साथ प्रारम्भ हुआ था। स्वामी जी महाराज और उन के पश्चात् कार्य करने वाले अधिकारियों के प्रयत्न से, गुरुकुल निरन्तर उन्नति करता चला गया; और सन् १६११ में इसने एक विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया। गुरुकुल विश्वविद्यालय के अन्तर्गत वेद-महाविद्यालय, साधारण महाविद्यालय और आयुर्वेद-महाविद्यालय -- तीन महाविद्यालय हैं। इस के अतिरिक्त अनेक विद्यालय भी इस विश्वविद्यालय के साथ सम्बद्ध हैं। गुजरात के सूपा गुरुकुल के विद्यालय और महाविद्यालय इसी के साथ सम्बद्ध हैं। विद्यार्थियों का नगरों के दूषित वातावरण से दूर एकान्त और शुद्ध वातावरण में अपने गुरुओं की समीपता में चौबीसों घण्टे रहना, ब्रह्मचर्य, तप, सादगी और संयम का जीवन, वेद, उपनिषद्, दर्शन, गीता, रामायण, महाभारत आदि भारतीय शास्त्रों के उच्च शिक्षण के साथ विज्ञान, गणित, दर्शन, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, इतिहास आदि आधुनिक विद्याओं की भी ऊंची से ऊंची शिक्षा गुरुकुल की अपनी विशेषताएं हैं। इन विशेषताओं के कारण गुरुकुल सदा जनता के प्रेम और खिंचाव का पात्र रहा और उसी के बल पर उन्नति करता रहा है।

सन् १६२४ में गुरुकुल पर एक भयंकर विपत्ति आई। उस वर्ष गङ्गा की भयानक बाढ़ से गुरुकुल के अधिकांश मकान गिरे और बह गये तथा स्थान रहने के सर्वथा अयोग्य हो गया।

गुरुकुल को लाखों की हानि उठानी पड़ी। यदि जनता का प्रेम और सहयोग गुरुकुल को प्राप्त न होता तो उस भारी धक्के से गुरुकुल का बच सकना असंभव हो जाता। परन्तु इस विपत्ति के समय जनता ने दुगने प्रेम का परिचय दिया और गुरुकुल की मुक्तहस्त से सहायता की। सन् १६२६ में गुरुकुल का रजत-जयन्ती महोत्सव मनाया गया। गुरुकुल के तात्कालिक मुख्याधिष्ठाता श्री पं० विश्वम्भर नाथ जी और आचार्य रामदेव जी के प्रयत्न और जनता की उदारता से गुरुकुल के लिये फिर लाखों रुपये एकत्र हो गये। गङ्गा के इस पार ज्वालापुर के सामने गङ्गा की नहर के बांयें किनारे गुरुकुल की वर्तमान भूमि ख़रीदी गई और उस के नये भवनों का निर्माण किया गया। सन् १६३० से गुरुकुल अपनी इस नई भूमि में बसा हुआ है। इस भूमि की रमणीकता और गुरुकुल के नये भवनों की भव्यता एक देखने की वस्तु है।

इस समय गुरुकुल के पास २४४६ बीघे भूमि है। गुरुकुल को कुल स्थावर और जंगम संपत्ति इस समय १६४४६६७) रुपये की है। इस समय ४५० ब्रह्मचारी यहां पढ़ रहे हैं। एक हज़ार के लगभग विद्यार्थी इस की शाखाओं में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। आगामी सन् १६५० में गुरुकुल की सुवर्ण जयन्ती मनाने का विचार है। उस समय गुरुकुल में एक शिल्प महाविद्यालय खोल देने का प्रस्ताव गुरुकुल की स्वामिनी सभा स्वीकार कर चुकी है। उस समय तक गुरुकुल विश्वविद्यालय को एक राज-सम्मत (Chartered University) बनवा लेने का भी निश्चय हो चुका है।

जब तक गुरुकुल एक स्वतन्त्र राजसम्मत विश्वविद्यालय नहीं बनता, तब तक इस की उपाधियों को सरकार और विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत कराने का प्रयत्न किया जा रहा है; और इस प्रयत्न में सफलता हो रही है। युक्त-प्रान्तीय सरकार ने गुरुकुल के स्नातकों को सरकारी नौकरियों के लिये दूसरी यूनिवर्सिटियों के ग्रेजुएटों के बराबर स्वीकार कर लिया है। बिहार-प्रान्तीय सरकार ने भी ऐसा ही स्वीकार कर लिया है। उन्होंने हमारे विद्यालङ्कार और वेदालङ्कारों को बी. ए. के समान और वाचस्पतियों को एम ए. के समान स्वीकार किया है। पंजाब-प्रान्तीय सरकार ने भी कुछ विभागों के लिये ऐसा स्वीकार कर लिया है और अन्य विभागों के लिये बातचीत चल रही है। केन्द्रीय-सरकार से भी इस सम्बन्ध में बातचीत हो रही है। युक्त-प्रान्तीय सरकार ने हमारी आयुर्वेदालङ्कार उपाधि को स्वीकार कर लिया है। हमारे आयुर्वेदालङ्कार A श्रेणी में रजिस्टर्ड हो सकते हैं और सरकारी आयुर्वेदिक औषधालयों में उन्हें सेवा भी मिल सकती है। उड़ीसा और मध्य-प्रान्तीय सरकारों ने भी हमारे आयुर्वेदालङ्कारों को स्वीकार कर लिया है। आगरा यूनीवर्सिटी ने हमारे विद्यालङ्कार और वेदालङ्कारों को B. A. के समकक्ष स्वीकार कर लिया है तथा हमारे स्नातकों को संस्कृत, हिन्दी, दर्शन, अर्थशास्त्र और राजनीति में M. A. की परीक्षा में बैठने की स्वीकृति दे दी है। इस स्वीकृति पर गवर्नर के हस्ताक्षर भी हो चुके हैं। अन्य सरकारों और विश्वविद्यालयों से इस विषय में बातचीत हो रही है। अपनी प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों से गुरुकुल के लिये आर्थिक सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न भी हो रहा है। ये सब सुविधायें मिल जाने से हमें विश्वास है कि अब गुरुकुल पहले की अपेक्षा भी अधिक लोकप्रिय बन जायगा और यहां पढ़ने वालों की संख्या थोड़े समय में बहुत बढ़ जायगी और गुरुकुल और भी अधिक उपयोगी, उन्नत, विस्तृत और यशस्वी संस्था बन सकेगा।

हिमालय की पवित्र गोद में गंगा के तट पर विद्यमान

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी के अमूल्य उपहार

ब्राह्मी तेल

मस्तिष्क को शक्ति व तरावट देता है। सुगन्धित एव केश-वर्धक है।

मूल्य १।=) शीशी २।।) पाव

भीमसेनी सुरमा

आंख से पानी आना, खुजली, सुर्खी, दृष्टि की निर्बलता आदि आंखों के सब रोगों में अकसीर है। लगातार प्रयोग से उमर भर नेत्र-ज्योति बनी रहती है।

मूल्य १। प्रति शीशी, नमूना ।।=)

भीमसेनी नेत्रबिन्दु

यह आखों में डालने की द्रव औषध है। दुखती आखों में भी इस का प्रयोग किया जा सकता है। कुकरों के लिए बहुत उत्तम है।

मूल्य १) शीशी

सुखधारा

अजीर्ण, अतिसार, आनाह उदरशूल उत्क्लेद तथा वमन, एवं अन्य उदर विकारों में अनुपान भेद से अत्यन्त उपयोगी है।

मूल्य ।।=) ड्राम

आँवला तेल

बालों का गिरना, छोटी आयु में सफ़ेद हो जाना व गंज आदि रोग दूर हो जाते हैं। बालों को रेशम की तरह मुलायम कर काला करता है।

मूल्य १। शीशी

पायोकिल

पायोरिया की रामबाण दवा है। प्रति दिन प्रयोग के लिए उत्तम मञ्जन है।

मूल्य १।।) शीशी

भीमसेनी दन्त मंजन

दांतो में कीड़ा लग जाना, दांतो का हिलना मसूड़ों का खुजलाना, पीप बहना, मुंह से दुर्गन्ध आना इत्यादि सब रोगों के लिए लाभदायक है।

मूल्य प्रति शीशी ।।≡।

पामाहर

खुजली व चम्बल को अति उत्तम औषधि है। रोगी स्थान पर इसे मलना चाहिए।

मूल्य ।=) शीशी

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

एजेन्टों की हर जगह आवश्यकता है।

भोजन में आलू का स्थान

श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार

दुनियां में सब से अधिक काम के पौदों में आलू है। समस्त संसार में यह बोया जा रहा है। पूर्व की अपेक्षा पश्चिमीय देशों में इस की खेती अधिक होती है। मनुष्यों और पशुओं के लिए यह भोजन प्रदान करता है। इस से निशास्ता और व्यापारिक मद्यसार (एल्कौहल) भी बनाई जाती है।

आलू के पौदे का फल निकम्मा होता है। जंगली अवस्था में कन्द छोटे और खेती किये हुए पौदों में बड़े होते हैं।

इस देश की धरती का पौदा नहीं है ?

इस पौदे का मूल-स्थान ऐण्डीस (Andes), विशेषतः चिली और पेरु समझा जाता है। यह न्यू मेक्सिको के उत्तर तक पहुँच जाता है। कहा जाता है कि इक्वेडोर में क्विटो के पड़ौस में सब से पहले स्पेनिआर्ड्स ने आलुओं का पता लगाया था। यहां पर सोलहवीं सदी से इस की खेती की जा रही थी। युरोप में पहले–पहल यह सम्भवतः स्पेनिआर्ड्स के द्वारा क्विटो के शासन में, पन्द्रहवी शताब्दी के आरम्भिक भाग में, लाया गया। पेरू को जीतने के बाद १५३५ में अन्वेषकों ने इसे स्पेन पहुँचा दिया। यह कहा जाता है कि कार्डन नामक भिक्षु इसे पहले पहल पेरू से स्पेन ले गया था। १५८६ में यह वर्जीनिया से इंगलैण्ड ले जाया गया, वहां भी इसे सम्भवतः स्पेनिश ले गये थे। इंग्लैण्ड में इसे पहुँचाने का श्रेय सर फ्रेन्सिस ड्रेक को दिया जाता था। योरोप में इस के प्रसार की गति मन्द रही। अठारहवीं सदी के मध्य तक आयर्लैण्ड में भी इस की खेती साधारण नहीं हो गई थी। परन्तु, अब तो यह समशीतोष्ण जल-वायुओं में अनेक स्थानों पर मुख्य भोजन है।

आधुनिक लेखकों के ऐसे वर्णनों से प्रतीत होता है कि जैसे इस देश की धरती पर यह पैदा ही नहीं होता था। लेकिन, यह बात ठीक नहीं मालूम देती, क्योंकि चरक संहिता, कौटिलीय अर्थशास्त्र आदि संस्कृत के पुराने ग्रन्थों में हम इस का तो उल्लेख देखते ही हैं, इस प्रकार के कुछ दूसरे भोज्य-कन्दों का भी वर्णन पाते हैं जिन्हें पिण्डालुक आदि नामों से खाद्य-पदार्थों में गिनाया गया है। चरक, चाणक्य आदि ऋषियों ने आलुक नाम से जिस कन्द का वर्णन किया है उसी को आजकल के विद्वान् आलू व्याख्यान करते हैं। आलुक शब्द का अर्थ यदि आलू माना जाय तो स्वीकार करना पड़ता है कि भारत में यह प्रायः दो हज़ार साल से बोया जा रहा है और हमारे भोजनों का अंग बना हुआ है।

बनावट

तेज़ चाकू से एक बड़े आलू के बीच में से दो टुकड़े कर दिये जांय तो नग्न आंखों से ही उस में तीन तहें स्पष्ट दिखाई देंगी। सब से पहले बाहर का पतला छिलका रहता है। छिलके के अन्दर ज़रा चौड़ी एक पट्टी होती है, जो सम्पूर्ण आलू का प्रायः दस प्रतिशतक होती है। इस के अन्दर आलू का गूदा रहता है जो सारे आलू का करीब उनास्सी प्रतिशतक भाग होता है।

छिलके समेत खाने का महत्व

छिलके के नीचे वाली पट्टी में गूदे की अपेक्षा खनिज लवण और प्रोटीन काफ़ी अधिक

परिमाण में रहते हैं। कच्चे आलू में छिलके को चाकू से तराश कर जब फेंक दिया जाता है तो नीचे की तह का कुछ अंश भी साथ ही खुरच लिया जाता है जिस का मतलब है कि हम आलू के बहुमूल्य भाग को भी काफ़ी हद तक नष्ट कर रहे हैं। वैद्य लोग रोगियों को बिना छिलका उतारे ही आलू खाने के लिये जो बल दिया करते हैं,उस का कारण भी यही है कि आलू के उपयोगी पदार्थ से हम वञ्चित न रह जांय।

प्रोटीन अधिक नहीं

आलू के गूदे में अधिकतर निशास्ता तथा नत्रजनीय पदार्थ होते हैं। इस के रस में लवण घुली हुई अवस्था में रहते हैं। यह समझ लेना चाहिए कि आलू का सम्पूर्ण नत्रजनीय पदार्थ प्रोटीन के रूप में ही नहीं विद्यमान रहता। वास्तव में आलू में प्रोटीन का परिमाण बहुत कम होता है। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि नत्रजनीय पदार्थ का बहुत सा अंश एस्परेजीन के रूप में विद्यमान रहता है जिस में न तो तन्तुओं को बनाने की उपयोगिता है, और न ही इस में पोषण प्रदान करने की क्षमता। इस लिये वे आलुओं को तन्तुओं का निर्माण करने वाले भोजन के रूप में उपयोगी नहीं समझते।

निशास्ते का उत्तम स्रोत

रासायनिक विश्लेषण से आलू की मुख्य विशेषता तो यह ज्ञात होती है कि इस में निशास्ता बहुत अधिक होता है जिस के कारण यह व्यापारिक निशास्ते और डेक्स्ट्रीन का मुख्य स्रोत बनता है। इस से उद्योग-धन्धों में काम आने वाली मद्यसार (एल्कौहल) भी बनाई जाती है।

पका कर ही खाना चाहिए

आलू के निशास्ते के दाने दूसरे निशास्तों के दानों की तुलना में विशेष रूप से बड़े आकार के होते हैं। पकाया न जाय तो यह सुगमता से पचता नहीं, इस का आचूषण ठीक तरह नहीं होता और यह अफ़ारा पैदा कर देता है। जल्दी सड़ांद पैदा करने के गुण के कारण, कुछ लोगों के मत में, अजीर्ण वालों के लिये यह अच्छा भोजन नहीं साबित होता।

खनिज लवणों का अच्छा स्रोत

आलुओं में मुख्य खनिज पदार्थ पोटाश, कैल्शियम तथा प्रस्फुरक होते हैं। इन लवणों की प्राप्ति हमें मुख्यतया आलुओं से होती है। खाद्योज (विटामीन) सी का एक बड़ा परिमाण हमें आलू प्रदान करते हैं। मशीन के अनाजों की तुलना में खाद्योज बी और लोह-लवण भी हमें इन से अधिक मिलते हैं।

छिलके समेत उबालिये

दूसरे सब कन्दों के संघटन की तरह आलुओं का संघटन होता है। इस लिए इन को पकाने की विभिन्न विधियों में इन की पोषक उपयोगिता भी काफ़ी बदल जाती है। उबालने से पहले यदि इन्हें छील कर भिगो रखा जाय तो इन के पोषक पदार्थों—प्रोटीनों और खनिज लवणों—का एक बड़ा भाग नष्ट हो जाता है। इसी कारण हमेशा यह सलाह दी जाती है कि आलुओं को छिलके समेत ही उबालना या पकाना चाहिये।

पिलपिले आलू नहीं लीजिये

भिन्न-भिन्न आकार प्रकार के आलुओं के सम्बन्ध में यह जांच की गई है कि उन का पाचन किस तरह होता है। बिना चबाए ही मोटे-मोटे टुकड़े निगल जाने से वे देर में पचते हैं। बड़े, ताज़े और स्वस्थ आलू, पकाने या उबालने के बाद जिन का आटे की तरह चूरा आसानी से बनाया जा सकता है, उन आलुओं की अपेक्षा अधिक सुगमता से पच जाते हैं जो पिलपिले हों, हरे हों, उबालने के बाद भी कठोर रहते हों और

जो बारीक आटे के रूप में न पीसे जा सकते हों। पाश्चात्य देशों की रसोई में सेवियां बनाने की मशीन की तरह एक छोटी सी मशीन होती है जिस में उबाले हुए आलू डाल कर भींचे जाते हैं। निचले छिद्रों से आलू के जो छोटे-छोटे दाने निकलते हैं वे बिलकुल चावलों के समान दीखते हैं। चावलों के इस साम्य के कारण अंग्रेज़ी में इस मशीन को राइसर (चावल बनाने वाली मशीन) कहते हैं।

आर्थिक पहलू

भारत में आलू की कुल पैदावार लगभग चार करोड़ नव्वे लाख मन है। इङ्गलैण्ड में प्रति एकड़ दो सौ बीस मन आलू पैदा होता है और भारत में सौ मन प्रति एकड़। भारत बाहर के देशों से हर साल ग्यारह लाख मन से अधिक आलू मंगा रहा है जिस का मूल्य तेतीस लाख रुपये से ऊपर बैठता है। हमारे देश में मैदानी और पहाड़ी प्रदेशों में सब जगह आलू पैदा करने के लिये अपरिमित अनुकूल भूमियां होने पर भी यह लज्जास्पद बात मालूम होती है। दूसरे देशों की तुलना में प्रति एकड़ पैदावार की इतनी बड़ी कमी का मुख्य कारण बीजों की ख़राबी बताया जाता है। खाद, सिंचाई और अन्य सावधानियों का भी पैदावार पर निस्सन्देह पर्याप्त असर पड़ता है। परन्तु यह देखा गया है कि यदि अच्छी तरह देखे-भाले, नीरोग तथा अच्छी किस्म के बीज लिए जांय तो बहुत से उदाहरणों में पैदावार सौ प्रतिशतक बढ़ जाती है। जो एकड़ पहले सौ मन आलू पैदा करता था वह इस तरह दो सौ मन आलू निकालता है।

भोजन की कमी को दूर करने का उपाय

आलू का रासायनिक संघटन हमें बताता है कि शरीर के लिए उपयोगिता की दृष्टि से इसे हम गेहूँ के बराबर रख सकते हैं। बहुत से देशों में तो यह उसी तरह मुख्य भोजन के रूप में खाया जा रहा है जिस तरह भारत में गेहूँ या चावल। हमारे देश में इस समय गेहूँ की बहुत अधिक कमी है। जो भूभाग आलू पैदा करने के लिए अनुकूल हैं उन में हमारे किसान नये तरीकों से आलू की फ़सल खूब बढ़ा कर खाद्य पदार्थों की कमी को दूर करने में बड़ी सहायता कर सकते हैं।

आटे के स्थान पर आलू

उत्तर भारत के बड़े-बड़े शहरों में साल के कुछ समय में आलू का मूल्य चार-पांच आने का प्रति सेर रहता है। गेहूँ का आटा तो रुपये का दो सेर भी नहीं मिलता और ये रुपये के चार-पांच सेर के भाव बिक जाते हैं। जब इन की भोजन सम्बन्धी उपयोगिता गेहूँ के समान ही है तो परिवार के मुखिया को चाहिए कि आटे के बड़े खर्च को कम करने के लिए वह आलू का विविध रूपों में प्रयोग बढ़ा दे।

'आप की पत्रिका साहित्य की वह निर्मल धारा प्रवाहित कर सके जो सुरसरिसम सब का हित करने वाली हो।'　　बच्चन, प्रयाग।

'गुरुकुल कांगड़ी ने समय-समय पर जनता को बहुत उपयोगी, गम्भीर, और विचारोत्तेजक साहित्य प्रदान किया है। इस महान संस्था के अनेक ग्रन्थों का हिन्दी-साहित्य में अपना विशेष स्थान है। आशा है, इसकी 'गुरुकुल-पत्रिका' भी इस के नाम और परम्परा के सर्वथा अनुकूल होगी'।　　भगवानदास केला।

पुस्तक-परिचय

समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं। एक प्रति आने पर केवल प्राप्ति-स्वीकार ही देना सम्भव होगा।

वरुण की नौका (दो भाग)—लेखक आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, प्रकाशक—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी। पृष्ठ संख्या प्रथम भाग ३०६, द्वितीय भाग २८१, मूल्य प्रत्येक भाग का ३)।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में १४ वरुण-सूक्त हैं। इन सूक्तों में १२६ मन्त्र हैं। इन में परमात्मा को वरुण नाम से सम्बोधन किया गया है। भक्त के आगे प्रभु का जो रूप रखा गया है वह सुन्दर और मनमोहक है। लेखक ने भक्ति रस की जो गङ्गा बहाई है उस की अद्भुत छटा है। मन्त्रों में प्रभु की महिमा के वर्णन के साथ-साथ मनुष्य के कर्तव्य-कर्मों पर भी प्रकाश डाला गया है और पाप तथा पुण्य की विवेचना की गई है। आचार्य प्रियव्रत जी ने मन्त्रों के आशय को स्पष्ट करने के लिये अपनी व्याख्या में वेदों के गम्भीर स्वाध्याय का परिचय दिया है। व्याख्या सरल और सरस है। पुस्तक के प्रारम्भ में विस्तृत भूमिका है जिस में वरुण के पौराणिक और वैदिक स्वरूपों की पाण्डित्यपूर्ण विवेचना की गई है। जो उपासक इन वरुण-सूक्तों में प्रदर्शित रीति से भगवान् की भक्ति कर के उस के रस में डुबकी लगायेंगे और प्रभुभक्ति के प्रसंग में ही मन्त्रों में वर्णित जीवन को पाप-रहित और पवित्र बनाने के उपायों का अवलम्बन करेंगे उन को वरुण-प्रभु के दर्शन हो जायेंगे।

जीवन की पवित्रता के अभिलाषी प्रत्येक प्रभुभक्त के पास वरुण की नौका की एक प्रति रहनी चाहिये।

आयुर्वेद (सचित्र, मासिक) सम्पादक—श्री रामनारायण शर्मा और श्री सभाकान्त झा। प्रकाशक—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य ३)।

चिकित्सा की प्राचीन पद्धति—आयुर्वेद—का प्रचार करने के उद्देश्य से यह पत्रिका निकाली गई है। इस अंक में चुने हुए विद्वान् वैद्यों के लेखों का अच्छा संग्रह है। आयुर्वेद के विद्यार्थियों और वैद्यों के लिए उपयोगी पत्रिका है।

प्रेम (मासिक, जुलाई १९४८)। सम्पादक—राजा महेन्द्र प्रताप। प्रकाशक—प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन। वार्षिक मूल्य ३)।

'प्रेम' का ध्येय संसार से वर्ग द्वेष को मिटाना और उसे एक कड़ी में पिरोना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह प्रकाशित किया जा रहा है।

प्राप्ति-स्वीकार

जीवतिक्ति विमर्श—लेखक श्री हरिश्चन्द्र आत्रेय। प्रकाशक—बुद्ध सेवाश्रम, रतनगढ़ (बिजनौर), यू. पी. मूल्य १)।

हमारी रियासतें - लेखक—राजा महेन्द्र प्रताप। प्रकाशक—संसार संघ, प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन। मूल्य ।)।

आ॰॰न—लेखक—राजा महेन्द्र प्रताप। प्रकाशक, प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु इस समय गुरुकुल भूमि पर वर्षा ऋतु का साम्राज्य छाया हुआ है। सर्वत्र शान्ति, शोभा और शीतलता छाई हुई है। मौसम अतिशय सुहावना और सुखद बना हुआ है। बाहर से आने वाले आगन्तुक को कुलभूमि किसी पर्वतीय स्वास्थ्यकारी प्रदेश सी प्रतीत होती है। कुल-भूमि के चहुँ ओर सस्यश्यामल खेतियां लहरा रही हैं। अभी तक मच्छरों का उपद्रव प्रारम्भ नहीं हुआ है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अच्छा है। चिकित्सालय में रोगियों का आवागमन नगण्य सा है। ब्रह्मचारियों के भार में भी सन्तोषजनक वृद्धि हुई है।

नवीन सत्र

गुरुकुल का ग्रीष्मकालीन सत्र इस वार प्रथम जुलाई से प्रारम्भ हो गया है। तीनों महाविद्यालयों तथा विद्यालय-विभाग की पढ़ाई नियमित प्रारम्भ हो गई है। गुरुकुल के माध्यमिक विभाग की षष्ठ तथा सप्तम श्रेणियों के छात्र भी अब यहीं पर रहेंगे। और आगे जा कर माध्यमिक विभाग की सम्पूर्ण कक्षाएँ यहीं पर रहा करेंगी। माध्यमिक विभाग के लिए स्नातक श्री धर्मदेव जी और स्नातक श्री कृष्णराव जी की सेवाएं इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल से कांगड़ी गुरुकुल में परिवर्तित कर दी गई हैं।

बुनियादी शिक्षा

पिछले छः वर्षों से गुरुकुल के प्राथमिक विभाग में बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों के आधार पर कई विषयों की शिक्षा दी जा रही है। युक्त-प्रान्त में अब बुनियादी शिक्षा को अधिक महत्व और वेग प्राप्त हो रहा है अतः गुरुकुल के अध्यापक भी उसे और अधिक अच्छे रूप में प्रयुक्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

आयुर्वेद महाविद्यालय

एक जुलाई से आयुर्वेद महाविद्यालय का कार्य भी नियम-पूर्वक प्रारम्भ हो गया है। इस सत्र में श्री दिवाकरन् ऐयर की आयुर्वेद शास्त्र के उपाध्याय के रूप में नियुक्ति हुई है। आप मलाबार प्रान्त के निवासी हैं। और वैद्य शिरोमणि की उपाधि से भूषित हैं। आप पहले झांसी के आयुर्वेद विद्यापीठ में उपाध्याय थे। आप बड़े प्रेम और योग्यता से अध्यापन कार्य कर रहे हैं।

नवीन नियमानुसार आयुर्वेद विभाग में बाहर के उन छात्रों का प्रवेश भी हो रहा है जिन की संस्कृत भाषा, आंग्लभाषा और विज्ञान की शिक्षा इस सीमा तक सन्तोषकारक हो कि वे गुरुकुल के आयुर्वेद विभाग के प्रथम वर्ष में प्रविष्ट हो सकें। इस वर्ष इस प्रकार के छात्र भी प्रविष्ट किए गए हैं।

ओषधियों पर अनुसन्धान

गुरुकुल कैमिकल लैबोरेटरीज़ ने गुरुकुल कांगड़ी आयुर्वैदिक फ़ार्मेसी की ओर से आयुर्वैदिक ओषधियों के सम्बन्ध में आधुनिक रासायनिक तरीकों से अन्वेषण करने का विचार किया है। इस प्रयोजन के लिए एक गुरुकुल रासायनिक अन्वेषण शाला की स्थापना की गई है। इस समय निम्न समस्याएं विचार के लिए उपस्थित हैं।

(१) किण्वीकृत आयुर्वैदिक ओषधियों (आसव, अरिष्ट) के निर्माण में जो किण्वीकरण (Fermentation) के तरीके व्यवहार

में आ रहे हैं उन को विचार-पूर्वक उन्नति देना। (२) आसव और अरिष्टों का प्रमाणीकरण (Standardization) (३) वंशलोचन के—बाज़ार से तथा प्राकृतिक स्रोतों से जितने भी नमूने प्राप्त हो सकते हैं उन का रासायनिक विश्लेषण कर के आज कल बाज़ार में जो बनावटी वंशलोचन मिलता है उसे आयुर्वैदिक औषधियों के प्रयोग में लाने से औषधियों के गुणों में क्या भेद हो जाता है, इस पर विचार करना। (४) निम्न खनिज औषधियों का रासायनिक दृष्टि से अध्ययन (i) हिंगुल, रससिन्दूर, स्वर्णसिन्दूर। (ii) प्रवाल, शंख, मुक्ता, मुक्ताशुक्ति और वराट् आदि। (५) शिलाजीत का रासायनिक अध्ययन।

इस विषय में अभिरुचि रखने वालों से हमारी सानुरोध प्रार्थना है कि इस सम्बन्ध में सहयोग प्रदान करने की कृपा करें। इस विषयक उपयोगी परामर्शों और सूचनाओं का हम स्वागत करेंगे। पत्र व्यवहार का पता—अध्यक्ष, गुरुकुल केमिकल लेबोरेटरीज़, हरिद्वार।

आश्रम की सभाएँ

नवीन सत्र प्रारम्भ होते ही आश्रम की सभाएं प्रारम्भ हो गई हैं। सभाओं के नवीन निर्वाचन में निम्न लिखित ब्रह्मचारी नए वर्ष के लिये मन्त्री पद के अधिकारी हुए हैं।

सभा	मन्त्री
साहित्य-परिषद्	ब्र० शंकर
वाग्वर्धिनी-सभा	ब्र० जनार्दन
साहित्य-गोष्ठी	ब्र० शशिकुमार
कालेज यूनियन	ब्र० धुरेन्द्र
संस्कृतोत्साहिनी-सभा	ब्र० सत्यव्रत

वार्षिक चुनाव में

कुलमन्त्री का पद ब्र० सुभाषचन्द्र को और क्रीड़ामन्त्री का पद ब्र० भूदेव को प्राप्त हुआ। सायंकालीन क्रीड़ाएं नियमित हो रही हैं।

विद्यालय विभाग की हिन्दी और संस्कृत की सभाएं भी सुचारु-रूप से चल रही हैं। जिन में ब्रह्मचारी भाषण, प्रस्ताव, कविता और कहानियां सुनाते हैं।

पुस्तकालय

गुरुकुल पुस्तकालय को इस ग्रीष्मकाल में श्री रायबहादुर लालचन्द्र जी भाटिया (रिटायर्ड गैरीसन इंजीनियर) नामक महानुभाव ने चार सौ उत्तमोत्तम पुस्तकें भेंट रूप में प्रदान की हैं। इन पुस्तकों में योग शास्त्र की अतिमहत्वपूर्ण पुस्तकों का सुन्दर संग्रह है। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी, गुरमुखी और उर्दू भाषा में छपी हुई योग शास्त्र और धार्मिक विषय की पुस्तकों का इन में समावेश है। इन ग्रन्थों का मूल्य कोई एक सहस्र रुपया है। दानी महोदय के निकट गुरुकुल उन के इस सामयिक दान के लिये बहुत कृतज्ञ है।

मान्य अतिथि

पिछले दिनों युक्तप्रान्त के स्वायत्त शासन विभाग के मन्त्री श्रीयुत आत्माराम गोविन्द खेर महोदय गुरुकुल पधारे थे। आपने गुरुकुल का अवलोकन कर के बड़ी प्रसन्नता और परितोष अनुभव किया था। उन के सम्मान में आहूत सभा में अपने विचार प्रकट करते हुए आपने कहा था कि धर्मनीति, समाजनीति और राजनीति में जिन-जिन तत्त्वों का पूर्व दर्शन और प्रवर्तन महर्षि दयानन्द ने किया था उन का स्वीकरण और व्यवहार भारत की विभिन्न संस्थाएं और विभिन्न संप्रदाय अब करने लगे हैं। यह महर्षि तथा उन के द्वारा संस्थापित आर्यसमाज के विचारों और कार्यों की विजय का सूचक है। मैं इस संस्था के स्नातकों से जेल में तथा बाहर

भी मिलता आया हूँ और उन में मैंने चरित्र की उदारता पाई है। इसी कारण मैं इस संस्था का प्रेमी और भक्त हूं।

दूसरे मान्य अतिथि श्रीयुत **चन्द्रभानु जी गुप्त** (युक्तप्रांतीय सरकार के आरोग्य मन्त्री) गुरुकुल में पधारे। आपने विशेषरूप से गुरुकुल के आयुर्वेद-कालेज का अवलोकन किया। थोड़े से व्यय से इतना अच्छा प्रबन्ध देख कर उन्होंने इस विभाग की सराहना की तथा श्रद्धानन्द-सेवाश्रम के अस्पताल के सेवा कार्य और प्रबन्ध को देख कर सहायता देने का अभिवचन दिया। अपने भाषण में भी आपने गुरुकुल की सराहना की।

तीसरे मान्य अतिथि देशभक्त **राजा महेन्द्र प्रताप जी** ने गुरुकुल में दो दिन निवास किया। आप गुरुकुल में कोई ३४ वर्ष के पश्चात् पधारे। आपने विश्वसंघ, प्रेमधर्म, और विश्वयात्रा के अनुभवों पर तीन भाषण दिये। आप की निष्ठा, लगन, स्फूर्ति और महानुभावता का छात्रों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। आपने गुरुकुल के समस्त विभागों का अवलोकन कर के बड़ी प्रसन्नता अनुभव की। आपने अपनी बहुत सी पुस्तकें गुरुकुल को भेंटरूप में प्रदान की हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन

गुरुकुल की स्वामिनी सभा का वार्षिक बृहद् अधिवेशन इस वर्ष ३१ जुलाई और एक अगस्त को गुरुकुल के सुन्दर पुस्तकालय भवन में संपन्न हुआ। इस अवसर पर स्वामिनी सभा के प्रायः सभी गणमान्य कार्यवाहक, पदाधिकारी और अन्य मान्य प्रतिनिधि गण ने गुरुकुल शिक्षानगरी का निरीक्षण किया। प्रतिनिधियों के निवास की व्यवस्था विद्यालय के कमरों में की गई थी। और भोजन का प्रबन्ध गुरुकुलीय आर्यसमाज की ओर से किया गया था। अधिवेशन बड़ी शांति, शोभा और सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इसी अवसर पर विद्या-सभा, शिक्षापटल और व्यवसाय-पटल आदि की बैठकें भी होती रहीं। शिक्षा पटल में बाहर के विद्वान् भी पधारे थे। पटल में अग्रिम वर्ष के परीक्षकों, परीक्षा केन्द्रों आदि का निश्चय हुआ।

विशेष व्याख्यान

आर्य प्रतिनिधि सभा के वार्षिक अधिवेशन में पधारे हुए मान्य सभा के प्रधान **श्री महाशय कृष्ण जी** का एक भाषण देश की वर्तमान अवस्था और उसकी राजनीति पर हुआ। आपने अपनी विश्लेषणात्मक शैली में देश की राजनीति की बड़े सारगर्भित रूप में आलोचना करते हुए बताया कि हमारा देश बड़ी संकटपूर्ण घड़ियों में होकर जा रहा है। देश के नेताओं को बड़ी दूरदर्शिता के साथ समस्याओं का हल सोचना चाहिए।

प्रसिद्ध आर्य विद्वान् पंडित **बुद्धदेव जी विद्यालंकार** ने देश की सामयिक परिस्थिति पर बड़ी रोचक शैली में भाषण देते हुए यह बताया कि राजनीतिक स्वातन्त्र्य प्राप्त करने पर भी हमारे देश का मनीषी वर्ग किस प्रकार विचारों के दैन्य और दासत्व से ग्रस्त है। इस का एक मात्र उपाय आपने यही बताया कि हमें भारत की मूलभूत चिंतन धारा की ओर जाना चाहिए। और– अपना सांस्कृतिक साम्राज्य विश्व में फैलाना चाहिए। गुरुकुल को इस विचारधारा का प्रेरणा-केन्द्र रहना चाहिये।

नैय्यड़ जी का चित्रोद्घाटन

गुरुकुल के परमभक्त लुधियानानिवासी श्री लाला लब्भूराम जी नैय्यड़ ने गुरुकुल के लिए दो लाख रुपये एकत्र करने का पवित्र संकल्प किया था। पिछले वर्ष उनका यह

संकल्प पूर्ण होगया। उनके इस शुभ संकल्प की पूर्ति के सन्मान में गुरुकुलीय स्नातक मंडल ने यह निश्चय किया था कि पूज्य लाला जी की सेवाओं के सन्मान में उनका एक तैल-चित्र गुरुकुल पुस्तकालय भवन में स्थापित किया जाय। स्नातक मंडल ने अपने ही व्यय से यह चित्र तैयार करवाया है। चित्र का उद्घाटन प्रतिनिधि सभा के बृहद् अधिवेशन के अवसर पर प्रधान श्रीयुत महाशय कृष्ण जी के कर-कमलों से किया गया। इस अवसर पर मान्यवर मुख्याधिष्ठाता श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति तथा श्री प्रधान जी ने लाला जी की गत ५० वर्ष की गुरुकुल और आर्य समाज की सेवाओं के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। लाला जी का शरीर यद्यपि जराजीर्ण हो गया है तो भी आप अभी तक श्रद्धापूर्वक गुरुकुल के लिए द्रव्य संग्रह करते रहते हैं। उन की गुरुकुल के प्रति अपार भक्ति को लिए गुरुकुल संस्था अतिशय कृतज्ञता ज्ञापित करती हुई उनकी अनामयता और दीर्घायु के लिए प्रार्थना करती है।

स्वामी श्रद्धानन्द का स्वप्न

यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से 'गुरुकुल पत्रिका' प्रकाशित हो रही है। यह विश्वविद्यालय इस देश की वह संस्था है जिस ने पहले पहल शिक्षा का माध्यम हिन्दी बनाया था। उस समय यह एक अनोखी बात थी। आज वह सिद्धान्त रूप में सारे देश ने मान ली है। गुरुकुल के संस्थापक स्वर्गीय श्रद्धानन्द जी का स्वप्न सच्चा निकला और इस प्रतिष्ठित संस्था के स्नातक भिन्न भिन्न क्षेत्रों में अपने व्यक्तित्व का प्रभाव डाल रहे हैं।

मुझे विश्वास है कि आपकी पत्रिका गुरुकुल का यश आगे बढ़ाएगी और उसके द्वारा साहित्य तथा आर्य संस्कृति की सच्ची और ठोस सेवा होगी यही ईश्वर से मेरी प्रार्थना है।

रामनारायणमिश्र

प्रधानमन्त्री, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

स्वाध्याय के लिये चुनी हुई पुस्तकें।

हमारे लेखक

श्री इन्द्र : यशस्वी पत्रकार और लेखक। गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के वर्तमान संचालक।

श्री हरिदत्त : बङ्गाल हिन्दी-मण्डल द्वारा दो वार पुरस्कृत। हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ लेखक। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में इतिहास शास्त्र के अध्यापक।

श्री रामचरण महेन्द्र : प्रसिद्ध लेखक तथा आलोचक। हर्बर्ट कॉलेज कोटा में अध्यापक।

श्री सत्यकाम : उदीयमान लेखक। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के स्नातक।

श्री चम्पतस्वरूप : गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में जीव-विज्ञान के अध्यापक। इण्टरमीडियेट कक्षाओं के लिये हिन्दी भाषा में जन्तु शास्त्र पर एक पाठ्यपुस्तक लिख रहे हैं।

श्री शङ्करदेव : ख्याति प्राप्त लेखक। गुरुकुल महाविद्यालय में आश्रम सचिव।

श्री पी. के. गोडे : प्राचीन भारतीय विषयों पर अधिकार-पूर्वक लिखनेवाले। भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट पूना के क्यूरेटर।

श्री अञ्चल : विश्रुत प्रगतिशील कवि। रॉबर्टसन कॉलेज, जबलपुर में अध्यापक।

श्री प्रियव्रत ; गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के आचार्य।

श्री रामेश बेदी : हिन्दी साहित्य में स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों के यशस्वी लेखक।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।

रजिस्टर्ड संख्या

लेखकों से

१. लेख पत्रिका के तीन पृष्ठ से बड़े न हों।

२. कागज़ के एक ओर दूर-दूर पंक्तियों में हाशिया छोड़ कर स्पष्ट लिखा जाय। टाइप की हुई पाण्डुलिपि हो तो अच्छा है।

३. अस्वीकृत रचनाएं समुचित डाकव्यय प्राप्त होने पर ही लौटाई जाती हैं!

प्रकाशकों और लेखकों से

गुरुकुल-पत्रिका में प्रति मास विविध विषयों की पुस्तकों की समालोचनाएं अधिकारी विद्वानों द्वारा करवाने का हम ने समुचित प्रबन्ध किया है। समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की दो-दो प्रतियां नीचे लिखे पते पर भेजने की कृपा करें। सम्पादक,

गुरुकुल-पत्रिका,गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

शुभ कामनाएं

'भारत के शिक्षा जगत में गुरुकुल कांगड़ी का अपना गौरव-पूर्ण स्थान है। गुरुकुल के स्नातकों ने देश व समाज की उन्नति में जो प्रयत्न किये हैं व कर रहे हैं वे सर्व विदित हैं। हिन्दी पत्रकार जगत में इन स्नातकों का बहुत ही आदरणीय एवं ऊचा स्थान है। अतएव गुरुकुल के तत्वावधान में निकलने वाली पत्रिका उसी उच्च धरातल पर निकलेगी, यह आशा है। आज जब देश पश्चिमी वस्तुवाद व पूर्वी अध्यात्मवाद में से किसे चुने इस पशोपेश में पड़ा है, गुरुकुल पत्रिका देश को आवश्यक मार्ग दर्शन करा सके, ऐसी ईश्वर से प्रार्थना है। मैं पत्रिका के लिए शुभ कामना करता हूं।' महावीर सिंह

सम्पादक—ग्राम सुधार, इन्दौर

'गुरुकुल-पत्रिका' के प्रकाशन का समाचार जान कर हर्ष हुआ। पत्रिका के लिए मेरी मंगल-कामना स्वीकार करें। आशा है पत्रिका गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के सांस्कृतिक उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होगी।' धर्मदेव शास्त्री

सम्पादक—कर्मयोग, आगरा।

गुरुकुल तो अपने जन्म-काल से ही मातृभाषा के प्रचार में अग्रसर रहा है। आज जब कि हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा घोषित हो रही है तो गुरुकुल से गुरुकल-पत्रिका का निकलना बड़ा ही सुन्दर कार्य है। आप की पत्रिका सर्वप्रिय और हृदय-ग्राही होगी और जनता उसे उच्च आदर के भाव से अपनायेगी। गुरुकुल-पत्रिका अपने नाम के अनुरूप खूब फूले फले, ऐसी मेरी मंगल अभिलाषा है। मुझे विश्वास है कि ऐसे सुयोग्य सम्पादक के सम्पादकत्व में पत्रिका पूरी सफलता प्राप्त करेगी।

लब्भुराम नैयड़, आनन्द आश्रम, लुधियाना।

गुरुकुल मुद्रणालय।

गुरुकुल-पत्रिका

आश्विन २००५

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

वर्ष १

गुरुकुल-पत्रिका

अङ्क २

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति।
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

गुरु और शिष्य	के. एम. मुन्शी
प्राचीन भारत में गणतन्त्र	हरिदत्त वेदालङ्कार
रज्जु-निर्माण का मनोरञ्जक इतिहास	पी. के. गोडे
ताम्रलिप्ति का विद्यापीठ	शङ्करदेव विद्यालङ्कार
राष्ट्रभाषा और हमारा कर्तव्य	महेन्द्र रायजादा,

इस के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रतिष्ठित लेखकों और कवियों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनायें।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ५) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वैदिक शिक्षा का मूलाधार

इन्द्र विद्यावाचस्पति

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य की स्वभाव-सिद्ध शक्तियों का ठीक ढंग पर विकास करना, और परिष्कृत करना है। यह तो नैसर्गिक है कि मनुष्य का बच्चा बड़ा होने के साथ ही साथ आगे बढ़े और उस की शक्तियां, मात्रा और गुणों में उन्नति करती जायं। शिक्षा का लक्ष्य यह है कि उन शक्तियों का मार्ग प्रदर्शन करे, उन्हें ऐसे रास्ते पर लगाये कि मनुष्य प्रत्येक दृष्टि से अच्छा और ऊंचा बने।

क्या शिक्षा का उद्देश्य केवल पुस्तक-ज्ञान देना है? अथवा उस का उद्देश्य रोज़गार की योग्यता पैदा करना है? या शिक्षा देने का कोई अन्य भी उद्देश्य है?

इन प्रश्नों का उद्देश्य तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षोपनिषद् में बहुत विस्तार से दिया गया है। द्वितीय अनुवाक में हम पढ़ते हैं—

अथातः सँहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः। पञ्चस्याधिकरणेषु. अधिलोकम्. आधज्योतिषम्, अधिविद्यम्, अधिप्रजम्. अध्यात्मम्, ता महा संहिता इत्याचक्षते।

शिक्षा के पांच अधिकरण अर्थात् आधार हैं। १. लोक। २. ज्योतिष। ३. विद्या। ४. प्रजा। ५. आत्मा। शिक्षा के विषय पर पूरा विचार करना हो तो इन पांच शीर्षकों को सामने रखिये, क्योंकि पूर्ण शिक्षा वही है जो इन पांचों अंगों से युक्त हो। आप इन में से प्रत्येक पर अलग-अलग दृष्टि डालिये—

[१] लोक शिक्षा का सब से स्पष्ट लक्ष्य लौकिक है, मनुष्य को लौकिक जीवन के योग्य बनाना उस का सर्वसम्मत उद्देश्य समझा जाता है। सामान्य व्यक्ति अपने पुत्रों को विद्यालय में भेजने के समय यही सोचते हैं कि पढ़ कर यह बालक आजीविका के योग्य हो जायंगे, और संसार में प्रतिष्ठापूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेंगे। यह उद्देश्य सब से ऊंचा या श्रेष्ठ न होता हुआ भी अधिक सम्मत होने से पहले रखा गया है।

[२] ज्योतिष— ज्योतिष शास्त्र से अभिप्राय गणित, नक्षत्रशास्त्र, तथा उन से सम्बद्ध विज्ञानों से है। उन विज्ञानों का मूल्य केवल आजीविका की परिभाषा से नहीं आंका जा सकता। ये विज्ञान मनुष्य को ऊंचा उठाते हैं, उसकी बुद्धि को विशद करते हैं, और उसे उन्नति करने के योग्य बनाते हैं। शिष्यों को विज्ञान की शिक्षा देना भी गुरु का कर्तव्य है।

[३] विद्या— उस से और आगे बढ़ कर आप विद्या पर पहुँचते हैं। विद्या का शब्दार्थ है—तत्त्व साक्षात्कार। प्रत्येक वस्तु के रहस्य को

समझना ही विद्या है। विद्या प्राप्त करने के लिए विद्याभ्यास–यह लौकिक अथवा ज्योतिष् के पारायण की अपेक्षा कहीं अधिक विशाल वस्तु है। विद्यार्थी का लक्ष्य होना चाहिये वस्तुओं का तत्वज्ञान, और गुरु का लक्ष्य होना चाहिये विद्यार्थी को तत्वज्ञानी बनाना। जो गुरु विद्यार्थी को केवल आजीविका के योग्य बना कर छोड़ देता है–वह सद्गुरु नहीं कहला सकता है। गुरु का कर्तव्य है कि वह शिष्य को तत्व तक पहुँचने के योग्य बना दे।

[४] प्रजा - ऊपर शिक्षा के जिन तीन अधिकरणों की विवेचना की गई है वे केवल व्यक्तिगत थे। उन का प्रभाव मुख्यरूप से विद्यार्थी पर ही पड़ता है। लौकिक शिक्षा, वैज्ञानिक शिक्षा, और कलाओं को प्राप्त कर के व्यक्ति योग्य और कुशल हो जाता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह अन्यों के लिये भी उपयोगी हो जाय। मनुष्य किसी वर्ण का हो, किसी तरह की आजीविका हो, उसे अपने अतिरिक्त दूसरों के लिये-समाज के लिये-भी तो लाभदायक होना चाहिये। शिक्षा के उस भाग का निर्देश उपनिषत्कार ने 'अधिप्रजं' इस शब्द से किया है। ब्राह्मण की विद्या प्रजा को विद्यासम्पन्न बनाने और साधु मार्ग बताने के लिये हो। क्षत्रिय की शिक्षा ऐसी हो कि उसे वीर शक्तिसम्पन्न और विवेकी शासक और योद्धा बनाये, जिससे वह प्रजा की रक्षा और दुष्टों का दमन कर सके। वैश्य धर्मानुसार धन कमा कर लोक-हित के लिये व्यय करें, और शूद्र जो सेवा कार्य करें, उस का उद्देश्य केवल उदर पालना न हो, अपितु लोक-हित हो, यह भावना तभी जागृत हो सकती है, यदि शिक्षा-प्रणाली में प्रजा-हित की भावना का शिक्षण भी सम्मिलित हो।

[५] आत्मा — शिक्षा का अन्तिम और प्रमुख अंग आध्यात्मिक शिक्षण है, जिसे उपनिषद् ने 'अध्यात्मम्' इस शब्द से प्रगट किया है। आत्मा की शक्तियों का साधु दिशा में विकास ही शिक्षा का चरम लक्ष्य है। ऐसी शिक्षा को जीवन के लिए अभिशाप समझना चाहिए, जो आत्मा का हनन कर दे, अथवा उसे गौण कर दे। जैसे आत्मा मन और शरीर का साक्षी है, उसी प्रकार शिक्षा का आत्मिक पहलू अन्य सब प्रकार की शिक्षाओं का अनुगामी है, अनुगामी नहीं; आत्मिक-शिक्षण के बिना अन्य सब प्रकार के शिक्षण निःसार हैं।

ये हैं शिक्षा के वैदिक आदर्श, संसार के शिक्षाविज्ञों ने सदियों तक विचार कर के शिक्षा के सम्बन्ध में इन से अधिक विस्तृत या ऊंचे आदर्श संसार के सम्मुख नहीं रखे।

विद्वानों की दृष्टि में 'गुरुकुल पत्रिका'

गुरुकुल-पत्रिका का प्रथम अङ्क अच्छा निकला है। लेखों के चयन में जागरूकता है। आशा है पत्रिका उत्तरोत्तर उन्नति करेगी। मैं 'आप की पत्रिका की सफलता चाहता हूं।'

अञ्चल

प्रोफेसर, रॉबर्ट्सन कॉलेज, जबलपुर।

'गुरुकुल पत्रिका मिली। प्रथम अङ्क की ठोस सामग्री से ही इस का उज्वल भविष्य प्रकट हो रहा है। इस में आपने भिन्न-भिन्न प्रकार के पाठकों के लिए विभिन्न प्रकार की सामग्री एकत्रित की है। अधिकांश लेख स्थायी महत्त्व के हैं। यह अङ्क निकाल कर सचमुच महत्त्वपूर्ण पत्रकार का महत्त्वपूर्ण कर्तव्य पालन किया है। बधाई।'

रामचरण महेन्द्र

प्रोफेसर, हर्बर्ट कॉलेज, कोटा।

जीवन का यथार्थ स्वरूप

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

जब से मनुष्य ने होश सम्भाला है और मानव-समाज का संगठन हुआ है, तब से जीवन के सम्बन्ध में कई प्रकार की विचार धारायें बहती चली आरही हैं। जीवन संग्राम के भयंकर तूफानों के कारण तथा जरा, व्याधि और मृत्यु के कारण मनुष्य ने यह परिणाम निकाला कि यह संसार अनित्य है जीवन दुःखमय है और शरीर व्याधि का घर है। यह परिणाम निकालने के बाद मनुष्य को इस की आवश्यकता पड़ी कि वह मरने के बाद ऐसे परलोक की रचना करे, जिस में जीवन सम्बन्धी कोई क्लेश न हो और उसे सब प्रकार के सुखों की सामग्री भरपूर मिलती रहे। उसी नवीन लोक का नाम उसने स्वर्ग रखा। इस स्वर्ग की प्राप्ति के लिये उसने एक दूसरी विचार धारा बनाई कि मनुष्य जन्म से ही पापी है और शरीर, जो रोगों का घर है उस के पापों के कारण ही उसे मिलता है। नवीन लोक में जाने के लिये मनुष्य को शुद्ध पवित्र बनना चाहिये, इस कारण उसे पापों का त्राण कराने वाले एक मुक्ति दाता की आवश्यकता पड़ी, जो उसे मरने के बाद स्वर्ग में ले जा सके।

जीवन के इस तत्व दर्शन के मानने वाले दुनियां में आज करोड़ों लोग हैं, जो अपने आप को पापी समझ कर दूसरे लोक की चिन्ता में सब प्रकार के शुभ कामों को करते है और यह समझते हैं कि यह नश्वर संसार दुःखों का आगार होने के कारण त्याग देने योग्य ही है। इस लिये वे सदा स्वर्ग की प्रतीक्षा में रहते हैं।

इस विचार धारा के अतिरिक्त ऐसे भी लोग हैं जो केवल इसी जन्म को मानते हैं और 'खाओ पीओ और मौज करो' इस जीवन दर्शन पर चलते हैं। वे ईश्वर, परलोक और स्वर्ग ऐसी किसी चीज़ पर विश्वास नहीं करते। वे केवल भोग-विलास के जीवन को ही असली जीवन समझते हैं। इसी प्रकार के लाखों स्त्री पुरुष मानव समाज में पशुओं की तरह जीवन व्यतीत करते हुये विचरते हैं।

उपरोक्त दो विचार धाराओं के अतिरिक्त एक तीसरी विचार धारा नवीन वेदान्तियों की है, जो संसार को मिथ्या मान कर केवल ब्रह्म की सत्यता को ही स्वीकार करते हैं। उनका मत यह है कि शरीर में ब्रह्म की चेतनाशक्ति ही अपना प्रदर्शन करती हुई सारे कार्य करती है, किन्तु अविद्या के कारण वह चेतना मायारूपी प्रकृति के वश में हो कर अपने आप को जीव समझने लगी है। जिस क्षण वह जीव अविद्या के जाल से छूट कर अपने स्वरूप को पहचान लेगा, उसी समय उसका भ्रम दूर हो जायेगा और वह ब्रह्म में मिल जायगा। इस विचार धारा के अनुयायी भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि दूसरे देशों में भी पाये जाते हैं।

आज इस बीसवीं शताब्दी में जीवन का यथार्थ स्वरूप क्या है? इस प्रश्न पर बुद्धिवाद की छाया में हम विचार करने लगे हैं। इन सब विचार धाराओं के विरुद्ध हमारी घोषणा यह है कि यह संसार नित्य है, जीवन आनन्दमय और शरीर आत्मा का मन्दिर है। दुःख नाम की कोई चीज इस संसार में नहीं। जिस कलाकार ने इस ब्रह्माण्ड को रचा है उसी ने इस मानव देह को भी बनाया है। जो अनादि

सिद्धान्त इस ब्रह्मचक्र में नियम पूर्वक काम कर रहे हैं, वही इस मानव शरीर में भी अपना चमत्कार दिखलाते हैं। जीवन के इस स्वरूप को समझने के लिये जीवन कला को जानना चाहिये और जो स्त्री पुरुष इस जीवन की कला को जिस अंश तक समझते हैं, उतने अंश तक वे जीवन दर्शन के मर्म को अनुभव करते हैं।

किसी विद्वान ने सच कहा है— प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवन कला के ज्ञान के अनुसार अपने शरीर का विकास करता है। जब हम किसी निरोग और हंसमुख व्यक्ति से मिलते हैं, उसे देख कर हमारा हृदय गदगद हो उठता है तो हमें यह मानना पड़ता है कि वह व्यक्ति जीवन को समझता है। वह जहां कहीं भी चला जाता है, उसके रोम रोम से जीवन धाराएँ परिस्फुटित होने लगती हैं जब वह बातचीत करने लगता है तो उसके मुह से मानो अमृत वर्षा होती है। उस के सम्पर्क में आने वाले स्त्री पुरुष निहाल हो जाते हैं। उस की उपस्थिति शान्ति का वातावरण उत्पन्न करती है। ये हैं वे व्यक्ति जो जीवन कला को समझते हैं और जिन के तेजस्वी चेहरे जीवन कला की ज्योति से परिपूर्ण होते हैं।

इस के विपरीत ऐसे भी हजारों मनहूस स्त्री पुरुष हैं जो अपनी चिन्ताओं और दुःखों का बोझा लादे हुये न केवल अपने आप को चिन्ता ग्रस्त करते हैं परन्तु दूसरों को भी अपने पापों का हिस्सा बांटते फिरते हैं। वे जवानी में बूढ़े हो जाते हैं और उनकी टांगें कबरों में लटकने लग जाती है। ये चटोरे लोग इन्द्रियों के दास बने हुये सदा उनकी गुलामी करते हैं और अपना सारा जीवन-रस खो कर शोक सागर में डूब जाते हैं। उनके चेहरे की मुर्दनी इस बात को साफ प्रकट करती है कि वे जीवन कला से कितने अनभिज्ञ हैं और उन्होंने जीवन कला का क.ख.ग. भी अभी तक नहीं जाना। आप हस्पतालो में जाकर देखिये अनेक नासमझ लोग नाना प्रकार के रोगों को लिये हुए मुर्झाए चेहरों के साथ जीवन के प्रति अपनी अज्ञानता का परिचय देते हैं लाखों स्त्री पुरुष विषय भोगों के मारे हुये असाध्य रोगों से ग्रस्त हो मृत्यु की घड़ियां गिन रहे हैं। जीवन कला से शून्य ये नर नारी केवल अपने लिये ही नरक की रचना नहीं करते परन्तु अपने सम्पर्क में आने वाले इष्ट मित्रों के लिये भी नर्क का द्वार खोल देते हैं। प्रकृति के नियमों को तोड़ने वाले यह पापी लोग प्रकृतिमाता के डण्डे खा रहे हैं। और समाज के सामने ऐसे ही अपराधी हैं जैसे चोर, डाकू और हत्यारे।

आज विज्ञान ने जरा, व्याधि और मृत्यु को जीतने का मार्ग बतला दिया है। जिन तीन प्रकार के शारीरिक क्लेशों को देख कर सिद्धार्थ के मन में संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न हुआ था, शरीर की उन तीन अवस्थाओं जरा, व्याधि और मृत्यु के मनोवैज्ञानिक स्वभाव को आज भौतिक विद्याविशारद विद्वानों ने भली प्रकार जान लिया है। आज विज्ञान बड़े जोर से यह घोषणा करता है कि मानवी भावना ही सब शारीरिक अवस्थाओं की जनक है। मनुष्य के शरीर का काया कल्प सालभर के अन्दर हो सकता है और कुछ भाग तो कुछ महीनों में ही बिलकुल नये बनाए जा सकते हैं। मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार प्राकृतिक नियमों का पालन करता हुआ अपने यौवन को स्थिर रख सकता है और उसे कभी भी बुढ़ापा नहीं सता सकता यदि वह मन रूपी चुम्बक पत्थर के चमत्कारों को हृदयङ्गम कर ले। यदि नब्बे वर्ष की आयु रखने वाला प्रसिद्ध विद्वान जार्ज

बर्नाडशा अपनी इस अवस्था में भी सरोवर में कुदकियां लगा सकता है और जवानी का आनन्द ले सकता है तो क्या कारण है कि दूसरे भी वैसा नहीं कर सकते। प्रकृति के नियम अटल हैं। वे तीनों कालों में एक रस रहते हैं। उन का प्रभाव सब के लिये एक जैसा होता है।

अच्छा, अब ज़रा व्याधी के विषय में सुनिये। मनोविज्ञान ने इस बात को सिद्ध किया है कि मानव शरीर को सताने वाले सभी रोग मनोविकारों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार, ईर्षा, द्वेष आदि–से उत्पन्न होते हैं और इन रोगों का उपचार बाहर की दवाइयों से नहीं होता, परन्तु अन्दर के संयम से होता है। बाहर की दवाइयां तो केवल उन रोगों को रोकने में सहायक होती हैं। लेकिन नीरोग बनाने में आन्तरिक इच्छाशक्ति ही काम देती है। यदि हम अपने मन को शुद्ध पवित्र बना लें और उस की वृत्ति अन्तर्मुखी कर लें हमारे सब दुःख दूर हो जायं।

अतएव जीवन का यथार्थ स्वरूप समझने के लिये सब से पहले हमें यह बात जान लेनी चाहिये कि यह संसार जो हमारे सामने है, हमें इसे ही स्वर्ग बनाना है। मरने के बाद जिस स्वर्ग के विषय में हम अभी तक विश्वास करते रहे हैं, वह विकृत मस्तिष्क की उपजमात्र है। 'यह चमन यूँही रहेगा और हज़ारों जानवर अपनी अपनी बोलियां बोल कर उड़ जायेंगे'—कवि की यह उक्ति सत्य ही समझनी चाहिये। हज़ारों वर्षों से भारतवर्ष के यह नगर, उस की यह नदियां और पहाड़ बराबर अपना सन्देश दे रहे हैं, किन्तु इन के साथ खेलने वाले खिलाड़ी आये और चले गये। कहने का अभिप्राय यह है कि हमारा अपना प्रारब्ध हमारी अपनी मुट्ठी में है। यदि हम अपने जीवन को कला के रूप में समझ कर इसे व्यवस्थित कर लें और इन्द्रिय संयम सीख जायें तो हमें जीवन का माधुर्य मिलने लगे। प्रभु ने इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के पदार्थ उत्पन्न किये हैं, किन्तु शरीर के अपने-अपने विकास के अनुसार उन के उपयोग की विधि को जानना ही जीवन-कला को समझना है। हमारा दृष्टिकोण सर्वांगपूर्ण होना चाहिये। व्यक्तिवादी समाज ही अपने लिए दुःख के पहाड़ खड़े करता है, क्योंकि उस का प्रत्येक सदस्य केवल अपने ही स्वार्थ को देखता है। होना यह चाहिये कि हम सब के भले में अपना भला देखना सीखें, तभी हम इस संसार को स्वर्ग बना सकते हैं।

अन्त में हमारा निवेदन यह है कि कभी भूल कर भी बुढ़ापा और रोग की भावनाओं को अपने अन्दर स्थान न दीजिये। सौन्दर्य, शृंगार-रस में नहीं, बन-ठन कर रहने में नहीं, अपितु उस में है जो सुन्दर काम करता है। जो अन्दर मलिन भावनायें रख कर बाहर की सफाई दिखलाते हैं, वह केवल अपने आपको धोखा देते हैं। इस लिये जीवन को अनुशासन में रख कर, व्यायाम द्वारा शरीर को निरोग बना, मन, वाणी और कर्म में जो स्त्री-पुरुष एकता स्थापित कर लेते हैं वह ही जीवन के यथार्थ स्वरूप को पहचानते हैं और उन के द्वारा ही यह संसार स्वर्ग बन सकता है।

भारत में रज्जु-निर्माण का रोचक इतिहास

३०० ईस्वी पूर्व से १९०० ईस्वी पश्चात् तक

पी. के. गोडे

यूल और बुर्नेल ने हॉब्सन जॉब्सन (लन्दन, १९०३, पृ० २३३-२३४) में 'कॉयर' के विषय में एक लेख लिखा है, जिस से हमें निम्न सूचनायें प्राप्त होती हैं—

[१] 'कॉयर' नारियल के छिलके के रेशों को कहते हैं जिन से रस्से बनाये जाते हैं। [२] ऐसा प्रतीत होता है कि रेशे और रस्से दोनों का ही योरप को निर्यात १६ वीं सदी के मध्य में हुआ। [३] प्रारम्भिक लेखकों ने अरबी में 'कॉयर' के लिये 'क़ानबर' या 'क़नबार' शब्द का प्रयोग किया है। पुर्तगालियों ने 'कैरो' के रूप में इस शब्द को ग्रहण किया। 'कॉयर' शब्द १८ वीं सदी में अंग्रेज़ों द्वारा प्रचलित किया गया। [४] तिथि-युक्त स्रोतों में 'कॉयर' सम्बन्धी संकेत निम्नलिखित हैं—

प्रायः १०३० ईस्वी— अलबरुनी 'क़नबार' की यह व्याख्या करता है कि 'यह नारियल के रेशों से बटी हुई रस्सी है जिस से जहाज़ों को परस्पर बांधा जाता है।'

प्रायः १३४६ ईस्वी—'कनबार' 'नारियल के रेशों वाले छिलकों को कहते हैं—इस से बने रस्सों से जहाज़ों के तख्ते परस्पर संयुक्त किये जाते हैं—इस से बने जहाज़ों के रस्से चीन, भारत व यमन को भेजे जाते हैं।'

—इब्न बतूता ४। १२१।

प्रायः १५१० ईस्वी--गवर्नर अल्बुकर्क ने सम्पूर्ण बेड़े के रस्सों व पाल की रस्सियां को तैयार करने के लिये 'कॉयर' का उपयोग किया। मालदीव के द्वीपों में 'कॉयर' का व्यापार।

कोंनिया २। १२६-१३०।

प्रायः १५१६ ईस्वी—'केयरो' ताड़ के पेड़ की रस्सियां। - बारबोसा, १६४।

प्रायः १५३० ईस्वी— कॉयर'।

कौट्रिया, स्टेनले कृत. १३३।

१५५३ ईस्वी 'कैरो' जहाज़ों के निर्माण में कीलों की जगह प्रयुक्त। डी बरोज़।

१५६३ ईस्वी—'कैरो' जहाजों के पालों की रस्सियों के लिये प्रयुक्त।—गारसिया, एफ़ ६७ वी।

१५८२ ईस्वी--'केयरो' जहाजों में कीलों के स्थान पर प्रयुक्त। —कैस्तनेदा।

१६१० ईस्वी—'कैरो' नारियल के वृक्ष के रस्से। —पाइरार्द दे. लावेल

१६७३ ईस्वी—'केअर यार्न' नारियल के बने हुए। --फ्रायेर १२१।

प्रायः १६९० ईस्वी --'कैरो'—रम्फियस १,७।

१७२७ ईस्वी—'कयर' जहाजों के रस्से।

—ए. हैमिल्टन।

१७७३ ईस्वी—'कियर' तन्तु।

—इवेस, ४५७।

लगभग १०३० ईस्वी से १७७३ ईस्वी तक के 'कॉयर' के ये निर्देश संकेत करते हैं कि 'कॉयर' (नारियल के रेशों के रस्से जहाज़ों के निर्माण में काम आते थे। भारत में जहाज़-निर्माण के प्रयोजन से नारियल के रेशों का प्रयोग कब से प्रारम्भ हुआ, इस को ऐतिहासिक साक्षी से सिद्ध करने की आवश्यकता है। इस के

लिए मैं पाठकों का ध्यान अरिकमेदु से प्राप्त नारियल के रेशों द्वारा निमित रस्सों के नमूनों की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ (देखिये एन्शेन्ट इण्डिया नं० २, जुलाई १९४६, पृष्ठ १०४)। अरिकमेदु (पहली सदी ईस्वी पूर्व के अन्त में या पहली सदी ईस्वी के प्रारम्भ में) भारतीय-रोमन व्यापार का केन्द्र था। इस स्थान की खुदाई से कुछ तात्कालिक नारियल के रेशों के रस्से प्राप्त हुए हैं। 'एन्शेन्ट इण्डिया' के उपर्युक्त अङ्क में 'अरिकमेदु' पर लिखित विस्तृत लेख में इन रस्सों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—[१] 'ताड़ की छाल के टुकड़े और रस्से जो कि प्राग्-एरेटाइन तहों में थे (पहली सदी ईस्वी पूर्व या प्रथम सदी ईस्वी का प्रारम्भिक भाग)। [२] रस्सों के विभिन्न टुकड़ों में सब से लम्बे टुकड़े की लम्बाई लगभग ९ इञ्च और व्यास लगभग एक इञ्च था[१]। अन्य सब रस्सों की तरह इस में भी नारियल के रेशों के तीन तार परस्पर बटे हुए थे।

भारतीय-रोमन व्यापार के केन्द्र में निमित नारियल के रेशों के इन रस्सों के नमूनों को देखने से कल्पना होती है कि दो हज़ार वर्ष पूर्व ये जहाजों के निर्माण में प्रयुक्त होते होंगे।

अरिकमेदु से उपलब्ध ये रस्से उस समय बहुत ही छोटे प्रतीत होते हैं जब हम इन की तुलना मानसोल्लास [११३० ईस्वी] में वर्णित राजा सोमेश्वर के हाथी को वश में करने के लिए प्रयोग में लाये गये रस्से से करते हैं [देखिये, मानसोल्लास प्रथम भाग पृ० ४८, गायक ओ. सिरीज़, बड़ौदा १९२५]। इस रस्से का वर्णन करते हुए कहा गया है—

'नालिकेराङ्गनोद्भूत वल्ककल्पितपाशकम्।
षष्टिहस्तायु [य] तं स्थौल्ये प्रकोष्ठसमतां गतम्॥'

इस में वर्णित रस्सा नारियल के रेशों का बना हुआ था।

इस की लम्बाई साठ हाथ और चौड़ाई एक कलाई (प्रकोष्ठ) के बराबर थी। एक हाथ लगभग १॥ फीट लम्बा होता है और एक सामान्य कलाई का व्यास ३ इञ्च माना जा सकता है। अतएव इस रस्से की (१) लम्बाई ९० फीट और (२) व्यास ३ इञ्च होगा। मानसोल्लास के आपातबन्ध प्रकरण के अनुसार इतने बड़े रस्से से ही हाथी को वश में किया जा सकता था।

पंडित रघुनाथ द्वारा सम्पादित राजव्यवहार कोश[२] (प्रायः १६७६ ईस्वी) से हमें नारियल के रेशों से बने हुए रस्सों को जहाज़-निर्माण कार्य में प्रयुक्त किये जाने के सम्बन्ध में कोई भी सूचना नहीं मिलती। संस्कृत साहित्य में नारियल के वृक्ष (नारिकेल) के सम्बन्ध में बहुत से

१—इस सब से लम्बे रस्से का चित्र एन्शेन्ट इण्डिया [जुलाई १९४६] में फलक संख्या ३७ ब [प्राग्-एरेटाइन-रस्से] में दिया हुआ है।

२—शिवा जी. प्रेस, पूना में मुद्रित, १८८० ई.। इस कोष के जनपद-वर्ग में ३५२-३५५ श्लोक (पृष्ठ २९) नौका विषयक शब्दों से सम्बन्ध रखते हैं—

दर्या समुद्रःकथितःढोकरा स्यात्तथोडुपम्॥३५२॥
यद्ढोकरे-हशीलं स उडुपादाय ईरितः।
जाहजे जलयानानि नौका स्यान्नाव संज्ञिका॥३५३॥
द्वैप्यः फिरंगी मत्रा तु क्रय वस्तु समीरितम्।
प्राची मशरिख-नाम्नी स्याद्दक्षिणा जमुबामिधा॥
मग्रिवाख्या प्रतीची स्यादुत्तरा दिग् भवेत् षिमाल्।
किब्लेनुमा-नाम जनैर्दिशायन्त्रमुदीरितम्॥३५५॥

सुभाषित[3] प्राप्त होते हैं। यह अन्वेषणीय है कि इन में से कोई नारियल के रेशों से बने रस्सों[4] का भी निर्देश करता है या नहीं। आगे बढ़ने से पहले मैं यहां पर हॉब्सन जॉब्सन से नारियल के सम्बन्ध में कुछ मनोरञ्जक विज्ञप्तियां उद्धृत करना चाहता हूँ। जो संक्षेपतः इस प्रकार हैं (पृ.२२८-२३०) —

(१) नारियल (वृक्ष और फल), - लैटिन 'कोकस' नुसिफेरा। उष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों में पाया जाने वाला ताड़ है और केवल यही पुरानी व नई दुनिया में समान रूप से पाया जाता है।

(२) इस शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में ठीक-ठीक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कुछ आनुमानिक व्युत्पत्तियां उद्धृत संदर्भों में दी गई हैं। इस का सब से अधिक प्रचलित निर्वचन इस प्रकार है कि यह शब्द स्पेनिश 'कोको' शब्द से निकला है जो बन्दर के अथवा किसी अन्य प्राणी के विलक्षण मुख को सूचित करता है और यह इस के खोल व तीन छिद्रों के आधार पर माना जाता है।

(३) ईरानी शब्द 'नारगील' संस्कृत के 'नारिकेल' से निकला है।

(४) मध्यकालीन लेखक प्रायः इसे 'भारतीय-फल' कहते हैं।

(५) प्राचीन यूनानी व रोमन लेखकों को नारियल का ज्ञान था इस सम्बन्ध में कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता; न ही हमें 'कौसमौस' (५४५ ई०) से पूर्व यूनानी व लेटिन में इस का कोई संकेत मिलता है।

(६) ब्रुग्श १६०० ई० पू० के रानी हैशप के मन्दिर पर उल्लिखित मिश्र के भित्ति

३—इनमें से कुछ सुभाषित अधोलिखित हैं (सुभाषितरत्न-भाण्डागार, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६११) पृ० २५२—

उच्चैरेषतरुः फलं च विपुलं दृष्ट्वैव हृष्टः शुकः
पक्वं शालिवनं विहाय जडधीस्तं नालिकेरं गतः।
तत्रारुह्य बुभुक्षितेन मनसा यत्नः कृतो भेदने
त्वाशा तस्य न केवलं विगालिता चञ्चूर्गता चूर्णताम्

यह श्लोक एक तोते के निष्फल प्रयत्न का वर्णन करता है जो अपनी चोंच के तीक्ष्ण अग्रभाग से एक नारियल को तोड़ने में संलग्न है।

पृ.४७–नारिकेलसमाकारा दृश्यन्तेऽपि हि सज्जनाः।

जल्हण की सूक्तिमुक्तावलि (गायक ओ. सिरीज़, बड़ौदा १६३८) में नारिकेल के सम्बन्ध में निम्नलिखित पद्य उपलब्ध होता है—

पृ०—११२–'प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः
शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम्।
सलिलममृतकल्पं दधुराजीवितान्तं
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥३४॥'

४—ओरिएन्टल इन्स्टिट्यूट, तिरुपति द्वारा प्रकाशित (१६४८) वैखानसीय काश्यप-संहिता (ज्ञानकाण्ड) अध्याय ४८(पृ० ६७) से हमें नारियल के रेशों की रस्सी (नालिकेर–रज्जु) के सम्बन्ध में निम्न निर्देश प्राप्त होते हैं—

'अग्निं विसृज्य नालिकेरनिर्मिकनिर्मितान् त्रिवृत्तान् ऋजून् रज्जून् 'स्वस्तिदा' इति शिरा-वद्रज्जुबन्धनं करोति'। इस अध्याय में हमें 'नालिकेर त्वक् चूर्ण' और 'नालिकेर सलिल' का भी उल्लेख मिलता है ('नालिकेर-अम्भः' पृ० १४५)। १० वें अध्याय (पृ० १३) में नारियल के तेल तथा दीपक में प्रयुक्त होने वाले अन्य तेलों के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है—

'दीपो नारिकेलैरण्डपुन्नागमधूकनिम्बकरञ्जादि-स्नेहयुतः।'

चित्रों का वर्णन करता है जिन में रानी द्वारा 'पुन्त' की पवित्र भूमि पर भेजे गये यात्रा-दल की समुद्र-यात्रा को चित्रित किया गया है, उस के अनुसार इस प्रदेश के निवासी फलों से लदे हुए नारियल के वृक्षों के नीचे रहते थे। [हिस्ट्री ऑफ् ईजिप्ट, द्वितीय संस्करण, ३५३ (मास्पेरो, स्ट्रगल आफ़ दी नेशन्स २४८)]

(७) थीयोफ्रैस्टस इथियोपिया के एक तालजातीय वृक्ष का वर्णन करता है जो उत्तरीय मिश्र का 'डूम पाम' प्रतीत होता है (थियोफ एच. पी. द्वितीय, ६, १०)। स्प्रैङ्गल ने थीयोफ्रैस्टस के सम्पादक स्कनीडर के अनुसार इस की पहिचान नारियल से की है।

(८) प्लिनी (लग. ७० ई० पू०)–१३ वां भाग ८६–में 'कोइकास' का वर्णन करता है पर इस शब्द का अर्थ नारियल का वृक्ष नहीं हो सकता।

(९) हॉब्सन जॉब्सन में संगृहीत नारियल सम्बन्धी उद्धरण ५४५ ई० से १८८७ ई० तक के हैं।

यह संक्षेप में मुख्यतः अभारतीय स्रोतों से संगृहीत नारियल-वृक्ष का इतिहास है। इन में नैरेटिव (ऑफ ऑपरेशन्स अगेन्स्ट टीपू सुल्तान, लन्दन १७९४) में नारियल-वृक्ष पर कैप्टिन एडवर्ड मूर की ९वीं टिप्पणी (पृ० २०४-२०६) का कोई भी उल्लेख नहीं है। अपनी इस विस्तृत टिप्पणी में मूर नारिकेल-रज्जु के विषय में निम्न सूचनाएं देते हैं–– पृष्ठ ४०३—विभिन्न प्रकार के महत्वपूर्ण कार्यों में यह फल प्रयुक्त किया जाता है। इस की ऊपरी छाल को पर्याप्त काल के लिये पानी में भिगो देते हैं। फिर इस के रेशेदार तन्तु उतार लिये जाते हैं जिन से प्रत्येक प्रकार के रस्से बनाये जाते हैं। ग्रामीण नौकाओं के खड़े रुख और पड़े रुख के पालों की रस्सियाँ मुख्यतः इसी की बनी होती हैं। इसका सामान्य नाम 'कोइआर' है परन्तु यह किस भाषा का शब्द है; यह ज्ञात नहीं। सर्वश्रेष्ठ कोइआर रस्से मलाबार तट पर अञ्जेङ्गा और कोचीन में लकादिव के फल से बनाये जाते हैं। इन द्वीपों के साथ इसका विस्तृत व्यापार होता है। नारियल का खोल इंग्लैण्ड में सुविज्ञात है। भारत में जैसा कि कल्पना की जाती है इस के असंख्य उपयोग हैं[५]।

५– मूर नारियल के पेड़ के लिए निम्न बातें सूचित करते हैं–

१ इसकी लकड़ी भवन-निर्माण में (२) पत्ते छतों को ढकने के लिए, (३) दो पत्तों को परस्पर मिलाकर उन पर सोते हैं, (४) पत्ते वर्षा से बचने के लिये प्रयुक्त होते हैं, (५) जहाज़ों के लिए रस्से (६) प्यालों व कड़छियों के लिए खोल (७) गरी भोजन के रूप में, कढ़ी के साथ ८) सुखाई हुई गरी विभिन्न स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों में प्रयुक्त होती है, (९) गरी में से तेल निकालते हैं और दीपक जलाने में प्रयुक्त करते हैं। (१०) तेल निकालने पर गरी का फोक पालतु पशुओं के अथवा कठिनाई के समय मनुष्यों के खाने के काम आता है। (११) तेल में कुछ गन्ध मिला कर बालों में मलते हैं (१२) अपरिपक्व फल को तोड़ने से पेड़ से ताड़ी प्राप्त होती है, (१३) वर्षों की संख्या में वृक्ष की आयु (१४) ऊंचाई ५० या ६० फीट (१५) फल और पेड़ का विस्तृत ब्योरा, (१६) 'कोइआर' रस्से की सहायता से ऊपर चढ़ने की विधि, ताकि एक चाकू से काट कर इसका रस एक बर्तन में

कौटिल्य अर्थशास्त्र[६] में द्वितीय अधिकरण के १७वें अध्याय (कुप्याध्यक्ष— वन में उत्पन्न होने वाले पदार्थों का व्यवस्थापक) में रेशेदार पौधों और रज्जु-निर्माण के साधनों के सम्बन्ध में कुछ निर्देश दिये गये हैं (श्याम शास्त्री कृत अंग्रेजी अनुवाद मैसूर १९१९) पृ० १०७-१०८—मालती (चमेली), दूर्वा (दूब), अर्क (आक), शण (सन), गवेधुक (नागबला), अतसि (अलसी) आदि रेशेदार पौधों का वर्ग बनाती हैं (वल्क वर्ग)। मूञ्ज (मुञ्ज) वल्बज (लवा घास) आदि पौधे रज्जु-निर्माण के साधन हैं (रज्जु-भाण्ड)।

पृष्ठ १११— आयुधागाराध्यक्ष—धनुष की प्रत्यञ्चा मूर्वा, अर्क, शण, गवेधु वेणु (बांस) और स्नायु से बनती है।

पृष्ठ १२५-१२७—सूत्राध्यक्ष (सिलाई के विभाग का अध्यक्ष)—

पृ० १२५—सूत्राध्यक्ष सूत्र (धागे), वर्म (कवच) वस्त्र (कपड़े) और रज्जू के निर्माण में योग्य व्यक्तियों को नियुक्त करे।

पृ० १२६—'वस्त्र, परिधान, रेशमी वस्त्र, ऊनी वस्त्र व सूती वस्त्रों का निर्माण।'

पृ० १२७— अध्यक्ष रज्जु और कवच के निर्माताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध रखे और वरत्र (बरत, मोटा रस्सा) व अन्य उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करवाये। तागों व सूत्रों से वह रस्सो को और बेंत व बांस की छाल से वरत्रों को बनवाये। जिनके द्वारा सामान ढोने वाले पशु बांधे जाते हैं।

पृ० १२७—सीताध्यक्ष कृषि का अध्यक्ष—

सोताध्यक्ष सब प्रकार के अनाज, पुष्प, फल, शाक, कन्द, मूल, पाल्लिक्य (कद्दू-पेठा आदि), रेशों वाले पौधे व कपास के बीजों को यथासमय एकत्रित करे।'

पृष्ठ १४१—नावध्यक्ष—'उन नदियों में, जिन को हेमन्त व ग्रीष्म काल में भी चल कर पार नहीं किया जा सकता; महानावों का प्रबन्ध किया जाय। जिन के साथ शासक (मुखिया), नियामक (संचालक). रस्सी व लकड़ी को काटने का साधन पकड़ने वाला (दान्त्र ग्राहक), रस्सी[७] व पतवार को पकड़ने वाला (रश्मिग्राहक),

---

इकट्ठा कर सकें। (१७) पेड़ के नीचे राल या विरोजा लगाना ताकि चींटि व अन्य कीड़ ऊपर चढ़ कर ताड़ी न पी जायें। (१८) कम्पनी के प्रदेश में प्रत्येक पेड़ के लिए एक शिलिंग वार्षिक कर—मूर का यह विवेचन भारत में नारियल के वर्तमान प्रयोगों से पूर्णतया प्रमाणित होता है।

६— अर्थशास्त्र की शब्दानुक्रमणिका में नारिकेल का कोई भी उल्लेख नहीं है। चरक संहिता (निर्णयसागर प्रेस, १९४१, पृ० १६०) और सुश्रुत सहिता (निर्णयसागर प्रेस, १९३८) में नरिकेल के गुणों का इस रूप में वर्णन किया गया है—

'तालशस्यानि सिद्धानि नारिकेल फलानि च।'आदि
च० सू० अ० २७, फलवर्ग १३० ।

'ताल नालिकेर पनसमोच प्रभृतीनि ॥
'नालिकेरं गुरुस्निग्धं पित्तघ्नं स्वादुशीतलम् ॥'
सु०, सू०, अ० ४६, फलवर्ग१७७ और १८०।

७—अमरकोष (निर्णय सागर प्रैस, बम्बई, १९०५, पृष्ठ १११, काण्ड १—वारिवर्ग) में 'गुणवृक्षक' शब्द इस पंक्ति में आता है—

'नियामकाः पोतवाहाः कूपको गुणवृक्षक॥
भानी जी दीक्षित 'गुण वृक्षक' शब्द का 'नौमध्यस्थरज्जुबन्धनकाष्ठ' (मस्तूल) या 'नौबन्धनकीलक' (एक खम्भा जिस से जहाज़ बांधा जाता है) के रूप में व्याख्या करते हैं।

और उत्सेत्रक (पानी को बाहर फेंकने वाला कर्मचारी हो।

पृष्ठ १४६—अश्वाध्यक्ष—'योग्य अनुभवी व्यक्ति घोड़ों को बांधने के लिये उत्तम रस्सों के निर्माण की विधि बतलायेंगे।'

उपर्युक्त उद्धरण यह प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त हैं कि २००० वर्ष से भी अधिक पहले भारत में राज्य द्वारा रज्जु-निर्माण के व्यवसाय को और रज्जु-निर्माण के साधनभूत विविध प्रकार के रेशों को कितना महत्व प्रदान किया जाता था। बड़ी-बड़ी नौकाओं पर रज्जुओं का वर्णन यह प्रकट नहीं करता कि वे रेशों के ही बने होते थे परन्तु प्रथम सदी के भारतीय रोमन व्यापार के केन्द्र अरिकमेदु से प्राप्त रेशे के रस्सों के नमूनों को दृष्टि में रखते हुए हम कल्पना कर सकते हैं कि सम्भवतः ये रस्से भी नारियल के रेशों से बने होंगे। १०३० ईस्वी के बाद से जहाज़ों को परस्पर सम्बद्ध करने के लिये रेशों के रस्सों के प्रयोग को हम पहले ही हॉब्सन जॉब्सन के निर्देशों से पर्याप्त रूप में सिद्ध कर चुके हैं।

[शेष अगले अङ्क में]

ग्राहकों को सूचना

कागज़ का पर्याप्त प्रबन्ध न हो सकने से हम गुरुकुल-पत्रिका की पृष्ठ संख्या को बढ़ाने में असमर्थ रहे हैं। इस लिए इस सूचना के अनुसार हम वार्षिक शुल्क ५) से कम कर के ४) कर रहे हैं। विदेशों में पत्रिका का मूल्य वार्षिक शुल्क ५) ही रहेगा। देश के जिन ग्राहकों का ५) हमें प्राप्त हो चुका है, उन का १) आगामी वर्ष के शुल्क में जमा कर लिया जायगा। पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

व्यवस्थापक—
गुरुकुल-पत्रिका।

प्रात ब्रह्म को ब्रह्म पूजता चढ़ा श्वास के अक्षत चन्दन।

शिवमूर्ति मिश्र 'शिव'

फूटी किरण प्रभात हुआ, मैं
करता आत्म-तत्व का चिन्तन।
अन्तःकरण स्फुरित होता है
स्वयं ब्रह्म का हर्षित वन्दन॥

परम ब्रह्म—आनन्दरूप धन
सत्-चित् औ' अव्यक्त तेज-धन।
ज्योति-वर्ण विभु, रोम-रोम रम
दिव्य प्राण गति सिहरन कम्पन॥

अमृत जहां तृप्ति का पावन
तृप्त जहां हैं परम हंस जन।
वहाँ शान्ति सुख मोक्ष पुण्यफल
वहाँ ब्रह्म का ध्यान चिरन्तन॥

जो सुषुप्ति से पार ज्ञानमय
जिसे स्वप्न का क्षणिक बन्धन।
कभी न जाग्रत कभी न निद्रित
जो अनित्य मंगलमय चेतन॥

वही ब्रह्म मैं अहं-बुद्धि-रत
और मृत्युजित अभय सनातन।
पञ्चभूत का मैं न देह तन
मैं न असत् का स्पृहमय जीवन॥

वही ब्रह्म मैं, वही ब्रह्म मैं
स्वयं ब्रह्म का मुखरित वन्दन।
प्रात ब्रह्म को ब्रह्म पूजता
चढ़ा श्वास के अक्षत चन्दन॥

फूटी किरण, प्रकाश हुआ, मैं
आदि-पुरुष का करता चिन्तन।
खण्ड-खण्ड में, भुवन-गगन में
प्राण-प्राण में भरता चेतन॥

प्रात ब्रह्म को ब्रह्म पूजता
चढ़ा श्वास के अक्षत चन्दन।

शिक्षा पर श्री मुंशी

– धुरेन्द्र

श्रीयुत कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी आजकल प्रमुख राजनीतिज्ञों में गिने जा रहे हैं। परन्तु भारत की स्वाधीनता-प्राप्ति से पूर्व वे कुशल राजनीतिज्ञ होते हुए भी एक साहित्यिक-कलाकार और कार्यकर्त्ता के रूप में अधिक प्रसिद्ध थे। वस्तुतः उन का अधिकांश जीवन साहित्य और शिक्षा सम्बन्धी प्रवृत्तियों में ही बीता है। भारत के श्रेष्ठतम शिक्षा-शास्त्रियों में उन का विशिष्ट स्थान है और आज जब कि स्वाधीन भारत देश की अशिक्षित जनता को शिक्षित करने के लिए नई-नई योजनायें बना रहा है, यह आवश्यक है कि हम उस महान् शिक्षा शास्त्री क शिक्षा सम्बन्धी अनुभवों को जानने का प्रयत्न करें आर उन से लाभ उठायें। नीचे विभिन्न विषयों पर उन के अनुभवों को बहुत संक्षेप में दिया जा रहा है।

विद्यार्थी की रुचि

देखा गया है कि पाठ्यक्रम की नीरस पुस्तकों से विद्यार्थी को अरुचि होती है। छोटे बच्चे प्रायः खेलना कूदना अधिक पसन्द करते हैं। इसी खेल-कूद के द्वारा उन्हें शिक्षित करने का प्रयत्न करना चाहिये। साहस, स्फूर्ति, वीरता और न्याय-प्रियता आदि उच्च भावनाओं को खेल-कूद के द्वारा सहज में ही छोटे बच्चों के अन्दर उत्पन्न किया जा सकता है। बागवानी और मिट्टी के खिलौने आदि बनवाने के द्वारा उन के हस्त-कौशल को विकसित किया जा सकता है। अक्षर-ज्ञान भी उन्हें कराना चाहिये, लेकिन रोचकता के साथ। छोटे बच्चों को सरल भाषा में लिखी हुई मनोरञ्जक कहानियां पढ़ने के लिए देनी चाहिएं। बड़े विद्यार्थियों को गूढ़ विषय की पुस्तकें पढ़ानी चाहियें परन्तु यह बताते हुए कि उस विषय का उन के जीवन के साथ क्या सम्बन्ध है। कालिदास पढ़ाते हुए बजाय यह बताने के कि कौन से शब्द में पाणिनी का कौन सा सूत्र लगता है या कौन सा स्थल परीक्षा में पूछा जा सकता है, यह दिखाना चाहिये कि कालीदास ने अपनी सूक्ष्म अनुभूति के द्वारा मानव-हृदय की भावनाओं और प्रकृति के सौन्दर्य का कितना हृदयग्राही वर्णन किया है। अगर कालीदास को पढ़ने के बाद विद्यार्थी भी उसी की तरह मानव-स्वभाव को बारीकी से समझने का और प्रकृति के सरल सौन्दर्य में आनन्द लेने का प्रयत्न करता है तब तो उस की शिक्षा सार्थक है अन्यथा पाणिनी के अनेक सूत्र घोट लेने पर भी वह वास्तव में अशिक्षित ही रहेगा। यह है वह दृष्टिकोण जो प्रत्येक विषय को पढ़ते-पढ़ाते हुए सामने रखा जाना चाहिये।

असाधारण विद्यार्थी

हर एक विद्यार्थी को अच्छी से अच्छी शिक्षा देने का प्रयत्न करते हुए भी शिक्षक को असाधारण योग्यता वाले विद्यार्थी की तलाश में रहना चाहिये। ऐसा विद्यार्थी प्रायः सङ्कोचशील होता है। इस लिये शिक्षक को उसे तलाश करने में खूब जागरूक और सतर्क रहना पड़ेगा। यदि सैंकड़ों में एक भी विद्यार्थी उसे ऐसा मिल जाता है, तो शिक्षक को चाहिए कि वह उस को अधिक से अधिक सहायता दे कर उस की प्रतिभा को विकसित करने का प्रयत्न करे

प्रत्येक शिक्षक को ध्यान रखना चाहिये कि देश का भविष्य लाखों करोड़ों सामान्य व्यक्तियों पर नहीं अपितु असाधारण योग्यता वाले एक दो व्यक्तियों पर ही निर्भर करता है।

शिक्षा का माध्यम—संस्कृतनिष्ठ हिन्दी

प्रारम्भिक-शिक्षा मातृ-भाषा के द्वारा दी जाय। परन्तु उच्च शिक्षा का माध्यम राष्ट्र-भाषासंस्कृत-निष्ठ हिन्दी ही हो। कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की शिक्षा को भी मातृभाषा में देने के प्रयत्न का विरोध किया जाना चाहिए। इस से प्रान्तीयता की भावना बढ़ेगी और देश कई टुकड़ों में बंट जायगा। हिन्दी के द्वारा सारे देश में उच्च शिक्षा देना बहुत सरल है क्योंकि प्रान्तीय भाषाओं के साथ उस का घनिष्ठ सम्बन्ध है। राष्ट्रभाषा का विकास करते समय संस्कृत के साथ सामीप्य रखने का प्रयत्न करना चाहिये। क्योंकि संस्कृत ही एक ऐसा तत्त्व है जिसने सारे राष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता और आचार विचारों को एक सूत्र में गूँथ रखा है।

सहशिक्षा

आजकल सारे देश में स्त्रियां की दशा बहुत गिरी हुई है। पुरुषों के शिक्षित समुदाय ने भी उन्हें वासना तृप्ति का एक साधनमात्र समझा हुआ है। कारण यह कि अलग-अलग शिक्षणालयों में पढ़ते हुए युवक और युवतियाँ एक दूसरे के प्रति एक विशेष अभाव और आकर्षण का अनुभव करते रहते हैं। शिक्षा की समाप्ति पर जब वे समाज में एक दूसरे से मिलते हैं तो सिवाय वर्षों तक सञ्चित की हुई विषय वासना को तृप्त करने के उन्हें और कुछ नहीं सूझता। जो शक्तिशाली युवक और युवतियां देश की उन्नति में बहुत अधिक सहायक हो सकते हैं वे इस तरह अपनी सामर्थ्य को खो बैठते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि पुरुषों और स्त्रियों के बीच में जो वासनामयी प्रवृत्तियां बनी हुई हैं उन्हें दूर करने का अधिक से अधिक प्रयत्न किया जाय। सहशिक्षा—एक ऐसा अध्ययन काल है जिस में छात्र और छात्राएं पढ़ने, खेलने और सामाजिक कार्य करने में साथ-साथ रहें और एक दूसरे के सम्पर्क में आ कर पारस्परिक विचारों और प्रवृत्तियों को समझने का प्रयत्न करें, इस में बहुत सहायक हो सकती है।

राष्ट्रीय-चेतना

भारत की वर्तमान शिक्षा का ध्येय राष्ट्रीय चेतना को जागृत करना होना चाहिए। यद्यपि देश आज स्वतन्त्र है, पर भारतीयों ने अभी अपनी नींद छोड़ी नहीं है; स्वाधीन देश के नागरिकों के कर्त्तव्य पालन करने की भावना अभी उन में नहीं जग पाई है। बिना इस जागृति के देश आगे नहीं बढ़ सकता। जापान, जर्मनी और रूस के उदाहरण हमारे सामने हैं जिन्हों ने अपनी जनता में एक नवीन चेतना पैदा कर के अपने देश को कहीं से कहीं ले जा कर खड़ा कर दिया। हमें भी इस से कुछ पाठ सीखना है। भारत की सोई जनता में राष्ट्रीय चेतना पैदा करने के लिए आन्दोलन करना है। जब भारतवर्ष का प्रत्येक विद्यार्थी, वकील, डॉक्टर, लेखक, कवि, किसान, मज़दूर, भारत का एक-एक निवासी यह समझने लगे कि वह एक स्वतन्त्र देश का नागरिक है, और उस ने अपना प्रत्येक कार्य राष्ट्र के हित को ध्यान में रखते हुए—राष्ट्र के सुख और समृद्धि को बढ़ाने के लिये ही करना है, तो हम समझ सकते हैं कि हम ने शिक्षा की पहली मंज़िल पार कर ली है।

आनन्द कहां है ?

स्वामी कृष्णानन्द

किसी पदार्थ का त्याग कई कारणों से किया जाता है। [१] वह पदार्थ दुःख देने वाला हो। [२] उसमें सुख दुःख से कम हो अथवा [३] सुख का सर्वथा अभाव हो।

संसार में स्वतन्त्र भावरूप सुख की सत्ता नहीं। विषय, धन सम्बन्धी, कर्म, ज्ञान आदि संसार के पदार्थों में सुख का लेश मात्र भी नहीं है। दुःख तो इनकी प्राप्ति, रक्षा व वियोग में है ही। इस लिये इस दुःख से ही छुटकारे का उपाय करना चाहिये।

सुखाभाव का यथार्थ ज्ञान मनुष्य को अपने अनुभव से ही होता है। शास्त्र संकेत कर सकता है। उसके अनुसार हमें आचरण भी करना चाहिये। परन्तु अन्तिम परिणाम के लिये हम शास्त्र पर अन्धा धुन्ध विश्वास नहीं कर सकते।

किसी पदार्थ में रुचि व अरुचि का मूल कारण शास्त्र पर विश्वास नहीं। प्राणिमात्र का स्वाभाविक सुख में राग और दुःख में द्वेष है। इस लिए जब तक हम विषयादि में अनुभव करते हैं; शास्त्र के आदेश से उन का नितान्त त्याग नहीं कर सकते। कुछ काल के लिए जोश में आ कर भले ही उन को त्याग दें। परन्तु समय पा कर उन में सुख की स्मृति जागती है और हम बड़े वेग से विषयों की लहर में फिर धकेले जाते हैं। प्रायः त्यागी पुरुषों के जीवन में अवनति का मूल कारण यही भ्रान्ति है कि शास्त्र के आदेश पर (कि विषयों में सुख नहीं) श्रद्धा रखते हुए पदार्थों का त्याग कर देते हैं। परन्तु विषयों के सेवन से उन को सुख प्राप्त होता है। सुख में राग स्वाभाविक है तो उन्हें वास्तविक अनुभवी वैराग्य नहीं होता। यह तो तब होता है जब उन पदार्थों के सेवन से सुख न भासे। जब सुख नहीं मिलता तो मनुष्य इन्हें स्वयं ही छोड़ देता है। किसी के कहने की आवश्यकता नहीं रहती। यही सच्चा वैराग्य है जिस के होने पर फिर मनुष्य बन्धन में नहीं पड़ सकता।

शास्त्र के आदेश की आवश्यकता

जैसे एक विद्यार्थी के लिए वैज्ञानिक प्रयोग के सम्बन्ध में विज्ञान के अभ्यास के विशेष संकेतों तथा विचारणीय बातों का पूरा पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। इस में वह लापरवाही नहीं कर सकता। परन्तु परिणाम का निश्चय उसे अपने अनुभव से ही करना होगा न कि अध्यापक की आज्ञा व निर्देशों से। इसी प्रकार 'विषय आदि में सुख नहीं' इस सचाई के लिए प्रयोग तो गुरु या शास्त्र की आज्ञानुसार ही करना होगा। उस में यदि अल्प मात्रा में भी असावधानी हुई तो प्रयोग के असफल हो जाने का भय है। परन्तु अन्तिम फैसला 'कि विषयों में सुख है या नहीं' यह जिज्ञासु के अपने अनुभव पर ही आश्रित है।

कर्म, ज्ञान, गुण आदि की आवश्यकता प्रायः विषय-प्राप्ति के लिए ही होती है। जब किसी विषय की आवश्यकता नहीं रहती तो उस के लिए ज्ञान और कर्म स्वतः ही बन्द हो जाते हैं। इस लिए विषय-सुख की परीक्षा ही पहले करनी चाहिये।

सर्वोपयोगी साधारण संकेत

किसी विवादास्पद घटना के निर्णय के लिए निष्पक्षभाव की आवश्यकता होती है। जैसे कि

किसी अभियोग के निर्णय के लिए यह आवश्यक है कि न्यायाधीश का मन पहले ही किसी ओर झुका हुआ न हो। यदि वह एक पक्ष को किसी पहली घटना के आधार पर सच्चा या झूठा कल्पना कर के खोज करता है तो सम्भव है कि वह हरेक साक्षी को उसी रंग में देखे और यथार्थ निर्णय पर न पहुँच सके। इसी प्रकार विषय में सुखवाद के लिए भी आवश्यक है कि पहले संस्कारों को उद्भूत न होने दिया जावे—चेतना की परिधि में न आने दिया जाए। भूतकाल को नितान्त भूल जावे वर्तमान में ठहरे, और जहां तक उसी समय के अनुभव में आवे वहीं तक माने, अपनी ओर से प्रत्यक्ष ज्ञान में कुछ सम्मिलित न करे।

एक गुण या चिन्ह से दूसरे गुण का अनुमान

जब एक व्यक्ति किसी विशेष रग वाले आम को देखता है जिस को उस ने पहले खाया हुआ है। अब वह पहले ज्ञान के अधार पर ऐसे ही उस के स्वाद का अनुमान कर लेता है। यह अनुमान उस के मन में एक विशेष प्रकार की तरंग पैदा कर देता है जिस के कारण कई मनुष्यों के मुख में पानी भर आता है, यह पहला भाव उस के वर्तमान के असली प्रभाव से मिल कर अन्य ही प्रभाव पैदा कर देता है। जैसा कि कई वार देखने में आता है कि साधारण आम भी स्वादु प्रतीत होता है। इसी प्रकार एक पर्दे के भीतर किसी को देख कर मनुष्य के मन में जोश पैदा हो जाता है कि इस के भीतर कोई सुन्दर स्त्री है। यद्यपि कई वार देखने में आता है कि पर्दे में से बहुत कुरूपा काली कलूटी स्त्री निकलती है और सम्भव है कि किसी समय पुरुष ही निकले। इस प्रकार की आरम्भिक भूल परिणाम में ग़लती पैदा कर देती है। एक पदार्थ का नाम सुन कर ही कई वार सभी पहले संस्कार उद्भूत हो जाते हैं।

वेग शान्ति

मन में संस्कार-वश उत्साह पैदा हो जाता है। जब हम उस पदार्थ का भोग करते हैं तो वह उत्साह शान्त हो जाता है। उस जोश की शान्ति से सुख तथा शान्ति प्रतीत होती है।

प्रतिकारो व्याधे सुखमिति विपर्यस्यते जनाः (भर्तृ)

जैसा कि ग्रीष्म-ऋतु में अधिक प्यास से व्याकुल होने पर ठण्डा जल पीने से सुख होता है। यह भावरूप सुख नहीं प्रत्युत एक रोग-दुःख का प्रतिकार है। जब तक वह दुःख विद्यमान है तभी तक सुख है। जहां प्यास दूर हुई वही पानी सुख देने वाला नहीं रहता उल्टा दुःखदायी हो जाता है। परन्तु जब हम ठण्डा पानी पी रहे होते हैं तो उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो हमें कोई सच्चा सुख ही मिला हो और हम बोल उठते हैं, अहा ! बड़ा आनन्द आया। इसी प्रकार जब पहले संस्कारों के कारण मन में किसी पदार्थ की कामना होती है तो उस कामना के उद्वेग के शान्त होने से जो उपस्थित दुःख का अभाव होता है उसी को हम सच्चा सुख मान लेते हैं।

एक गुण का दूसरे गुण पर प्रभाव

कभी-कभी किसी पदार्थ के गुण से प्रभावित हो कर उस के दूसरे गुण के जांच करने में मनुष्य धोखा खा जाते हैं। जैसे कि सभी स्त्रियों के स्पर्श का सुख एक-सा होना चाहिये—यदि चमड़े की नरमी में भेद न हो। परन्तु ज्यों ही हम काले, गोरे रंग का भेद देखते हैं स्पर्श के सुख में भी अन्तर पड़ जाता है। यद्यपि यह समझ में नहीं आ सकता कि हाथ के द्वारा

स्पर्श इन्द्रिय रंगत तथा रंग के सुख को किस प्रकार अनुभव कर सकता है।

मन की विश्लेषणात्मक और धारणा शक्ति

इसी प्रकार के कुछ कारण होते हैं जिन के द्वारा मन में पहले ही कुछ ऐसे संस्कार विद्यमान होते हैं जिन से उन पदार्थों के सुख का पूरा दाम लगाने में हमें धोखा हो जाता है। इन बातों के विचार से यह आवश्यक प्रतीत होता है कि प्रयोग के लिए मन नितान्त खाली हो और इस में विश्लेषण और धारणा की इतनी शक्ति हो कि किसी पदार्थ का परीक्षण करते समय उस के जिस गुण या अङ्ग पर ध्यान करना चाहें, कर सकें। संक्षेप में निम्नलिखित विचारों को मन में न लाना होगा —

(क) पदार्थ का नाम। (ख) पहले आकार, रस आदि गुण का अनुभव। (ग) पहले भोग के समय सुख-दुःख का अनुभव। (घ) भूतकाल के सुख की स्मृति के कारण वर्तमान उत्साह या कामना। (ङ) एक गुण के प्रयोग में दूसरे गुण की स्मृति।

इन साधनों से संपन्न हो कर जब परीक्षण किया जाय तब उस पदार्थ का भोग अथवा ज्ञान कितना सुख पैदा करेगा। जिज्ञासु उस समय स्वयं भांप लेगा। शास्त्र के बताने की आवश्यकता नहीं रहेगी। जिस पदार्थ में किसी को सुख-प्रतीत होता हो इसी प्रकार प्रयोग द्वारा अपने अनुभव की भूल को सुधारना पड़ेगा।

स्वास्थ्य-सूक्तियां

प्रसाद

हम अपनी थालियों पर ही बनते व बिगड़ते हैं। प्राकृतिक आहार (ऋतु के सुलभ और सस्ते फल-शाक), ताज़ा जल, स्वच्छ पवन, धूप,और व्यायाम स्वास्थ्य की एक मात्र कुञ्जी हैं।

अप्राकृतिक आहारों, चटपटे पदार्थों, और पेयों—चाय, सोडा, जल-जीरा आदि के क्षणिक स्वाद में फंस कर हम रोगों को बुलाते हैं. और धन तथा स्वास्थ्य का संहार करते हैं।

भली प्रकार चबा कर खाने से ही देह को पोषण मिलता है। बिना चबाए जितना भोजन हम खाते हैं उस के आधे से ही हमारा काम चल जाय, यदि हम भोजन को भली प्रकार चबा कर सदा खाया करें। सादा भोजन भी चबा कर खाने से पूरा स्वाद देता है। भली प्रकार चबा कर खाने से बिना छने गेहूँ के आटे की रोटी में भी मिठाई का स्वाद आता है। मिठाइयों में धन खो कर स्वास्थ्य का नाश न करो। दांतों का काम आंतों से कभी मत लो।

तम्बाकू, सिगरेट और बीड़ी स्वास्थ्य के वैरी हैं। चाय की चाह ने सहस्त्रों स्वस्थ देहों को चौपट कर दिया है।

प्रत्येक रोगी मनुष्य पापी है—रोग अप्राकृतिक आहार और अति—भोजन के पाप का ही दुष्परिणाम है।

जीभ का दास सदा रोगों का दास रहता है। संयम ही सुख का मूल है।

सदाचार के त्याग, आलस्य और अन्न के दोष से मृत्यु ज्ञानियों को मारती है।

जिस ने स्वाद को जीत लिया. उस ने सब कुछ जीत लिया हित, मित आहार करने वाला मनुष्य नीरोग रहता है। नैरोग्य सब से बड़ा धन है।

हमारे देश की वैज्ञानिक शब्दावली

आंग्ल हो या भारतीय

डॉक्टर रघुवीर

आज जब भारतवर्ष सहस्रों वर्ष की पराधीनता की शृंखलायें तोड़ कर फेंक रहा है, राष्ट्र-भाषा के साथ ही वैज्ञानिक शब्दावली का प्रश्न प्रत्येक विचारशील भारतीय के मस्तिष्क को आंदोलित कर रहा है। डेढ़ सौ वर्षों तक अंग्रेज़ों और अंग्रेज़ी के दासत्व में रहने के कारण अनेक भारतीय अभी तक अंग्रेज़ी का मोह नहीं छोड़ सके। आज अनेक भारतीयों का नारा है कि आंग्ल वैज्ञानिक परिभाषायें अन्तर्राष्ट्रीय हैं। आज जब आंग्लभाषा की शृंखलाओं को तोड़ कर मातृभाषा अथवा राष्ट्रभाषा को ग्रहण करने का समय आया है, कुछ आंग्लभाषाभिभूत बन्धु अपनी भाषा को सीखने का साहस करने में कठिनाई अनुभव कर रहे हैं। हम इस नारे के सम्बन्ध में विचार करेंगे। इंग्लैंड के लोगों के लिये 'अन्तर्राष्ट्रीय' शब्द का प्रयोग इतना संकुचित हो गया है कि वे अपने पड़ौसी नार्वे, डेनमार्क, हालैंड, बेल्जियम, फ्रांस, स्पेन, आदि देशों में ही कुछ शब्दों का प्रचार होने से उसे अन्तर्राष्ट्रीय कहने लगते हैं। प्रत्येक भारतीय को अन्तर्राष्ट्रीय शब्द का यह विचित्र प्रयोग भली-भांति ध्यान में रखना चाहिये। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि सांस्कृतिक दृष्टि से यूरोप और अमेरिका में पैतृक सम्बन्ध हैं। उन के धर्म और सभ्यता का मूल एक है। यदि प्रत्येक योरपीय और अमेरिकन देश की राजनैतिक सत्ता एवं शासन के पतले पर्दे को हटा कर देखें तो ज्ञात होगा कि इन देशों का सारा जन-समुदाय एकरूप और अविभाज्य है। यह स्थिति भारत या चीन में दृष्टिगोचर नहीं होती। यूरोप और अमेरिका के वासियों में इतना स्वल्प भेद है जितना उत्तर भारत के भिन्न-भिन्न भाषा भाषियों में। यूरोप और अमेरिका के समस्त निवासियों के लिये लैटिन और ग्रीक का वह महत्व है जो भारतीय भाषा भाषियों के लिये संस्कृत का।

अतः आंग्ल वैज्ञानिक शब्दावली की तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीयता का मूल यूरोपीय भाषाओं की सजातीयता में सन्निहित है। यूरोपीय भाषाओं में इतनी अधिक समता है कि भिन्न-भिन्न देशों के राजनैतिक शासन मात्र ही उन की भिन्नता के परिचायक हैं। परन्तु जब एक भारतीय आंग्लभाषा के कुछ शब्दों को ग्रहण करना चाहता है तब वह समझता है कि वे शब्द न केवल अमरीका और यूरोपीय देशों के विचार से अन्तर्राष्ट्रीय हैं, अपितु उन के प्रयोग चीन, जापान, ब्रह्मदेश, स्याम, लंका आदि देशों में भी होते हैं। उस के मन में यह संस्कार बैठ गया है कि हमें आंग्ल शब्दावली का प्रयोग करना चाहिये, चाहे वह जनता के लिये बोधगम्य हो चाहे न हो।

यूरोपीय भाषाओं में न केवल वैज्ञानिक शब्द एक समान है, परन्तु उन के व्यापार, धर्म, दर्शन, स्थापत्य आदि के शब्द भी एक ही हैं। क्या यह उचित होगा कि यह शब्द अन्तर्राष्ट्रीय होने के कारण हम ग्रहण करें? यदि यह सत्य होता तो हमें उन शब्दों की सूची मात्र लेना

ही पर्याप्त था जो यूरोप के सभी देशों में बोले जाते हैं। फिर ये सब शब्द सभी देशों को ग्रहण करने अनिवार्य होते। न तो विश्व के किसी देश ने आज तक इस प्रकार के कार्य को करने में अपना समय नष्ट किया है, और न ही भारत करेगा। यूरोपीय भाषाओं में शब्दों की समानता का कारण यह नहीं है कि वहां के भिन्न-भिन्न देशों में भारतवर्ष और इंग्लैंड के समान आकाश पाताल का भेद होते हुए भी अन्य देशों के शब्दों को उन्होंने बाध्य हो कर स्वीकार कर लिया हो। ग्रीक और लेटिन भाषा का कोई भी शब्द जो एक यूरोपीय भाषा में प्रयुक्त होता है अत्यन्त सरलता से अन्य भाषा-भाषियों के द्वारा समझा जा सकता है। अतः यदि उन्हों ने एक साथ बैठ कर ग्रीक और लेटिन शब्दों को लेना स्वीकार किया हो तो यह आश्चर्यजनक नहीं। हमारी स्थिति तो इस से सर्वथा भिन्न है। हम इन शब्दों को अपनी भाषा का अंग नहीं बना सकते क्यों कि वे हमारे लिये सर्वथा विजातीय हैं और हमारी भाषाओं में उन का कोई अर्थ नहीं होता। यदि उन्हें अपना भी लिया जाय तो वे हमारे बालकों के लिये अगड़-बगड़ शब्दों के समूहों की ध्वनि के अतिरिक्त कुछ भी अर्थ न रख सकेंगे।

हमारे देश की शिक्षित पीढ़ी जिस ने ग्रीक और लेटिन भाषाओं से उत्पन्न शब्दों द्वारा शिक्षा पाई है भारत की आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकताओं की कल्पना भली-भांति नहीं कर सकती। देश के भावी बालक-बालिकायें जीवन का श्रेष्ठ भाग आंग्ल भाषा के अक्षर-विन्यास, उच्चारण और मुहावरे रटने में नष्ट नहीं करेंगे।

ग्रीक और लेटिन भाषायें तो यूरोप के प्राण हैं। उन के बिना यूरोप जीवित नहीं रह सकता। परन्तु ये भाषायें हमारे प्राण नहीं हैं। भारत स्वत्व-विहीन नहीं है। उस की भी अपनी आत्मा है। भारतवर्ष का इतिहास और परंपरा अत्यन्त गौरवमय है। हमारे पास वह परम्परा और दाय है जिसे हमें सुरक्षित रख कर अधिकाधिक विकसित और उन्नत करना है। हम दूसरों की भाषा का अन्ध अनुकरण नहीं कर सकते। हमारे पास स्वयं अपनी अत्यन्त बहुमूल्य सम्पदा है जिसे नष्ट होने देना घातक भूल होगी। हमें ज्ञान पिपासा है। अतः हमें यह देखना चाहिये कि हम किस प्रकार अल्पतम समय में अधिकतम ज्ञान प्राप्त कर सकें। आंग्ल भाषा की पुस्तकें तो केवल उच्चतम शिक्षा के लिये और मौलिक खोज करने वाले विद्वानों और वैज्ञानिकों के लिये आवश्यक होंगी। इस के अतिरिक्त स्वयं भारतीय भाषाओं में पर्याप्त वैज्ञानिक पत्र, पत्रिकायें, साहित्य, और अनुवाद-संस्थायें होंगी जो हमारे विद्वानों को जगत के नवीनतम आविष्कारों तथा साहित्य से सुसज्जित रखेंगी। परन्तु हमारी सन्तान अपनी मातृभाषा की पाठ्यपुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं द्वारा विज्ञान के उच्चतम तत्वों का अध्ययन कर के अपना बहुमूल्य समय बचा सकेगी। हम विदेशी भाषा में उन्हें कुत्ते-बिल्ली की कहानियां न रटाते रहेंगे। हमरे देश के विद्यार्थी विश्व की एक कठिनतम, अवैज्ञानिक भाषा के उच्चारण, अक्षरविन्यास और मुहावरों को घोटने में अपनी बहुमूल्य शक्तियों का दुरुपयोग न करेंगे।

यह आवश्यक और उचित होगा कि प्रत्येक विश्वविद्यालय से कुछ सुयोग्य प्रतिभाशाली विद्वान् विदेशी भाषायें सीख कर अन्य भाषाओं के साहित्य को देख सकें, जिस से सर्व सामान्य विद्यार्थी अपना सारा समय ज्ञान प्राप्ति में ही लगा सके। हमारा निश्चित और अटल उद्देश्य

यही होना चाहिये कि हमें विश्व के आधुनिक विज्ञान का ज्ञान उस भाषा के माध्यम में प्राप्त करना है, जो हमारे मार्ग में अकारण रोड़े न अटकाते हों और स्वल्पतम समय में हमें अपने अभीष्ट स्थल पर पहुँचाने की शक्ति रखते हों।

आज भी भारत में कितने प्राणिशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, रसायनशास्त्र, अथवा खनिज-शास्त्र के अध्यापक हैं, जो आंग्लभाषा की तथा-कथित वैज्ञानिक शब्दावली को पूर्णतया हृदयंगम कर सके हैं? इस शब्दावली का एक बड़ा भाग हमारे लिये आज तक भी एक पहेली बना हुआ है। उन का वास्तविक अर्थ समझना एक टेढी खीर है। संभव है कि इस क कुछ भाग सार्थक हो परन्तु एक भारतीय के लिये तो यह शब्दावली पूर्णतया अग्राह्य एवं निरर्थक है। हमें पुनः पुनः प्रयत्न कर उसे ग्रहण करने पर बाध्य होना पड़ता है और उस का अर्थ केवल प्रसंग के आधार पर ही लगाया जाता हैं। इस गूढ़ता और अगम्यता के कारण इन शब्दों के चहुँ ओर अज्ञात रहस्य सा बन जाता है। इन शब्दों को पचाने के लिये भारतीय विद्यार्थी ने आज तक इतना श्रम किया है, कि स्वाभावतः वह कटोर श्रम से अर्जित इस सम्पदा को सरलता से छोड़ने के लिये उद्यत नहीं है।

जिस प्रकार ग्रीक और लेटिन के शब्द यूरोप की सभी भाषाओं में समान रूप से पाए जाते हैं इसी प्रकार संस्कृत सभी भारतीय भाषाओं में पाई जाती है। वह लगभग सभी भारतीय भाषाओं की जननी है। क्या क्षेत्रफल और क्या जनसंख्या सभी में भारत यूरोप से किसी प्रकार न्यून नहीं है। यदि भारतवासी जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें अनथक श्रम करना होगा, और इस में कोई भी सन्देह नहीं है कि वे एक दिन यूरोप के पुरोगामी राष्ट्र की होड़ कर सकेंगे।

वैज्ञानिक शब्द हिम-कन्दु के तुल्य हैं। ज्यों-ज्यों वह हिम में आगे बढ़ती है, उस का आकार बढ़ता जाता है। यह कहना कठिन है कि वह कितना बृहदाकार धारण कर लेगी। थोड़े ही समय में वह शतगुणित हो जाती है। यदि हम कुछ भी वैज्ञानिक शब्द आंग्ल भाषा से ले लें तो इस का परिणाम यह होगा कि स्वल्प-काल में ही इन के साथ शतशः शब्द आंग्ल भाषा के आ घुसेंगे। प्रत्येक शब्द के कुछ सहगामी शब्द होते हैं। इन सम्बद्ध शब्दों की भी एक अलग श्रेणी होती है और इस प्रकार इन शब्दों की संख्या इतनी बढ़ जाती है कि वे सारी भाषा पर अपना आधिपत्य ज़मा लेते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय शब्द की ओर पुनः ध्यान दें तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक वस्तु जो दो या अधिक देशों में समान रूप से पाई जाती है, वह अन्तर्राष्ट्रीय कही जा सकती है, उदाहरणार्थ—चीन, जापान, मंचूरिया, कोरिया, अन्नम आदि देशों की ५० प्रतिशत शब्दावली एक समान है। इन शब्दों के अन्तर्गत विज्ञान और साहित्य में प्रयुक्त होने वाले लगभग सभी शब्द आ जाते हैं। इसी प्रकार वह शब्दावली जो भारत, ब्रह्मदेश, स्याम, और सिंहलद्वीप के लिये एक समान हो अन्तर्राष्ट्रीय कहलायेगी। यद्यपि भारत का ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ है,परन्तु वास्तव में भारत, ब्रह्मदेश, स्याम और सिंहल आदि देशों में शब्दों की बड़ी संख्या एक समान है। यह अवसर है जब भारत को अपने और इन देशों के हित की दृष्टि से इस शब्दावली के विकास की ओर तुरन्त ध्यान देना चाहिये।

———

संसार की कुछ निराली बातें

राजा महेन्द्र प्रताप

यह तो आप में से बहुतों ने, देखा ही होगा कि फ़िरंगी कांटे, छुरी और चम्मच से भोजन खाते हैं। परन्तु यह हम को ही पता होगा कि चीनी और जापानी दो पतली लकड़ियों से भोजन करते हैं। कुछ भाई जिनको यह पता है कि वह लकड़ी अथवा दो लकड़ियों से खाते हैं यह समझते हैं कि इन दो लकड़ियों को दो हाथों में लेते हैं। किन्तु सच बात यह है कि एक ही सीधे हाथ की अंगुलियों में दो लकड़ियां रहती हैं। एक तो कलम की भांति पकड़ी जाती हैं और दूसरी लकड़ी तीसरी अंगुली के सहारे काम करती है। कुछ लोग समझते हैं कि एक एक चावल उठा कर खाया जाता है। यह भी भ्रम है। पहली बात तो यह है कि चीन जापान में चावल पकाये ऐसे जाते हैं कि वह इकट्ठे रहते हैं और इकट्ठे उठ आते हैं। दूसरे जिस प्याले में चावल रखे होते हैं उस को मुख के पास ले जाते हैं।

चीन में एक अति स्वादु और पुष्टकर शोरबा एक विशेष पक्षी के घोंसले का होता है। वह पक्षी किसी ऐसी घास का घोंसला बनाता है जो स्वादु होती है और शरीर को पुष्ट भी करती है।

तिब्बत में लोग कच्चा मांस भी खाते हैं और उस को वे बड़े स्वाद की वस्तु समझते हैं। मांस को बहुत दिन तक वायु में लटकाए रखते हैं। वायु में सूख कर कुछ पक्का सा हो जाता है।

चीन जापान में व्यक्ति को अपने बांएं पार्श्व में बैठा कर आदर करते हैं। अर्थात् बाईं ओर बड़ी और सीधी ओर छोटी समझी जाती है।

तुर्किस्तान में आगे आगे चलने को छोटापन समझा जाता है। इस लिये छोटे आगे चलते हैं और अपने बड़ों को पीछे अथवा बीच में रखते हैं।

तुर्क और तातर घोड़ी के दूध की दारु पीते हैं। घोड़ी का दूध एक रात रख छोड़ने पर शराब बन जाता है।

चीन में माता-पिता की भक्ति धर्म है। बेटा पिता के हितार्थ बलिदान तक हो जाता है। चीन, जापान में पितृ-पूर्वजों को पूजते हैं। योरुप में स्त्री का आदर करते हैं।

शुभ कामनाएं

श्री रमेश जी,

आप पत्रिका निकालने लगे हैं। भगवान आप के सहायक हों। वैज्ञानिक विषयों पर आप को सदा ही लेख भेजे जा सकते हैं।

गुरुकुल ने भारत के प्राचीन आदर्श को पुनर्जीवित करने का यत्न किया है। इस आदर्श को सामने रख कर आप चलते चलें। अभी देश में से अंग्रेज़ तो चले गए किन्तु अंग्रेज़ी को यहां बनाए रखने का अत्यधिक यत्न हो रहा है। भीषण स्थिति है। आप लोग यत्न करें, लेख लिखें अंग्रेज़ी का स्थान हिन्दी को मिलना चाहिए।

संविधान गृह (कोष्ठ ८५) भवदीय
नई दिल्ली रघुवीर

'गुरुकुल-पत्रिका' के लिये मेरी शुभेच्छा स्वीकार करें। पत्रिका सत्य के सौन्दर्य और सौन्दर्य के सत्य का वाहन बने, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

गुरुदयाल मल्लिक।
शान्ति निकेतन।

लक्ष्य की ओर

रामनाथ वेदालङ्कार

एक रथ है जो बिना पहियों के ही चलता है और देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानो अभी नवीन तैयार हुआ हो। उस में एक ईषादण्ड लगा हुआ है और वह चारों ओर जिधर चाहो उधर तेज़ी से चल सकता है। यह रथ कौन सा है? मानव-शरीर ही यह रथ है। इस में घूमने वाले पहिये नहीं लगे हैं, पर यह चलता है। वर्षों पुराना होकर भी नवीन सा बना रहता है। इस में मेरुदण्ड रूपी एक ईषादण्ड है और जिधर जिस दिशा में चाहो यह तेज़ी से चल भी सकता है। जीवात्मा रथी बन कर इस रथ पर आरूढ़ हुआ है। उपनिषद् के शब्दों में—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुः...॥ कठ.

अर्थात् शरीर रथ है, आत्मा रथारोही है, बुद्धि उस का सारथी है, मन लगाम का काम करता है, इन्द्रिय रूपी घोड़े उस में जुते हैं। परन्तु रथ पर जब कोई बैठता है तब वह किसी लक्ष्य पर पहुँचने के लिये ही बैठता है। इसी प्रकार इस शरीर-रथ पर बैठे हुए जीव का भी कोई लक्ष्य होना चाहिए। इस लिए वेद मनुष्य को सम्बोधन करता हुआ कहता है—

यं कुमार नवं रथमचक्रं मनसाकृणोः।
एकेषं विश्वतः प्राञ्चमपश्यन्नधितिष्ठसि॥
यं कुमार प्रावर्तयो रथं विप्रेभ्यस्परि।
तं सामानुप्रावर्तत समितो नाव्याहितम्॥
ऋग्वेद. १०. १३५. ३, ४।

हे कुमार! ऐ भोले मानव! तूने इस सुन्दर नवीन तीव्रगामी शरीर-रथ को पसन्द तो किया है पर आश्चर्य है कि तू इसे ठीक काम में नहीं ला रहा। यह रथ जो तुझे मिला है ऐसा अद्वितीय और तीव्रगामी रथ है कि इस पर बैठ कर तू न जाने कहाँ का कहाँ पहुँच सकता है। परन्तु तू आँख मूंद कर बैठा हुआ है। तेरी वैसी ही हालत है जैसे कोई व्यक्ति किसी उत्कृष्ट रथ—बग्घी, मोटर या वायुयान—पर बैठा हो, पर उसे यह न मालूम हो कि जाना कहाँ है। ऐसी अवस्था में रथ और रथ-चालक कैसे ही उत्कृष्ट क्यों न हों वह रथारोही वहीं रहेगा। इस में रथ या रथ चालक का कुछ दोष नहीं है। मूर्खता है उस व्यक्ति की जो ऐसे अनुपम रथ के पास होते हुए भी किसी उत्तम स्थान पर जाने का संकल्प ही नहीं करता।

ऐ मानव! उठ, जाग, देख, वेद तुझे सजग कर रहा है। भगवान् ने तुझे ऐसा विलक्षण रथ दिया है कि उस का उपयोग कर के तू दूर से दूर, उच्च से उच्च लक्ष्य पर पहुँच सकता है। अपने जीवन का कोई ऊंचा लक्ष्य निर्धारित कर, मन में संकल्प ठान कि मुझे उन्नति की उस मञ्जिल पर पहुँचना है. लक्ष्यहीन होकर मत बैठा रह। एक लक्ष्य पर पहुँच कर दूसरा लक्ष्य बना, दूसरे पर पहुँच कर तीसरा लक्ष्य निश्चित कर, आगे ही आगे बढ़ता चल। शतवर्ष के लिये तुझे यह रथ मिला है; इसे स्वस्थ-सुन्दर रखता हुआ निरन्तर उन्नति के मार्ग पर चलाये जा। इस उत्तम रथ पर आँख बन्द करके (अपश्यन्) मत बैठ। यदि तू आंख बन्द किये रहेगा, अपने

लक्ष्य पर पहुँचने के लिये सतर्क नहीं रहेगा तो इस रथ में जुते हुए इन्द्रिय रूपी घोड़े तुझे विषय भोगों के हरे भरे मैदान की ओर खींच ले जाएंगे। तू लक्ष्य पर कभी नहीं पहुँच सकेगा एक दिन आएगा जब कि यह रथ तुझ से छीन लिया जायगा। तब तू पछतायेगा कि अहो मुझे प्रभु ने ऐसा रथ दिया था, मैंने इस का सदुपयोग क्यों न किया? इस लिये उठ, आंखें खोल, लक्ष्य निश्चित कर और रथ में जुते हुए इन्द्रिय-रूपी घोड़ों को उसी दिशा में प्रेरित कर जो उन्नति की दिशा तू ने निर्धारित की है।

२

परन्तु उन्नति का पथ इतना आसान नहीं है वह बड़ा कण्टकाकीर्ण है, कदम-कदम पर नोकीले पत्थरों से व्याप्त है, स्थान स्थान पर उस में गढ़े खुदे हैं। समगति के साथ उस पथ पर रथ को चला सकना सरल नहीं है। इस लिये कुशलता के साथ रथ को चलाने की विद्या भी तुझे सीखनी होगी। यह विद्या तू किस से सीखेगा? देख, संसार में जो प्रिय जन हैं, माता, पिता, गुरुजन आदि जो ज्ञानी-अनुभवी व्यक्ति हैं उन से तू इस विद्या को सीखना। वे तुझे बतायेंगे कि किस प्रकार संसार के इस कण्टकाकीर्ण पथ पर भी निपुणता के साथ शरीर-रथ को चलाते हुए जीवन-संग्राम में आगे बढ़ा जा सकता है। यदि उन के निर्देशों का तू पालन करेगा तो तू अवश्य इस विकट पथ को निर्विघ्नता पूर्वक पार कर सकेगा, और उस पथ पर तेरा यह रथ समगति के साथ चलता जायेगा, पत्थरों की ठोकर खा कर खाई में नहीं गिरेगा।

मार्ग पर रथ चल रहा हो और बीच में गहरी नदी आ जाय तो उस रथ को नौका में भी चढ़ाना होता है। पर बीच धार में नौका पर रखा हुआ रथ कैसी विषम परिस्थिति में होता है। नाविक की ज़रा सी असावधानी से नाव डूब सकती है और रथ नदी के तेज़ प्रवाह में पड़ कर चट्टानों से टकरा कर चूर-चूर हो सकता है। अतः रथ को नदी पार कराने के लिये बड़े ही कुशल नाविक की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार तेरे मार्ग में भी अपने शरीर रथ को चलाते हुए बीच में अनेक आपत्तियों और कठिनाइयों की नदियां पड़ेंगी। उस समय तू उन दुस्तर नदियों को पार करने के लिये अपने शरीर-रथ को विप्रजन रूपी कुशल नाविकों की शरण रूपी नोका पर चढ़ा लेना। बिना विप्रजनों की नाव पर चढ़े तू रथ समेत सांसारिक विघ्न-बाधाओं की लहरों में बह कर डूब जाएगा। इसी लिये वेदमन्त्र में कहा है कि तू अपने रथ को विप्रजनों के निर्देशानुसार चला, तब तेरा रथ समगति के साथ उत्तरोत्तर आगे-आगे बढ़ता जाएगा और बड़ी से बड़ी आपत्ति की नदी बीच में आने पर भी नाव में रखे हुए रथ की तरह डांवाडोल न होता हुआ समता पूर्वक उस से पार हो जाएगा।

ऐ रथारोही! सुन, वेद की इस प्रेरणा को तू सुन।

प्रकाशकों और लेखकों से

गुरुकुल-पत्रिका में प्रति मास विविध विषयों की पुस्तकों की समालोचनाएं अधिकारी विद्वानों द्वारा करवाने का हम ने समुचित प्रबन्ध किया है। समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की दो-दो प्रतियां नीचे लिखे पते पर भेजने की कृपा करें।

सम्पादक—

गुरुकुल-पत्रिका, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गीता का एक विचारणीय श्लोक

भगीरथ शास्त्री

'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।'

हमारे धर्मग्रन्थों में गीता उपनिषदों की कोटि का एक अत्युच्च आध्यात्मिक ग्रन्थ माना गया है और सच पूछा जाय तो जैसे समस्त वाङ्मय एक 'अ' में समाविष्ट है— 'अकारो वै सर्वावाक्'—उसी प्रकार समस्त उपनिषदों का सार गीता है। मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये समान रूप से सब को स्फुर्ति और चेतना देने वाले जो सार्वभौम और सार्वकालक तत्त्व उस में निहित हैं, संसार की किसी भी भाषा के साहित्य में वे उपलब्ध नहीं हैं। ऐसे दिव्य ग्रन्थ के विषय में उस के मतामत को ले कर भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में रुचिवैचित्र्य के कारण खींचातानी होना स्वाभाविक ही है। अतएव गीता के प्रतिपाद्य विषय में अनेक मतभेद प्रचलित हैं। कोई उसे निरा भक्ति-प्रधान ग्रन्थ मानते हैं, कोई ज्ञान-प्रधान तो कोई कर्म प्रधान। ऊपर के जिस श्लोक के विषय में हम विचार करने चले हैं, उस के अर्थ के विषय में भी यही बात है।

थोड़े दिन हुए हम ने एक कथावाचक महाशय को बड़ी पण्डिताई के साथ अपने श्रोताओं को इस श्लोक का यही भावार्थ हृदयङ्गम कराते हुए देखा कि 'हे अर्जुन! तू वर्णाश्रमादि के किसी धर्म कर्म के चक्कर में न पड़ कर हर क्षण एक मात्र मेरा नाम लेता रह। निश्चय जान कि मैं तुझे सब पापों से उभार ले जाऊंगा।' अर्थात् यदि मनुष्य अपना सच्चा कल्याण अथवा मोक्ष चाहता है तो उसे सब धर्म कर्म छोड़ कर दिन और रात सोते और जागते, ईश्वर का ही नाम लेते रहना चाहिये। धर्म कर्म सब निरर्थक और सांसारिक लोगों के लिए है। परन्तु कथा के अन्त में जब हम ने कथावाचक महाशय को विष्णु पुराण का निम्न श्लोक सुनाया तो वे चुप रह गए—

'अपहाय निजं कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः।
ते हरेर्द्वेषिणः पापा धर्मार्थं जन्म यद्धरेः।'

अर्थात् वर्णाश्रम विहित अपने कर्त्तव्य कर्म को छोड़ कर जो भक्त केवल कृष्ण कृष्ण जपते रहते हैं, समझना चाहिये कि वे हरि के प्यारे नहीं, प्रत्युत शत्रु हैं और इसी लिए वे अधम हैं, पापी हैं। क्योंकि जब विष्णु भगवान् का भी जन्म (अवतार) धर्म-स्थापना लोक-कल्याण अथवा कर्त्तव्य कर्म के पालन के लिये ही हुआ करता है, तब साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है। वह कर्त्तव्य-पालन से कैसे छूट सकता है। भृगु ने भारद्वाज से कहा है कि 'कर्मभूमिरियं तात!' अर्थात् यह मर्त्य लोक तो है ही कर्म करने के लिए।

सभी शास्त्रकारों का यह अन्तिम और तात्त्विक सिद्धान्त है कि बिना ईश्वर दर्शन के मनुष्य का वास्तविक कल्याण नहीं। जन्म मरण के चक्कर से छूटने का यही एक मात्र उपाय है। इसी लिए वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि— 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'

परन्तु ईश्वर दर्शन के उपायों के विषय में हमारे शास्त्रों में बहुत गड़बड़झाला है।

'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेनेति ।' अर्थात् कोई ब्राह्मण उस के दर्शन का उपाय वेदाध्ययन बताते हैं, कोई यज्ञ, कोई दान, तप और अन्त में कोई कोई तो कहते हैं कि खाना पीना छोड़ दो तो ईश्वर दर्शन हो जावेगा। कहने का प्रयोजन यही है कि इस विषय में जिस ऋषि को जैसा अनुभव हुआ, उस ने वैसा लिख दिया। इस के लिए कोई एक निश्चित मार्ग नहीं है। इसी लिए महाभारत के शान्ति पर्व में गालव नारद संवाद में गालव मुनि ने शिकायत के रूप में नारद मुनि से कहा है कि यहां श्रेय का कोई एक निश्चित मार्ग नहीं है। भिन्न भिन्न शास्त्रकार भिन्न-भिन्न मार्ग बतलाते हैं। इसी लिये वह (श्रेय) मनुष्यों की दृष्टि से ओझल है।

'शास्त्रं यदि भवेदेकं श्रेयो व्यक्तं भवेत्तदा।
शास्त्रैश्च बहुभिर्लोके श्रेयो गुह्यं प्रवेशितम्।'

परन्तु जो गीता–शास्त्र सामने खड़े अर्जुन को इधर या उधर करने के लिए–एक निश्चित मार्ग दिखाने के लिए—प्रवृत्त हुआ था और जिस के परिणाम स्वरूप वह तत्काल अपने कर्तव्य में (युद्ध में) प्रवृत्त हो गया। क्या उस के विषय में द्विविधा कोई गुञ्जाइश हो सकती है? साम्प्रदायिक दुराग्रह से जिन की बुद्धि अभिभूत हो चुकी है, हम उन का उल्लेख नहीं करते, परन्तु जो विशुद्ध अन्तः करण और निष्पक्ष बुद्धि से विचार कर समस्त गीता का अनुशीलन करेंगे उन के लिये उस का फलितार्थ तिरोहित नहीं रह सकता। उन को इस विषय में ज़रा भी दुविधा नहीं रह सकती।

'तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामवैष्य स्वसंशयम्' ॥
'तस्मात् असक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरनकर्म परमाप्नोति पूरुषः' ॥

इस प्रकार स्पष्ट रूप से जो गीता-शास्त्र अर्जुन को लक्ष्य कर के समस्त मानव जाति को अपने अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार अपने अपने हिस्से का कर्तव्य कर्म अनासक्त बुद्धि से यावज्जीवन करते रहने का उपदेश करता है और इसी से अन्त में मुक्त होने का निश्चित और प्रबल आश्वासन भी दे रहा है उस के–'सर्व धर्मान परित्यज्य इस उपसंहारात्मक श्लोक धर्म कर्म छोड़ने रूप अर्थ में परिणत कर देना कहां तक न्याय संगत है। यह बुद्धिमानों के लिए विचारणीय प्रश्न है। और साथ ही यह भी चिन्तनीय है कि यदि सब कुछ छोड़ कर ही ईश्वर की आराधना की जा सकती है तो जिन गृहस्थियों के लिए कर्म त्याग सुतराम असंभव है, उन की फिर क्या गति होगी। क्या वे ईश्वर दर्शन के विषय में निराशा ले कर हाथ पर हाथ धरे ही बैठे रह जावेंगे।

इस लिए गीता के 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' इस उपसंहारात्मक श्लोक पर कुछ गहराई से विचार करना चाहिए। बिना पूर्वापर प्रसंग देखे, सरसरी नज़र से ऊपर से ही देख कर अर्थ कर देने से अनर्थ की संभावना हो सकती है।

'धारणाद् धर्ममित्याहु धर्मो धारयति प्रजाः।
यत्स्माद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चियः' ॥

महाभारत की इस धर्म विषयक परिभाषा के अनुसार अथवा 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' इस वैशेषिक शास्त्र के धर्म विषयक लक्षण के अनुरूप मनुष्यों की वैयक्तिक और सामाजिक, इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति का जो आधार है, वही धर्म है।

इस दृष्टि से सत्य, अहिंसा, अस्तेय आदि एवं कुल, जाति, देश आदि के मनुष्य के लिये जो

जो कर्तव्य कर्म आ पड़े, वे सब धर्म शब्द से पुकारे जाते हैं।

जब चाहते अनचाहते किसी भी दशा में मनुष्य का सर्वांश में कर्म रहित हो जाना अशक्य है, 'न हि कश्चित् क्षणमपि जातुः तिष्ठ य कर्मकृत्' तब क्यों न मनुष्य गीता के उपदेशानुसार फलाशात्याग कर अनासक्त बुद्धि से अपने कर्तव्य कर्मों को करता चला जाये। जब सारी गीता में ही जगह जगह मनुष्य को अवश्य कर्तव्य कर्म के लिए प्रोत्साहित किया गया है, तब अन्त में उपसंहार में उससे भिन्न बात कही ही कैसे जा सकती है। क्यों कि उपसंहार में हमेशा पहले सिद्ध हुई बात को ही दोहराया जाता है। इसलिए 'सर्वधर्मान् परित्यज्यता' का यही अर्थ सुसंगत बैठता है कि 'हे अर्जुन ! तू 'सिद्ध्यासिद्ध्योः समोभूत्वा' वाली समता अथवा अनासक्त बुद्धि से अपने जिम्मे के तत्तत् कार्यों को करता हुआ भी तत्तद् धर्म को त्याग दे अर्थात् 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्' के अनुसार अहं-कर्तृत्व और विभिन्न-धर्मत्व की बुद्धि को त्याग दे और इन सब को मेरे में यानी ईश्वर में अर्पण कर दें। 'इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्' 'शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्' शरीर और इन्द्रियों से सब कर्मों को करता हुआ भी अपनी बुद्धि और मन को मुझ में अर्पण कर दे। इस मदर्पण बुद्धि से किये गये किसी भी कार्य के बुरे और भले परिणाम से तू अलिप्त रहेगा और किसी भी प्रकार के पाप या पुण्य से तेरा कोई संबन्ध न रहेगा। इसलिए मोक्ष तेरे लिए निश्चित है, तू निश्चिन्त रह।

देशधर्म, जातिधर्म, अहिंसाधर्म, सत्यधर्म, आदि सब धर्मों को धर्मी ईश्वर में विलीन कर दो।

हमारे लेखक

स्वामी सत्यदेव— देश-विदेश का विस्तृत अनुभव प्राप्त किये हुए प्रसिद्ध ज्ञानयात्री और परिव्राजक। ख्यातिप्राप्त लेखक।

शिवमूर्तिमिश्र 'शिव'—सुरुचिपूर्ण आध्यात्मिक कवि। 'ग्राम-संसार' के सम्पादक।

धुरेन्द्र—उदीयमान नवयुवक लेखक।

स्वामी कृष्णानन्द-प्राच्य प्रतीच्य दर्शनों के मर्मज्ञ। जीवन दर्शन के गम्भीर विचारक सेवामुक्त मुख्याध्यापक।

भगीरथ शास्त्री—अनुभवी अध्यापक, संस्कृत साहित्य के अन्वेषी लेखक।

राजा महेन्द्र प्रताप—स्वाधीनता के अनन्य पुजारी वर्षों तक निर्वासन में विश्व के सांस्कृतिक अध्येता।

रघुवीर—आंग्ल-भारतीय महाकोश के निर्माता, 'भारतीय संविधान' की हिन्दी अनुवाद समिति के प्रमुख सदस्य।

पण्डित प्रसाद—गुरुकुल में निसर्गोपचार के अध्यापक।

श्रद्धानन्द विशेषांक

आगामी श्रद्धानन्द-बलिदान पर्व के अवसर पर पौष मास का गुरुकुल-पत्रिका का अङ्क 'श्रद्धानन्द अङ्क' के रूप में प्रकट होगा। उस में स्वामी जी महाराज के निकट परिचय और संपर्क में आये हुए विद्वान् लेखकों से नम्र निवेदन है कि वे प्रशंसित स्वामी जी के विषय में अपने महत्त्वपूर्ण संस्मरण तथा लेख भेजने की कृपा करें। विशेषांक के ग्राहक और एजेण्ट महानुभाव अभी से पत्र व्यवहार कर के अपनी अतिरिक्त प्रतियों के लिए आदेश पत्र भेज दें। विज्ञापन दाता भी अपने विज्ञापन के लिए अभी से स्थान सुरक्षित करा लें।

पावस की गङ्गा

अञ्चल

[१]

यह पावस की उमड़ी गङ्गा मैं लौट रहा तट से लख कर
ऊपर घनघोर घटाओं का पर्वत लेटा नभ में जैसे
नीचे सागर का वेग लिये बहता है जल अंधड़ जैसे
दृग दूर जहां तक जाते हैं मिलता लहरों का छोर नहीं
प्रत्येक लहर हो एक नदी जैसे—बरसाती बाढ़ नहीं
पुल पर गुज़रे इञ्जन का गहरा धुँआ निराशा सा छाया
नीचे अध-जली चिताओं से जैसे मरघट हो घबराया
अध-फुँकी लालसाओं से ज्यों अकुलाता निर्धन का अन्तर।

[२]

सम्पूर्ण व्योम को घेरे है जल का मटियारा धुँधलापन
मेरी आत्मा पर छाया है कैसा भयावना उजड़ा पन
पुरवा के मीठे झोकों से हिलता है तृण-तृण तरु-तरु पर
मुरदे की भीगी राख सदृश भारी है मेरा दिल पत्थर
जिसको सुलगा बढ़ गया कारवाँ हो बनजारों का आगे
पूरी गति से जो जल न सके अपनी प्रतिहिंसा से भागे
आवेगी काली रात—क्षणों में तम में डूबेगा अम्बर।

[३]

दिन बीता—रजनी की अन्धियारी और घनी होती जाती
जैसे उन के जाने पर उन की भाप हृदय पर छा जाती
मानस की भारी पीड़ा का मैं भार लिए घर लौट रहा
पर सोच रहा—जीवन के दुखते अंगों ने क्या क्या न सहा
इस जल की केवल एक लहर का वेग मुझे यदि मिल जाता
तो अपने चिन्तन औ 'चीत्कारों' से क्यों इतना उकताता
क्यों उन को खो कर हो जाता मैं इतना निष्क्रिय जड़ कातर।

लोक-मांगल्य की ओर

शङ्करदेव विद्यालङ्कार

उन्नीसवीं शती की अपराह्न वेला ढलनी आरम्भ हो चुकी थी। इङ्गलिस्तान का एक विदग्ध कलामीमांसक और प्रसादपूर्ण गद्यशैली का स्वामी एक दिन एकाएक एक नए ही पथ का पंथी बन गया। विश्व समस्त के कलाभक्त, चित्र-शिल्प और स्थापत्य के उपभोक्ता और सौन्दर्य के पिपासु उस के इस नव-प्रयाण को सुन कर निराश और विषण्ण हो गए !!

उस समय प्रायः सभी मनीषियों के मुख से यह वचन सुनाई दे रहे थे— 'आज इसकी प्रज्ञा को क्या हो गया ? अपनी प्रतिभा को यह व्यर्थ में ही विपथगामी क्यों बनाने लगा है ? कला के मनोरम क्षेत्र में विहार करती हुई अपनी कुशल लेखनी को यह समाज-सुधार और अर्थशास्त्र के शुष्क और नीरस प्रदेश में चला कर क्योंकर कुण्ठित करने चला है ? अपने उपार्जित यश-सौरभ को यह क्यों गँवा रहा है। स्वधर्म छोड़ कर यह प्रज्ञापुरुष परधर्म की आराधना में क्योंकर प्रवृत्त हो रहा है' ?

प्रतिभाशील पांथ ने स्वयं ही इन प्रश्नों का उत्तर दिया--

'कला मुझे अधिक से अधिक प्रिय है ! सामाजिक और औद्योगिक जीवन-सुधारणा द्वारा मैं अपनी उस कला की ही उपासना कर रहा हूं। कला ? कला आज किसकी है ! यह तो आज देश के मुट्ठी भर धनपतियों और भूस्वामियों की बाँदी बन चुकी है। थोड़े से अभद्र और गंवार मिलमालिक कला से दास्य करवा रहे हैं। कला यदि अपना नाम सार्थक किया चाहती है तो उसे इस बन्दीगृह से निकलना होगा और उसे जनसामान्य का बनना पड़ेगा। उसे लोकमांगल्य का पथ स्वीकार करना होगा। क्यों कि कला, धर्म और साहित्य का एक ही ध्येय है कि वे मानव को सभ्य, सुसंस्कृत और सुरुचिसंपन्न बनाएं !!

'इङ्गलिस्तान के एक छोरसे लेकर दूसरे छोर तक मैं कला की शोध में भटका हूं ! और मैं ने निहारा है देश की कलालक्ष्मी को जनता की आंख चुरा कर धनियों के विलास-भवनों में टंगा हुआ ? जनता को तो उसके अस्तित्व का भान भी नहीं है। कालकोठरी के समान काली कोयला-खानों में, कारखानों में और फैक्टरियों में भरे हुए मूक उदर, कुचले जाते हुए मानव-देह, और पशुत्व को प्राप्त हुए कोटि कोटि कृषक इस कला को जांचने की दृष्टि ही गँवा बैठे हैं ! सब से पहले मैं उन्हें लोचन प्रदान करूंगा !!'

इस प्रकार कह कर इस कलापारखी ने पुकार उठाई—'सब के लिए शुद्ध वायु, सब के लिए सूर्य का प्रकाश और सब के लिए सुखद निवासगृह, स्वच्छ गलियां, महिलाओं के लिए विशद कार्य-प्रदेश और, शिशुओं के लिए बलप्रद भोज्य—की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए !!'

अपने बुलन्द निर्घोष से इङ्गलिस्तान में नए मूल्यों द्वारा अर्थशास्त्र के पुरातन नियमों का प्रत्याख्यान करने वाले इस कलापूजक का सुनाम था—जॉन रस्किन ! जो भारत की इस युग की महान् क्रान्ति के विधायक महात्मा गांधी के जीवन-गुरुओं में अन्यतम माना गया है।

सीधे और सरल शब्दों में रस्किन ने इङ्गलिस्तान में जीवन और धन के मूल्यों पर नवीन प्रकाश फैंका—

व्यापारी पुरुष कदाचित् ही 'धनी' इस शब्द का सच्चा अर्थ जान पाते हैं। यदि वे इस का अर्थ जानते भी हों तो उन्हें इस तथ्य का भान नहीं होता कि यह एक सापेक्ष शब्द है जो कि 'गरीब' शब्द का विरोधी है ; ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार 'उत्तर' और 'दक्षिण' ये शब्द परस्पर विरोधी अर्थ के वाचक हैं।

सामान्य व्यापारी की भाषा में अपने को धनी बनाने की कला का वास्तविक अर्थ तो यही है कि 'अपने पड़ौसी को गरीब रखने की कला।'

इस कलाकोविद की तेजस्वी प्रतिभा को इस प्रकार के पार्थिव प्रश्नों पर गया हुआ निहार कर अनेकों दिल संतप्त हुए, इन मांगों के कारण जिन अर्थपतिया के स्थापित हितों पर आंच आती थी, उन्होंने इसका धिक्कार तक किया। रस्किन के सिर पर विरोधियों की वाक्धारा बरस पड़ी। कलापूजक की निन्दा भी हुई ! अनेक प्रकार से इसको नोंचा गया, खरोंचा गया !!

परन्तु रस्किन—लोकमंगल के पथ का पंथी था। वह अपने पथ, अपने निश्चय पर अडिग रहा। अपने व्यापारी पिता से उत्तराधिकार में इसको दो लाख पौण्ड (कोई छब्बीस लाख रुपये) प्राप्त हुए थे। अपने ग्रन्थों से भी इसको वर्ष में चार हजार पौंड की आय होती थी। इस समस्त आय की एक एक पाई इसने लोगों के शिक्षण, जीवन-सुधार और सेवा के कार्यों में लगा दी।

उन्नीसवीं शती उत्तरार्द्ध का इङ्गलैण्ड अर्थ-शास्त्र की इस नवीन विचारधारा को सहन करने को तैयार नहीं था। रस्किन की अनेक योजनाएं विफल रहीं। इस की प्रतिष्ठा को भी हानि पहुँची।

परन्तु स्मरण रहे आज के समाजवादी, अर्थशास्त्री और उद्योगवादी जिन नवीन योजनाओं द्वारा इस युग को आन्दोलित कर रहे हैं उन सबका अस्तित्व उस समय नहीं था। और उनकी भूमिका आज से कोई अस्सी वर्ष पूर्व रस्किन ने तैयार की थी। अपने विश्व-विदित ग्रन्थ—अन् टु दिस लास्ट में रस्किन ने अपनी इस समस्त विचारणा का परिष्कार किया है।

इस सौन्दर्योपासक का मन केवल पार्थिव सौन्दर्य से सन्तुष्ट नहीं होता था। वह तो जनता के कानों में आत्म-सौन्दर्य का सन्देश सुनाया करता था। सुन्दर चित्रों और शिल्पमूर्तियों से इङ्गलिस्तान को शोभित करने का अपार उत्साह रखनेवाला यह कला-कोविद अधिक ज़ोर तो इस बात पर दिया करता था कि इस वसुन्धरा को विमल और सुन्दर आत्माओं से रमणीय बनाओ ! इसी मनीषी ने इङ्गलैण्ड को यह सिखाया कि उच्चकला का सर्जन करने की पहली शर्त यह है कि जीवन को उन्नत, सुन्दर और मंगलमय बनाया जाय !

इस प्रकार जन-कल्याण के लिए जूझने वाले इस मानवतावादी कलाकार की जीवन-सन्ध्या सन् १९०० में समीप आ पहुँची। रस्किन को चाहने वाले लाखों व्यक्तियों ने आवाज उठाई कि इस जन-सेवक के अवशेष इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध समाधि-स्थान वेस्टमिनिस्टर में गाड़े जाने चाहियें। परन्तु ऐसा नहीं हो सका। इसके शरीर की शेष निद्रा के लिए सुन्दर सरोवर से मण्डित एक पर्वत घाटी ही थी। कला-पूजक प्रकृति की गोद में, परम कलाकार की बनाई हुई कला-भूमि में अनन्त निद्रा के लिए पौढ़ गया !

संपादक के नाम पत्र

श्रीमान् संपादक जी,

हम ने मेडिको आयुर्वेदिक या मेडिको युनानी कालेजों में आयुर्वेद या यूनानी के साथ वर्तमान वैज्ञानिक चिकित्सा व शल्यतंत्र से संबद्ध सभी विषयों का अभ्यास किया है। परन्तु हमारा अभी तक ऐसा कोई संगठन नहीं था जो कि हमारे सब प्रकार के अधिकारों की प्राप्ति व सुरक्षा के लिए यत्नवान रहे। इस भारी कमी व कमज़ोरी को दूर करने के लिए देहली में 'अखिल भारतीय नेशनल मेडिकल ग्रेजुएट्स एसोसिएशन' (रजिस्टर्ड) स्थापित की गई है। भारत भर की प्रान्तीय या रियासती सरकारों द्वारा स्वीकृत मेडिकल-आयुर्वेदिक या मेडिको-युनानी संस्थाओं के स्नातक इस के सदस्य हैं और हो सकते हैं। यह एसोसिएशन उन के रजिस्ट्रेशन व उससे प्राप्त होने वाले अधिकारों के लिए, व उनकी अन्तः प्रान्तीय या अन्य कठिनाइयों को दूर करवाने के लिए भरसक प्रयत्न कर रही है।

हमारी एक पृथक् श्रेणी है जो कि विज्ञान को देश-काल बाधित नहीं मानती, जिसकी अपनी शिक्षा व चिकित्सा पद्धति है जो कि वैज्ञानिक सत्यों व आविष्कारों को अपनाने में कोई संकोच नहीं करती, और न पौर्वात्य पाश्चात्य, प्राचीन या अर्वाचीन में कोई भेद-भाव ही रखती है। सब से बड़ा दुर्भाग्य यह हैं कि प्रैक्टिस की दिक्कतों से अपरिचित व अपने निश्चित वेतनों से सन्तुष्ट हमारी शिक्षा संस्थाओं के अधिकारी भी हमारे करुण-क्रन्दन से बिलकुल प्रभावित या द्रविभूत नहीं होते। कष्टों के दूर करवाने की तो बात ही क्या? अतः अपने पृथक् संगठन के बिना हमारी गति हीन स्थिति में सुधार संभव नहीं। पूर्णप्रतिनिधित्व वाले एक शक्तिशाली अखिल भारतीय संगठन की परमावश्यकता समझ कर हमें चाहिए कि हम अपने आप को व ऐसी संस्थाओं के अन्य समीपवर्ती चिकित्सास्नातक भाईयों को भी मिलकर या पत्र व्यवहार द्वारा सजग, सक्रिय व सुसंगठित करने में शीघ्रता करें।

जिन कुछ प्रान्तों में रजिस्ट्रेशन का प्रबन्ध हुआ है, उन में भी हमें सब प्रकार की औषधियां प्राप्त व प्रयुक्त करने, शल्य चिकित्सा करने स्नातकोत्तर तथा विदेशों में उच्चत्तर शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाएं सुलभ नहीं है। कभी कभी तो इस अर्धरजिस्ट्रेशन की आड़ में दैनिक उपयोग की वस्तुओं से भी वञ्चित रहना पड़ता है। सुविधाओं की अपेक्षा 'ड्रग एक्ट्स' से इस नवीन शासन में और भी कठिनाइयां पैदा हो गई हैं।

प्रान्तीय व केन्द्रीय सरकारों के सामने हम अपने कष्ट रख चुके हैं। चिकित्सा सम्बन्धी समस्याओं के अन्तिम निर्णय के लिए भारत सरकार द्वारा नियुक्त चोपड़ा-कमेटी के सामने भी सारा मामला विस्तार से रखा जा चुका है। अक्टूबर १९४८ में अधिकार प्राप्ति के संगठित आन्दोलन के लिए एक अखिल भारतीय नेशनल मेडिकल ग्रेजुएट्स कांफ्रेंस देहली में बुलाने का भी विचार है।

फैज़ बाज़ार, देहली।

भद्रसेन आयुर्वेदालङ्कार
एसोसिएशन मन्त्री

पुस्तक-परिचय

समालोचना के लिये पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं । एक प्रति आने पर केवल प्राप्ति-स्वीकार ही देना सम्भव होगा ।

अपने देश की कथा (भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास)–लेखक–सत्यकेतु विद्यालङ्कार, डी लिट्ट् (पेरिस)। प्रकाशक–प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार । पृष्ठ सं० १३२ । मूल्य १।=) ।

डेढ़ सदी की सतत पराधीनता में हमारे ब्रिटिश महाप्रभुओं ने जहां हमें राजनैतिक व आर्थिक दृष्टि से पंगु बनाने का प्रयत्न किया वहां साथ ही हमारे प्राचीन साहित्य व संस्कृति के प्रति हमारी आस्था को क्षीण करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी । इसी लिये शिक्षणालयों में हमें जो इतिहास की पुस्तकें पढ़ाई गईं, उनमें न केवल हमारे प्राचीन गौरव को ही विकृत किया गया अपितु उन ऐतिहासिक तथ्यों को भी अशुद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया जिनके बारे में इतिहास शास्त्र के सभी विद्वान एक मत थे । इसी के परिणाम स्वरूप हमारे नवयुवक अपने को हीन और तुच्छ समझने लगे और स्वभावतः अपनी संस्कृति से विमुख होकर पाश्चात्य संस्कृति की ओर आकृष्ट हुए ।

आज स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भी हमारे शिक्षणालयों की पाठ्य पुस्तकों में उचित परिवर्तन नहीं हुआ । प्रस्तुत पुस्तक इसी न्यूनता को पूर्ण करने का एक सफल प्रयास है । इसमें भारतीय दृष्टि-बिन्दु से भारत के इतिहास को प्रस्तुत किया गया है । अपने प्राचीन गौरव व आधुनिक संघर्ष के सम्यक् ज्ञान के लिये प्रत्येक बालक को यह पुस्तक अवश्य पढ़ाई जानी चाहिये ।

प्रार्थनावली—प्रकाशक–प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार । पृष्ठ संख्या ३४ । मूल्य चार आने ।

प्रस्तुत पुस्तिका वन्दना के योग्य वेदमन्त्रों और गीतिकाओं का उत्तम संग्रह है । प्रारम्भ में आत्मा को अनुप्राणित करने वाले कुछ वेद मन्त्र दिये गये हैं । उनके सामने ही सरल हिन्दी में उनका भावानुवाद है । तत्पश्चात् श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, वागीश्वर विद्यालङ्कार, मैथिलीशरण गुप्त आदि मान्य विद्वानों द्वारा रचित भक्तिरस से परिपूर्ण ईश्वरोपासना सम्बन्धी गीत हैं । पुस्तिका जीवन में आशा व उत्साह का संचार करने वाली और उसे उन्नति पथ पर अग्रसर करने वाली है । प्रत्येक व्यक्ति को अपने दैनिक कृत्य आरम्भ करने से पूर्व इसकी किसी एक प्रार्थना का पाठ अवश्य कर लेना चाहिए । यह प्रार्थना सामूहिक-रूप में भी और व्यक्ति-गत रूप में भी की जा सकती है ।

—यश

महान् जागरण—लेखक प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए० । प्रकाशक— अखण्ड-ज्योति कार्यालय, मथुरा । मूल्य ।=) ।

इस पुस्तक में मिथ्या विचारों की अज्ञान-जन्य पुनरावृत्ति से निश्चित दुष्परिणाम कैसे होता है और रचनात्मक विचारों की ज्ञानपूर्वक पुनरावृत्ति से उन्नतिपथ कैसे निष्कंटक होने लगता है, यह प्रभावशाली भाषा में समझाया गया है । मनुष्य के प्रधान विचारों की प्रतिकृति प्रथम उसके दैनिक कार्यक्रम पर जाती है और कालान्तर में वे ही विचार उसके भाग्य का निर्माण करते हैं, इस सत्य का प्रतिपादन देवतावादियों के दृष्टिकोण में अवश्य परिवर्तन करेगा । एकान्त स्थान में रचनात्मक संकेत द्वारा अभ्युदय की प्राप्ति, रात्रि के निद्राकाल का सदुपयोग-इत्यादि वर्णित आत्मोन्नति के उपाय लेखक के अनुभव सिद्ध हैं । पुस्तक अभ्युदयेच्छुकों और विशेषतः कालेज के विद्यार्थियों के लिये अधिक उपयोगी है ।

डा० ग० रा० देशपांडे ।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु-रङ्ग

इस समस्त भाद्रपद मास में मेघ राजा की बड़ी कृपा रही है। प्रायः प्रतिदिन ही वर्षण होता रहा है। जिस के कारण कुलभूमि के चहुँ ओर के वन-उपवन और खेतियां एक दम लहलहा उठी हैं। अति वर्षण से खेतियों को हानि भी हुई है। वानस्पतिक-समृद्धि के कारण अब मच्छरों का उपद्रव भी बढ़ रहा है सुदूर वन प्रांतरों में काश के कुसुम खिलने प्रारम्भ हो गए हैं अतः मानना चाहिए कि वर्षा-ऋतु अपना वृद्धत्व प्रकट कर रही है। कुल उपवन पर शरत्काल की सवारी अवतीर्ण हो रही है। प्रभात में अपेक्षा कृत अधिक शीत अनुभव हो रहा है—मैदानों में ओस कण चमकने प्रारम्भ हो गए हैं और वर्षाऋतु अपनी रंगस्थली से विदा हो रही है अतः कुल उपवन में कोकिल-कूजन भी अति विरल हो रहा है। भाद्र मास में भगवती भागीरथी भी अतिवर्षा के कारण खूब उफनती रही हैं। परन्तु इस पञ्चपुरी के प्रदेश में जल प्लावन का कोई भय नहीं मालूम हुआ है।

स्वाधीनता का पुण्यपर्व

१५ अगस्त का स्वातन्त्र्य पर्व कुल में अपूर्व उत्साह और प्रेम के साथ मनाया गया। मंगल-प्रभात में झंडा-चौक में समस्त कुलवासियों ने समवेत होकर मातृ-वंदना की और राष्ट्र का पताका-गीत गाते हुए नवीन ध्वजा का आरोहण किया। श्रीयुत् आचार्य जी ने इस प्रसंग के अनुकूल एक छोटा सा प्रवचन किया। इस के अनन्तर वेदभवन में कुलवासियों की एक सार्वजनिक सभा की गई। उस में विभिन्न वक्ताओं ने स्वाधीनता के एक वर्ष की सफलताओं और कमियों का सिंहावलोकन किया। तथा नवीन आशाओं और आकांक्षाओं के लिए उद्बोधन प्राप्त किया। अपराह्न में सूत-कताई की प्रतियोगिता की गई। सांझ को क्रीड़ा सान्मुख्य का आयोजन किया गया और रात्रि के समय महाविद्यालय आश्रम में प्रशंसित लोकसेवक श्री दीनदयालु जी शास्त्री एम. एल. ए. के द्वारा नवीन ध्वजा का आरोहण किया गया। आप ने अपने प्रवचन में झंडे के रंगों का सांकेतिक महत्व बताते हुए एकता, समता और त्याग की भावना पर बल दिया। इस के बाद श्री शंकरदेव जी विद्यालंकार के सभापतित्व में साहित्यगोष्ठी का मनोरञ्जक कार्य सम्पन्न हुआ।

अध्ययन और परीक्षाएं

चौमासे भर विद्यालय और महाविद्यालय विभाग में अध्ययन और अध्यापन का कार्य सुचारु रूप से चलता रहा है। आगामी २० अक्टूबर से सभी विभागों की छमाही परीक्षाएं प्रारम्भ होंगी। छात्रगण अपने अध्ययन में भली प्रकार दत्तचित्त हैं।

विशेष व्याख्यान

इस मास दक्षिण हैदराबाद के दो सज्जन श्री० निवर्ति रेडी वकील और वैद्य डी० आर० दास महाशय गुरुकुल में पधारे! आप दोनों वहां पर कांग्रेस और आर्यसमाज के उत्साही कार्यकर्ता हैं। दोनों महानुभाव राज्य की जेल के अतिथि बने हुए हैं। आप दोनों महानुभावों ने महाविद्यालयआश्रम में दिए गए अपने व्याख्यानों में हैदराबाद के आंदोलन की गतिविधि का देखा भाला और अनुभव किया हुआ वर्णन सुनाया। आप ने बताया कि निजाम हैदराबाद में अभी तक सोलहवीं शती की सामंतशाही का नग्न नृत्य होता रहता है। कानून और आर्डर का

उपहास और स्वेच्छाचारिता देखनी हो तो निज़ाम का शासन निहारिए।

श्री परिव्राजक जी का प्रेमोपहार

सुप्रसिद्ध विचारक और हिन्दी के सुलेखक श्री-स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक ने अपनी डेढ़-सौ उत्तमोत्तम पुस्तकें गुरुकुल के ग्रन्थालय को प्रेमपूर्वक उपहार में प्रदान की हैं। सभी पुस्तकें प्रायः अंग्रेजी भाषा में हैं, जिनमें दर्शन शास्त्र, जीवनशास्त्र, शिक्षातत्व और चरित्र निर्माण की अति उपयोगी पुस्तकों का समावेश है। इस के सिवाय फ्रैञ्च और जर्मन भाषा की पाठमालाएँ तथा शब्दकोष भी हैं। इस उपयोगी ग्रन्थ संचय में एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका तथा वैबूस्टर के सुविख्यात इङ्गलिश-कोष के नवीन तम संस्करण तो अतिशय उपयोगी और कीमती हैं। यह समस्त ग्रन्थ-संग्रह इस समय गुरुकुल ग्रन्थशाला का एक विशेष आकर्षण बना हुआ है!

पूज्य परिव्राजक जी के इस सात्विक दान और गुरुकुल के प्रति उन के प्रेम के लिए समस्त कुलवासी अतिशय अनुगृहीत और कृतज्ञ हैं।

प्रवेश-संस्कार

महाविद्यालय की एकादश श्रेणी के विभिन्न विभागों में इस वर्ष २८ नए छात्र प्रविष्ट हुए हैं। इन छात्रों का विधिवत् प्रवेश संस्कार इस भाद्रपद मास में श्रीयुत् आचार्य जी के हाथों से सम्पन्न हुआ। प्रवेशार्थी छात्रों ने यज्ञाग्नि के समक्ष अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य-सूक्त के मन्त्रों का पाठ करते हूए समित्पाणि होकर आश्रम प्रवेश के पांच व्रतों को स्वीकार किया। श्री आचार्य जी ने प्रवेशार्थियों को नवीन यज्ञोपवीत प्रदान करते हुए पांचों व्रतों की व्याख्या समझाई और कहा कि अनुशासन प्रियता में ही शिष्य जीवन की महिमा निहित है। 'शिष्य' और 'अनुशासन' दोनों शब्द एक ही धातु से निष्पन्न हुए हैं, वे एक ही भाव के वाहक हैं। अङ्गरेजी में 'डिसाईपल' और 'डिसिप्लिन' शब्दों का भी ठीक यही महत्व है। अनुशासन द्वारा तुम आदर्श शिष्य भाव को प्राप्त कर सकते हो और अपने जीवन को तेजस्वी बना सकते हो !!

स्वर्गीय नवस्नातक ब्रह्मदेव जी

अत्यन्त शोक का विषय है कि कुलमाता के प्यारे और सुयोग्य नवस्नातक बन्धु श्री ब्रह्मदेव जी का पिछले दिनों एकाएक उभरती हुई तरुणाई में क्षयरोग से अवसान हो गया है। भाई ब्रह्मदेव जी बिहार-प्रान्त के आरा नगर के निवासी थे। गुरुकुल में अपने छात्र-जीवन में वे बड़े शीलवान्, स्फूर्तिमान्, व्यवस्था-कुशल और विनयी छात्र थे। वे अपने समय में कुल के क्रीड़ा-मन्त्री रहे थे। और अपने समय में श्रद्धानन्द हॉकी टूर्नामेंट के आयोजन में उन्होंने बड़ी कार्य-कुशलता और सेवाभाव का परिचय दिया था। वे अपने गुरुजनों के भी बड़े प्रीतिपात्र थे। समस्त कुल-बान्धव उनके इस असामयिक अवसान पर खेद प्रकट करते हुए, उनके आत्मीयजनों व मित्रा के साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति और समवेदना प्रकट करते हुए परम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वे दिवंगत कुल-बन्धु की आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।

गुरुकुल मुद्रणालय।

गुरुकुल-पत्रिका

कार्तिक २००५

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

स्वाध्याय के लिये चुनी हुई पुस्तकें

अपने देश की कथा—इतिहास के मंगलाप्रसाद पुरस्कार विजेता प्रो० सत्यकेतु विद्यालङ्कार, डी० लिट् (पेरिस) ने बच्चों को पढ़ाने के लिये भारत का यह रोचक तथा प्रामाणिक इतिहास लिखा है। बनारस संस्कृत कॉलेज की प्रथमा परीक्षा तथा अनेक स्कूलों में यह इतिहास की पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ाया जा रहा है।

मूल्य १।=)

विज्ञान प्रवेशिका—मिडिल स्कूलों के लिए हिन्दी में लिखी गई विज्ञान शिक्षा की अतिसरल पाठ्य-पुस्तक। दोनों भागों का मूल्य २॥)

प्रार्थनावली—आशा और उत्साह का सञ्चार करने वाले, भक्ति रस से परिपूर्ण वेद के चुने हुए मन्त्रों (हिन्दी में अर्थ सहित) और सस्वर गाये जाने वाले सुन्दर भजनों तथा गीतियों का अपूर्व संग्रह। सामूहिक प्रार्थनाओं के लिए बहुत उपयोगी है।

मूल्य ।

बृहत्तर भारत—देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरों में भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म और कलाकौशल की विजय-पताका फहराने वाले सांस्कृतिक दूतों और उपनिवेश संस्थापकों की गौरव गाथा।

मूल्य ६

आहार—हिन्दी में आहार-विज्ञान पर लिखी हुई अपूर्व पुस्तक। कौन सा आहार करें, किस आहार का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है—यह सब जानने के लिए आहार पढ़िये।

पता—प्रकाशन मन्दिर,
गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।

गुरुकुल-पत्रिका

कार्तिक २००५

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

वर्ष १ **गुरुकुल-पत्रिका** अङ्क ३

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति। श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक और साहित्यिक रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक
एक प्रति छः आने

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

आर्यावर्त की गुरु-शिष्य भावना

श्री कन्हैयालाल मुंशी

१. गुरु—संस्कृति का सन्देश-वाहक

आजकल के अध्यापकों की मनोवृत्ति छात्रों की उन्नति इत्यादि के विषय में न के तुल्य है। वे नोट्स और व्याख्यान देकर अपने घर चले जाते हैं तथा अपना वेतन ले लेते हैं। छात्र उनकी आजीविका के लिये एक आवश्यक साधन हैं।

इसी प्रकार बहुधा छात्र कहते हैं, कि आधुनिकता की परम्परानुसार मुझे अपने अध्यापक का आदर करने से कोई सरोकार नहीं। न मुझे किसी की सेवा-शुश्रूषा करने की आवश्यकता है। मैं विश्वविद्यालय के नियमानुकूल प्रतिदिन श्रेणी में पढ़ने जाता हूँ। मुझे तो केवल परीक्षा में उत्तीर्ण होना है, और यह मैं किसी की सहायता से कर सकता हूं। इसके अतिरिक्त मुझे और किसी से क्या मतलब।

परन्तु रचनात्मक-शिक्षण के लिये गुरु और शिष्य में इसके सर्वथा प्रतिकूल सम्बन्धों की की आवश्यकता है। अध्यापक केवल एक व्याख्याता नहीं है, न वह कार्य-निरीक्षक है, और नाहीं वह शिक्षक (instructor) है। वह तो संस्कृति का सन्देश-वाहक है, और उस का कर्त्तव्य है, कि वह शिष्य को उच्चतम बौद्धिक, नैतिक और सांस्कृतिक आदर्शों से अनुप्राणित करे। उसका कर्त्तव्य है, कि वह छात्र को 'आत्म-परिपूर्णता' के मार्ग पर अग्रसर करे। अध्यापक को चाहिये कि वह अपने छात्र के जीवन में साहस और शक्ति को प्रबुद्ध करता रहे।

विदेशी-शासकों द्वारा प्रचारित शिक्षण-पद्धति से यह ध्येय सर्वथा विनष्ट हो चुका है। अध्यापक ब्रिटिश-शासकों के साधन हो गये। उनका मुख्य कार्य शिक्षण संस्थाओं को मैकाले के उद्देश्यानुसार भारतीय नवयुवकों को उपयोगी क्लर्क या मनहूस अध्यापकों का निर्माण करने के लिये—चलाना था। इस योजना में अध्यापक कुछ अंशों में एक भाड़े का मुदर्रिस और कुछ अंशों में एक सुयोग्य पुलिस कर्मचारी था।

भारत को जीवित जागृत बनाये रखने के लिये इस पद्धति में परिवर्तन करना होगा। हमें अपनी चिर-परिचित रचनात्मक शिक्षण-पद्धति को अपनाना होगा।

मैं अध्यापकों के सन्मुख गुरु के आदर्श रूप 'द्रोणाचार्य' को प्रस्तुत कर सकता हूँ, जो कि सच्चे गुरु का एक सनातन-आदर्श कहा जा सकता है। आधुनिक भारत में उन्हीं पुरानी परम्पराओं का समावेश नहीं कराया जा सकता, परन्तु उस महती शिक्षण-पद्धति के आधारभूत

तत्वों को अवश्य पुनरुज्जीवित किया जा सकता है। आज के अध्यापक को गुरु बनने के लिये सर्वप्रथम अपने शिष्यों के प्रति वैयक्तिक अभिरुचि उत्पन्न करनी चाहिये। आज के महाविद्यालयों की श्रेणियों में बहुत अधिक विद्यार्थी होते हैं और साथ ही साथ पाठ्य-क्रम भी बहुत अधिक निर्धारित किया जाता है। अतः एक अध्यापक के लिये प्रत्येक विद्यार्थी के प्रति वैयक्तिक अभिरुचि प्रदर्शित करना बहुत कठिन है। परन्तु यदि हम शिक्षण-पद्धति में 'निर्माण-मूलक' भावना को भरना चाहें, तो हमें उदीयमान और दायित्वशील छात्रों का ध्यान रखते हुए उन प्राचीन तत्वों का समावेश करना ही होगा।

एक प्रिन्सिपल महाशय ऐसे थे, जो अपने प्रत्येक विद्यार्थी का एक कार्ड रखते थे. जिस में उन की वैयक्तिक विशेषताएं अङ्कित रहती थीं। जब कभी कोई विद्यार्थी उनके समीप जाता था, तो वे महाशय अपने उस कार्ड की सहायता से इस प्रकार बातचीत करते थे, मानों वे अपने सम्पूर्ण जीवन में केवल उसी विद्यार्थी के विषय में विचार करते रहे हों बड़ोदा कालेज में हमारे गणित के उपाध्याय 'तापीदास काका' अधिकांश विद्यार्थियों के विषय में अच्छी जानकारी रखते थे। वे विद्यार्थियों के प्रति अपने पुत्र जैसा व्यवहार करते थे और कठिनाइयों के समय उनकी सहायता करते थे। इसी प्रकार मैं एक 'जेसुएट पादरी' को जानता हूं, जो कि अपने विद्यार्थियों के साथ मित्रवत् व्यवहार करते थे।

गुरु की वैयक्तिक प्रेरणा और उत्साहवर्धना के अभाव में शिष्य की चरित्र-निर्माण की शक्ति अवरुद्ध रहती है। प्रत्येक नवीन विद्यार्थी की प्राथमिक और आधारभूत आवश्यकता है, कि वह श्रद्धा और समादर के साथ स्वयं को किसी न किसी व्यक्ति से सम्बद्ध करले।

प्रत्येक नवयुवक 'वीर भावनाओं' का उपासक होता है। अध्यापक ही स्वभावतः उसका सर्वप्रथम 'नायक' होता है, और उसी की प्रशंसा करने के लिये वह प्रेरित होता है। यदि अध्यापक उसके प्रति अभिरुचि प्रदर्शित करता है, तो उसकी 'चरित्र निर्माण' की इच्छा क्रियाशील हो जायगी। सच्चा अध्यापक उपदेश द्वारा नहीं अपितु वैयक्तिक उदाहरणों द्वारा, मैत्रीपूर्ण वार्तालापों से शिष्य के मन में विश्वास का आधान करता हुआ उसकी मानसिक व अन्य प्रकार की कठिनाइयों को हटाने का उपाय सुझाता हुआ—उसमें वीर-भावनाओं को प्रबुद्ध करता है।

एक विद्यार्थी सामान्यतया अपने चरित्र निर्माण-काल में उदात्त भावनाओं और उच्चादर्शों को अपना लक्ष्य बनाता है। परन्तु वह अपने विवेक से जान सकता है. कि उसके अध्यापक में एक वैतनिक शिक्षक की आत्मा है या एक सच्चे गुरु की। यदि विद्यार्थी अनुभव करे, कि अमुक अध्यापक अपने विषय के अध्ययन में तल्लीन है, अपनी संस्था के प्रति समादर रखता है और अच्छे विद्यार्थियों का निर्माण करना चाहता है तो वह निश्चय ही 'गुरु' की कोटि का अधिकारी है।

'गुरु' की सची भावना को विकसित करने के लिये एक अध्यापक के विचार, वार्त्तालाप और कार्य शिष्य के लिये मार्गदर्शक दार्शनिक और मित्र की भांति होने चाहियें।

आज स्थिति यह है कि पश्चिमीय प्रभाव के कारण अध्यापक केवल वेतन-भोगी ही बन गए हैं। कुछ व्यापारिक कार्य करने लगे हैं

और कुछ अपनी सम्पूर्ण शक्ति पद-लालसा के लिये लगाये रखते हैं। आज प्रजातन्त्र के नाम पर होने वाली प्रतिस्पर्धा के प्रवाह से हमारे विश्वविद्यालय और शिक्षण-संस्थाएं भी अछूती नहीं रही हैं, जिसके कारण अपने कर्त्तव्य अपने विषय और विद्यार्थियों के प्रति पूर्ण सजग अध्यापक के लिये एक बाधा उपस्थित होने लगी है। परन्तु हमें इस मनोवृत्ति को रोक कर अध्यापक को पुनः उसी आदर्श का सन्देश-वाहक बनाना होगा। यदि वर्तमान अध्यापकों में गुरु की सच्ची मनोवृत्ति न आ सकी तो आगामी सन्तति के लिये यह परिस्थिति दुर्भाग्य पूर्ण होगी।

२. शिष्य—चरित्र-निर्माण का आत्म-शिल्पी

'गुरु' की भांति शिष्य के भी कुछ कर्त्तव्य हैं। आधुनिक विद्यार्थी 'गर्व' में रहता है, इसी कारण वह विनम्र और गुणग्राहक नहीं हो पाता। वह 'आत्म-विकास' की पूर्वावस्था में ही हैं।

इस गर्व का प्रमुख कारण पश्चिमीय प्रभाव है। अनेक नवयुवकों पर यह एक स्थायी जादू कर देता है, जिसके कारण जिम्मेवारी की सम्पूर्ण चेतना विलुप्त हो जाती है। बन ठन कर रहने की मनोवृत्ति से उसके अन्दर एक प्रकार का मिथ्या अभिमान बस जाता है।

दल-गत प्रतियोगिता के कारण बहुत से चतुर मनुष्यों को अपने दल का प्रचार कार्य कराने की आवश्यकता होती है। स्कूल और कालिजों में अपरिपक्व बुद्धिवाले विद्यार्थियों को इस कार्य के लिये प्रोत्साहित करना सस्ता और सरल होता है। नारे लगाना, संगठन को शक्ति का उद्गम समझ लेना, बिना समझे ही किसी भी कार्य को उत्साह से करना, सहज ही वीरत्व दिखाना, सेवा और देशभक्ति के कार्य—सत्रह-अठारह वर्ष की आयु वाले विद्यार्थियों के कार्य रह गये हैं।

नवयुवकों को इस प्रकार सरलता से बहकाया जाता है, कि वे इतिहास का निर्माण कर रहे हैं। परन्तु वे सब भोले भाले नवयुवक योजनानुसार बनाये गये दल-प्रचार के शिकार बनाये जाते हैं। अज्ञान के कारण विद्यार्थी किसी स्थानीय-दल के मुखिया का वफ़ादार बन जाता है, जब कि उसे अपने अध्यापक के प्रति ही वफ़ादार होना चाहिये। प्रत्येक विद्यार्थी का सुस्पष्ट कर्त्तव्य है, कि सर्वप्रथम उसे चरित्र-निर्माण की ओर पूर्णतया ध्यान देना चाहिये। शिक्षा की समाप्ति तक एक नागरिक के कर्त्तव्यों की उपेक्षा कुछ हानिकर नहीं है।

शिक्षा एक रचनात्मक-कला है, इस बात से विद्यार्थी को पूर्णतया परिचित होना चाहिये। शिक्षा के द्वारा उसकी सम्पूर्ण प्रतिभा का विकास होना चाहिये और विद्यार्थी जिस रीति से चरित्र निर्माण की कला में पूर्णत्व प्राप्त कर सके उस मार्ग पर उसे प्रवृत्त करना चाहिये। अतः विद्यार्थी के लिये आवश्यक है कि वह 'शिष्यत्व' के तीन आधारभूत तत्वों–समादर, ज्ञानेच्छा और सेवाभाव–को अपने जीवन में हृदयंगम करे। प्रत्येक सुसंस्कृत मनुष्य में किसी न किसी अध्यापक के प्रति समादर-युक्त स्मृति होती है. जिसने कि उसको जीवन के प्रारम्भ में प्रशंसा और आदर का पात्र बना आत्म-विकास के मार्ग पर प्रवृत्त किया होता है। यह स्मृति जीवन की महान् धरोहर है और वही विद्यार्थी इसको पा सकता है, जो अपने अध्यापक के आदेशों का पालन करने का इच्छुक हो।

'नियन्त्रण' के लिये प्रथम तत्व 'गुरु' की पूजा है।

बिना किसी प्रश्न के 'गुरु' की आज्ञा माननी चाहिये, क्यों कि इस में 'गुरु' का हित सम्पादन नहीं हो रहा होता, अपितु स्वय शिष्य का ही।

कोई भी विद्यार्थी अपनी प्रतिभा को तब-तक विकसित नहीं कर सकता जब तक अध्यापक उसमें अपने भावों का 'आधान' नहीं कर देता। 'रचनात्मक-शिक्षण' में 'आधान' का भाव भली भांति जान लेना चाहिए। कोई भी व्यक्ति और विशेषकर नवयुवक एकान्त में रहता हुआ उन्नति नहीं कर सकता।

व्यक्तित्व का विकास किसी अन्य व्यक्तित्व के प्रभाव के बिना नहीं होता, चाहे वह उसका पिता, अध्यापक, मित्र या प्रेमी ही हो।

कुछ व्यक्ति हमारा बाह्य-निर्माण करते हैं। उनकी उपस्थिति में हम अधिक अच्छे और बड़े होते जाते हैं। उनके प्रत्येक शब्द से हम अभूतपूर्व शक्ति को प्राप्त करते हैं। यदि ऐसा कोई व्यक्ति दिन रात हमारे साथ निवास करता रहे, हमारी कल्पना में भी साथ-साथ बसा रहे तो उसकी प्रेरणा से हम कभी च्युत नहीं होंगे। तब हम अधिक और अधिक शक्ति सम्पन्न बनते जायेंगे। महान् व्यक्तियों के गुणों का 'आधान' एक उदात्त शक्ति को उत्पन्न कर देता है तथा इसके द्वारा हम लगातार अपने गुणों का विकास करते जाते हैं। जब हम किसी महान् व्यक्ति के सान्निध्य में होते हैं तो हम उस को मनुष्यों से केवल वार्तालाप करते हुए ही नहीं सुनते, परन्तु उस के आनुषंगिक विचारों से उसके व्यक्तित्व का रहस्य भी अवगत कर रहे होते हैं। हम उस से आविर्भूत हो जाते है। उसके अलग हो जाने पर भी उसका व्यक्तित्व हमारे साथ रहता है। उसके व्यक्तित्व के द्वारा हमारे वार्त्तालाप और कार्यकलाप की अनजाने ही परीक्षा हो जाती है। हम उसके कथन से इतना प्रभावित नही होते, जितना कि उसके व्यक्तित्व से।

प्रत्येक स्वाध्याय-शील व्यक्ति की अन्तः चेतना में उसका कोई अतिप्रिय लेखक या कलाकार बैठा हुआ होता है।

अपनी तरुणाई के दिनों में 'ड्यूमा' और 'ह्यूगो' मेरे प्रिय लेखक थे। मैं उनकी कृतियां को पुनः पुनः पढ़ता था। मेरा उन के पात्रां के साथ अपने मित्रों या सम्बन्धियों से भी अधिक घनिष्ठ सम्पर्क था। मैंने अनजाने ही उनके मनोभावों और शाब्दिक-कौशल तक को ग्रहण कर लिया। इन महान् कलाकारों के अन्तर्निवास के कारण मैं निरन्तर विकसित होता गया हूं। यदि किसी का स्थिर रूप से हमारे अन्दर 'आधान' हों तो उसका प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट होता है। एक अध्यापक किसी विद्यार्थी में उसी अवस्था में 'आधान' कर सकता है, जब कि वह अपने में छात्र के प्रति विनम्र भावों को विकसित कर ले।

कोलाहल और हलचल से व्याप्त आधुनिक जगत् में विनमृता का गुण हीन समझा जाने लगा है। जितने ही हम अज्ञानी होते हैं उसी अनुपात में हम अधिक घमंडी होते जाते हैं। इस प्रचार-युग में अर्ध-तथ्यों को बुद्धि की पराकाष्ठा स्वीकार कर लेना अत्यन्त सरल है और इस प्रकार नमृता के द्वार को बन्द कर देते हैं।

यदि एक विद्यार्थी उन्नति करना चाहता है, तो उसे अपने मस्तिष्क को आगामी विचारों,

नवीन दृष्टिकोणों और सिद्धान्तों को समझने के लिये सदा तैयार रखना चाहिये। वह आज का नेता न होकर भविष्य का नेता है। उस के कालेज-जीवन के सिद्धान्त निश्चित रूप से जीवन में प्रवेश करने के समय तक असामयिक हो जायेंगे। अतः उसका प्रथम कर्त्तव्य है, कि वह शीघ्र-निर्मित विचारों को स्वीकार न करे और विनम्र भाव से जिज्ञासा को विकसित करे।

गत बीस वर्षों से सम्पूर्ण संसार के लाखों प्राणियों के ऊपर एक सामूहिक भ्रष्टाचार की लहर बह रही है, जो कि नैतिक-पतन का निश्चित चिन्ह है। सत्य की गवेषणा, सत्याचरण द्वारा जीवन यापन करना और सत्य पर न्यौछावर होने के लिये उद्यत रहना महत्ता की विशेषताएं हैं।

सामाजिक और राजनैतिक जीवन में तथा सामाजिक व धार्मिक मामलों में केवल रिवाज को ही अपनाने तथा चारों ओर गूंजने वाले नारों से प्रभावित हो जाने का अभिप्राय मानवीय व्यक्तित्व. सौन्दर्य और स्वातन्त्र्य से पराङ्मुख होना है, जो कि न केवल प्रजातन्त्र अपितु प्रत्येक स्वतन्त्र और उदात्त वस्तु का आधारभूत तत्व है। अतः विद्यार्थी को अपने कल्याण के लिए सत्य की खोज करनी चाहिए। उसे अपने निर्माण-काल में लुभावने नारों और 'वादों' को स्वीकार नहीं करना चाहिये। उसे गवेषणा की भावना को विकसित करना चाहिये। उसे तुलनात्मक मूल्यों को ग्रहण करने की आदत सीखनी चाहिये। उसे अन्धा बना देने वाले आवेश से ऊपर उठना चाहिये, चाहे उन आवेशों का प्रतिनिधित्व और कारण कितना ही महान् क्यों न हो। जो छात्र किताबों का कीड़ा या तार्किक बनने का प्रयत्न करते हैं, वे चरित्र निर्माण की कला को कठिनाई से जान पाते हैं।

नवयुवक की बढ़ती हुई प्रतिभा को कार्य रूप में व्यक्त कर सुशिक्षित किया जा सकता है। प्रारम्भ में क्रियाशीलता का प्रदर्शन स्वभावतया अपनी शिक्षण-संस्था और आश्रम-जीवन के कार्यों में अभिरुचि लेने से व्यक्त होता है।

शिक्षण संस्था की एक 'आत्मा' होती है, जिसके चारों ओर विद्यार्थी की आशा और निराशापूर्ण अनेक सुखद स्मृतियों का निर्माण होता है। यह स्वयं में एक छोटा सा संसार होता है. और यही से ही किसी का भविष्य बन सकता है या बिगड़ सकता है। यदि विद्यार्थी संस्था के संगठित जीवन में भाग लेता है, तो उसके सम्पूर्ण जीवन में उस संस्था का वैसा ही प्रभाव रहेगा। यह प्रभाव उसी प्रकार का होगा, जैसा कि इंगलिस्तान की आश्रम-शालाओं (पब्लिक स्कूलों) और विश्वविद्यालयों द्वारा संसार भर में फैले हुए अंग्रेजों पर पड़ा है। और जिसके कारण वे एक महान् जाति का निर्माण कर रहे हैं। एक विद्यार्थी के लिये संस्था की सेवा उस महान् सेवा के प्रति एक प्रगतिशील कदम है, जिसके लिये उसको आगामी जीवन में पुकारा जायगा।

विद्यार्थी को अपने देश व जाति की महान् परम्पराओं, उन्नत आदर्शों और उदात्त उपलब्धियों को ग्रहण कर अपनाना चाहिये। इसी समय उसको अपनी मातृभूमि और सभ्यता के लिये प्रभावोत्पादक कार्य कर के सेवा-भावना को जागृत करना चाहिये। दुर्भाग्यवश भारतीय विद्यार्थी या तो अत्यधिक स्वार्थी हो जाते हैं। अथवा विरोधात्मक प्रवृत्तियों में प्रवृत्त हो जाते हैं नारे लगाना, झण्डे लहराना, निःशस्त्र जनता को हड़ताल इत्यादि के लिये भड़काना या जेलों में बन्द रहना--वास्तविक सेवा नहीं है।

जेलों में जाना एक महान् अनुशासन है।

परन्तु विद्यार्थियों के लिये जेलों में जाना युद्ध में जाने के समान एक कर्तव्य हो जाता है, जब कि राष्ट्र और राष्ट्रनेता अनुशासनात्मक विरोध प्रारम्भ करते हैं। तब यह महान् राष्ट्रिय सेवाओं की शिक्षा के लिये एक आवश्यक अंग बन जाता है। अतः राष्ट्रिय-आन्दोलन—जो कि सच्ची सेवा है—और सामूहिक कार्यों की उत्तेजनाओं के अवसर प विद्यार्थी की अज्ञानता और सेवा भावना का अन्य मनुष्यों द्वारा अपनी पार्टी के उद्देश्य को प्रमुख बताकर दुरुपयोग किया जाता है। राष्ट्र संकट के अवसर पर विद्यार्थी को प्रत्येक प्रकार की सहायता देनी चाहिये, इसके अतिरिक्त सच्ची सेवा के द्वारा वह प्रत्येक क्षेत्र में सूर्य की भांति देदीप्यमान होगा। यह इतनी महान् सेवा है, जितनी कि कोई मानव कर सकता है।

उदाहरण के लिये कोई भी तरुण छात्र निम्नलिखित सेवा-कार्यों में से किसी को भी अपना कर सच्ची तालीम, जीवन का आमोद और प्रकाश प्राप्त कर सकता है—किसी दुखिया और अकेली मां-बहन की सेवा, किसी अभागे पड़ौसी की सहायता, एक आपत्ति में पड़े यात्री की सहायता, राह चलते किसी अपराध के शिकार बने मनुष्य की रक्षा, सामाजिक आर्थिक या साम्प्रदायिक बलि वेदी पर बलि-किये जाते किसी अभागे की प्राण रक्षा, एक दंगे में अपनी जान देकर भी निरपराधों की रक्षा, भंगियों के अभाव में शहर की सड़कों की स्वेच्छा-पूर्वक सफ़ाई, किसी महान् अवसर पर स्वयं-सेवकों की संगठन, सामाजिक भलाई के लिये शिक्षा-रहित ग्राम में शिक्षा-प्रचार, गरीब प्रौढ़ों की रात्रि-शिक्षा-इत्यादि।

दूसरों को प्रसन्न करने की योग्यता, मनुष्यों को दुःखद घड़ियों में सान्त्वना देना, शक्ति का स्रोत प्रवाहित करना, अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को प्रसन्न और अनुप्राणित करना, इत्यादि—इन सब को उच्चतम सेवा की श्रेणी में गिना जाता है। ये किसी भी प्रकार से सेवा के सरल रूप नहीं है। इस प्रकार की सेवाओं के लिये विद्यार्थी को गम्भीरता पूर्वक अपनी वार्षिक परीक्षा की भांति तैयारी करनी होगी मानव स्वभाव को जानने के लिये दयामयी अन्तर्दृष्टि, सदा प्रसन्नता पूर्वक बातचीत का ढंग और प्रसाद-पूर्ण मनोवृत्ति की आवश्यकता है।

भारतीय-संस्कृति का ग्रहण और प्रत्येक स्थान पर इसका प्रचार विद्यार्थी के कर सकने योग्य एक महानतम सेवा है। भारत में जड़ पकड़ी हुई हीन मनोवृत्ति की भावनाओं को उखाड़ फेंकना है। अतः विद्यार्थी को अपनी संस्कृति के सर्वोत्तम भाग का प्रसारक केन्द्र बनना चाहिये। भारतीय वस्तुओं के प्रति उसका प्रेम सक्रामक होना चाहिये। उसमें भारत के भूतकाल का गौरव उसके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को ऊंचा उठा सकता है। उसकी वीर और साहस पूर्ण राष्ट्रीय मनोवृत्ति सर्वदा विस्तारशील शक्ति केन्द्रों को न केवल इस राष्ट्र में अपितु बाहर भी उत्पन्न कर सकती है। उसका व्यक्तित्व एक शक्तियन्त्र (डाईनेमो) की तरह सदा सजग और कृतिशील होना चाहिए। अपनी मातृभूमि के स्वातन्त्र्य और गौरव की संवर्धना के लिए उसे सदा संनद्ध रहना चाहिए।

परन्तु यह सब कर सकने से पूर्व उसको युगों की चट्टानों पर आधारित आर्य-संस्कृति के तत्वों द्वारा अपने को शक्तिसम्पन्न बनाना होगा।

अनुवादक—सुभाष

भारतीय शिक्षा की आधारशिला-ब्रह्मचर्य

इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्राचीन भारतीय समाज का प्रत्यक्ष शरीर चार अंगों से बना हुआ था। वे अंग चार वर्ण थे।

चारों वर्णों का निर्माण चार आश्रमों से होता था। चार आश्रम भारतीय समाज रूपी भवन की भित्तियां थीं। चातुर्वर्ण्यात्मक समाज आश्रम की भित्तियों पर खड़ा था।

यदि हम और अधिक गहराई में जाकर विचार करें तो हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि भारतीय समाज रूपी भवन की भित्तियां जिस आधारशिला पर स्थित थीं, वह ब्रह्मचर्य था। प्राचीन आर्यों के लिये ब्रह्मचर्य कोई परिचित रिवाज़ या चिन्हरूपी वस्तु नहीं था, वह एक व्यापी और विशाल सिद्धान्त था, जो जीवन के पोर पोर में व्याप्त था। प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति करना था, उसे केवल आजीविका के योग्य कमाऊ मशीन बनाना नहीं था, इस कारण उस समय की शिक्षा का मूलभूत तत्त्व ब्रह्मचर्य था।

प्राचीन भारत में ब्रह्मचर्य का रूप कितना विशाल और व्यापक था, इसका आभास अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त से प्राप्त होता है। उसके कुछ मन्त्र यहां दिये जाते हैं—

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः
प्रजापति र्विराजति विराडिन्द्रो भवद्वशी

अथर्ववेद ११।५।१६

आचार्य ब्रह्मचारी हो। राजा भी ब्रह्मचारी हो। जो राजा ब्रह्मचारी है, वही शोभा पाता है। जो संयमयुक्त (ब्रह्मचारी) राजा होता है, वही इन्द्र पदवी को प्राप्त करता है।

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति

अथर्व ११।५।१८

कन्या ब्रह्मचर्य से शक्तिसम्पन्न होकर ही युवा पति को प्राप्त करती है, यहां तक कि बैल और घोड़े जैसे पशु भी ब्रह्मचर्य (संयम) द्वारा ही कार्य के योग्य होते हैं।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्

११।५।१६

ब्रह्मचर्य रूपी तप से ही श्रेष्ठ पुरुषों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी और (राजाओं के राजा) इन्द्र ने ब्रह्मचर्य की शक्ति से ही श्रेष्ठ पुरुषों को तेजस्वी बना दिया था।

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः

११।५।२०

औषधियां, वनस्पति, ऋतुओं के साथ चलने वाला संवत्सर, रात दिन, भूत और भविष्य, ये सब (नियम में रहने के कारण) ब्रह्मचारी हैं। (तभी संसार की व्यवस्था चलती है)

इस प्रकार ब्रह्मचर्य के व्यापी और विशाल रूप का वर्णन करने के पश्चात् वेद ब्रह्मचर्य के रूप का विवेचन करता है और बतलाता है कि मूलरूप में ब्रह्मचर्य क्या है?

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति
तान्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम्। २२

भगवान् के बनाये सब (चेतन और अचेतन) पदार्थ अपने में प्राण (जीवन शक्ति) को

धारण करते हैं। उनकी इस शक्ति की रक्षा ब्रह्मचारी के ब्रह्म बल से होती है।

इन सब वेदमन्त्रों से दो वस्तुएं स्पष्ट हो जाती हैं। पहली यह कि प्राचीनतम भारतीय सभ्यता में सम्पूर्ण जीवन का आधार ब्रह्मचर्य को माना जाता था, और दूसरा यह कि ब्रह्मचर्य केवल एक आश्रम अथवा दशा विशेष का नाम नहीं था, अपितु नियम और संयम इन दो शब्दों के अन्तर्गत जितनी भावनायें हैं, वह सब ब्रह्मचर्य के अन्तर्गत मानी जाती थीं। इन मन्त्रों में ही देखिये, ब्रह्मचर्य के साथ तप का सम्बन्ध, ब्रह्मचारी का विशेषण वशी तथा जड़ चेतन सभी पदार्थों का ब्रह्मचारी होना इस सत्य को सूचित करता है कि संसार का नियन्त्रण करने वाले अटल ईश्वरीय नियमों का पालन और वृत्तियों का संयमन ही मुख्य रूप से ब्रह्मचर्य है। वह ब्रह्मचर्य चेतन अचेतन जगत् की स्थिति का आधार होने के कारण मानव समाज के जीवन का भी आधार है। इसी मूलतत्व के आधार पर प्राचीन आर्य संस्कृति में ब्रह्मचर्य को शिक्षा की आधारशिला माना जाता था।

अथर्ववेद का निम्नलिखित मन्त्र इसी अभिप्राय को सूचित करता है।

> ब्रह्मचारी ब्रह्मभ्राजद्बिभर्ति
> तस्मिन्देवा अधिविश्वे समोताः।
> प्राणापानौ जनय द्व्यानं वाचं मनो
> हृदयं ब्रह्म मेधाम्। ११। ५। २४

ब्रह्मचर्य से प्रकाश युक्त ब्रह्मचारी ज्ञान को धारण करता है। उसकी सब इन्द्रियां उसके वश में रहती हैं। वह प्राण अपान व्यान वाणी मन हृदय ज्ञान तथा मेधा का जन्मस्थान बन जाता है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि वैदिक काल में सम्पूर्ण मानवीय जीवन शक्ति का आधार ब्रह्मचर्य को माना जाता था और इसी कारण वह शिक्षा का भी मूलाधार था।

अनीड़

सत्यव्रत शर्मा 'सुजन'

कौन तेरा नीड कोकिल !
कौन तेरा नीड़ ?
परभृता तू हाय, निष्कुल,
अति अकेली और आकुल,
अधम जग की भीड़——
पंछी ! कौन तेरा नीड़ ?
सुध किसी की, विसुध माती,
नैन राते, आग गाती,
तार उर के मींड़——
पंछी कौन तेरा नीड़ ?
लौट जा, निज घर बसा ले,
अमर अमराई बना ले,
कूक तब गतपीड़—
कोकिल कौन तेरा नीड़ ?

भारत में रज्जु-निर्माण का रोचक इतिहास

३०० ईस्वी पूर्व से १९०० ईस्वी पश्चात् तक

पी. के. गोडे

[आश्विन के अङ्क का शेष अंश]

अब यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि भारत में जहाज़-निर्माण की इस विधि का प्राचीन रूप क्या था ? इस प्रश्न का उत्तर तभी दे सकते हैं जब कि हमें जहाज-निर्माण की इस विधि का इतिहास ज्ञात हो जैसा कि जेम्स हॉकनैल ने अपने विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ 'वाटर ट्रांसपोर्ट' (प्रारम्भ व आदिकालीन विकास, कैम्ब्रिज, १९४६) में प्रस्तुत किया है। इस इतिहास के कुछ अंश इस प्रकार हैं —

पृष्ठ–२३४–२३७–(१) प्रथम शती ईस्वी का मध्यभाग सिकन्दरिया के एक व्यापारी ने 'दि पैरिप्लस ऑफ़ दि एरीथ्रियन सी' में अफ्रीका के तटवर्ती (देखिये स्कॉफ़ का अनुवाद, १९१२)। दारेस-सलाम के समीप 'राप्त' बन्दरगाह पर उस ने कुछ ऐसे जहाज़ देखे थे जिन में कि जहाज़ के पेटे के तख्ते परस्पर प्रत्येक किनारे से एक प्रकार की रस्सी से बन्धे हुए थे जब कि भूमध्य-सागर व रक्त-सागर के रोमन व यूनानी जहाज़ों में तख्तों की अन्दरूनी बनावट कीलों से संयुक्त होती थी। यूनानी व्यापारी इन जहाज़ों का वर्णन ईरान की खाड़ी के दक्षिणी तट पर करता है। इन्हें 'मैडरेट' कहते हैं और जो मुद्‌रअत' के ही समान है। इस का अर्थ "ताल के रेशों से बन्धा हुआ" है (ग्लासर के अनुसार १८९०)। जहाज़ों की यह निर्माण-विधि ईरान की खाड़ी व हिन्द-सागर के तटों पर तब तक चलती रही जब तक कि योरोपियन प्रभाव ने आकर इस में एक क्रांति उत्पन्न न कर दी।

(२) रस्सों से बन्धे हुए तख्तों के सम्बन्ध में बाद के अनेक प्रमाण मिलते हैं। संक्षेप में हम उन्हें इस प्रकार रख सकते हैं—

(१) मार्कोपोलो (१२९८ ईस्वी) जहाज़ों को सम्बद्ध करने के लिए रेशों का उल्लेख करता है "किसी लोह-निर्मित बन्धन का नहीं"।

(२) फ्रायर ओडोरिक (मृत्यु १३३१ ईस्वी) थाना (बम्बई) को जहाज़ द्वारा गया। वह एक जहाज़ का वर्णन करता है जो कि "केवल सन द्वारा बांधा गया था"।

(३) अल मक्रीसि (१४००—१४५० ई०) बिना कील के–नारियल के रेशों से जुड़े हुए तख्ते।

(४) वास्को-डी-गामा (१४९८ ईस्वी) ने मौज़मबिक में रस्सों से बन्धे हुए जहाज़ देखे।

(५) सीज़र फ्रैडरिक (लगभग १५६३ ईस्वी ने) बसरा से ओरमुज़ तक एक जहाज़ में यात्रा की जो कि "रस्सियों से संयुक्त" था।

(६) राल्फ फिच (लगभग १५८३ ईस्वी) जहाज़ों को बांधने के लिए 'कैयरो' (रेशे) की रस्सियों का वर्णन करता है।

(७) जैन ऐल्डर्ड (१५८३)।

(८) जे० लैन्कास्टर (लगभग १५९५ ई०)

(९) जेम्स ब्रूस (१८१३)। और

(१०) ओवेन (१८३३) सभी बन्धे हुए जहाज़ों का निर्देश करते हैं।

(३) दूसरी शती ईस्वी से नवीं शती तक

जहाज़-निर्माण की विधियों को पुष्ट करने के लिये कोई भी प्रमाण नहीं मिलता।

(४) अबु ज़ैद (१० वीं सदी) कहता है कि तख्तों को बांध कर जहाज़ बनाने की विधि मुख्यतः सिराफ (वर्तमान ताहिरा, एक ईरानी बन्दरगाह) में प्रचलित है। वह कहता है कि सीरिया और रूम के कारीगर तख्तों को कीलों से जोड़ते हैं। "वे कभी भी उन्हें परस्पर बांधते नहीं।"

(५) आजकल भी भारत लंका और यहां तक कि अरब में भी तख्तों को बांधने की विधि प्रचलित है!

(६) हिन्दमहासागर में पुर्तगाल, डच, व अंग्रेज़ों के प्रवेश के उपरान्त ही खूंटियों व रस्सियों से बांधने के स्थान पर कीलों से जोड़ना आरम्भ हुआ।

यह जान कर बहुत आश्चर्य होता है कि किस प्रकार जहाज़-निर्माण में रेशों के रस्सों का उपयोग लगभग २००० वर्ष तक कायम रहा। संस्कृत व प्राकृत के स्रोतों में यह अन्वेषणीय है कि क्या उन में प्राचीन व मध्यकालीन भारत में जहाज़-निर्माण के लिये रेशों के रस्सों के उपयोग का कोई उल्लेख है या नहीं। यहां पर मैं प्रमाण रूप में राजा भोज (१०५० ईस्वी) के युक्ति कल्पतरु के जहाज़ों के प्रकरण (नौयान युक्ति) से निम्न श्लोक उद्धृत करना चाहता हूं। युक्ति-कल्पतरु (कलकत्ता, १९१७) पृ० २२४:-

"न सिन्धु गाद्यार्हति (गाह्यर्हति) लोहबन्धं
तल्लोहकांतैः ह्रियते हि लोहम्।
विपद्यते तेन जलेषु नौका
गुणेन बन्धं निजगाद भोजः॥ ६६॥

यहां भोज जहाज़ के निर्माण में तख्तों को जोड़ने के लिये लोहे की कीलों के उपयोग (लोहबन्ध) की निन्दा करता है क्यों कि अगर कहीं पानी में कोई चुम्बक (अर्थात् चुम्बकीय लोहे से युक्त कोई पार्वतीय-तट) मिल जाय तो वह इन कीलों को अपनी ओर खींच लेगा और इस प्रकार जहाज़ के भग्न होने की सम्भावना उत्पन्न हो जायगी। अतएव वह इस के लिये रस्सों से बांधने (गुणबन्ध) का निर्देश करता है। इस पद्य से स्पष्ट है कि ११ वीं सदी में भारत में लोहे की कीलों (लोहबन्ध) का उपयोग पूर्णतया ज्ञात था। तो भी भारतीय जहाज़-निर्माता 'गुणबन्ध' के उपयोग को अधिक पसन्द करते थे क्यों कि इस से चुम्बकीय आकर्षण के दुष्प्रभाव से बचा जा सकता था।

जब मैं उपर्युक्त सन्दर्भ में भोज के "गुणबन्ध" और 'लोहबन्ध' सम्बन्धी उल्लेखों पर विचार कर रहा था उसी समय अपने एक सदा सावधान मित्र रायबहादुर के. वी. आयंगर का १ जुलाई १९४८ का एक अतीव सूचनापूर्ण पत्र अपनी ही खोज के विषय पर पाकर चाकत रह गया। उन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए मुझे उस पत्र के मुख्य अंशों को यहां उद्धृत करने में बहुत प्रसन्नता होती है:—

"आपका २८ जून १९४८ का पत्र मिला। यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि आप 'भारत में रज्जु-निर्माण के व्यवसाय पर एक लेख लिखने जा रहे हैं। क्यों कि मैं पर्याप्त समय तक त्रावणकोर में रहा हूं और त्रावणकोर में बहुत समय से रेशों का उद्योग (रस्से चटाई आदि) एक प्रमुख व्यवसाय रहा है और आज भी है अतः इस विषय में मुझे भी कुछ जानकारी है। यह खोज के योग्य एवं रोचक विषय है। संस्कृत में रस्से के लिये 'रज्जु' और 'वल्कल' शब्दों का प्रयोग होता है। 'वल्कल' वृक्ष की बढ़ी हुई छाल को कहते हैं और 'रज्जु' केवल इस के बांधने के प्रभाव को प्रकट करता

है। मार्कोपोलो (देखिये कॉर्डियर का संस्करण) और अलबरूनी (साचव एडीशन) अपने काल के भारतीय जहाजों के निर्माण का वर्णन करते हैं। श्री राधाकुमुद मुकर्जी अपनी 'हिस्ट्री ऑफ मैरिटाइम एक्टिविटि इन एन्शन्ट इण्डिया' नामक पुस्तक में भोज की युक्तिकल्प-तरु को जहाज-निर्माण के सम्बन्ध में ज्ञात एक मात्र संस्कृत पुस्तक के रूप में प्रदर्शित करते हैं। इसमें एक मनोरञ्जक श्लोक में यह बताया गया है कि क्योंकर लोहे की कीलें जहाजों के निर्माण में प्रयुक्त नहीं की जाती थीं। वह कहता है कि लोहे की कीलें चुम्बकीय तटों से युक्त शिलामय तटों के आकर्षण को रोकने में असमर्थ हैं (देखिये युक्तिकल्पतरु, कलकत्ता पृ. २२४)। ये श्लोक मुकर्जी द्वारा (२१ पृष्ठ पर) उद्धृत किया गया है। यह विचार अरेबियन नाइट्स में एक जहाज की कहानी से पुष्ट होता है जिसमें 'सिन्दबाद' यात्रा कर रहा था और जो एक किनारे पर आकर चुम्बकीय आकर्षण से भग्न हो गया। इसके अतिरिक्त मार्कोपोलो लोहे की कीलों से जुड़े हुए मलाबार के जहाजों का वर्णन करता है।

तामिल में नारियल के रेशों को 'कयर' या 'कयर' कहते हैं जो मलयालम 'कायरु' से निकला हुआ माना जाता है (देखिये हॉब्सन जॉब्सन, पृष्ठ १८०)। प्रारम्भिक अरबी के लेखों में इसी को 'क़ानबर' या 'कनबार' के रूप में प्रयुक्त किया जाता था। विन्सलो की तामिल इङ्गलिश डिक्शनरी' (१८६२) में २४४ पृष्ठ पर 'कयर' या 'कयर' को इस रूप में समझाया गया है—ग्राहिता अथवा नारियल के ऊपरी नर्म रेशे जो बहुत ज्यादा ग्राही होते हैं। अतएव 'कायर' का अर्थ प्रारम्भ से 'नारियल के रेशों के रस्से' रहा होगा। नारियल का उत्पत्ति स्थान भारत के समुद्री किनारे हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि रामायण (सुन्दर काण्ड' अध्याय ४८, श्लोक ३६ और ४८) में हनुमान को ब्रह्मास्त्र से एक वार बांध कर दुबारा 'शणवल्कैः' और 'वल्केण' से बांधा गया था। नारियल के उत्पत्ति-स्थान लंका में सन की रस्सी कैसे पहुँची होगी? सन भारतीय समुद्रतट की अपेक्षा उत्तरीय भारत में ज्यादा प्रयुक्त होता है। स्पष्टतः वाल्मीकि नारियल के रेशों की रस्सियों से परिचित नहीं थे।

युक्ति कल्पतरु में हमें जहाजों को बांधने का संक्षिप्त विवरण प्राप्त होगा जिसमें श्री मुकर्जी द्वारा उद्धृत पद्य भी सम्मिलित हैं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'वल्क' और 'रज्जु' शब्द क्रमशः पृष्ठ ११०, ११३, २०३, २४१ और ४०३; तथा पृष्ठ ११३, १५५, २०३, २१७ और ४२४ पर प्रयुक्त किये गये हैं। 'शण' (सन) पृष्ठ १००, १०२, ११६ और ४०३ पर मिलता है। कौटिल्य को 'ताल' के रेशों का ज्ञान था परन्तु वह नारियल के रेशों को नहीं जानता था। 'ताल' शब्द अर्थशास्त्र (प्रथम संस्करण) के पृष्ठ ८१, ८४, १०० और १०२ पर वर्णित है।

ये प्रमाण विषय पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं परन्तु इस पर दूसरों द्वारा उठाये गये प्रश्नों का भी उत्तर देना चाहिये।

प्रथम, सामान्य प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आर्यों ने किस समय भारत में रेशों के रस्से बनाने का व्यवसाय प्रारम्भ किया? इस प्रश्न का समाधान संस्कृत-साहित्य और उसमें भी विशेषतः ५०० ईस्वी पूर्व के साहित्य से उद्घाटित नारियल के इतिहास पर निर्भर है। मैं समझता हूं कि भारतीय पौधों के इतिहास में कोई विद्वान् नारियल के वृक्ष द्वारा उत्पादित

विभिन्न द्रव्यों के व्यावसायिक व आर्थिक इतिहास को स्पष्ट करते हुए इस समस्या पर प्रकाश डालेंगे।

मेरे मित्र श्री एन.एन. गुलाटी, एम.एस.सी. टैकनोलौजिकल लैबोरेटरी, माटुंगा (बम्बई) ने १०–७–१९४८ को मुझे इस प्रकार लिखा—

"(१) कृपया 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ काटन' पर लिखित मेरे व डा० टर्नर के सयुक्त लेख के १५ वें पृष्ठ को देखिये। इसमें हमने मोहनजोदड़ो के एक मिट्टी के बर्तन से बन्धे रस्सियों के छोटे टुकड़ों का वर्णन किया है। वहां पर प्राप्त रस्सियों के दो नमूने थे। दोनों ही कपास के बने हुए थे। उन दोनों ही रस्सियों में २४ तहें थीं परन्तु उनके आधारभूत एक एक सूत में क्रमशः १४ और १८ रेशे थे। इन में से एक गुलाबी रङ्ग का था। ये रस्सियां प्रकट करती हैं कि सिन्धु-घाटी की प्राग्-आर्यन् सभ्यता में भी लोगों को रस्सों के निर्माण का व्यवसाय ज्ञात था।

(२) अभी हाल ही के प्रकाशन में, जिसमे मुझे सन, जूट आदि रेशेदार पौधों के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचनायें प्राप्त हुई हैं, श्री आर. सी. फ़ोर्ब्स कृत "फाइब्रस प्लान्टस ऑफ़ इण्डिया" (१८८५, लन्दन) में मैंने यह वर्णन देखा है कि सस्बेनिया के रेशे किन्हीं अन्य रेशों की अपेक्षा जल से कम प्रभावित होने के कारण मछली पकड़ने के जालों के शुष्क रस्सों को बनाने के लिए अधिक उपयोगी हैं जबकि ढाक (ब्यूटिया फ्राण्डोसा) के रेशे रस्सों को बनाने और नौकाओं की दरज भराई के काम आते हैं।

(३) पशुओं की खालों व चमड़े की नावों को बांधने के लिए अब भी रेशों की रस्सियों का उपयोग होता है।

(४) अन्य रस्सों की अपेक्षा रेशों के रस्से जहाजों के लिए अधिक उपयोगी हैं क्योंकि वे भीगने पर भी जल में तैरते ही रहते हैं।

मैं इस सूचनापूर्ण टिप्पणियों के लिए श्री गुलाटी के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हूँ।

जहां तक कला व वस्तुविद्या का सम्बन्ध है इनमें रस्सों के चित्रण को प्रकट करते हुए मेरे मित्र डा० एच० गोट्ज़, अध्यक्ष बड़ौदा म्यूज़ियम, ने २६ जुलाई १९४८ को मुझे एक पत्र में लिखा कि—

"प्रतिहार-काल के कुछ मन्दिरों पर—विशेषतः मारवाड़ के ओसिया पर और शायद ग्वालियर राज्य के सुरबया पर भी—बटे हुए मोटे रस्से आभूषण रूप में प्रतीत होते हैं। चम्बा में चर्च की आधारशिला पर पतले बटे हुए रस्से देखे जाते हैं। मैनुएल महान के राज्य की पुर्तगाली वस्तु-विद्या भी, जो भारत की मूल कला के रूपों से प्रभावित गौथिक-कला का ही एक भेद माना जाता है, इसी प्रकार से बटे हुए रस्सों के अभिप्रायों का प्रभूत मात्रा में प्रयोग करती है। उनका आदर्श क्या रहा होगा मैं अभी तक यह नहीं जान सका।

मैं इन सूचनात्मक टिप्पणियों के लिए डा० गोट्ज़ का अत्यधिक धन्यवाद करता हूं जो इस लेख के विषय से सम्बन्धित अन्वेषण के लिए हमारे सन्मुख एक बिल्कुल नए क्षेत्र का उद्घाटन करती हैं। मैं आशा करता हूं कि इस क्षेत्र से अभिज्ञ कोई विद्वान् कला, शिल्प तथा वास्तुविद्या में रस्सियों के चित्रण पर एक लेख लिख कर इस लेख में संकलित सामग्री को पूर्णता तक पहुँचा देंगे।

———

प्यासा अमृत

लालचन्द एम. ए.

मानव क्या है ? अशान्त सोम, व्याकुल सौन्दर्य, प्यासा अमृत।

'पानी में मीन प्यासी मोहे देखत आवे हासी।'

'अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाऽविदज्जरितारम्।
मृडा सुक्षत्र मृडय ॥'

एक महात्मा राजा भर्तृहरि को एक अमर-फल प्रदान करते हैं। राजा उसे स्वयं न खाकर अपनी प्राणप्यारी रानी को दे देते हैं। रानी अपने हृदयेश्वर कोतवाल को भेंट कर देती है। कोतवाल अपनी प्रिया वेश्या को देता है। वेश्या उसी फल को अपने प्यारे राजा भर्तृहरि को सौंप देती है। प्रेम की विचित्र लीला का चक्कर पूर्ण हो जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति प्रेम से प्रेरित होकर आगे को दौड़ता है। हरेक को अपनी प्यास का भान है। पर दूसरे की प्यास को दूर करने के लिये अपने सोमरूप होने का भान किस को है ?

ओ प्यासे! तू अमृत है।

हर हृदय के अन्तःस्थल में सोम का सोता बहता है।

'प्रत्येक व्यक्ति के हृत्पट पर प्रभु की दिव्य शाश्वत मुसकान है।'

प्रभु पूर्ण और नित्य आनन्द है। पर हम व्यथित हैं। क्यों ?

× × ×

हमारी वृत्ति बहिर्मुख है। हम 'मैं' और 'मेरी' तक सीमित हैं। हम अल्प में ही लीन हैं। हमारी चेतना खण्डित है। हम दिति के पुत्र हैं। मनकों में सूत्र के समान सब में व्यापक सर्वाधार सत्ता को हम भूल गये हैं। हम आनन्दमयी समता से पृथक् हुए हैं। हम राग व मोह जन्य संस्कार-दुःख, परिणाम-दुःख व ताप-दुःख से संतप्त हैं। संस्कार-दुःख क्या है ? भुक्त भोगों की स्मृति हमें दुःखित करती है। 'मरज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।'

परिणाम दुःख क्या है ? परिणत हो जाने का दुःख। परिवर्तित हो जाने का दुःख। मनोहर मुख पर माता के दागों का प्रकट होना। सुन्दर शरीर का क्षय रोग या कुष्ट आदि से ग्रस्त होना।

ताप दुःख क्या है ? मृत्यु के कारण प्रियजनों से विछोह। अज्ञान और आसक्ति सब दुःखों के मूल हैं।

× × ×

वन में स्वच्छन्द विचरने वाले एक बन्दर ने एक दिन तंग मुख वाला एक बर्तन पाया। इस में कुछ फल थे। बन्दर ने हाथ डाल कर मुट्ठी भर ली। भरी हुई मुट्ठी को वह बाहर निकालने का प्रयत्न करता है। पर मुख तंग है। मुट्ठी नहीं निकलती। फलों के लोभ से पागल कहीं का मुट्ठी खोलता भी नहीं। मजा यह कि सारा वन फलों से भरपूर है। ऐसा ही है मनुष्य का लोभ और परिग्रह। चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय।

अरविन्द आश्रम की माता जी (मीरा रिचर्ड) की एक बहुत सुन्दर पुस्तक है 'प्रेयर्स एन्ड मैडीटेशन्स' उस में एक स्थान पर लिखा है: 'सभी कुछ हमारी पहुँच के अन्दर है। केवल हमारा अहंभाव हमारे लिये बाधक है। अन्यथा हम

जगत् को उस के सर्वांगीण एवं पूर्व रूप में अपने शरीर व इस के समीपवर्ती आवरणों की तरह भोग सकते हैं।

× × ×

कस्तूरी मृग की नाभि में कस्तूरी होती है। पर वह समझता है सुगन्ध बाहर से आ रही है। उसी की खोज में वह इधर उधर भटकता है। वनों में मारा मारा फिरता है। पर उस अबोध को क्या मालूम कि सुगन्ध उसी में स्थित है।

'गर्दन उठा के ऊपर कितना तुझे निहारा।
जब सिर झुकाया तुझको नीचे ही बैठे पाया॥'

'प्रीतम तेरे कोल वसदां ढूंडन कथे जावना।'

'घूंघट का पट खोल वे तोहे राम मिलेंगे।'

'आत्मा में गंग बहे क्यों नहीं मन नहावे।'

× × ×

एक आदमी रात के समय गली में कुछ ढूँढ रहा था। किसी ने पूछा 'भाई, क्या ढूँढ रहे हो।' उत्तर मिला 'सुई।'

'भाई, कहां गिरी थी।'

'अन्दर कमरे में गिर गयी थी।'

'तो वहां क्यों नहीं ढूंढते?'

'वहां अन्धेरा है।' सामान्य सा उत्तर था। प्रतीत होता था कोई पागल है। अन्दर गिरी सुई को बाहर ढूँढ रहा है पर क्या हम सभी ऐसे ही पागल नहीं है। अपने अन्दर गुम हुए आनन्द को बाहर के विषयों में खोज रहे हैं। जो स्वस्थ है, स्वरूपस्थ है, आत्माराम है वही आनन्द का उपभोग करता है। कर्मयोगी, भक्तयोगी, ज्ञानयोगी इस सोम का पान करते हैं।

× × ×

लार्ड एवबरी द्वारा लिखित 'प्लैयर्स ऑफ लाइफ' एक बहुत सुन्दर और प्रसिद्ध पुस्तक है इस के प्रथम दो अध्यायों के शीर्षक हैं 'कर्तव्य का आनन्द' और 'आनन्द का कर्तव्य'। जो लगन से अपना कर्तव्य पूर्ण करता है उसे असीम आनन्द प्राप्त होता हैं। एक तो एकाग्रता से दूसरा शक्ति के सदुपयोग से। परन्तु जहां कर्तव्य का आनन्द है वहां आनन्द का भी कर्तव्य है। सदा आनन्द में रहना, सदा प्रसन्न रहना, कष्टों को भी मुस्कराते हुए झेलना, यह एक बहुत बड़ा कर्तव्य है। गीता के अनुसार यह मानसिक तप है।

श्री अरविन्द लिखते हैं: 'शान्त, सदा विकसित होती हुई चेतना में कार्य करना साधन भी है सिद्धि भी'। कर्मयोग से चित्त सूक्ष्म और शुद्ध होता है और चित्त की शुद्धि व सूक्ष्मता के साथ अन्तः आनन्द में वृद्धि होती जाती है।

'हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सक्ता।
वह कौन का उकदा है जो वा हो नही सक्ता॥'
'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।'

× × ×

प्रभु शान्ति और आनन्द का भण्डार है जो सच्चे मन से उस की भक्ति करता है; दिन या रात हर समय प्रेम से उसका स्मरण करता है; उसकी आज्ञा का पालन करता है, वह दिव्य हो जाता है। देदीप्यमान, तेजस्वी और ओजस्वी बन जाता है।

'यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमां अह।'

'माड़ा नशा शराब दा उतर जाय प्रभात।
नशा नाम दा नानका चढ़ा रहे दिन रात।'

सर्वत्र, सदैव, कण-कण में व्यक्ति-व्यक्ति

आनन्दमय भगवान को आनन्दमयी समता से अनुभव करना ज्ञान योग है। व्यक्त प्रकृति ही अव्यक्त ब्रह्म है।

× × ×

सौन्दर्य का रहस्य क्या है ? भगवान हमारे हृदय को अपनी ओर खींचता है।

'प्रीतम है सब के अन्दर प्यारे हैं सब इसी से।
प्रीतम ही खींचता है जब प्यार हो किसी से ॥'

÷ × ×

सब से बड़ी भूल है सब से बड़े को भूलना।

'ब्रह्म नहीं है भूला तुझको तू न ब्रह्म को भूल कभी।' 'भुलि हैं हम ही तुम को तुम तो हमरी सुधि नाहि बिसारे हो।'

'विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपदो विस्मरणं विष्णोः संपन्नारायणस्मृति ॥

विपत्ति विपत्ति नहीं है। न ही सम्पत्ति सम्पत्ति है। विपत्ति है सर्वव्यापक प्रभु को भूल जाना। सम्पत्ति नारायण का नित्य स्मरण।

बिना भगवान् के जीवन एक दुःखद धोखा है। भगवान के साथ सब आनन्द ही आनन्द है।

आम्रवृक्ष के नीचे

सत्यदेव परिव्राजक

सफलता में भी कैसा जादू है! जिस नेहरू सरकार की चारों ओर से निन्दा हो रही थी, जिसके विरुद्ध जनता में कां कां मच रही थी और हिंदू जनता में हैदराबाद के प्रश्न के कारण अशान्ती व्याप रही थी– वो सब क्षुब्ध वातावरण दक्षिण हैदराबाद की विजय से बिल्कुल बदल गया। आज जिधर देखो हिन्दू नागरिक आपस में हंस हंस कर बातें कर रहे हैं और अपनी सरकार की बुद्धिमत्ता पर फूले नहीं समाते।

सचमुच सफलता ऐसी ही चीज़ है। जब शासन विधान समिति में हैदराबाद के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे जाते और हमारे प्रधानमन्त्री टालमटोल का जबाब दे देते और यह कह देते कि जन साधारण की दृष्टि से सब बातें बतलाई नहीं जा सकतीं, तो जन साधारण के क्रोध का पारा कई डिग्री ऊपर चढ़ जाता और उनके मुँह से अपनी सरकार की अयोग्यता की खूब चर्चा होने लगती। लोग ये नहीं समझ सकते थे कि उनकी सरकार इतनी देर क्यों लगा रही है और खोल कर बातें क्यों नहीं बतलाती। सन्देह, निराशा, अविश्वास और सन्ताप से भरा हुआ वो वतावरण अपनी सेना की अद्भुत सफलता के कारण धुंध की तरह उड़ गया और आज निर्मल आकाश में चमकते हुए सूर्य की रश्मियां भारतीय संघ के नागरिकों को उत्साह से परिपूरित कर रही हैं।

× × ×

आम्रवृक्ष के नीचे बैठा हुआ मैं आज ऐसी उधेड़बुन में लगा हुआ हूं। पंडित जवाहरलाल नेहरु तथा सरदार बल्लभ भाई पटेल इस बार बड़े व्यवहार-कुशल निकले। वल्लभ भाई जी ने तो अपने पट्टियाला के कथन को अक्षरशः सत्य कर दिखलाया और नेहरु जी ने भी ऐसे सुन्दर ढंग से दक्षिण हैदराबाद का मोर्चा लगाया कि सारा हिन्दुस्थान अवाक् रह गया। इस विजय के परिणाम सचमुच बड़े गम्भीर और दूर तक मार करने वाले होंगे। भारतीय

इतिहास में इस विजय से एक नया अध्याय खुल गया है। अब यह बात निर्विवाद सिद्ध हो गयी है कि जिन हिन्दुओं को ब्रिटिश सरकार शासन के अयोग्य समझती थी, उन्होंने अमली तौर पर शासन की मशीन को चला कर दिखला दिया है। पश्चिमी पञ्जाब में जो हत्याकाण्ड हो गये, इनका मुख्य कारण यह था कि हमारे कांग्रेसी नेता लीगियों की पत्ते बाज़ी के रहस्य जानते नहीं थे। हैदराबाद में देर लगाने का भी यही कारण हुआ। मुसलमान लीडर स्वभाव से बड़े शेखीबाज़ और गीदड़ भभकियां देने वाले होते हैं। पिछले एक हज़ार वर्षों के मुस्लिम त्रास के कारण हिन्दू जनता इन से भयभीत होती आ रही है। सबसे पहले वो भय निकलना चाहिये और हिन्दू प्रजा को यह बात भलीप्रकार जान लेनी चाहिये कि मुस्लिम नेता ६५ प्रतिशत झूठ बोलते हैं। हमारी सरकार अब इस तथ्य को अच्छी तरह से जान गई है। और हमारे लीडर पाकिस्तान के विरुद्ध अब अपना मुंह खोलने लगे हैं।

× × ×

हमारे लोग यह समझते हैं कि भारत संघ के मुसलमानों में हैदराबाद के युद्ध के समय कोई उपद्रव नहीं किया, इसलिये वे संघ के प्रति बड़े वफ़ादार हैं। अर्थात् वे परीक्षा में पास हो गये। पर मैं ऐसा नहीं मानता। चार पांच दिनों के युद्ध के अन्दर वे कर ही क्या लेते? नेहरु सरकार ने तो शरारती लीगियों को सोचने तक का अवसर नहीं दिया और ऐसा जाल फैलाया कि सब बड़ी बड़ी मछलियां पकड़ी गयीं; हां, यदि युद्ध लम्बा होता, दो चार महीने चलता, तो भारतीय मुसलमानों की राजभक्ति की परीक्षा होती। पाकिस्तान भी तो सरदार पटेल के रण-कौशल के कारण भौंचक्का सा रह गया। उसने यह सोचा था कि युद्ध कम से कम एक महीना तो चलेगा, तब तक बहुत सी बदमाशी की जा सकेगी। इसलिये भारतीय मुसलमानों की राज-भक्ति की अभी परीक्षा नहीं हुई, हां मौलाना आजाद को तो—'परीक्षा हो गयी'— ऐसा ही कहना चाहिये।

× × ×

एक बात और। सैंकड़ों वर्षों के बाद हिन्दू अब शासन करने के लिये उठे हैं। एक हज़ार वर्षों की दासता के कारण इनमें बड़ी सामाजिक त्रुटियां, भयङ्कर भेद बुद्धि और अनुशासन तथा व्यवस्था की कमी हो गई है। हमें सब से पहले इस बड़ी खाई को पाटना है जिसने हमें प्राचीन स्वतन्त्र भारत से अलग कर दिया था। दक्षिण हैदराबाद की विजय उस पुल के बांधने में ज़बरदस्त सहायक होगी। मनुष्य का दृष्टिकोण ही उसके जीवन की कुञ्जी होती है। सैकड़ों वर्षों की दासता के कारण हमारा दृष्टिकोण कोरा व्यक्तिवादी, निपट स्वार्थ का हो गया है। हमें राष्ट्रीयता की परिभाषा में सोचने का अभ्यास नहीं। ये पहला सद्गुण है जिसकी भारतीय नागरिकों में अत्यन्त आवश्यकता है। यदि भगवान् की कृपा से दक्षिणी हैदराबाद जैसी सफलताएं हमको प्राप्त होती रहीं तो सैकड़ों वर्षों से दबे हुए भारतीय रबर के गेंद की तरह संसार के सामने उभरेंगे और वही समय भारतीय राष्ट्र के लिए उसके उज्वल इतिहास के प्रारम्भ का समझा जायगा।

राजनीति में कहानी

हरिदत्त वेदालङ्कार

अत्यन्त प्राचीन काल से, पूर्व में और पश्चिम में राजनैतिक शिक्षा और प्रचार के लिये कथाओं का आश्रय लिया जाता रहा है। सुदूर भूतकाल में, भारतवर्ष में जब महिलारोप्य नगरी का राजा अपने पुत्रों की मूर्खता से दुःखी हो कर निःसन्तान रहना अच्छा समझ रहा था तो ८० वर्ष के बूढ़े, पण्डितमण्डली के शिरोमणि श्री विष्णुशर्मा ने राजदरबार में यह सिंहनाद किया था: 'आज का दिन लिख लीजिये, यदि मैं आप के पुत्रों को छः मास के भीतर राजनीति का असाधारण पण्डित न बना दूं तो आप मुझे निर्वासन या मृत्युदण्ड दे सकते हैं'। राजा विष्णुशर्मा की यह प्रतिज्ञा सुन कर आश्चर्यचकित रह गया। उस ने उसे अपने लड़के सौंप दिये। पंचतन्त्र के पढ़ने वाले जानते हैं कि, विष्णुशर्मा की भीष्मप्रतिज्ञा पूर्ण हुई। राजपुत्र नियत अवधि में राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित हो गये।

निःसन्देह, यह एक चमत्कार था; किन्तु यह कथाओं की सहायता से ही सम्पन्न हो सका। करटक और दमनक कहानी में भले ही शृगाल रहे हों किन्तु उन की नीतिज्ञता चाणक्य और राक्षस, मिकेविली और बिस्मार्क, हिटलर तथा चर्चिल से किसी भांति कम नहीं हैं। राजपुत्र कौटिलीय अर्थशास्त्र, कामन्दकीय नीति या शुक्रनीति के अध्ययन म असमर्थ थे किन्तु विष्णुशर्मा ने जानवरों की कहानियों से राजनीति के गूढ़ तत्व समझा दिये। राजनीति में मित्रभेद बहुत कठिन होता है। पिछले विश्वयुद्ध में सर स्टेफर्ड क्रिप्स को इस कारण असाधारण अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली थी कि उन्होंने जर्मनी और रूस में फूट डलवायी, लड़ाई छिड़वाई और इंगलैंड को नष्ट होने से बचा लिया। हम नहीं जानते कि यह कार्य किन ढंगों से हुआ किन्तु विष्णुशर्मा ने मित्रभेद में राजपुत्रों को यह सिखाया कि दो प्रगाढ़ मित्रों में किन उपायों से फूट और लड़ाई के बीज बोये जा सकते हैं। किन्तु राजनीति में केवल मित्रभेद से ही काम नहीं चलता, दूसरी शक्तियों को अपनी ओर मिलाना भी आवश्यक होता है! हिटलर ने १९३९ का महासमर छिड़ने से पहले अपने कट्टर शत्रु रूस के साथ संधि कर के इंगलैंड को कूटनीति के क्षेत्र में सब से बड़ी मात दी थी। पिछले दोनों महायुद्धों में मित्रराष्ट्रों की विजय हुई। क्यों कि वे अधिक से अधिक मित्र प्राप्त करने में सफल हुए। विष्णुशर्मा ने मित्रसंप्राप्ति में इसी समस्या पर प्रकाश डाला था। इसी तरह साम, दान, दण्ड, भेद, संधिविग्रह आदि का ज्ञान कथाओं द्वारा कराया गया है। यह ग्रन्थ पुराना हो जाने से नये ज़माने की आवश्यकतायें पूरा न कर सकता हो, सो बात नहीं। उस की कथाओं में बतायी हुई राजनैतिक बातें आज भी उतनी सत्य हैं, जितनी आज से कई सौ वर्ष पूर्व थीं। शत्रु की अपेक्षा न करना, शत्रु पर विश्वास न करना, कोरी भावुकता और आदर्शवाद में न बह कर ठोस यथार्थताओं को सदा ध्यान में रखना इस राजनीति की कुछ प्रधान विशेषतायें हैं। वर्तमान भारत के शासनसूत्रधार यदि विष्णुशर्मा की शिक्षाओं से परिचित होते तो राजनीति में मुस्लिम मांगों के आगे इतना न झुकते। पंचतन्त्र की भांति हितोपदेश में भी कथाओं

द्वारा राजनीति और व्यवहार की बातें समझायी गयी हैं।

पूर्वी देशों में तो शिक्षा के लिये राजनीति में कहानी का उपयोग हुआ किन्तु पश्चिम में राजनैतिक कथाओं का आविर्भाव निरंकुश राजाओं की प्रच्छन्न आलोचनाओं से हुआ। जब यूनान के नगरराज्यों में स्वेच्छाचारी तानाशाहों की सत्ता जम गयी तो उन की स्पष्ट आलोचना करना असंभव हो गया। ऐसा करना अपनी जान खतरे में डालना था। आलोचकों के लिये सर्वोत्तम स्थान जेलखाना था। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। स्पष्ट आलोचना असंभव होने पर, उस समय वहां ऐसे कथाकारों का जन्म हुआ जो कहानियों द्वारा राजकीय कृत्यों की आलोचना किया करते थे। इन में ईसप बहुत प्रसिद्ध है। उसे यूनान का विष्णुशर्मा कहा जा सकता है। वह स्वयं दास कुल में उत्पन्न हुआ था, इस लिये उसे अत्याचारों को सहने और देखने का पूरा अवसर मिला था। उस में कहानी गढने और उस से तीव्र प्रहार करने की प्रकृतिसिद्ध योग्यता भी थी। जब एक नगर के धन लोलुप निरंकुश शासक ने प्रजा को अनेक भारी करों द्वारा पीड़ित कर धन-संग्रह द्वारा कुबेर बनने का यत्न किया तो ईसप ने उसे सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी और उस के लोभी स्वामी की कथा सुना कर राजा को सीधी राह पर लाने का यत्न किया। एक नगर में प्रजातन्त्र राज्य था। वहां के लोग अन्य नगरों क देखादेखी एक निरंकुश शासक की मांग करने लगे। ईसप ने उन्हें समझाने के लिये 'राजा और मेंढकों की कथा' सुनाई। उसकी कथायें बहुत प्रचलित हुईं। अन्त में एक कथा की बदौलत उसे अपनी जान गंवानी पड़ी। मध्यकाल में भी योरोप में ऐसे अनेक कथा लेखक हुए। इन में एक का नाम प्रायः सब स्कूल के लड़के जानते हैं और वह है जोनाथन स्विफ्ट। इस ने गुलिवर्स ट्रैवल्स या विचित्र यात्रा विवरण लिखा। यह वास्तव में इंगलैंड की ह्विग और टोरी पार्टियां की मज़ाक है।

१९ वीं शती में प्रजातन्त्र का सिद्धान्त योरोप में सर्वमान्य होने लगा। इस में व्यक्ति के भाषण और लेखन की स्वतन्त्रता पवित्र वस्तु मानी जाती है; अतः राज्य के कार्यों की खुली आलोचना होने लगी। ऐसी कथाओं की आवश्यकता न रही, जिन से प्रच्छन्न रूप से प्रहार किया जाता था, जो शासकों के लिये शाल में लिपटे जूते का काम देती थीं। मनोविज्ञान ने यह बताया कि पशुपक्षी जिन कहानियों में बातें करते हों, ऐसी कहानियां अस्वाभाविक होने से बच्चों के लिये हानिकर हैं। कुछ वर्ष पहले एक लेखक ने लिखा था—ईसप का भविष्य खतरे में है, प्रजातन्त्र के युग में उस की कोई महत्ता नहीं।

किन्तु इतिहास अपने को दोहराता है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद इटली, जर्मनी, रूस में अधिनायकतन्त्र स्थापित हुए। मुसोलिनी, हिटलर, स्टालिन ने स्वतन्त्र आलोचना, वाणी तथा लेख की स्वाधीनता को बुरी तरह कुचल दिया। इस अवस्था में ईसप जैसे कथाकारों का पुनर्जन्म हुआ। यहां हिटलर के जर्मनी से संबन्ध रखने वाली दो कथायें दी जाती हैं। इन दोनों कथाओं से समाचारपत्रों के झूठे प्रचार और वैयक्तिक स्वतन्त्रता के अपहरण पर जो करारी चोटें की गयी हैं, वे इन विषयों पर लिखे बीसियों लेखों से अधिक प्रभावशाली हैं।

पहली कथा।

हिटलर जब एक बार स्वर्ग की ओर गया तो

उसने द्वार के अन्दर प्रवेश करने का यत्न किया। सैण्टपीटर स्वर्ग का द्वारपाल है। वह स्वर्ग में प्रवेश के इच्छुक व्यक्तियों के उत्तम कार्यों की पूरी जांच करता है। जिस ने वास्तव में पुण्य कार्य किये हों, उसे ही भीतर जाने देता है। हिटलर से उसने प्रश्न किया—"आप किन पुण्यों के आधार पर अन्दर जाना चाहते हैं"। उसे यह प्रश्न कुछ विचित्र जान पड़ा। वह बोला—'क्या तुम्हें मेरे पुण्यों का ज्ञान नहीं? उन्हें तो मेरे देश का बच्चा बच्चा जानता है।" सैण्ट पीटर ने इससे बिल्कुल अनभिज्ञता प्रकट की। इस पर हिटलर ने जर्मन जाति की भलाई के लिये किये प्रयत्नों को विस्तार से बताया और स्वर्ग के भीतर जाना चाहा। सण्ट पीटर ने हिटलर के कथन पर संदेह प्रकट करते हुए कहा—"मैं इस की जांच करना चाहता हूँ"। उसने अपना एक दूत जर्मनी भेजा। दूत ने बन्दी गृहों में सड़ते होनहार युवकों को देखा, बेकारी से भूखे मरते लोगों का अवलोकन किया, निरपराधों का जायदादा को कुर्क होते देखा। चारों तरफ हा हा कार मचा हुआ था। यह दृश्य देख कर वह वापिस लौट आया और उसने सैण्टपीटर से कहा—'यह स्वर्ग में प्रविष्ट होने का अधिकारी नहीं है'। हिटलर ने पूछा—'तुम किन स्थानों पर घूमे थे, जो इस प्रकार कहते हो'। देवदूत ने कहा—"मैं बन्दीगृहों, गांवों और कस्बों का चक्कर काट कर, इस परिणाम पर पहुँचा हूँ"। हिटलर गरज कर बोला—"तुमने नाहक इतना घूमने फिरने की तकलीफ़ उठायी। समाचार पत्रों के संवादाताओं या डा. गोबल्स से ही सब हाल क्यों नहीं पूछ लिया"।

अखबारों के झूठे प्रचार पर इससे अधिक तीखा व्यंग्य क्या हो सकता है?

दूसरी कथा

एकबार एक सुअर, एक कुत्ता और एक बकरी फ्रांस में एक स्थान पर इकट्ठे हुए। उन्होंने ने सलाह की कि चलो जर्मनी की सैर करें। तीनों अलग २ शहरों की ओर रवाना हुए।

सुअर जल्दी ही जर्मनी से लौट आया। बोला—"उंह, वहां रहना तो बड़ा कठिन है। सारी गन्दगी लोगों को ही खिला दी जाती है? मैं वहां किस प्रकार रह सकता हूं?"

कुत्ता भी थोड़ी देर बाद वापिस आ गया। कहने लगा—"वहां रहने में बड़ी कठिनाई है। भौंकने की भी स्वतन्त्रता नहीं है। केवल एक आदमी ही भौंक सकता है।"

दोनों बकरी की प्रतीक्षा करने लगे। ६ महीने बाद बकरी भी लौट आयी। उस के बाल मुंडे हुए थे और हालत बहुत खराब थी। दोनों ने पूछा—"क्या माजरा है? तेरी यह दशा कैसे हुई?" बकरी ने बड़े दुःख से उत्तर दिया—'सीमा पर पहुँचते ही पहरेदारों ने मेरी दाढ़ी और नाक से मुझे यहूदी समझा। बन्दीघर Concentration camp) में डाल दिया। इतने दिन बाद उन का भ्रम दूर हुआ और बड़ी कठिनता से मेरा छुटकारा हुआ।"

इस कथा में अधिनायकवाद और यहूदियों के अविवेक-पूर्ण दमन की तीव्र भर्त्सना बड़े प्रभावशाली शब्दों में की गयी है।

वर्तमान समय में भारतीय राजनीति में कहानी का उपयोग करने वाले एक ही उल्लेखनीय व्यक्ति भारत के गवर्नर जनरल श्री राजगोपालाचारियर हैं। वे उत्कृष्ट कोटि के कथा-

लेखक हैं और अपने भाषणों में कथाओं का प्रयोग करते हैं। कई वर्ष पूर्व जिन्ना द्वारा प्रस्तावित पाकिस्तान का विरोध करते हुए उन्होंने बच्चों के लिये झगड़ने वाली दो स्त्रियों की कहानी कही थी। दोनों का यह दावा था कि बच्चा मेरा है। इसका निर्णय करने के लिये जब न्यायाधीश ने उस के दो टुकड़े कर दोनों को बांट देने के लिये कहा—तो असली माता चिल्ला उठी—'मैं अपना दावा वापिस लेती हूं, बच्चे के टुकड़े न किये जांय।' उसे उस शिशु से सच्चा स्नेह था और वह उसे जीवित देखना चाहती थी, भले ही उस पर दूसरे का अधिकार हो जाय। दूसरी स्त्री की और सन्तान होने से उसे उस से विशेष ममता नहीं थी। स्व० जिन्ना ने राजा जी की इस कथा पर तीव्र असन्तोष प्रकट किया था क्योंकि इस से यह प्रकट होता था कि वह भारतभूमि को अपना नहीं समझते। त्रिपुरी कांग्रेस के अवसर पर नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस तथा कांग्रेस के अन्य नेतृवर्ग में तीव्र संघर्ष चल रहा था, उस समय राजा जी ने नर्मदा के तट पर लोगों से अपना कुशल नाविक चुनने की तथा अन्य कई कथायें कहीं जिन का जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

यह बड़े दुःख की बात है कि वर्तमान युग में राजनैतिक शिक्षा और प्रचार के लिये कहानी का प्रयोग कम हो रहा है।

श्रद्धानन्द विशेषांक

प्रिय महानुभाव,

आप को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि **'गुरुकुल-पत्रिका'** का पौष मास (दिसम्बर) का अङ्क **श्रद्धानन्द विशेषांक** के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इस विशेषाङ्क में प्रशंसित स्वामी जी महाराज के तेजस्वी चरित्र तथा उन के जीवन कार्यों पर विचारशील लेखकों की सुन्दर रचनाएं तथा पूज्य स्वामी जी के निकट परिचय और सम्पर्क में आये हुए विशिष्ट महानुभावों के संस्मरण और गुणदर्शनात्मक लेख प्रकाशित किए जायंगे। आप से हमारी नम्र प्रार्थना है कि इस विशेषाङ्क के लिए अपनी रुचि के अनुसार पूज्य स्वामी जी के कार्यकलाप व जीवन के विषय में बोधप्रद और प्रेरणास्पद रचनाएं, सन्देश तथा शुभ कामनाएं भेज कर हमें चिर अनुगृहीत करें। आप की रचनाएं मार्गशीर्ष के प्रथम सप्ताह (१५ नवम्बर) तक हमें मिल जांय तो उत्तम होगा।

आप का

रामेश बेदी

सम्पादक—गुरुकुल-पत्रिका

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

जन्तुओं की पूंछ

राधाकृष्ण कौशिक, एम. एस. सी.

उपयोगिता तथा अनुपयोगिता

पूंछ के अनेक उपयोग हैं और कुछ भी नहीं। कहीं तो यह केवल पुछल्ला मात्र है और कहीं पर आसन आदि का काम देती है। कुछ जन्तुओं में पूंछ का कोई उपयोग न होने से इस अङ्ग का कोई महत्व नहीं है। यदि पूंछों का अत्यधिक विवेचन किया जाय तो पूंछ के ह्रास की विभिन्न सीढ़ियों का दिग्दर्शन होगा। कुछ पालतू जन्तुओं में वरण (Selection) और अति समागम (breeding) के कारण पूंछ लुप्त हो गयी हैं परन्तु भालू तथा दरयायी घोड़ा (hippo) जैसे जंगली जानवरों में पूंछ रहित दशा को पहुँचने का कारण उनके पूर्वजों का दोष है जो पूंछ को उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहे और उसका कोई उपयोग न किया। वास्तव में पूंछ के बड़े विचित्र उपयोग हैं। यह हाथ, हथियार, औज़ार, आसन, कम्बल और चमर आदि में परिवर्तित हो जाती है और कभी कभी अपने स्वामी का एक मात्र आभूषण ही है।

पूंछ का संतुलन कार्य

बहुत से जानवरों में पूंछ शरीर के संतुलन के लिये नितान्त आवश्यक है। खलिहान के चूहे फसल के समय छोटी २ अनाज की बालों पर पूंछ को इधर-उधर घुमाते और लपेटते चढ़ जाते हैं और केवल पूंछ के सहारे रह कर अपने पंजों से अनाज की बालों को पकड़ कर कुतरते रहते हैं। तेंदुआ भी पेड़ की एक शाखा से दूसरी पर चढ़ने में अपनी पूंछ क्रम से दोनों ओर घुमाता रहता है, जिससे उसका संतुलन न बिगड़ जाय। जिस प्रकार रस्से पर चलने वाला नट लम्बे बांस के आधार पर संतुलन बनाये रखता है उसी प्रकार अनेक जन्तु अपनी पूंछ का संतुलनेन्द्रिय के रूप में उपयोग करते हैं। जीवित कांटेदार छिपकलियों में उन के विलुप्त (extinct) पक्षी-पद पूर्वज–भीमसरट (Dinosaurs) के समान पूंछ सीधा खड़ा होने में सहायता देती है। लगभग सारे ही द्विपद-स्तनधारियों (bipedal mammals) में विश्राम के समय शरीर पूर्णतया अथवा आंशिक रूप में पूंछ पर टिका रहता है। हिरना मूसे (Jerboa) और (Gerbil) अपनी पूंछ को अंग्रेजी अक्षर S के आकार में मोड़ लेते हैं, और केवल पूंछ का सिरा ही पृथ्वी पर टिका रहता है। जिस प्रकार व्याघ्र अपने शिकार की छड़ी पर बैठ जाता है उसी प्रकार आस्ट्रेलिया का अद्भुत जन्तु कंगारू अपनी पूंछ पर बैठ जाता है, जिसका ४।५ भाग भूमि पर अच्छी तरह टिका रहता है। पेंटेगोनिया (Patagonia) के तन्द्रालु (Sloth) अपनी कूले की हड्डियों और विशाल पूंछ की टिकढिकी बना कर वृक्षों पर चढ़े रहते हैं और उनकी पत्तियों का भक्षण करते रहते हैं।

पूंछ से आसन का काम

पैनग्विन (Penguin) उन नगण्य पक्षियों में से हैं जिन की पूंछ प्ररोही आसन (Shooting seat) का काम देती है। इस का बैठना बड़ा विचित्र होता है। इस दशा में पैर की उंगलियां ४५ अन्श का कोण बनाती हुई ऊपर की ओर मुड़ी रहती हैं और

पक्षी पीछे की तरफ बैठा रहता है। खुटक बढ़ई (wood pecker) की पूंछ का भी बहुत कुछ ऐसा ही उपयोग है। बृहद्बभ्रु (Beaver) की पूंछ अत्यन्त घनी होती है। यह केवल आसन का ही नहीं प्रत्युत एक मजबूत पतवार का भी काम देती है।

सांकेतिक पूंछ

संकट के समय बृहद्बभ्रु की पूंछ खतरे की घंटी बन जाती है। "सांकेतिक पूंछ" (Warning tails) विभिन्न आकार की हो सकती हैं। इस संबन्ध में विशेषकर खरगोश की पूंछ का उदाहरण दिया जाता है। जब यह जन्तु बहुत तेजी से भागता है, उस समय श्वेत "छिन्नपुच्छ" (bob) दिखाई देने लगता है जिस को देख कर आसपास के खरगोशों को आगाही हो जाती है और वे भी सिर पर पैर रख कर भागने लगते हैं। यह शत्रु के आगमन का संकेत है। हिरण की पूंछ भी इसी प्रकार अपनी जाति को आगाह करने का काम करती है। इस की पूंछ घने बालों की होती है और नाल के आकार की तरह मुड़ी रहती है।

पूंछ से कम्बल, छत्र औ चंवर का काम

दक्षिण अमेरिका के "चींटी भक्षी दत्य" (Giant ant eater) की पूंछ बहुत घनी पंखे के आकार की होती है और धूप के समय छत्र की तरह उपयोग में आती है। अन्य अति घनी पूंछ वाले स्तनधारियों में इस अंग का कम्बल के रूप में उपभोग होता है। किन्तु बालों का सूक्ष्म गुच्छा यदि पूंछ के सिरे पर ही हो तो यह चमर (fly whisk) का काम देती हैं। गाय, बैलों और घोड़ों में यह चमर मक्खी और मच्छर उड़ाने के काम आता है। याक और बारह सिंगों में यह चमर बहुत घने और लम्बे होते हैं जिस को मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये वास्तविक स्वामियों से अपहरण क स्वयं उसी उपयोग में लाते हैं।

पूंछ द्वारा गृह रक्षा

लोठक (Pangolin) अपनी पूंछ के सिरे को आड़ की जगह काम में लेता है जो सोते समय बिल के मुंह में अड़ी रहती है। इस प्रकार गृह-द्वार पर इस आड़ के होने से रात्रि को आश्रय के लिये फिरने वाले मनमाने मेह-मान लोठक की उपस्थिति में उस के मकान पर अधिकार की चेष्टा न कर सकें।

लिपटने वाली पूंछ

पेड़ों पर चढ़ने वाले अनेक जन्तुओं में लिपटने वाली पूंछ होती है। इस के विकास में निश्चय ही लाखों वर्षों का समय लगा होगा। बन्दरों और लंगूरों में पूंछ अधिक लम्बी होती है। मकड़ी-बन्दर (Spider monkey) में यह और भी लम्बी होती है, जिस को शाखाओं में लपेट लेने के पश्चात यह जानवर, केवल अपनी पूंछ के बल पर, हाथ पैर छोड़ कर लटक जाता है। अन्य दूसरे बन्दरों में पूंछ 'पंचम हस्त' का काम देती है। अजायबघर (कौतुकागार) में यह देखने में आया है कि दर्शक गणों के द्वारा अर्पित फल-फूलों को उठा कर मुंह में रखने का काम पूंछ से ही लिया जाता है। ब्राज़ील में पेड़ों के चींटी भक्षी (Tree ant eater) बर्रों के छत्तों की खोज में पूँछ को एक शाखा से दूसरी शाखा पर भूलने के काम लाते हैं। गायना के जंगल प्रदेशों के भालूसम किंकाजू (Kinkajou) की पूँछ विशेष रूप से लम्बी होती है जिसका उपयोग पेड़ों को पकड़ कर चढ़ने में किया जाता है। वृक्ष सेही (Tree porcupine) और बिल्ली वर्ग के बिन्-चुरोग (Binturony) जन्तु दोनों में ही पुष्ट "पूं

बाजू"(hand Tails)है। आस्ट्रेलिया और अमेरिका के ओपोसम (opossum)में करीब आधी दर्जन बच्चे होते हैं। ये नवशावक अपनी पूँछ के पट्टे से लटक कर माता की पीठ पर सवारी गांठे रहते हैं और प्रत्येक शावक अपनी पूँछ को मां की पूँछ से बड़ी मज़बूती के साथ गूँथे रखता है। उपर्युक्त उदाहरण यह प्रमाणित करता है कि लिपटने वाली पूँछ प्रायः सब ही जन्तुओं में जन्म से ही पूर्णतया विकसित होती हैं।

पूंछ द्वारा रक्षा और आक्रमण

पूँछ का अस्त्र शस्त्र के रूपमें उपयोग की सम्भावना सर्व प्रथम छिपकिली वर्ग में पाई जाती है। प्रायः इनमें पूँछ लगभग २ फ़िट कांटेदार थी जिस की पछाड़ के आगे शायद ही किसी शत्रु के पैर टिक सकते हों। आधुनिक छिपकलियों में भी पूंछ ही इनका रक्षा और आक्रमण का प्रमुख साधन है। आस्ट्रेलिया के मोलोक Moloch), मेक्सिको की झालरदार छिपकली, मिश्र की कषापुच्छी (Mastigures) और दक्षिण अफ्रीका की कटिबन्धपुच्छी (Zonurus)आदि जिनकी पूँछ बहुत ज्यादा कांटेदार अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित नहीं होती क्षण भर के आदेश मात्र में पूँछ शरीर से पृथक हो जाती है। भक्षक शत्रु तड़फड़ाती पूँछ के टुकड़े में व्यस्त हो जाता है और इस बीच में छिपकली अपने प्राण बचा कर निकल जाती है।

चाबुक पूंछ

गोहरे (Varanus)अपनी पतली और लम्बी पूँछ को चाबुक की तरह उपयोग कर सकते हैं। अजायबघरों के कितने ही रखवालों की पिंडली और टखनों पर इस चाबुक की फटकार से असीम वेदनापूर्ण नील पड़ जाते हैं। मगरमच्छ की पूँछ इतनी सशक्त कांटेदार और लम्बी होती है कि भारतवर्ष के अनेकों तीर्थ स्थानों पर प्रतिवर्ष कितने ही नर-नारी पूँछ के झपट्टे से अपने प्राण गवां देते हैं। इसकी पूँछ का कार्यक्षेत्र यहीं तक सीमित नहीं है परन्तु कभी-कभी तो पूँछ की फटकार से देशी नाव तक उलट जाती है और उसमें बैठे हुए यात्री व खेवट वहीं जल समाधिस्थ हो जाते हैं।

सांपों की पूंछ

बहुत से सर्प अपने सारे शरीर का भार पूंछ के सिरे पर डाल कर दिवार के सहारे खड़े हो जाते हैं और अल्प समय के लिए तो बिना ही किसी सहारे के भी। समुद्री सर्पों में पूँछ शरीर के समान ही चौड़ी परन्तु चपटी होती है। यह शरीर को आगे धकेलने और खेने दोनों ही काम आती है। झनझनिया सर्प (Rattle snake) की पूँछ घात और रक्षा दोनों ही प्रकार का शस्त्र है। यदि शत्रु इस सर्प की आवाज़ सुनकर भी सतर्क नहीं होता और समीप आता है तो उसे इस असावधानता का असीम ऊँचा मूल्य चुकाना पड़ता है। इसकी पूँछ के सिरे पर छल्ले बने रहते हैं जिनकी खड़खड़ाहट काफी दूर तक सुनाई देती है।

पूंछ द्वारा मनो भावों की सूचना

पूँछ मनोभावों का तापमापक यंत्र भी है। बिल्ली गुस्से में अपनी पूँछ फुला लेती है और उसके बाल खड़े हो जाते हैं जिससे उसकी आकृति और भी भयानक हो जाती है। कुत्ता अपने स्वामी को देखते ही प्रेम-प्रदर्शन में अपनी पूँछ खूब इधर-उधर हिलाता है। गुस्से में अकड़ के साथ पूँछ को पीठ से ऊपर रखता है। और भय अथवा डर के समय पूँछ पैरों के बीच में दबाकर भाग जाता है इस प्रकार "दुम दबाकर भागने" का मुहावरा सम्भवतः यहां से ही प्रचलित हुआ हो। रण-क्षेत्र में कुत्तों के

विशेष वर्ग (जो स्काउटिंग और पहरेदारी के काम में लाये जाते हैं) में सीधी पूँछ व सतर्क पूँछ या ऊपर मुड़ी हुई पूँछ सैनिक दृष्टि-कोण से चिन्ताजनक स्थिति की द्योतक होती है।

मछलियों की पूंछ

सम्भव है सब से पहिले पूँछ शरीर को केवल आगे धकेलने की उपयोगिता के लिये थी। प्राचीन जन्तुओं में यह अब भी उसी काम में लायी जाती है और मछलियों में तो आज दिन तक पूँछ का वही उपयोग है परन्तु डंक मयूख (Sting ray) नामक मछली में अंसवाज (pectoral fins) तैरने का काम देते हैं और पूँछ एक शस्त्र का । सुमुद्री घोड़ामछली (sea horse) की पूँछ हंसिये की तरह मुड़ी होती है और हाथ की क्षमता रखती है।

पक्षियों की पूंछ—आभूषण

पक्षियों में पूँछ केवल पैरों को सहारा देती है। पेनग्विन (Penguin) की पूँछ ही पक्षी-जगत में ऐसा अपवाद है जो आसन का काम देतीं है। पंखों से सुसज्जित पूँछ पक्षियों का अनुपम सुन्दर आभूषण हैं जिसका ऋतुकाल में मनोवांछित-साथी चुनाव के निर्णय में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। स्वर्गी-पक्षी (bird of paradise) तथा मोर इत्यादि पक्षियों में नर के पंखों में अनेकानेक रंगों का ऐसा विचित्र संमिश्रण होता है कि उन की छटा को देख कर किसका मन मोहित न हो जाय। नृत्य के समय तो यह दृष्य और भी अधिक सुन्दर और मनोमोहक प्रतीत होता है। यह सब विज्ञापन मनोनीत नारी को प्रेम-दर्शन द्वारा रिझाने के साधन हैं। ये पंख प्रतिवर्ष गिर जाते हैं और इन के स्थान पर ऋतुकाल से पूर्व नये आ जाते हैं।

कुठियार पूंछ

पूंछ के कुछ घरेलू उपयोग भी हैं। अफ्रीका की एक विशेष भेड़ जाति में और एक प्रकार के चूहों में पूंछ माल गोदाम (कुठियार) बन जाती है। खाद्य-सामग्री की बहुतायत के समय आहार वसा (F) के रूप में संचित होता रहता है जिस से पूंछ फूल फूल कर कुप्पा हो जाती है। खाद्याभाव के समय शरद ऋतु में एकत्रित आहार पर ही जन्तु निर्भर रहता है, पूंछ शनैः शनैः पटकती जाती है और सूक्ष्म दशा को पहुँच कर एक साधारण पूंछ रह जाती है।

दयानन्द दर्शन

सुखदेव विद्यावाचस्पति

लेख का शीर्षक 'दयानन्द दर्शन' कुछ सोच कर रखा गया है। इस शीर्षक से भिन्न रुचि रखने वाले सभी अपने २ दृष्टिकोण से भगवान् दयानन्द के दर्शन कर सकते हैं। लोगों ने उनके साथ रह कर, व्याख्यान सुन कर तथा महर्षि के ग्रन्थों को पढ़ कर या उनके विषय में विभिन्न रूचियों के व्यक्तियों से कुछ सुनकर महर्षि दयानन्द को नाना रूपों से देखा है। ऊपरिलिखित सभी उपाय व्यक्तियों के देखने के लिए व्यवहार में लाए जाते हैं। योगदर्शन में एक सूत्र आता है 'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः' (योग २-४४) अर्थात् स्वाध्याय से अभीष्ट देवता के साथ सम्बन्ध हो जाता है उसका साक्षात्कार हो जाता है और वही देव स्वाध्यायशील व्यक्ति के प्रत्येक कार्य में सहायक होता है, उसका पथ प्रदर्शक होता है। यदि

पुस्तक-परिचय

समालोचना के लिये पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं। एक प्रति आने पर केवल प्राप्ति-स्वीकार ही देना सम्भव होगा।

बृहत्तर भारत लेखक—श्री चन्द्रगुप्त वेदालङ्कार। प्रकाशक—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार। अनेक चित्र। मूल्य सजिल्द ७), अजिल्द ६), डाक व्यय अलग।

आज भारतीय समाज को अपने अतीत-कालीन गौरव की कुछ धुंधली सी स्मृति रह गई है और इसी के आधार पर वह बार बार कहता है: 'हमारा अतीत उज्वल था, हमने ही कभी संसार को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया था, भारत ही संसार का आदि गुरु है', परन्तु वास्तव में यह बहुत कम लोग जानते हैं कि वह कौन सी शुभ घड़ियां थीं जब हमने संसार को ज्ञान दिया और वे कौन से प्रातःस्मरणीय हमारे पूर्वज थे जिन्होंने विदेशों में जाकर भारतीय-संस्कृति की विजय दुन्दुभि बजा दी।

एक समय था जब कि हमारी संस्कृति के सन्देशवाहक खोतन, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया व तिब्बत गए और उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रसार किया। अशोक के समय महेन्द्र संघमित्रा बद्धसाल आदि विद्वान् लंका भेजे गये। आर्हत विरोचन ने खोतन में जाकर प्रचार किया और कश्यपमातङ्ग और धर्मरक्ष ने चीन को जाकर शाक्य मुनि का शिष्य बना दिया। शान्तरक्षित पद्मसम्भव आदि कितने ही भारतीय विद्वान् हिमालय की ऊंची ऊंची चोटियों को पार कर तिब्बत गये और उसे बुद्धदेव के सन्देश से अवगत किया। परन्तु इनकी परम्परा यहीं समाप्त नहीं हुई। इस के बाद भी दल के दल विदेशों में भेजे गये जिन्होंने स्वदेश से दूर विदेशों में भारत की सांस्कृतिक दिग्विजय की पताका फहरा दी।

भारत के ये संस्कृति के अग्रदूत पश्चिम में भी गये। उस समय भारत का व्यापार मिश्र रोम व यूनान के साथ होता था। वे भी हमारे ज्ञान से आलोकित हुए। इनमें अरब तो भारत का सबसे अधिक ऋणी है। भारत ने ही उसे ज्योतिष, गणित, संगीत व चिकित्सा-शास्त्र का ज्ञान दिया। ईरान के खलीफा हारूनल रशीद ने भारतीय वैद्यों को राजदरबार में आमन्त्रित किया था उसने पञ्चतन्त्र महाभारत व अन्य विभिन्न नीति ग्रन्थों का ईरानी में अनुवाद कराया। प्रसिद्ध अरब दार्शनिक जाहिज़ ने लिखा है: 'भारतीय यद्यपि काले हैं पर गणित और ज्योतिष में बहुत बढ़े हुए हैं। चिकित्सा में वे आगे हैं उनके पास असाध्य रोगों की अचूक औषधियां हैं। मूर्तियां, चित्र और भवन बनाने में भी वे चतुर हैं। शतरंज का खेल उन्हीं का निकाला हुआ है जो बुद्धि का सब से अच्छा खेल है। वे विष दूर करने व दर्द उतारने के मन्त्र जानते हैं। उन का संगीत बड़ा मनोरम है। सब प्रकार का नाच वे जानते हैं। कविता का भण्डार है, भाषणों की भरमार है। दर्शन, साहित्य व नीति भी उनके पास है।' यह सब भारतीय संस्कृति की दिग्विजय का ही परिचायक है।

हमारे प्रचारक पूर्वी द्वीपों में भी गये। जावा, सुमात्रा, बालि, बोर्नियो, स्याम व मलाया में उन्होंने भारतीय उपनिवेशों की स्थापना की। भारत का ब्राह्मण धर्म वहां का राज-धर्म बन

गया। शिव, विष्णु आदि भारतीय देवता ही उनके पूज्य देवता बन गये। बालि तो आज भी एक हिन्दू द्वीप कहा जा सकता है। कम्बोज के अङ्कोरवत् थोम के मन्दिर की दीवारों पर आज भी रामायण, महाभारत व विभिन्न पुराणों की गाथायें चित्रों में अङ्कित हैं। ऐसे ही अनेकों मन्दिर व मूर्तियां हमारी संस्कृति के प्रसार के चिन्हों को प्रकट कर रहे हैं।

परन्तु उस के बाद एक समय ऐसा भी आया जब कि हमारे ये पूर्वी उपनिवेश इस्लाम की शरण में चले गये। इस का क्या कारण था? जब भारत अपने आन्तरिक संघर्षों व मुस्लिम आक्रमण से अपनी रक्षा में तल्लीन था और उस के बाद जब उसे दीर्घकालीन मुस्लिम शासन की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी तब वह अपने इन भाइयों की सुध बुध न ले सका। धीरे धीरे आगामी सन्तति यह भी भूल गई कि ब्रह्मपुत्रा से परे भी कोई उसके अपने ही भाई बन्धु रहते हैं। परन्तु ये देश सदैव नवीन सन्देश के लिए भारत की ओर ताकते रहे। भारत को ये अपना धर्मगुरु मानते थे और उत्सुकता से प्रतीक्षा करते थे कि कोई विद्वान् भारत से आये और हमें ज्ञान की भिक्षा प्रदान करे। भारत तो उनके पास न जा सका परन्तु इस्लाम के प्रचारक वहां जा पहुँचे। उन्होंने उन देशों के निवासियों से कहा कि हम भारत से आये हैं। भारत के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा रखने वाली वहां की जनता भारत का नाम सुनते ही उनका अनुसरण करने लगी। देखते २ वे देश इस्लाम के रंग में रंगते गये।

आज भी अवसर है कि हम अपने उन बिछुड़े भाइयों को गले लगायें और पुनः उन्हें अपनी उच्च संस्कृति का संदेश दें।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने हमारे पूर्वजों की उपर्युक्त सांस्कृतिक दिग्विजय का दिग्दर्श कराया है साथ ही यह भी बताता है कि आ उन देशों में यह संस्कृति किस रूप में प्राप्त हो है। पुस्तक में तीन भाग हैं। प्रथम भाग बौद्ध-कालीन भारतीय प्रचारकों की अम कहानी का उल्लेख है। द्वितीय में भारत आर्थिक व राजनैतिक विकास का विस्तृत वर्ण है। तृतीय भाग प्राग्बौद्ध-कालीन विस्तार प्रकट करता है। इसके बाद परिशिष्ट के रूप भारत में भ्रमण करने वाले चार प्रमुख चीन यात्रियों--फाहियान, सुङ-युन, ह्वेन-साङ औ ईचचिङ् की भारत में सरस्वती यात्रा व वर्णन किया गया है और उसके भी बाद विदे में जाने वाले भारतीय प्रचारकों की समयानुसा तालिका तथा समसामयिक ऐतिहासि व्यक्तियों की सारणी देकर पुस्तक को पूर्ण कि गया है। साथ ही विभिन्न देशों के हमा संस्कृति के परिचायक अनेकों अवशेषों के चि तथा भौगोलिक मानचित्र भी दिये गये हैं भारत की सांस्कृतिक दिग्विजय का परिचय पा के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को एक बार इस पारायण अवश्य करना चाहिये। —यश

लहसुन : प्याज दूसरा संशोधित परिवर्धित संस्करण। लेखक--श्री रामेश बे आयुर्वेदालङ्कार। मिलने का पता—हिमाल हर्बल इन्स्टिट्यूट, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार। पृष्ठ संख्या २००। मूल्य ढाई रुपये। डाक ख सात आने।

प्रति दिन सामान्य रूप से घर घर में भोज के साथ जिस प्याज और लहसुन का प्रयो किया जाता है इस में क्या रहस्य भरा पड़ा इस का सामान्य जनता को ज्ञात नहीं। इ साधारण चीजों के विधिवत् प्रयोग से तपेदि जैसी भयंकर बीमारी से भी मुक्ति मिल सकती है

गुरुकुल समाचार

ऋतु और स्वास्थ्य

आश्विन मास में मौसम ने बड़े विलक्षण रंग दिखलाए। वर्षा तो बन्द रहा पर धूप-छांह की खेल बराबर चालू रही। कभी गगन में मेघ घुमड़ आते थे. कभी निरभ्र और तारका-वली मंडित आकाश शरद्काल की अगवानी करने लगता था। इस वार वर्षण पर्याप्त हो जाने से समीप के ताल-तलैया भरे पड़े हैं। उन में लगी हुई कुईयां और सिंगाड़े बहार दे रहे हैं। प्रभात में शीत और दिवस को विकलता उप-जाने वाली धूप होती रही है। परिणामतः मलेरिया खांसी, जुकाम, श्लेष्मज्वर (इन्फ्लुएन्जा) आदि के आक्रमण गुरुकुल शिक्षा नगरी में होते रहे हैं। इस के अतिरिक्त गुरुकुल के परिवारगृहों में इस वार आन्त्रज्वर (टाईफाईड) का विशेष प्रकोप रहा। ब्रह्मचारियों में आन्त्रज्वर के रोगी विशेष नहीं हुए। ऋतुज्वर (मलेरिया) का तो यह महीना ही होता है। अतः कुछ ब्रह्मचारियों को इस का प्रभाव सहन करना पड़ा है। स्वास्थ्यकोष्ठक द्वारा अन्यत्र ब्रह्मचारियों का विवरण दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने अनेक उदाहरण देकर विस्तार के साथ यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि लहसुन जितने अधिक रोगों के लिए अचूक चिकित्सा है उतनी अधिक उपयोगी शायद अन्य कोई भी वनस्पति नहीं है। लहसुन व प्याज द्वारा हम स्वयं घर बैठे ही निमोनिया, इन्फ्लुएंज़ा, कान, नाक और गले के रोग तथा इसी प्रकार अन्य सभी रोगों का उपचार कर सकते हैं। इस के अनुसार आचरण करने से हमें छोटे २ रोगों के लिए बार-बार डाक्टरों, वैद्यों व हकीमों के द्वार खटखटाने की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक गृहस्थ चिकित्सक व अन्वेषक को पुस्तक की एक प्रति अपने पास अवश्य रखनी चाहिये। —यश

विद्यालय-विभाग

विद्यालय विभाग का अध्ययन अध्यापन नियमित चल रहा है। अब इस विभाग में बालचर-शिक्षा (स्काउटिंग), संघ-व्यायाम और कवायद (ड्रिल) का प्रारम्भ नए प्रबन्ध और नए उत्साह के साथ प्रारम्भ हुआ है। सायंकाल के समय छोटे ब्रह्मचारियों की मंडलियां वारी वारी से बागवानी (कृषि-कर्म) भी करती हैं। सभी विभागों की छमाही परीक्षाएं दीपावली से पूर्व समाप्त हो जायेंगी। ब्रह्मचारी स्वाध्याय में मनोयोग किए हुए हैं।

आश्रम-भवन में वृद्धि

विद्यालय विभाग में इस वर्ष ६ ठी और ७ वीं कक्षाएं बढ़ जाने से उन के छात्रावास का प्रबन्ध करना एक समस्या थी। क्योंकि पूर्व निर्मित छात्रावास केवल पांच श्रेणियों के लिए भी अपर्याप्त था। अब विद्यालय भवन के समीप एक विस्तृत भवन को ६ ष ७ म कक्षाओं के छात्रावास के लिए तैयार किया जा रहा है। उस की फर्शबन्दी आदि का काम चालू है। दापावली से पूर्व तक वह तैयार हो जायेगा।

श्री गांधी-जयन्ती

दो अक्टूबर को समस्त कुलवासी विद्यालय के प्रार्थना भवन में समवेत हुए और श्रद्धा भरे भावों से सब ने विश्ववंदित बापू जी की जन्म जयन्ती मनाई। छात्रों और गुरुजनों ने बापू जी

के सर्वतोभद्र जीवन और विशद कार्यकलाप पर अनेक दृष्टियों से दृष्टिपात करते हुए उन की स्मृति में श्रद्धा-सुमन अर्पित किए।

मान्य अतिथि

इस मास सयुक्त प्रान्तीय सरकार के जन शिक्षा विभाग के संचालक (डायरेक्टर) राय-बहादुर चुन्नीलाल साहनी महोदय गुरुकुल पधारे। आपने गुरुकुल के समस्त विभागों की परिक्रमा और निरीक्षण कर के बड़ा हर्ष और परितोष प्रकट किया।

विजय दशमी

अनेक वर्षों के पश्चात् इसवार कुल में विजय दशमी का पर्व बड़े उल्लास और स्नेह से मनाया गया। और वर्षों में तो इन दिनों दीर्घा-वकाश हुआ करते थे अतः इस पर्व पर कोई विशेष आयोजन नहीं हो पाता था। गुरुकुल की प्राचीन परम्पराओं के अनुसार इसवार विजय दशमी पर क्रीड़ा-सान्मुख्यों, खेलों और अन्य मनोरञ्जक आयोजनों की बड़ी बहार रही। छोटे छात्रों की ओलम्पिक ढंग की खेलें बहुत मन-भावनी रहीं। अनेक छात्र मिठाई और फलों के भागी बने। रामदर्शन की सभा में कुलवासियों ने समवेत होकर रामायण के वीर पात्रों की जीवन-चर्या और जीवन-संदेश पर श्री आचार्य जी की अधिनायकता में विचार और गुणकीर्तन किया।

गोशाला और कृषि

गुरुकुल की गौशाला इस समय अच्छी दशा में है। अतः ब्रह्मचारियों को गोदुग्ध अच्छी मात्रा में प्राप्त हो रहा है। सुवर्षा के कारण इस वार स्वाभाविक घास-चारा तथा खेतों में लगाया हुआ चरी का चारा भी पुष्कल मात्रा में है। शीतकालीन गेहूं की फसल के लिए खेतों की जुताई और सफाई प्रारम्भ हो गई है। गँगा पार की पुण्यभूमि (पुरानी भूमि) में बैंगन, टमाटर और मिर्चा आदि शाकभाजियां लहलहा रहीं है। दीपावली आते ही वहां से गुरुकुल को ताजी शाक-भाजी पुष्कल मात्रा में मिल सकेंगी।

वंगीय सरकार द्वारा आयुर्वेद स्नातकों की स्वीकृति

बंगीय सरकार की आयुर्वेद-समिति ने गुरुकुल के आयुर्वेदालंकारों को स्वीकृत किया है। अतः बंगाल में रहने वाले गुरुकुल के आयुर्वेद-विभाग के स्नातक उक्त आयुर्वेद-समिति (जनरल कौन्सिल एण्ड स्टेट फेकल्टी ऑफ आयुर्वेद मेडिसन, १-२ बेलतल्ला रोड, पोस्ट-भवानीपुर, कलकत्ता) द्वारा अपने को रजिस्टर्ड करवा सकते हैं।

आप वेद का अध्ययन करेंगे, जो कि स्वाध्याय का वास्तविक पुरुषार्थ है तो उसके कर्ता परमात्मा के साथ आपका सम्बन्ध होगा, उसका साक्षात्कार होगा और वही आपके जीवन में सदा आपके पथ प्रदर्शन का कार्य करेगा। यही स्थिति प्रत्येक अभीष्ट देवता के दर्शन के लिए समझी जा सकती है। आज महर्षि दयानन्द स्वर्गस्थ हैं। न तो हम इस समय उनके सहवास में रह सकते हैं और न उनके व्याख्यानों को ही सुन सकते हैं। पर हम चाहते अवश्य हैं कि किसी तरह उनके दर्शन हो सकें और वे अब भी हमारी इस आर्य जाति के पथ प्रदर्शक बन सकें। इस में कोई सन्देह नहीं कि विभिन्न विद्वानों के मुख से महर्षि के विषय में सुन कर भी उन के दर्शन किये जा सकते हैं, क्यों कि यह भी किसी के दर्शन करने का उपाय अवश्य है। पर यह पूर्णरूप से विश्वसनीय नहीं। कम से कम इस उपर्युक्त उपाय से हम महर्षि का उतना पूर्ण, सत्य, निश्चित एवं स्थायी दर्शन नहीं कर सकते जितना उनकी कृति से कर सकते हैं। किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि संसार में सब से सच्चा मित्र पुस्तकें होती हैं, पुरुषों की वाणी पर कुछ विश्वास नहीं, क्योंकि उन में तो क्षण-क्षण में परिवर्तन की सम्भावना है, आज कुछ कहा और कल कुछ कहा, परन्तु पुस्तक पर तो स्याही से जो कुछ लिख दिया गया पुस्तक उसी बात को अपने मरते दम तक दोहरायगी, वह अपनी कही बात से पलटेगी नहीं'।

यह भी ठीक है कि इस दृष्टि से भिन्न २ विद्वानों के महर्षि के विषय में लिखे ग्रन्थ भी महर्षि का दर्शन करा सकते हैं। इससे हमें इन्कार नहीं करना चाहिये। पर ये ग्रन्थ भी महर्षि के दर्शन के विषय में उतनी समता स्थापित नहीं कर सकते जितनी कि उनके अपने ग्रन्थ कर सकते हैं, क्योंकि विभिन्न विद्वानों के अपने २ पृथक् २ दृष्टिकोणों की छाप उनके अपने ग्रन्थों पर है, जो महर्षि के दर्शन में विषमता पैदा कर सकते हैं, केवल विषमता ही नहीं प्रत्युत विरुद्ध दर्शन भी उत्पन्न कर सकते हैं।

इस लिए महर्षि के दर्शन का सच्चा उपाय अब एक ही अवशिष्ट रह जाता है, और वह है उनके ग्रन्थों का अध्ययन और प्रचार। यदि हमारी आर्य जाति उन्नत होना चाहती है, और वह यह चाहती है कि महर्षि इस समय भी हमारे पथ प्रदर्शक का कार्य करें तो इसका केवल मात्र उपाय यही है कि हम उनसे अपना सम्बन्ध स्थापत करें। यह सम्बन्ध उनके दर्शन या साक्षात्कार से ही स्थापित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध या दर्शन को केवल भौतिक दृष्टि से ही नहीं सोचना चाहिए। इनका भौतिक रूप तो बहुत गौण है। यदि यह भौतिक दर्शन या सम्बन्ध जब अपने अभौतिक आध्यात्मिक रूप या हमारे विचार जगत् में सच्ची कल्पना के रूप में परिणत हो जाता है तभी यह हमारे चरित्रों पर अपना प्रभाव डालता है। स्थूलरूप में तो हम संसार के प्रत्येक प्राणी और पदार्थ को देखते हैं। पर वह हम पर सदा वैसा प्रभाव नहीं पैदा करता जैसा उस के विषय में शान्त भाव से विचारने पर या मानस चित्र पैदा करने पर प्रभाव होता है। इस प्रकार के प्रभावोत्पादक एवं सच्चे महर्षि के दर्शन का उपाय उन के ग्रन्थों का अध्ययन करना ही है।

मुझे ऐसा लिखने में कुछ भी हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए कि हम महर्षि के ग्रन्थों का यथोचित अध्ययन नहीं करते, और तभी हम उन के दर्शन एवं पथ प्रदर्शन से वंचित होते जा रहे हैं। यही कारण है कि आर्य समाज

अपने प्रारम्भिक काल में जिस तीव्र गति से उन्नति कर रहा था और सब सभ्य समाजों के अग्रभाग में दिखाई देता था, आज वह स्थिति नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि आज हम ने अपने पथ प्रदर्शक को भुला दिया है।

आर्य समाज ने अपने से भिन्न विचार वालों के साथ बहुत से शास्त्रार्थ किए। इस में कोई शक नहीं कि वे सद्भावना से ही प्रेरित हो कर किए गये। मुझे अपने जीवन में बहुत से शास्त्रार्थों को सुनने का और स्वयं करने का भी अवसर प्राप्त हुआ है।

इन शास्त्रार्थों को सुनने के पश्चात् मुझे जिन कतिपय विचारों ने प्रभावित किया है, उनमें से एक विचार यह है—

मैंने कई अवसरों पर देखा कि एक आर्य समाजी विद्वान् किसी पादरी से शास्त्रार्थ कर रहे हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि पादरी ने अपनी बाइबिल की अपेक्षा आर्य समाज के ग्रन्थों का अधिक बारीकी से अध्ययन किया है और आर्य समाजी विद्वान् ने अपने आर्य समाज के ग्रन्थों की अपेक्षा बाइबिल का अधिक सूक्ष्मता से अध्ययन किया हुआ है। इसका क्या कारण है?

इसके कई कारण हो सकते हैं। मैं इस समय सभी कारणों को गिनाने की चेष्टा नहीं करता। अपने प्रतिपक्षी के ग्रन्थों का विशेष सूक्ष्मता से अध्ययन करने का कारण यह भी ठीक ही है कि प्रतिद्वन्द्विता में दोनों को एक दूसरे के पक्ष का खण्डन करना है। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी अपने ग्रन्थों का अध्ययन उतनी सूक्ष्मता से क्यों नहीं करते। अन्य कारणों के अतिरिक्त मेरी तुच्छ सम्मति में इस प्रमाद का कारण हमारी प्रसुप्त चेतना में छिपा हुआ है, और वह यह है कि हम समझते हैं कि ये ग्रन्थ तो हमारे अपने हैं, इनका पढ़ना आसान है, इन्हें किसी भी समय पढ़ा जा सकता है। इस प्रकार की प्रसुप्त चेतना अपने ग्रन्थों के अध्ययन को (जो कि अपने इष्टदेव दर्शन का कारण हैं) सुदूर भविष्य के लिए छोड़ देती है और इस प्रकार इनका अध्ययन सदा के लिए भविष्य के गर्भ में रह जाता है। इस प्रकार हम अपनेपन के सद्गुण का दुरुपयोग करते हैं और उसे दोष बना देते हैं।

प्रचार के दो रूप हैं निषेधात्मक या खण्डनात्मक (NEGATIVE) और विधेयात्मक (POSITIVE)। प्रचार के लिए दोनों रूपों की आवश्यकता है। पर हम इससे इन्कार नहीं कर सकते कि आर्य समाज में ऐसा समय बहुत रहा है जब प्रचार के निषेधात्मक रूप को उसके विधेयात्मक रूप की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता रहा है। उसका अन्तर्निहित कारण शायद यही रहता है कि अपनेपन के कारण हमने अपने महर्षि जैसे इष्ट देवताओं के दर्शन कराने वाले ग्रन्थों का स्वाध्याय पर्याप्त सूक्ष्मता से नहीं किया।

अतः यदि आज दीपावली के दिन स्वर्गस्थ महर्षि के दर्शन हम पुनः करना चाहते हैं तो हमें उनके ग्रन्थों का अध्ययन पुनः प्रारम्भ कर देना चाहिए तभी इस अपने इष्टदेव से सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा और हम उसके क्रान्तिकारी स्वरूप का दर्शन कर सकेंगे।

उसके स्वरूप की क्रान्तिकारिता उसके विचारों की क्रान्तिकारिता से प्रकट होती है। उसके विचारों में सबसे बड़ी क्रान्त उसके दार्शनिक विचारों में प्रकट होती है। इसका दिग्दर्शन हम किसी अन्य लेख में कराने का प्रयत्न करेंगे।

जन्तु-शास्त्र के पारिभाषिक शब्द

चम्पत स्वरूप

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में जीव-विज्ञान के उपाध्याय श्री चम्पत स्वरूप इन्टर मीडियेट तथा हायर सेकिन्ड्री श्रेणियों के लिए जन्तु शास्त्र पर एक पाठ्य पुस्तक लिख रहे हैं। उस पुस्तक में वे जिन परिभाषिक शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं उनमें से कुछ शब्द क्रमशः यहां दिये जाया करेंगे। यदि पाठक गण इस शब्दावली के विषय में अपने विचार 'रुकुल पत्रिका' में छपने के लिए भेजने की कृपा करें।—संपादक।

Abdomen	उदर
Abdominal cavity	उदर गुहा
Abdominal vein	उदर शिरा
Accommodation, power of	संधान-शक्ति
Accessory of ands	अतिरिक्त ग्रन्थियां
Acetabulum	वंक्षणोद्खल
Aconstic spot	श्रुतिविषयक स्थल
Acoelowata	अगह्वरिल
Actinozoa	अंशुजन्तु
Adrenal	अधिवृक्किक
Adult	वयस्क
Aerated	ओषजनित
Aerobic	वायुजीवी
Afferent	अभिगामी
Alary muscles	पत्ताकार पेशियां
Alimentary canal	महास्रोत
Alternate	एकान्तर
Alternation of generations	सन्ततियों का एकान्तरण
Amoeba	विपरिणामी
Amoeba proteus	विपरिणामी प्रोतुस
Amoeboid movement	विपरिणामीय गति
Amphibia	स्थल जलचर
Amphicoelous	उभयोत्खात
Ampulla	मुण्डिका
Anabolism	विधायक क्रिया
Anaeroic	अवायुजीवी
Anal cerci	गुदा लूम
Anal cirri	गुदा आसङ्ग
Anal segment	गुदा खण्ड
Anal styles	गुदा स्तम्भ
Analogous	कार्यसाम्यी
Analogy	कार्य साम्य
Anatomy	स्थूल रचना शास्त्र
Anlmone	अनिलात्मजा
Angulo-splenial	कोण कुशा अस्थि
Animal	जन्तु
Animalcule	जन्तुक
Animal pole	जन्तु ध्रुव
Ankle	गुल्फ
Ankylostoma duodenale	अराल मुखी ग्रहणी
Annelida	वलीय
Annular	वलयाकार
Anopheles	शारुक
Antenna	स्पर्शक

Anura — अपुच्छी
Anus — गुदा
Antebrachium — प्रकोष्ठ
Anthozoa — पुष्प जन्तु
Ant — चोंटी
Aorta — महाधमनी
Aortic arch — महाधमनीय चाप
Aperture — छिद्र, द्वार
Aphaded canal — औत्सर्गिक नली
Apex — शिखर
Apical — शैखर
Aponlurosis — कला वितान
Apopbysis — प्रसर
Apopyle — अपद्वार
Applndicular — अनुबन्धीय
Aptera — अगरुत्
Aquarium — जलचरशाला
Aqulous chamber — तनुजलाधानी
Aqulous humour — तनुजल
Arachnida — नीशारिका
Arachnoid fluid — नीशारिक द्रव
Arborisation — शाखा जल
Archenteron — आद्यन्त्र
Archeological — पुरातत्वीय
Areolar tissue — सान्तरित धातु
Are centralis — केन्द्र बिन्दु
Arm — प्रगंड
Arterial arch — धमनीय चाप
Artereales — धमनिका
Artery — धमनी
Arthropoda — सन्धिपदी
Articulation — ग्रन्थन
Artificial — कृत्रिम
Arytenoid — घाटिका
Ascaris lumbricoides — अन्त्रस्थ मृत्किरसम
Ascon — प्रसेवक
Asexual generation — अलैंगिक सन्तति
Asexual reproduction — अलैंगिक पुनर्जनन
Assimilation — सात्मीकरण
Astragalus — वेणुक
Atrium — द्वारी
Auditory capsule — श्रवण कोष
Auditoryepithelium — श्रवण आवरण
Auditory hairs — श्रवण रोम
Auditory nerve — श्रवण नाड़ी
Auditory organ — श्रवण अवयव
Auricle — आलिन्द
Aurelia — स्वर्णी
Automatism — स्वयंगति
Autotomy — स्वयं विच्छेद
Aves — पक्षी
Axial — अक्षीय
Axis — अक्ष, धुरी

मंगल कामना

गुरुकुल-पत्रिका चीन और भारत में सांस्कृतिक सन्देश की वाहक बने, एशिया और अन्ततोगत्वा समस्त संसार में शान्ति स्थापित करने वाले हमारे प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्धों को सम्पुष्ट करे, यह मेरी अभिलाषा है। मेरी मंगल कामना स्वीकार कीजिये।

तान् युन् शान
अध्यक्ष—विश्व भारती चीना भवन,
शान्ति निकेतन, बंगाल।

स्वास्थ्य समाचार

आश्विन मास की रिपोर्ट

श्रेणी	नाम रोगी ब्रह्मचारी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा	परिणाम
१५	कृष्णचन्द्र	श्लेष्म ज्वर	६	ठीक
१४	गुरुदेव	विषम ज्वर	५	,,
१४	यशपाल	श्लेष्म ज्वर	३	,,
१३	ओंकार	उन्माद	२० दिन से	रोगी है
१३	सत्यव्रत	ज्वर	३ दिन	ठीक
१३	केशवदेव	,,	४ दिन	,,
१२	जीवन प्रकाश	आन्त्र ज्वर	४-६-२००५ से रोगी है	
१२	मनोहर	ज्वर	५ दिन	ठीक है
११	महेन्द्रनाथ	,,	५ दिन	,,
११	राजकुमार	,,	४ दिन	,,
११	लोकनाथ	,,	३ दिन	,,
११	महेन्द्रप्रताप	ज्वर	५ दिन	,,
११	जगन्नाथ	श्लेष्म ज्वर	५ दिन	,,
११	नारायण	,,	५ दिन	,,
११	देवराज	,,	३ दिन	,,
१४	गुरुदत्त	श्लेष्म ज्वर	अभी रोगी है	
११	विश्वदेव	ज्वर	४ दिन	,,
६	रामचन्द्र	श्लेष्म ज्वर	३ दिन	ठीक है
६	ईश कुमार	ज्वर	३ दिन	,,
६	महेन्द्र सिंह	,,	५ दिन	,,
६	शरद (देहली)	चोट	५ दिन	,,
६	रघुवीर	Corneal ulcer & Granulids		अभी रोगी है
५	महेश	ज्वर, चोट	१५ दिन	ठीक है
५	कल्याण	ज्वर	५ दिन	,,
५	महेन्द्रप्रताप	,,	३ दिन	,,
५	महावीर	श्लेष्म ज्वर	अभी रोगी है	
५	भीमसेन	,,	,,	
४	योगेन्द्र	ज्वर	४ दिन	ठीक है
४	वेदप्रकाश	श्लेष्मज्वर	३ दिन	,,
४	रामपाल	ज्वर	३ दिन	,,
४	कर्मपाल	,,	३ दिन	,,
४	तिलकराज	चोट	५ दिन	,,

४	लक्ष्मण	चोट		
३	हेमचन्द्र	व्रण	५ दिन	ठीक है
३	सुभाष	श्लेष्म ज्वर	४ दिन	"
३	रमेश (काशी)	"	६ दिन	"
३	देवेन्द्र	ज्वर	५ दिन	"
३	सुरेन्द्रपाल	नेत्राभिष्यन्द	अभी रोगी है	
३	वीरेन्द्र (चूहड़पुर)	"	४ दिन	ठीक है
३	सत्येन्द्र	ज्वर	६ दिन	"
३	नरेन्द्र (कन्नौज)	चोट	१२-६-२००५ से रोगी है	
३	नरेन्द्र (पेशावर)	ज्वर	४ दिन	ठीक है
३	सुरेन्द्र	"	३ दिन	"
३	प्रेमचन्द्र	नेत्राभिष्यन्द	६ दिन	"
२	मङ्गलेश्वर	"	४ दिन	"
२	हरिश्चन्द्र	ज्वर	६ दिन	"
२	जयप्रकाश	"	४ दिन	"
१	प्रभाकर	श्लेष्म ज्वर	४ दिन	"
१	विश्वबन्धु	खुजली	४-६-२००५ से रोगी है	
१	चमनलाल	चोट	१६-६-२००५ से रोगी	ठीक है
१	जयसिंह	नेत्राभिष्यन्द	१० दिन	"
१	कमलनयन	ज्वर	५ दिन	"
१	धर्मप्रकाश	चोट	३ दिन	"
१	रामचन्द्र	व्रण	२४-६-२००५ से रोगी है	
५	रामशंकर	ज्वर	४ दिन	ठीक है

नोट—उपर्युक्त ब्रह्मचारी आश्विन मास २००५ में रुग्ण होकर चिकित्सालय में प्रविष्ट हुये थे। अब सब स्वस्थ हैं। चिरञ्जीव ब्र० रघुवीर ६ष्ठ श्रेणी को नेत्र का कष्ट अभी है। इन दिनों ऋतु-परिवर्तन के कारण श्लेष्म ज्वर (Influenza fever) का प्रकोप रहा। अब शान्ति है। सब ब्रह्मचारियों के तोल, छाती माप तथा ऊंचाई की रिपोर्ट कार्तिक मास के अन्त में दी जावेगी।

अलंकार उपाधि की स्वीकृति

संयुक्तप्रांतीय सरकार ने गुरुकुल की "अलंकार" उपाधि को स्वीकार कर लिया है। इस विषय में सरकार द्वारा प्रदत्त आदेश की प्रतिलिपि नीचे दी जाती है।

No. A – 1743/XV–1093-1974

From, Shri A. N. Sapru, I. C. S., Secretary to Government, United Provinces

To,
The Director of Education United Provinces, Allahabad.

Education (A) Deptt. Dated Lucknow. July 5, 1948.

Sir,

I am directed to say that the Governor has been pleased to order that the Alankar Degree of the Gurukula University Kangri, Hardwar, shall be recognised for purposes of appointment to posts under Government and for admission to training and technical institutions maintained or controlled by Government as equivalent to the B. A. degree of Universities established by law in the United Provinces. The order shall take effect from the date of issue of this letter.

Yours faithfully,
A. N. Sapru,
Secretary.

No. A–1743 (1)/–V–1093-1947

Copy forwarded for information and guidance to all other heads of Departments, Commissioners of Divisions, including Deputy Commissioner incharge Kumaun Division, Distreict Officers, District and Sessions Judges, the Secretary to Her Excellency the Governor, the Military Secretary to Her Excellency the Governor, the Secretary to the Public Service Commission, the Secretary to the Legeslative Assembly Department, the Secretary to the Legislative Council Department, the Advocat General the Examiner, Local Fund Accuounts, the, Chief Inspector of offices and Stamps and the Superintendent, Printing and Statationery, United Provinces.

Copy also forwarded for information to all Departments of the Secretariat, including the Public works Department.

By order,
A. N. Sapru,
Secretary to Government, United Provinces.

PSUP L. 296 Genl–12-7-48-700

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल-पत्रिका

मार्गशीर्ष २००५

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

वर्ष १ **गुरुकुल-पत्रिका** अङ्क ४

व्यवस्थापक	सम्पादक	
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	श्री सुखदेव	श्री रामेश बेदी
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।	विद्यावाचस्पति।	आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

मूल्य देश में ४) वार्षिक — एक प्रति
विदेश में ६) वार्षिक — छः आने

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

ताम्रलिप्ति का विद्यापीठ

शंकरदेव विद्यालंकार

बंगाल के मेदिनीपुर जिले में रूपनारायण नदी के मुहाने पर जहां संप्रति तामलुक नामक कस्बा अवस्थित है, वहीं पर पुराकाल में ताम्रलिप्ति नगरी विद्यमान थी। प्राचीन भारत में वह व्यापार-वाणिज्य, विद्या-संस्कृति और बौद्ध धर्म का महान् केन्द्रस्थान बनी हुई थी। भारत के पूर्वीय तट का वह सबसे बड़ा पोताश्रय (बन्दरगाह) थी। सुदूर पूर्व और परले हिन्द से आने वाले सभी जहाज यहीं पर लंगर डाला करते थे। फाहियान ने यहीं से एक व्यापारी जहाज पर चढ़ कर सिंहल-देश को प्रयाण किया था। उसका जहाज चौदह दिन में सिंहल पहुँचा था। भारत के दक्षिण-पश्चिमी तीर जो महत्वपूर्ण स्थान भृगुकच्छ (वर्तमान भरुच नगर) का था वही स्थान पूर्व में ताम्रलिप्ति का था।

आश्चर्य का विषय है कि भारत के पुराविदों ने भारत के विभिन्न प्राचीन विद्या-केन्दों और संस्कृति-धामों का वर्णन करते हुए ताम्रलिप्ति के विद्यापीठ पर विशेष प्रकाश नहीं डाला है। बात असल में यह है कि बौद्ध-भिक्षुओं ने इस विहार का कोई व्यवस्थित लेखा नहीं रखा था। हमें केवल निम्न-लिखित चीनी-पर्यटकों के विवरणों से ही इस शिक्षा-केन्द्र के महत्वपूर्ण कार्यों का परिचय प्राप्त होता है।

१. फाहियान
२. ह्यू न-सांग
३. इत्सिंग
४. महायान-प्रदीप
५. होये-ल्यून
६. ताओ-लिन
७. ह्यू न-कोई

ताम्रलिप्ति में जो विद्यापीठ स्थापित हुआ था वह किसी प्रकार नालंदा महाविहार से कम नहीं था। यहां पर भी दू -दूर के विद्यार्थी आया करते थे। यहां पर अनेक विद्याओं और शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी। यह एक दान-पोषित विद्यापीठ था। विद्यांपीठ और विहार के संचालन के लिए बहुत से ग्राम दान में दिए हुए थे। इन ग्रामों द्वारा विद्यापीठ और भिक्षुमठ को सर्व प्रकार की सामग्री प्रस्तुत की जाती थी।

ताम्रलिप्ति के शिक्षापीठ की स्थापना की निश्चित तिथि के विषय में कुछ नहीं कहा ज सकता पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि य नालन्दा महाविहार की अपेक्षा कुछ प्राचीन था। जब फाहियान ने नालन्दा को देखा तो वह एक छोटा सा ग्राम था। वहां पर विद्यापीठ का कोई चिह्न नहीं था। परन्तु ताम्रलिप्ति उस समय तक बहुत समृद्ध हो चुका था। वह स्वयं

लिखता है कि ताम्रलिप्ति में चौबीस संघाराम थे जो कि विद्यापीठ से संबद्ध थे। फाहियान ने यहां रह कर दो वर्ष तक अध्ययन किया। वह सूत्रग्रन्थों की प्रतिलिपियां करता रहा और मूर्तियों के चित्रांकन में व्यस्त रहा। उस समय वहां कोई दो सहस्र भिक्षु निवास करते थे। इस प्रकार हम इस शिक्षाकेन्द्र का स्थापनाकाल चौथी शती का मध्यकाल कह सकते हैं।

चीनी-यात्री ह्य ून-सांग के समय भी यह विद्यापीठ बहुत अच्छी दशा में था। उस समय यहां पर कोई दस विहार थे, जिनमें एक सहस्र से अधिक बौद्ध-भिक्षु निवास करते थे। वह लिखता है-"यह नगर एक खाड़ी में स्थित है। स्थान नीचा और नमी वाला है। कृषि बहुत अच्छी है। फल-फूल प्रभूत मात्रा में पाए जाते हैं। यहां के निवासी साहसिक हैं, वे बौद्धधर्म तथा अन्य संप्रदायों की शिक्षाओं को मानते हैं।"

यात्री इत्सिंग के भ्रमण-वृत्तान्त से हमें ताम्रलिप्ति विद्यापीठ के विषय में विस्तार के साथ बहुत सी मनोरञ्जक बातें ज्ञात होती हैं। इत्सिंग सन् ६७३ में ताम्रलिप्ति में आया था। यह विद्यापीठ दान से चलता था। बौद्ध भिक्षु स्वयं खेती नहीं करते थे। जमीन खेतीहरों को दे दी जाती थीं। ये खेतीहर उपज का दो तिहाई भाग अपने पास रख कर बाकी विद्यापीठ को दे दिया करते थे। यात्री स्वयं लिखता है कि जब मैं पहले पहल मठ में आया तो देखा कि विहार के बाहर एक चौगान में खेतीहर कुछ शाकपात लाए हुए हैं। उसके उन्होंने तीन हिस्से किए हुए हैं। मुझे इसका कुछ रहस्य समझ में नहीं आया। मैंने आदरणीय आचार्य महायान-प्रदीप (ता–शान–तांग) से इस का अभिप्राय पूछा। उन्होंने निवेदन किया कि भगवान् तथागत का अनुशासन है कि भिक्षुगण अपना समस्त समय धर्मचिंतन में ही लगाए रहें। उन्हें कृषि-कार्य नहीं करना चाहिए। वे केवल उपज का उचित अंश प्राप्त कर लें। इस प्रकार वे पवित्र जीवन यापन करें और सांसारिक कृत्यों से पृथक् रहें।

प्रायः सभी बौद्ध मठों की यह परम्परा रही है कि वे नवदीक्षितों को शिक्षा दिया करें। विदेशों से आए हुए शिक्षार्थियों को भी शिक्षित करने में व्यस्त रहते थे हम देखते हैं कि ताम्रलिप्ति में इत्सिंग ने ब्रह्मभाषा (संस्कृत) और शब्दविद्या (व्याकरण) का अध्ययन किया। नालन्दा जाने से पूर्व ही इत्सिंग ने ताम्रलिप्ति में रह कर संस्कृत-भाषा में प्रावीण्य प्राप्त कर लिया था।

अन्य भी अनेक चीनी ज्ञानयात्री तथा अन्य भिक्षु ताम्रलिप्ति में विविध विद्याएं पढ़ने के लिए आया करते थे। सौभाग्य से उनके वृत्तान्त इत्सिंग की पुस्तक "भिक्षुओं के संस्मरण" में उपलब्ध होते हैं। इसका भाषान्तर फ्रैंच विद्वान् शेवनीज ने किया है। भिक्षु महायान-प्रदीप ह्य ूनसांग का शिष्य था। उसका चीनी नाम ता–चांग–तांग था। वह लंका और दक्षिण भारत का परिभ्रमण करता हुआ ताम्रलिप्ति आया था। यहां वह इत्सिंग से मिला था। यह ताम्रलिप्ति के विद्यापीठ में बारह वर्ष तक अध्ययन करता रहा। इसने संस्कृत-भाषा पर अच्छा प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था। इसके बाद वह इत्सिंग के साथ नालन्दा तथा अन्य पवित्र स्थानों पर गया था। यह चीन देश को नहीं लौट पाया और कुशीनगर में इसका अवसान हो गया था।

कोरिया का एक भिक्षु होये-ल्यून भी ताम्रलिप्ति में शिक्षा प्राप्त करता था। उसका संस्कृत नाम प्रज्ञावर्मन था। उसने लिखा है कि यह पूर्वी भारत का प्रवेश स्थान है।

ताम्रो-लिंन नामक एक चीनी छात्र एक विदेशी जहाज में चीन से ताम्रलिप्ति में आकर यहां के विद्यापीठ में तीन वर्ष तक पढ़ता रहा। इसका संस्कृत नाम शीलप्रभ था। यह संस्कृत भाषा पढ़ा करता था। यह कानूनविद्या का पंडित था।

चीन से एक और शिक्षार्थी ह्यू एन-कोई श्री भोज (सुमात्रा) होता हुआ ताम्रलिप्ति में आया था। यह एक वर्ष तक विद्यापीठ में शब्द-शास्त्र का अध्ययन करता रहा। यह ताम्रलिप्ति में भिक्षु महायान दीप से मिला था। यह ताम्रलिप्ति से ही जहाज में बैठ कर चीन को लौट गया और अपने साथ बहुत से पवित्र-ग्रन्थों का संग्रह ले गया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ताम्रलिप्ति बौद्धसंस्कृति का प्रभाव लिए हुए एक आकर्षक शिक्षा-केन्द्र था। हम यह भी देखते हैं कि नालन्दा विद्यापीठ में जाने से पूर्व विदेशी विद्यार्थी पहले ताम्रलिप्ति में ही अध्ययन कर के अपने को नालन्दा में प्रविष्ट होने का अधिकारी बना लेते थे। बौद्ध-धर्म और संस्कृति का धाम होते हुए यहां पर संस्कृत-भाषा और शब्दविद्या (व्याकरण) पढ़ने का अत्युत्तम प्रबन्ध था।

विहार का प्रबंध और शासन स्वायत्त था। भिक्षुओं की एक समिति समस्त व्यवस्था को चलाती थी। समिति की आज्ञा की अवहेलना करने वाला मठ से बाहर कर दिया जाता था। मठ में स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इत्सिंग लिखता है कि प्रतिदिन प्रभात में विहार का अध्यक्ष कूप के जल की परीक्षा किया करता था। यदि उस में कुछ मलिनता या जीव प्रतीत होते तो उसे छान कर पयोग में लाया जाता था।

ऐसे उत्तम शिक्षाकेन्द्र का पतन और विनाश कब और किन कारणों से हुआ इसका कुछ पता नहीं चलता। संभव है कि भारत में बौद्ध-धर्म और संस्कृति की अवनति के साथ-साथ इस का प्रभाव भी कम हो गया हो। अथवा इस की वही अवस्था हुई हो जो नालन्दा और विक्रमशिला के विश्वविद्यालयों की मुसलमानी आक्रमणों द्वारा हुई थी। बहुत समय से तामलुक नगर समुद्र से तीस मील दूर हो गया है। खाड़ी में रेत और मिट्टी भर जाने से जहाजों का यातायात बहुत कम हो गया है। अतः बंदरगाह होने के कारण प्राचीन समय में इस की जो महत्ता थी वह ज्यों ज्यों कम होती गई त्यों त्यों इस का धार्मिक, सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी महत्व भी कम हो गया हो यह भी कहा जा सकता है। क्योंकि अनेक स्थानों की महत्ता का आधार उनकी भौगोलिक स्थिति पर भी होता है। कुछ भी हो भारत के प्राचीन शिक्षाकेन्द्रों और संस्कृति-धामों में ताम्रलिप्ति का विहार और विद्यापीठ अपने समय में चमके और खूब चमके तथा विदेशी ज्ञानयात्रियों के लिए विशेषरूप से आकर्षण का विषय बने रहे।

आवश्यकता

हिमाचल प्रदेश को अपने यहां अध्यापकों तथा लेखकों को ऊंची शिक्षा देने के निमित्त जारी होने वाली संस्था के लिये ऐसे स्नातकों की आवश्यकता है जो उसमें मुख्याध्यापक तथा अध्यापकों का काम कर सकें। अभिलाषी स्नातकों को चाहिए कि वे अपने प्रार्थना पत्र चीफ़ एजूकेशनल आफिसर, हिमाचल प्रदेश, शिमला को भेज दें।

मेरे जीवन के कण बोलो, मेरे जीवन के क्षण बोलो

नरदेव शास्त्री

जीवन भी एक विचित्र उलझन है, दूसरे शब्दों में कहना हो तो कह सकते हैं कि जीवन एक जटिल समस्या है। पूर्वजन्म के पुण्य-प्रताप से किसी ने 'जीवन' को बाल्यावस्था में ही समझा जैसे वामदेव ने, जैसे ध्रुव ने—नहीं समझा तो किसी ने जन्मभर भी नहीं समझा—किसी ने समझा तो तब समझा जब यमराज का दूत वारण्ट लिए सिर पर खड़ा था। वस्तुतः यह 'जीवन' है क्या जिस को जीवन शास्त्री भी जन्म भर न सुलझा सके और सुलझाते सुलझाते एक नयी उलझन में ही फँस गये। सकल नीति शास्त्र-विशारद पण्डित विष्णुशर्मा (पञ्चतन्त्र-कार) ने सांसारिक स्थिति पर सर्वतोमुख विचार ...या ही अच्छा कहा है—

...जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यैः।
...ज्ञान-शौर्य-विभवार्यगुणैः समेतम्।
...नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।
काकोऽपि जीवति चिरं च बलिं च भुङ्क्ते॥

वस्तुतः वही जीवन जीवन है जिस के विषय में मनुष्य-समुदाय, क्षणभर के लिए ही सही, गौरवपूर्वक दो शब्द कहता है, वही जीवन है जो जीवन विज्ञान, शौर्य, विभव तथा आर्यगुणों से युक्त हो। नहीं तो कौआ भी देर तक जीता है और जीवनभर फलों पर चोंच मारता रहता है—केवल खाने-पीने, मौज उड़ाने का नाम जीवन नहीं। इस विषय में पशु समुदाय भी मनुष्य समाज से किसी किसी अंश में अधिक ही, चढ़ा-बढ़ा ही दीखेगा।

वैदिक शब्दों में जीवन के मुख्य उद्देश्य

धर्म, धर्मानुसार अर्थ, धर्मानुसार अथवा धर्मा-विरोधी काम (इच्छाओं की पूर्ति), और अन्तोगत्वा मोक्ष ये चार ही तो हैं।

यदि योगशास्त्र के वचनानुसार देखा जाय तो यह संसार 'भोगापवर्गार्थं दृश्यम्' कर्मफला-नुसार भोगों के भुगतान के लिये तथा अन्त में मोक्ष-प्राप्ति के लिये है।

अनभिद्रोहेण भूताना-
मल्पद्रोहेण वा पुनः। (महाभारत)

संसार में जीवन का आनन्द उस दशा में है जब किसी वैयक्तिक, सामुदायिक अथवा राष्ट्रीय कार्य में अपनी ओर से किसी को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे। यदि यह न हो सके तो ऐसा व्यवहार करे कि अपनी ओर से अन्यों को कम से कम कष्ट पहुँचे। अपने जीवन को आनन्दमय बनाने का इस से और कोई अच्छा विधि-विधान नहीं हो सकता।

इस तत्व को न समझ कर, संसार का समाज, स्वार्थ के वशीभूत हो कर क्या क्या कर बैठता है। इस का नमूना देखना हो तो अध्यात्मशून्य पाश्चात्य जनसमुदाय को देखिए। वहां बातें तो बड़ी बड़ी हैं पर हैं कोरी बातें ही बातें। अकबर ने क्या ही अच्छा कहा है—

'बातें तो बन रही हैं, पर घर बिगड़ रहे हैं।'

वह पुनः कहता है—

भूल जाता है यूरप, आसमानी बाप को।
बस खुदा समझा है इसने, बर्क को और भापको॥
बर्क गिर जायेगी इक दिन, और उड़ जायेगी भाप।
देखना अकबर बचाये रखना, अपने आप को॥

अकबर कहता है कि पाश्चात्य लोग ईश्वर को भूले जा रहे हैं। इन का ईश्वर है बर्क=बिजली और भाप। कोई दिन आने वाला है जब इनकी बिजली इन्हीं के सिर पर गिरेगी और भाप उड़ जायेगी। हे पाश्चत्यों का अनुकरण करने वाले भारत के लोगो देखो! जरा अपने आप को बचाये रखना—सम्हले रहना।

अकबर की भविष्यवाणी ठीक निकली।

हमारे शास्त्रो में व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता पर बड़ा बल दिया गया है, वह इसीलिए कि समष्टि भी पवित्र और बलवान हो जाय।

मोघमन्न विन्दते अप्रचेताः,
सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य,
नार्यमेणं पुष्यति नो सखायं,
केवलाघो भवति केवलादी॥ (ऋग्वेद)

इस मन्त्र में केवल अपने आप ही अच्छे अच्छे भोग भोगने वाले, केवल अपने लिए ही पकाने वाले—चूल्हा चढ़ाने वाले को पापी और वह भी अकेला पापी कहा गया है; जब केवल खाने में यह दशा है तो जीवन केवल अपने ही स्वार्थ अपने ही सुख, अपने ही लाभ के लिये हो वह जीवन किस काम का? उपर्युक्त मन्त्र में अन्न शब्द सब प्रकार की साधन-सामग्री, जीवनोपयोगी सब वस्तुओं आदि का उपलक्षण है। स्पष्ट लिखा है कि उस पुरुष की वह सब साधन-सामग्री, वह सब ऐश्वर्य व्यर्थ है वह उसके वध तुल्य है जिससे न मित्रों को लाभ, न पड़ौसियों को न ही देश जाति व राष्ट्र को लाभ है। वह अकेले का जीवन तो व्यर्थ ही है।

सारांश यह है कि—

(१) जीवन ऐसा हो जिससे किसी को कष्ट न पहुँचे। यदि कष्ट पहुँचना अपरिहार्य हो तो कम से कम कष्ट पहुँचे।
(२) स्वार्थ सधे, पर परार्थ को बिगाड़ कर नहीं।
(३) पदार्थ को स्वार्थ समझ कर बरता जाय तो उससे बढ़ कर क्या जीवन होगा?
(४) किसी के उचित स्वार्थ पर किसी प्रकार का आघात न पहुँचे।
(५) आवश्यक इच्छाओं की पूर्ति तो प्रत्येक को करनी ही पड़ेगी किन्तु वे इच्छाएं धर्माविरुद्ध होनी चाहिएं।
(६) जीवन का प्रतिक्षण परीक्षण होते रहना चाहिये।
(७) उसमें सर्व भूतैक्त्व की भावना भरी रहनी चाहिये।
(८) व्यक्तिगत पवित्र जीवन समष्टिगत जीवन की पवित्रता के लिए है ऐसा समझ कर चलना चाहिए। ऐसा जीवन ही जीवन कहलाने योग्य होगा।

अतएव संसार में आकर सबके लाभार्थ सबको इस तत्व का ध्यान रखना चाहिए।

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्राम स्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥
(नीति-पद्धति)

यदि एक के त्याग देने से—एक कुल का भला होता हो तो उस एक व्यक्ति को निःसंकोच छोड़ देना चाहिए। एक कुल के त्याग से ग्राम का लाभ हो तो कुल को छोड़ देना चाहिये। और जनपद के लिए—जाति व राष्ट्र के लिए—ग्राम को छोड़ देना चाहिये। पर जब आत्मतत्व के साक्षात्कार का अवसर मिलता हो—आत्म दर्शन का अलभ्य लाभ मिलता हो—तो उसके संमुख पृथ्वी का परित्याग भी कोई वस्तु नहीं है।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य जीवन बड़ी कठिनता से मिलता है। इसलिए ऐसे मनुष्य जन्म रूपी चन्दन की लकड़ी से

लशुन पकाने का काम कभी नहीं लेना चाहिए। अर्थात् जीवन के क्षण व्यर्थ चले जायें ऐसे व्यर्थ के काम नहीं करने चाहिए। ऐसा जीवन होना चाहिये कि जीवन के क्षणों से कहा जाय कि सब राम कहानी कहो तो जीवन के क्षण-क्षण प्रफुल्लित होकर बोलने लगें। जीवन के कणों से कहा जाय "बोलो बोलो कैसा जीवन बीता" तो वे भी कह उठें कि जीवन तो बहुत अनुकरणीय रहा, जीवन जैसा होना चाहिए था वैसा ही रहा।

ब्रह्मचर्य का माहात्म्य

लब्भूराम नय्यड़

प्रायः सब ऋषि-मुनियों और विद्वानों की एक ही सम्मति है कि हमारा उच्च कर्तव्य अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों को स्वस्थ रखते हुए उन्नति के शिखर पर पहुँचना है। मुनिवर महर्षि विरजानन्द जी व ऋषि दयानन्द जी सरस्वति जैसे नायक संसार का उपकार करने के योग्य केवल इसी कारण बन सके कि उन्होंने अपना सारा जीवन ब्रह्मचर्य को धारण करते हुए विद्याप्राप्ति में अर्पण कर दिया। भीष्म पितामह, कुमारियल भट्ट और शंकराचार्य आदि ऋषियों का जीवन इसका साक्षी है। अथर्ववेद, काण्ड ग्यारह, अनु० तीन, मन्त्र पांच में उपदेश है कि 'विद्यार्थी पूर्ण ब्रह्मचर्य की अवस्था को ग्रहण कर के कठिन परिश्रम के स्वाध्याय से ब्राह्मण पदवी को धारण करता है, वह सच्चे हित और तेज से पूर्ण हो कर संसार का उपकार करने के योग्य होता है और उस अपरा विद्या को जानता है जो मोक्ष को दिलाने वाली है। ऐसे ही ब्रह्मचारी का विद्वान् और ज्ञानी पुरुष सत्कार करते आये हैं।' ब्रह्मचर्य और तप आनन्ददायक हैं। जिस प्रकार सूर्य संसार को प्रकाशित करता है वैसे ही ब्रह्मचय-युक्त मनुष्य सब को ज्ञान का प्रकाश देता है। इसीलिये ब्रह्मचर्य सब आश्रमों में मुख्य है। ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने से सब शारीरिक तथा आत्मिक रोगों से छुटकारा होगा और सुखमय जीवन व्यतीत होगा। इस से जहां शारीरिक शक्तियां पूर्ण उन्नति को प्राप्त होती हैं वहां इन्द्रियों पर भी पूर्ण अधिकार हो जाता है।

आवश्यकता

भारतीय इतिहास परिषद् के तत्वावधान में अनुसन्धान का कार्य करने वाले स्नातक नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें। १२५) मासिक छात्रवृत्ति दी जायगी।

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार
मन्त्री—इतिहास परिषद, नवाबगञ्ज,
बनारस।

एक सम्मति

"आपकी पत्रिका को देख कर भली प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है कि यह अपने पाठकों की ज्ञान पिपासा को शान्त करने में प्रयत्न शील है और श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी के "सादे जीवन में उच्च विचार" के आदर्श को सामने लेकर चल रही है।"

राधाकृष्ण कौशिक
एम. एस. सी. हर्बर्ट कालेज, कोटा।

राष्ट्रभाषा और हमारा कर्तव्य

महेन्द्र रायज़ादा

पंद्रह अगस्त उन्नीस-सौ-सैंतालीस को भारत ने अनेक शतियों से लदे हुए दासता के जुए को उतार फेंका और आज वह एक स्वतत्र राष्ट्र की स्थिति में है। अब यह आशा बंधती जा रही है कि हमारा राष्ट्र निकट भविष्य में ही उन्नति के पथ पर अग्रसर हो खोये हुए गौरव को पुनः प्राप्त करने में समर्थ होगा। राष्ट्र की प्रगति में राष्ट्रभाषा का योग अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है संसार के स्वतन्त्र राष्ट्रों में हिंदुस्तान को छोड़कर कदाचित् ही कोई अभागा राष्ट्र होगा जिसके कर्णधार अपने विचारों एवं भावनाओं का प्रकाशन अपनी राष्ट्रभाषा में न कर विदेशी भाषा में करते हैं। समझ में नहीं आता कि हमारे नेताओं को विदेशी भाषा का मोह आज भी क्यों बना हुआ है जब कि हमें अपनी राष्ट्रभाषा उपलब्ध है। यद्यपि भारत सरकार की ओर से सम्पूर्ण भारतवर्ष की एक सामान्य भाषा की घोषणा इस समय तक नहीं की गई है, तथापि यह बात किसी से भी छिपी नहीं है कि हिन्दी भाषा निर्विवाद रुपेण इस पद की अधिकारिणी है। क्योंकि कुछ प्रान्तों को छोड़ कर भारत के शेष सभी प्रांतों ने हिन्दी को प्रांतीय-भाषा घोषित कर दिया है। इसके अतिरिक्त अनेक विश्वविद्यालयों ने हिन्दी भाषा को शिक्षा का माध्यम बना लिया है। साथ ही आज हम यह भी देख रहे हैं कि भारतवर्ष के प्रत्येक कोने से हिन्दी भाषा की ही दुहाई दी जा रही है तथा उसे राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर आसीन करने की जनता द्वारा मांग भी प्रस्तुत की जा रही है।

इस प्रकार आज हम देख रहे हैं कि हिन्दी-भाषा को राष्ट्रभाषा के गौरव पद पर आसीन किया जा रहा है। अनेक विश्वविद्यालयों ने भी हिन्दी-भाषा को उच्चतम शिक्षा का माध्यम बनाना स्वीकार किया है तथा दो एक विश्वविद्यालयों ने इस दिशा में उसे अपना भी लिया है। किन्तु उन्हें अनेक विकट विषमताओं का सामना करना पड़ रहा है। क्योंकि उच्चतम कक्षाओं के लिए राजनीति, विज्ञान, अर्थशास्त्र तथा दर्शन आदि विविध विषयों पर हिन्दी में उत्कृष्ट कोटि की पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। विश्वविद्यालयों के सामने यह एक विकट प्रश्न है कि उपर्युक्त विषयों पर पाठ्यक्रम में कौन सी पुस्तकें रखी जावें? वास्तव में यह हिन्दी के दिग्गजों की अकर्मण्यता एवं भारत-सरकार की अभी तक की उपेक्षानीति का ही परिणाम है कि हिन्दीभाषा में इस दिशा में विविध विषयों पर उत्कृष्ट ग्रन्थों का निर्माण नहीं हुआ। हिन्दी के साहित्यकारों को इस दिशा में सक्रिय भाग लेना है। तभी हम अपने कर्तव्य का पालन करने में समर्थ हो सकेंगे। साथ ही यह बात भी निश्चित है कि हमारे यहाँ राजनीति, विज्ञान, अर्थशास्त्र आदि विविध विषयों के विद्वानों एवं विशेषज्ञों का नितांत अभाव नहीं है। अतएव भारत-सरकार को चाहिये कि इन विविध विषयों के विद्वानों को समुचित सहायता प्रदान कर तथा उचित पारिश्रमिक देकर हिन्दी-साहित्य के विविध अंगों की पूर्ति करने के हेतु प्रोत्साहित एवं प्रेरित करे।

हिन्दी भाषा में कितने ही दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक एवं द्विमासिक आदि

पत्रपत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। इन सैंकड़ों पत्र-पत्रिकाओं में से कतिपय ही ऐसे हैं जो ठोस स्थायी एवं सत्-साहित्य का निर्माण एवं प्रसार करने में अपना योग प्रदान कर रहे हैं। अधिकांश पत्र पत्रिकाएं अपने कर्तव्य से च्युत हो कुरुचिपूर्ण साहित्य के प्रसार करने में संलग्न हैं, क्योंकि उन्होंने अपना उद्देश्य एकमात्र धनोपार्जन तथा व्यवसाय बना रखा है। 'माया', 'मनोहर-कहानियां, 'साजन' तथा 'सजनी' आदि कहानी प्रधान पत्रिकाएं अत्यन्त निम्न कोटि की रचनाएं प्रस्तुत कर सर्व-साधारण के निम्न स्तर को निम्नतर बना, उन्हें पथभ्रष्ट करने में ही सहायक हो रही हैं। इस प्रकार की पत्रिकाओं से राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा का कल्याण होने वाला है अथवा अधोगति यह बतलाना आवश्यक नहीं।

इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि हिन्दी भाषा की सर्वाङ्गीण उन्नति हो। कहानी, उपन्यास, नाटक और कविता आदि हिन्दी साहित्य के कुछ अंशों की पूर्ति कर देने भर से हिन्दी साहित्य के समस्त अङ्गों की पूर्ति नहीं की जा सकती है। हमें राजनीति, विज्ञान तथा दर्शन जैसे विषयों के विशेषज्ञों की जितनी आवश्यकता है उतनी कहानीकारों अथवा नाटककारों एवं कवियों की नहीं जो कि कोरी भावुकता के बल पर सफेद से काला किया करते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि कहानी, नाटक आदि लिखे ही न जावें। आज तो नवीन नवान विषयों पर मौलिक एवं स्थायी साहित्य की अधिक अपेक्षा है। हिन्दी के साहित्यकारों को ऐसे पारिभाषिक शब्दों का निर्माण करना है जो सर्वसाधारण के लिए भी सुगम हों। हिन्दी के साहित्यकारों ने सदैव युग का साथ दिया है। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि लेखकगण विचारक एवं पत्रकार अपनी अभिरुचि में परिवर्तन कर समय की मांग को पूर्ण करें। हिन्दी साहित्य के भण्डार को पारिभाषिक शब्दों द्वारा अभिवृद्ध कर साहित्य के कलेवर को सुरुचिपूर्ण सत्साहित्य से अलंकृत करें तभी आज के साहित्यकार अपने कर्तव्य को पूर्णरूपेण निभाने में समर्थ होंगे।

हिन्दी भाषा अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में प्रवेश करने का गौरव पा रही है। हिन्दीभाषा राष्ट्र की सबसे अधिक सम्मानित भाषा है तथा वह राष्ट्र का मार्ग दर्शन भी करेगी। व्यक्तिगत स्वार्थ को न देखते हुए मातृ-भाषा एवं राष्ट्र भाषा की सेवा करना ही वास्तविक साहित्य साधना है। शब्दकोष तथा 'इनसाइक्लोपीडिया-ब्रिटेनिका' के सदृश विश्व-कोष एवं संदर्भग्रन्थों की हिन्दीभाषा में अधिक अपेक्षा है। हमें यह जान कर अत्यन्त हर्ष है कि हिन्दी-साहित्य सम्मेलन तथा अन्यान्य साहित्य-संस्थाएं इस दिशा में जुट पड़ी हैं तथा सराहनीय कार्य कर रही हैं। विविध विषयों पर पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का भी कार्य कुछ संस्थाएं कर रही हैं। शासन शब्दकोष लगभग १५००० शब्दों का निर्मित भी हो चुका है। हिन्दी के साहित्यकार अपने कर्तव्य से अवगत हैं यह देख कर विश्वास हो चला है कि निकट भविष्य में ही हम हिन्दीभाषा के समस्त अंगों की पूर्ति करने में समर्थ होंगे।

मनोविज्ञान का दोषयुक्त दृष्टिकोण

स्वामी कृष्णानन्द

वर्तमान मनोविज्ञान एक उन्नत विज्ञान माना जाता है। फ्रायड आदि विद्वान इस युग के मनोविज्ञान के आधार को बनाने वाले हैं। ये मानवीय मनो बुद्धि के दिव्य भावों की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार नहीं करते। इनका कथन है कि मनुष्य के मन के मूलभाव पाशविक ही हैं। दिव्यभाव तो इन पाशविक भावों के परिवर्तित रूप ही हैं। ये विद्वान् इन दिव्य भावों की तो स्वतन्त्र और निरपेक्ष सत्ता को स्वीकार नहीं करते; पाशविक भावों की ही मूल निरपेक्ष सत्ता स्वीकार करते हैं। दिव्य अध्यात्मभाव इन पशु भावों का रूपान्तर विकास या विकार मात्र हैं—यह इनकी धारणा है। इनके कथनानुसार महान् से महान् दिव्य भावों में भी पाशविक भाव छिपे रहते हैं। साधारण मनुष्य इस दिव्य भाव में गुप्त पाशविक भाव को देखने में असमर्थ होते हैं। वर्तमान पाश्चात्य मनोविज्ञान पाशविक भाव की या रासायनिक तत्वों की स्वतन्त्र मूल निरपेक्ष सत्ता स्वीकार करता है, और उससे अतिरिक्त मानवीय दिव्य भावों की कुछ भी विलक्षणता स्वीकार न करते हुए उनको इन पाशविक भावों की दृष्टि से ही मापता या तौलता है। वह मानवीय दिव्य भाव के क्षेत्र में भी भौतिक क्षेत्र के मापक का ही उपयोग करता है। अर्थात् जैसे प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड जिसने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के विभाग को जन्म दिया, काम भाव को मनोविकास का मूल कारण मानता है; शेष सम्पूर्ण भावों को वह इस एक भाव के विकार, रूपान्तर मानता है। उसका कथन है कि यही एक मौलिक भाव है, शेष सम्पूर्ण भाव तथा क्रियाएं इस भाव की प्रबलता के दुष्परिणामों से बचने के लिए इस के अन्यत्र किये गये उपयोग मात्र हैं। यह शक्ति है जिस का उपयोग अन्यक्षेत्रों में होता है। जैसे एक महान् नद हो और उसके अदम्य वेग से बचने मात्र के लिये उस में से नहरें निकाल कर उस असीम जल राशि को बांट दिया जाये, न कि नहरों की उपयोगिता की दृष्टि से नहर निकालना। प्रथम दृष्टिकोण तो केवल नद के प्रवाह के दुष्परिणामों से बचने पर आश्रित है। उस में मुख्य प्रारम्भिक प्रयोजन यही है। नहरें तो उस से निवृत्ति मात्र साधनभूत हैं। यह निवृत्ति ही मुख्य लक्ष्य है। अन्य क्षेत्रों में दूसरे विविध उपायों से उस शक्ति का प्रयोग आनुषंगिक है। यदि अदम्य वेग न होता, तो नहरों की तथा उपर्युक्त अन्य दिव्य भावों की न तो आवश्यकता ही होती और न ही उनकी स्थिति या विकास ही होता। अर्थात् परिवर्तन द्वारा इस का दिव्य विकसित रूप ही नहीं होता। क्षुद्र नदियों की तरह उसी रूप में रह जाती। फ्रायड बच्चे के अंगूठा चूसने आदि को यौन विकार के चुम्बन विभाग का रूपान्तर तथा प्रारम्भ मानता है। ईश्वर प्रेम को भी वह लौकिक प्रेम का ही परिवर्तित रूप मानता है। मन्दिर आदि को उत्पादक अंग के स्थानापन्न मानता है।

इस में संदेह नहीं कि काम का भाव प्रायः अन्य पाशविक मानवीय भावों में सब से प्रबल है; परन्तु इतने मात्र से अन्य पाशविक भावों तथा क्रियाओं, चेष्टाओं को काम भाव का विकार मात्र नहीं कहा जा सकता। एक नदी के अदम्य

प्रवाह के कारण, संसार भर के क्षुद्र नदी नालों को उस के भागरूप होने की कल्पना नहीं की जा सकती। हो सकता है कि वह महान् नद अनेक भागों में भी विभक्त हो जाता हो; परन्तु संसार भर की संपूर्ण नदियों के पृथक् अस्तित्व को अस्वीकार करना तथा अन्य किसी भाव के स्वतन्त्र अस्तित्व को न मानना कितनी भूल होगी। इसी प्रकार की भूल फ्रायड के उपयुक्त काम संबन्धी सिद्धान्त में है। कुछ उदाहरणों में भले ही यह सिद्धान्त ठीक उतरता दीखता है परन्तु बहुसंख्यक उदाहरणों में वह ठीक भी नहीं उतरता। जैसे सन्त तुलसीदास के विषय में है कि उन में विद्यमान् इस अदम्य काम भाव के कारण ही उन में भगवत्प्रेम में इतनी लगन हो सकी। परन्तु इस स्थान में भी मुख्य और गौण विभाग में भूल हुई है। ईसा, रामकृष्ण परमहंस, गुरुनानक आदि अनेक ऐसे सन्त हुए हैं जिन के भक्तिमय जीवन का विकास फ्रायड के सिद्धान्त के अनुरूप नहीं हुआ। उन्हें तो ऐसे अदम्य काम के वेग का अनुभव ही नहीं हुआ। जिस प्रकार साधारण मनुष्य में कामादि के भाव स्वभावतः जन्म से होते हैं वैसे ही भक्ति आदि के दिव्य भाव इन सन्तों में बचपन से ही पाए गये। इन्हें इन भावों को उपार्जन या वृद्धि के लिए कुछ प्रयास भी नहीं करना पड़ा; न ही तद्विरोधी कामादि अदम्य पाशविक भावों को दबाने के लिए विशेष श्रम ही करना पड़ा। प्रत्युत उन के भक्ति आदि भावों को दबाने के लिए संबन्धियों द्वारा किए गए अनेक गंभीर उपायों की उन्होंने कोई परवाह नहीं की; इस का समर्थन इन के जीवन चरित्रों से होता है। फ्रायड की उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक धारणा का खण्डन इन सन्तों के चरित्रों से हो जाता है। यदि वही स्वभाव मुख्य होते तो इन सन्तों में दिव्य भावों का जन्म ही न होता। यह कहा जा सकता है कि इन को जन्म काल से ही ऐसी शिक्षा मिली थी और ऐसा उस शिक्षा के फल स्वरूप ही हुआ। भक्ति आदि दिव्य भाव मनुष्य के जन्मसिद्ध स्वभाव नहीं हैं। परन्तु ऐसे कहने और इस सिद्धान्त तथा दृष्टिकोण में उन का दुराग्रह तथा अंध विश्वास ही कारण है। एक तो ऐसे महान् अलौकिक सन्तों के भक्ति भाव आदि का कारण उन के सम्बन्धी तथा वायुमण्डल नहीं था; अपितु इस के विपरीत वे सन्त लोग ही प्रायः एक नये युग के प्रवर्तक थे। चैतन्य, नानक, ईसा या बुद्ध को संसार के बाह्य प्रभावों ने नहीं बनाया। ये स्वाभाविक गुण उन में जन्म से ही थे। यदि शिक्षा आदि का कुछ प्रभाव स्वीकार कर भी लिया जावे तो भी शिक्षामात्र उन के जन्म तथा उन्नति का कारण नहीं था क्योंकि उन के अन्य, सहोदर भाई, मित्र, खिलाड़ी, साथी अथवा सहाध्यायियों पर तो उसी शिक्षा, वायुमण्डल आदि का वह प्रभाव नहीं हुआ। भक्ति का अंकुर मात्र उन के जीवन में प्रायः उदय तक नहीं हुआ। बहुतों में तो पाशविक भावों की ही प्रबलता पायी गई। इस लिये शिक्षा मात्र को इन सन्तों में दिव्य भावों का जन्मदाता नहीं माना जा सकता। शिक्षा ने उन के जन्मसिद्ध स्वभाव को दृढ़ तथा विकसित भले ही किया हो। यद्यपि इस का भी अत्यल्प प्रभाव ही हुआ होगा जैसे कि ऊपर लिख आए हैं। क्योंकि वे लोग अपने युग की उपज नहीं थे अपितु युग उन की उपज था। जिस प्रकार महात्मा गांधी में अहिंसाभाव के उत्पन्न होने का सहकारी कारण इस हिंसा प्रधान युग को नहीं माना जा सकता, उलटे जन्मजात महात्मा गांधी जी का अहिंसाभाव इस युग को बदलने का कारण दीख रहा है। हिंसा प्रधान

विरोधी वर्तमान वायुमण्डल उन में अहिंसाभाव का सहायक कैसे माना जा सकता है। यदि अहिंसा के भाव की वृद्धि अहिंसा की शिक्षा तथा वायुमण्डल से होती हो तो वर्तमान युग उस के लिये अत्यन्त अनुपयुक्त है। यह विरोधी भावेन सहकारिता उपर्युक्त फ्रायड के कामादि पाशविक भावों की स्वाभाविकता तथा अन्य लौकिक अथवा दिव्य भावों के जन्म के कारण होने के सिद्धान्त को प्रमाणित नहीं करती। यह इस सिद्धान्त के भ्रान्त होने में असंदिग्ध ज्वलन्त प्रमाण हैं। इसी प्रकार तुलसीदास आदि के जीवन की घटनाओं से भी फ्रायड के Sublimation आदि सिद्धान्त का समर्थन कर सकना कठिन है। तुलसीदास के समान अन्य अनेक मनुष्यों के जीवन में ऐसी ही अनेक घटनाएं होती हैं। जब कि वे काम के प्रभाव से अपने आप को पददलित पाते हैं; अनेक प्रकार के कष्ट तथा निरादर पर निरादर सहते हैं परन्तु उन की आंखें नहीं खुलतीं। अपनी शोचनीय अवस्था से उन्हें घृणा नहीं होती, न ही वे लज्जा का अनुभव करते हैं। वे इसी भोग को परम ध्येय तथा निरादर आदि के सहने को ही अपना पुरुषत्त्व, धैर्य और बल मानते हैं। यदि कोई यत्न भी करता है तो उसे भक्ति की नहीं सूझती अपितु अनेक प्रकार के दूसरे क्षुद्र उपायों की शरण लेता है। जैसे क्राउन एम. डी. अपनी पुस्तक 'कोन्टिनेन्स' में लिखता है— 'अंग्रेज़ बैरिस्टर काम के वेग को दबाने के लिए कई घण्टों तक टेम्स नदी में तैरा करता था।' कहा जा सकता है कि इस में शिक्षा का प्रभाव है। परन्तु किसी देश, समाज आदि में एक ही विचार का प्रचार नहीं होता, अनेक विचार धारा तथा शिक्षाएं होने पर मनुष्य अपनी रुचि के अनुसार भिन्न २ मार्गों का अनुसरण करते हैं। केवल शिक्षा से ही कोई व्यक्ति किसी विशेष मार्ग को नहीं अपना सकता। उस में स्वाभाविक रुचि तथा योग्यता का होना अनिवार्य है। अतः तुलसीदास आदि का इसका प्रभाव को भक्ति तथा काव्य रचना में परिवर्तित कर देना केवल शिक्षा तथा वायुमण्डल के आधार पर नहीं। अपितु यह स्वीकार करना होगा कि भक्ति तथा भक्ति काव्य की योग्यता और रुचि उन में पहिले से ही थी। उन के मन में भक्ति का आदर, सम्मान पूर्व संस्कारों के कारण जन्म से ही स्वभावतः था। यह भाव पाशिविक कामभाव से स्वतन्त्र था। आसुरी तथा दैवी स्वभाव दोनों वहां पर उपस्थित थे। यद्यपि पशु स्वभाव भी विशेष उग्र रूप में विद्यमान् था; परन्तु भक्ति आदि का स्वभावगौरव उस से बलवत्तर था नहीं तो उन की तुलना ही किस प्रकार हो सकती थी। और पशुभाव से लज्जा या, घृणा का कारण ही क्या होता। भक्ति आदि के महत्त्व का दिव्यभाव केवल विद्यमान् ही नहीं था; प्रत्युत इतनी प्रचुर मात्रा में था तभी तो वह पशुभाव से अत्यन्त ग्लानि का कारण बना। और उसने अपने सम्पूर्ण जीवन तथा सामर्थ्य के प्रवाह को इधर बहा दिया। इसकी फ्रायड के Sublimation के सिद्धान्त के अनुसार व्याख्या नहीं की जा सकती; यह कभी भी कामभाव का रूपान्तर नहीं; दोनों की पृथक् सत्ता है अन्यथा तुलना तथा घृणा नहीं हो सकती। तुलना दो विरोधी भावों में होती है। समान तथा एक भाव के ही भिन्न २ रूपों में तुलना तथा घृणा का स्थान कहां है? पशुभाव न तो दिव्यभाव का रूपान्तर ही है और न ही इस के जन्म का ही कारण है। यह ठीक है कि जिस शारीरिक तथा मानसिक शक्ति को पशुभाव ने नाश कर देना था दिव्यभाव ने उस

मलाया भाषा में संस्कृत का अंश

आचार्य रघुवीर

संस्कृत श्रेष्ठतम भारतीय भाषा है। इस में समस्त भारत के प्राण और शरीर का समावेश, काल के आरम्भ से उन दिनों तक है, जब भारत स्वतन्त्र था, प्रतिबन्ध और अवरोध रहित अपनी उन्नति और विकास करने को स्वतन्त्र था अद्वितीय था, और जो उस के तट पर आते थे उन को दान देता था। भारतीय-संस्कृति का प्रत्येक पहलू इस में संपूर्णतया समाविष्ट है। कोई और भाषा संस्कृत का स्थान नहीं ले सकती। १८ वीं शताब्दि के अन्त तक संस्कृत भारत के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक सारे भारत के पांडित्य की प्रधान भाषा का उच्च स्थान ग्रहण किये थी। शताब्दियों पूर्व यह समुद्रों पार विदेशों में समझी जाती थी और इस का अध्ययन किया जाता था। आज हम निकटवर्ती मलाया देश को लेंगे। गौरव की बात है कि इस पर मुसलमानी धर्म का प्रभुत्व होते हुए भी संस्कृत जनसाधारण की भाषा का आधार है।

'शुचि' का अर्थ पवित्र और निर्मल है। 'महाशुचि' परमपवित्र ईश्वर का नाम है। सुआमी, सुअर, सुअर्ग, क्रमानुसार स्वामी, स्वर और स्वर्ग हैं। अन्तिम शब्द का उच्चारण सोर्ग और शुर्ग भी किया जाता है। सिंग (सिंह) प्राचीन पदवी है और साथ ही साथ इस का अर्थ सिंह भी है। सिंगासन का अर्थ (राजा का आसन) सिंहासन है। सेतिय (सत्य) सेत्य-वान (सत्यवान्) के अर्थ विश्वास, स्वामीभक्ति और राजभक्ति होते हैं। सेत्व (सत्व) पशु और मेर्ग–सेत्व (मृग–सत्व) सब जीवधारियों के लिये प्रयोग होता है। सेरु या सर्व (सर्व) का अर्थ 'सब' होता है। यह उन दूसरे शब्दों के संयोग में प्रयोग किया जाता है जिनका अर्थ सब है जैसे 'सेरु-साकलियन' (सर्व-साकल्यम्), 'सेरु-समस्त-साकलियन्' (सर्व-समस्त-साकल्यम्)

'सरोज' का अर्थ कमल और सेरिगाल (शृगाल) सियार है। सेरी (श्री) शब्द जिस का अर्थ मनोहरता और सुन्दरता है, अनेक अर्थों का द्योतक है। 'सेरीनेगेरी' (श्री-नगरी) का अर्थ 'नगर का गौरव' है। सेरीमुक (श्रीमुख) 'मुख की आभा' को कहते हैं। सेरी-काय (श्रीकाय) से सीताफल का बोध होता है।

शक्ति का सदुपयोग करवाया और उसे सार्थक किया। यह सदुपयोग ही तुलसीदास की स्वयं था अन्य संसार की आध्यात्मिक उन्नति तथा सुख शान्ति का कारण बना। परन्तु शक्ति तथा पशुभाव दो वस्तुएं हैं; जैसे वाष्प तथा विद्युत् शक्ति से हम भिन्न २ मशीनों तथा यन्त्रों को चलाने का कार्य लेते हैं। परन्तु इस का यह अभिप्राय कभी नहीं होता कि सञ्चालित यंत्र या विद्युत् एक ही वस्तु हैं। इन को एक समझना तो बहुत स्थूल भ्रान्ति है। परन्तु जब मानव मन या बुद्धि किसी एक विचार के अधीन हो जाती है तो विश्वविख्यात विज्ञ मनुष्य भी इस प्रकार की साधारणभ्रान्ति को नहीं पहिचान पाते। यह वैज्ञानिक अंधविश्वास इस युग में विशेषरूप से दृष्टिगोचर होता है।

सेराप (शाप) का अर्थ शाप या कोसना होता है। सेन्तोष (संतोष) विश्राम और शांति है। सेंजा (संध्या) और सेंजाकाल से सायंकाल अभिप्रेत है। सेंधव (सेंध्व) 'सज्जि' के परिवर्तित अर्थ में प्रयुक्त होता है। सेना का अर्थ पदाति और सैन्य होता है। सेलोक (श्लोक) विशेषतया वक्रोक्ति और व्यंग्य कविता के लिये प्रयोग किया जाता है। इस का अथ अन्त्यानुप्रास और पद्य भी होता है। सेक्सा (शिक्षा) का प्राचीन अर्थ 'दण्ड' है। उसका अर्थ क्लेश और कष्ट भी होता है। 'सोदर' भाई-बहिनों और उस घनिष्ट मित्र के लिए व्यवहार में लाया जाता है जिसे कोई भाई या बहिन कह सके। 'रूप' का अर्थ दिखावट, सौंदर्य और आकार है। रूपवान का अर्थ सुन्दर और लावण्यमय है। 'रोन' या 'वर्ण' रंग है। पंचरोंन (पंचवर्ण) का अर्थ बहुरंगी, दिखोवा और चमकीला है। 'रोम' मनुष्य शरीर के रोवें हैं। रेसि (ऋषि) का अर्थ मुनि है। मलाया निवासियों ने अपने महात्माओं के लिए आदर त्याग नहीं दिया है। और वे सुदूर ग्रामों में आज भी इस शब्द का प्रयोग करते हैं। रत (रथ) सामान्य रथ न होकर, पर देवताओं का सपक्ष रथ है। 'रस' का अर्थ स्वाद, रस, बोध और स्पर्शज्ञान है। आश्चर्य है कि मलायावासी इस को 'पारा' अर्थ में प्रयोग करते हैं, जो अर्थ आयुर्वेद-साहित्य में उपलब्ध होता है।

मलायावासियों ने रामायण और महाभारत के नायकों के नाम सुरक्षित रखे हैं; यथा सेरी राम (श्रीराम), रंजुन (अर्जुन)। उन्होंने अप्सराओं और विष्णु, शिव, हनुमान् इत्यादि अनेक दिव्य विभूतियों के नाम सुरक्षित रखे हैं। उन्होंने संस्कृत की उपाधियां जैसे मंत्री, राजा, महाराजा भी सुरक्षित रखीं हैं। राहू उस नाग के रूप में प्रसिद्ध है जो जब तब चन्द्रमा को निगल कर चन्द्र-ग्रहण करता है। कई भारतीय शब्द अधिक उच्च अर्थ में लिए गए हैं। पुतेर (पुत्र) का राजकुमार और पुतेरी (पुत्री) का अर्थ राजकुमारी या अप्सरा है। धार्मिक शब्द भी अनेक हैं। पूजा का अर्थ प्रार्थना और भक्ति है। पूजि-पूजियन से पत्र आरम्भ किया जाता है। पवास (उपवास) का अर्थ अनशन है। पेर्तेवी (पृथ्वी), देवी पेर्तेवी (देवी पृथ्वी) दोनों पर्याय हैं। पर्निमा (पूर्णिमा), पूर्णचन्द्र के समय का माप होने से, मास का द्योतक है। पेरेक्सा (परीक्षा) का अर्थ अनुसन्धान, जांच, परीक्षा है। पेर्दान (प्रधान) का अर्थ उत्कृष्ट है। 'पेर्दान मन्त्री' प्रधान मन्त्री है। पण्डित का अर्थ महात्मा औ ज्ञानी हैं। प्रकेर्ति (प्रकृति) स्वभाव, और बुद्धि-प्रकेर्ति अच्छे स्वभाव के मनुष्यों के लिए प्रयोग किया जाता है। 'पति' राज्य के उच्च पदाधिकारी को कहा जाता है। यह शब्द अनेक प्राचीन नामों और पदवियों के साथ प्रयोग किया जाता है जैसे अदिपति (अधिपति)।

"पाद" और "सेरीपाद" (श्रीपाद) राजकुमार के पवित्र चरण होते हैं। ये शब्द राजकीय पदवी के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। उसीप्रकार "पादुका" भी। इन शब्दों से यह विदित होता है कि मलायावासियों में भारतीय परम्परा कितनी गहराई तक घुस गई है। मलाया भाषा से और सैकड़ों उदाहरण दिए जा सकते हैं पर आज के लिए ऊपर दिए हुए ही पर्याप्त होंगे।

शोक है कि भारत में ऐसे मनुष्य हों जो संस्कृतभाषा और साहित्य की विशालता और वैभव की उपेक्षा करते हों। संस्कृत ही संस्कृति के क्षेत्र में भारत के भविष्य को समृद्ध बनाने

विचार तो अच्छा है ?

राजा महेन्द्र प्रताप

जी हां, यह विचार बहुत अच्छा है कि हमारा ही धर्म सर्वश्रेष्ठ है। और इस विश्वास से हृदय बड़ा प्रसन्न होता है कि 'राज करेगा खालसा, बाकी रहे न कोय !' सब ही धर्म यह सिखाते हैं। और जब वह बहिश्त का चित्र खींचते हैं तो उसे देख कर बड़ा आनन्द आता है। अच्छा तो और कहिये फिर और वहां क्या मिलेगा ? मुल्ला साहब बेचारे ग़रीब, सौ कठिनाई में पड़े हुए को बतलाते हैं कि वहां किसी चीज़ की कमी ही नहीं रह जायगी, खाने को अच्छा, पीने को अच्छा, पहरने को अच्छा, रहने को बड़े २ महल और यह सब कुछ बिना कुछ किये मज़दूरी करनी ही नहीं पड़ेगी ! नौकर चाकर और बीबियां भी सेवा करेंगी !! विचार तो बहुत ...य है परन्तु प्रश्न यह है कि सचाई क्या है ?

हमारी कांग्रेस भी कहती है कि बस काम किये चलो और कर जो हम मांगे दिए चलो, हम इसी देश को स्वर्ग बना देंगे। वह रूसी साम्यवादी, अजी वही कम्यूनिष्ट भी कहते हैं कि कारखानों से हम नई दुनियां ही बना देंगे। जो कुछ यहां बुराई है, वह तो पण्डित मुल्ला, राजा नवाब और सेठ साहूकार की फैलाई है। वे भी हम को इस प्रकार विश्वास दिलाते हैं कि आराम मिलेगा और अवश्य मिलेगा, अब कुछ कष्ट उठा लो। दो प्रकार के सब्ज़ बाग़ हमारे सामने रखे जाते हैं। एक, किसी आसमान पर है और वहां हमारी आत्मा चैन से रहेगी। दूसरे, इसी संसार को सुखमय बनाने का दावा करते हैं। यहां हम तो न रहेंगे परन्तु हमारी सन्तान रहेगी। उनका कहना है यह देश की सेवा है। और लाल कहते हैं कि अपने वर्ग की खिदमत है। करनी ही चाहिये बलिदान देना ही चाहिये।

सुनी तो बहुत सी ऐसी बातें, पर प्रश्न है कि कौन सी बात सच है ? यह सच है कि किसी आकाश पर बैठने से हमें बड़ा आनन्द मिलेगा वहां दुःख का नाम न रहेगा ? और क्या यह सच है कि आगे चल कर यहीं इसी संसार को हम सुखमय बना सकेंगे ?

जिस कर्त्ता ने यह रचना रची उसी ने मनुष्य समाज को जन्म दिया है। उसने सूर्य वायु, जल और पृथ्वी इस प्रकार रचे हैं कि मनुष्य यहां जीवित रह सकता है और सुख भोग सकता है। उसने ही कुछ ऐसे विचार उत्पन्न किये हैं कि वे विचार मनुष्य को इस संसार को सुन्दर बनाने में लगाते हैं। देखिये मनुष्य कैसी बाटिका और मन्दिर बनाने में लगा हुआ

में सर्वाधिक सहायता देगी। संस्कृत हमारे मानसिक विकास में उपादेय सिद्ध होगी। जो व्यक्ति अपनी प्राचीन परम्परा की गहराई में निष्णात नहीं वे कभी स्वप्न में भी इसे नहीं सोच सकते। इसके विकास की सम्भावनाएं अनेक हैं। संस्कृत हमें अपने अतीत गौरव से परिचित कराने के लिए ही नहीं, अपितु हमारे भविष्य को भी आलोकित करने और हमें समुन्नति-पथ दिखलाने के लिए समर्थ है। अतः देववाणी को हमारा शतशः प्रणाम।

———

स्वास्थ्य-सद्विद्या

के. लक्ष्मण शर्मा

स्वास्थ्य क्या है ? क्या इस को आरोग्य यह नाम देना उपयुक्त होगा ?

यदि आरोग्य को ही स्वास्थ्य माना जाय तब तो स्वास्थ्य का अपना कोई पृथक् अस्तित्व ही नहीं रहता। और यह अभीष्ट नहीं है। स्वास्थ्य का अपना एक पृथक् अस्तित्व है। इस लिये सर्वप्रथम यह विचारना चाहिये कि स्वास्थ्य का स्वरूप क्या है ?

शरीर में प्राण की सम्यक् सन्तुलित स्थिति ही स्वास्थ्य है। सप्राण व्यक्ति के शरीर के लिये ही स्वस्थ, अस्वस्थ शब्दों का प्रयोग होता है, मृत व्यक्ति के शरीर के लिए नहीं। प्राण के द्वारा ही सम्पूर्ण इन्द्रियां और सब अंग अपने अपने कार्य करने में समर्थ होते हैं। यह ही मनुष्य की मृत्यु से रक्षा करता है, उसे जीवित रखता है। इसी प्राण की प्रबलता के कारण शैशव में मनुष्य खूब बढ़ता है जिस से मनुष्य-शरीर को 'देह' कह देते हैं और उमर ढलने के साथ साथ, इसी प्राण की दुर्बलता के कारण मनुष्य-देह क्षीण होने लगती है जिस के कारण उसे 'शरीर' कह देते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राणशक्ति की पर्याप्तता ही स्वास्थ्य है। इसलिए अब हम आगे मुख्यतया इस प्राण शक्ति पर ही विचार करेंगे।

यह देखा जाता है कि स्वस्थ होने पर मनुष्य मन प्रसन्न दीखता है, उस की कार्य करने की प्रवृत्ति होती है, कभी स्थायी रोग नहीं होते और अकस्मात् हुए हुए रोग भी स्वतः प्राकृत मार्ग से शान्त हो जाते हैं। अस्थायी रोग तो कभी कभी स्वस्थ मनुष्य को भी हो ही जाते हैं।

स्वास्थ्य का एक अन्य लक्षण भी किया जाता है। वह है 'स्वतः सिद्ध निर्वृति'। निर्वृति का अभिप्राय होता है तृप्ति या इसे सुख भी कह देते हैं। वस्तुतः यह आत्मा का स्वभावधर्म अकृत्रिम आनन्द ही है। इस प्रकार यह आनन्द प्रत्येक प्राणी के अन्दर विद्यमान है। परन्तु अस्वस्थ व्यक्तियों में दबा हुआ होने के कारण यह अनुभव नहीं होता है। स्वस्थ व्यक्तियों के

है। मनुष्य को यह सब कुछ यहां छोड़ जाना है पर वह प्रयत्न करता है कि अति सुन्दर भवन बनाये। वैकुण्ठ का विचार, धर्म का विचार, देश, जाति अथवा वर्गवाद सब ही विचार इस लिए हैं कि मनुष्य कुछ यहां बनाये, बिगाड़े नहीं। और यदि वह बिगाड़ता है तो स्रष्टा के विरुद्ध कार्य करता है। वैकुण्ठ कहिये या बहिश्त। कांग्रेस कहिये या लीग। समाजवाद सिखाइये या साम्यवाद। यदि आपकी किसी शिक्षा के कारण मनुष्य शुद्ध जीवन बिताता, उन्नति करता तथा प्रसन्न रहता है और किसी दूसरे मनुष्य को दुख नहीं देता तो मैं कहूँगा कि आपकी शिक्षा ठीक है, पवित्र है शुद्ध है, लाभदायक है। और यदि आपकी बातों से समाज में झगड़ा पड़ता है तो मैं कहूंगा कि आपकी शिक्षा त्रुटिपूर्ण है। हां किसी हानिकारक दशा को सुधारने के लिए हो सकता है कि कांट छांट, तोड़ ताड़ करनी पड़े। संसार के नियम अधिक ताप बढ़ जाने पर आंधी ले आते हैं। आंधी से हानि भी हो जाती है। परन्तु आंधी हानि के लिए नहीं आती। वह तो फिर से ठण्डक लाती है।

ही यह स्पष्ट रूप से अनुभव हुआ करता है। श्रीमद्भागवत के—

द्वाविमौ चिन्तयामुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ।
यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परंगतः॥

इस श्लोक में भी अकृत्रिम आनन्द की ही ओर निर्देश है। इस के सिवाय पूर्णशक्ति सम्पन्न होने के कारण स्वस्थ व्यक्ति से ही सदाचार के प्रति प्रवृत्ति और दुराचार से निवृत्ति की आशा की जा सकती है। शमदमादि गुण स्वस्थ व्यक्ति में ही सम्भव है, अस्वस्थ में नहीं। अतः यह कहना संगत ही है कि दुराचारी पुरुष कुछ अंशों में अस्वस्थ होता है। स्वास्थ्य ही सब धर्मों का आधार है, इसीलिये इसे 'आद्य-धर्म' कहा जाता है--शरीरमाद्यं खलु धर्म-साधनम्।

इस स्वास्थ्य का अस्तित्व मन, प्राण और शरीर की प्रकृति के ही माध्यम से रहता है। प्रकृति से यहां 'माया' नाम की पारमेश्वरी शक्ति ही अभिप्रेत है। यह सम्पूर्ण जगत् भी उसी शक्ति के अधीन है। मन आदि सम्पूर्ण इन्द्रियां इस प्रकृति से संचालित होती हैं। ये सब अपने आप जड़ हैं यह तो सर्वमान्य सिद्धान्त है। प्रकृति ही सर्वतोऽधिक शक्तिशाली है। यह अन्दर बाहर सर्वत्र व्याप्त होकर रहती है। स्वास्थ्य, रोग और नीरोग होकर पुनः स्वास्थ्य-प्राप्ति इत्यादि सभी कुछ उसी के ही अधीन हैं। इस लिए यह समझ कर कि यह सब प्रकृति का ही खेल है, स्वास्थ्येच्छुक सुधीजन स्वास्थ्य के लिए आवश्यक धर्मों का अनुष्ठान करते रहते हैं; प्रयत्नजन्य स्वास्थ्यलाभ या रोगशान्ति का ध्यान नहीं करते। श्रीमद्भगवद्गीता में भी लिखा है—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'। इस प्रकार यह एक मानसिक भेषज है। यह आगे प्रतिपादित किया जायगा।

प्रकृति में स्वास्थ्य संरक्षण की—रोगों को उत्पन्न कर, उन्हें शान्त कर, पुनः स्वास्थ्य सम्पादन की—कितनी क्षमता निहित है, इस से सामान्यतया वैद्यवर्ग और सामान्यजन परिचित नहीं है। निसर्गोपचार का अवलम्बन करने वालों को विदित ही है कि इस की शक्ति अपरिमेय है। तथापि विषौषधि द्वारा स्वास्थ्य का नाश जितनी शीघ्रता से होता है प्रकृति की शक्ति से उतनी शीघ्रता से स्वास्थ्य सम्पादन नहीं किया जा सकता।

यतः इस मार्ग का अनुसरण करने वाले प्रकृतिपरायण होते हैं, अतः यह 'प्राकृत' मार्ग कहा गया है। और इस विद्या को 'प्राकृति-स्वास्थ्य-विद्या' कहते हैं। अप्राकृतिक मार्गों की अपेक्षा इस मार्ग की क्या विशेषताएं हैं, अब यह निरूपित किया जायगा।

प्रथम विशेषता तो यह है कि अन्य चिकित्सा-पद्धतियों में रोगचिकित्सा और स्वास्थ्य-लाभ, ये दोनों परस्पर पृथक् वस्तुएं मानी जाती हैं। पाश्चात्य-चिकित्सा पद्धति में तो स्वास्थ्य प्राप्ति के अंश का नितान्त अभाव है। आयुर्वेद में उस का वर्णन प्राप्त होता है पर बहुत अल्प और अपूर्ण। इस के चिकित्साप्रकरण और स्वास्थ्यप्रकरणोक्त विधानों में आपस में सामंजस्य नहीं दीखता। इस प्रतिपाद्यमान शास्त्र में दोनों विभाग परस्पर इतने सम्बद्ध हैं कि एक ही प्रतीत होते हैं। स्वस्थ व्यक्ति को स्वास्थ्य-संरक्षण के लिए जो विधियां निर्देश की जाती हैं, वे ही रोगी को रोगोपचार के रूप में बताई जाती है जो विषादि स्वस्थ के लिए अहितकर है, वे अस्वस्थ के लिए भी लाभप्रद नहीं हो सकते। उदर सम्बन्धी अंगों को उपवास, मिताहार द्वारा आराम देना, पथ्यभोजन, उचित निद्रा, व्यायाम, वायु-सेवन

सूर्य-रश्मि-स्नान, जलस्नानादि का सेवन और औषधियों का न सेवन करना विशेषतः रेचक औषधियों के परिहार का निर्देश, स्वस्थ और अस्वस्थ दोनों के लिए ही समान रूप से है।

द्वितीय विशेषता यह है कि इस पद्धति में प्रत्येक व्यक्ति अपना वैद्य स्वयं होता है. औषधियों पर आश्रित नहीं होता। निःसन्देह वह स्वयं ही अपनी रोग-चिकित्सा व स्वास्थ्य-रक्षा कर सकता है।

मनु का यह सुवाक्य—"सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्"—इस स्वास्थ्य-विद्या में भी पूर्णतया चरितार्थ होता है।

तृतीय विशेषता यह है कि रोग के विषय में अद्वैतसिद्धान्त के स्वीकार से, एक ही रोग मानने से, भिन्न भिन्न रोगों के भिन्न भिन्न प्रतीकार भी इस शास्त्र में नहीं माने जाते। इसलिए औषध-सेवन न करने का हमारे इस शास्त्र का नियम है।

अब यह निरूपित किया जाता है कि औषध–प्रयोग से रोग का समूल नाश नहीं होता अपितु स्वास्थ्य-विनाश होता है। आधुनिक समय में द्विविध चिकित्सा-पद्धतियां प्रचलित हैं–एक विषमौषधि प्रयोग की और दूसरी समौषधि प्रयोग की। इनमें पुरातन प्रणाणी विषम-औषध-प्रयोग की ही है।

विषम स्वभाव के द्रव्यों द्वारा रोगों को बलात् शान्त करना, विषमौषधप्रयोग-प्रणाली का कार्य है। इसका प्रयोग करने वाले वैद्यों को या तो रोग के वास्तविक कारण का ज्ञान नहीं हैं, या उन्होंने उसकी उपेक्षा की है। स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए प्राण जो प्रयत्न करता है, उसे ही रोग कहते हैं। इसलिए रोगों को बलात् शान्त करना अप्राकृतिक है। बलात् शान्त किये जाने पर वह पूर्णतया शान्त नहीं होता। रोग का कारणभूत मल शरीर में रुका रहता है। और औषध कहलाए जाने वाले विषों का और अधिक संचय हो जाता है। इस प्रकार के अन्दर रुके हुए मलरूप विषों से स्थिर रोगों का होना अनिवार्य है। उनका फिर विषमौषधियों द्वारा उपचार किये जाने पर वे ही रोग प्राण-घातक सिद्ध होते हैं, और इनका वैद्यों द्वारा कोई उपचार सम्भव नहीं। इस लिये इनके कारण अकाल मृत्यु निश्चित है।

विषमौषध-प्रयोग की चिकित्सा-प्रणाली के इन्हीं प्रकार के दोषों को देख कर प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् हनीमेन ने समौषध-प्रयोग की पद्धति आविष्कृत की। इस प्रणाली में, प्राण की सहायता के लिए रोग के अनुकूल औषधियां दी जाती हैं। इनकी मात्रा अत्यल्प होती है। इसलिए प्राण की हत्या नहीं होती। परन्तु स्थिर रोगों के उपचार में इस पद्धति को सफल होते हुए कम ही पाते हैं।

जब इन दोनों प्रणालियों द्वारा रोगमुक्त न होने पर कुछ व्यक्तियों की श्रद्धा न रही तब उन धीर व्यक्तियों ने परमेश्वर से प्रेरित होकर इस विद्या का साक्षात्कार किया। उन्होंने इसके द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त कर लोकहित के लिए इसका शास्त्र के रूप में प्रतिपादन किया।

तथापि यह एक सनातन शास्त्र है। सदा से पशु-पक्षी इसी द्वारा अपना उपचार करते आए हैं। मनुष्यों में तथाकथित नागरिकता के बढ़ते हुए प्रचार से दुराचार में आसक्त होने के कारण इस शास्त्र को विशेष महत्व नहीं दिया गया, और सर्वत्र वैद्य या डाक्टरों का ही राज्य होगया। उन्होंने इन बुरी बुरी दवाइयों का प्रयोग आरम्भ कर दिया, और इस प्रकार इस विद्या का लोप हो गया। अब पुनः कुछ विद्वानों ने इसको पुनरुज्जीवित किया है।

डाक्टरों का यह विचार है कि विषम ओषधियां रोगों को नष्ट कर स्वयमेव शरीर से बाहर हो जाती हैं। परन्तु वस्तुस्थिति उसके विपरीत है। यदि उनको बाहर निकालने में प्राणशक्ति का प्रयोग न हो तो वे कभी भी बाहर न निकलें। औषधियों के बारबार और बहुल प्रयोग से एक तो प्राण दुर्बल हो जाते हैं और दूसरा प्राण को उन्हें बाहर निकालने का समय भी नहीं मिलता। इस प्रकार वे शरीर के मर्मों में प्रविष्ट हो जाती हैं, जिनके कारण अनेक कष्टसाध्य एवं असाध्य रोगों का उदय हो जाता है।

इस स्वास्थ्य सद्विद्या के तीन अद्वैतसिद्धान्त हैं—रोगाद्वैत-सिद्धान्त—एक ही रोग है। स्वास्थ्य रोगाद्वैत-सिद्धान्त—स्वास्थ्य को रोग से पृथक् नहीं किया जा सकता। चिकित्साद्वैतसिद्धान्त अतः एक ही चिकित्सा है। रोगों में द्वैत सिद्धान्त को मानने वाले भी इन्हीं तीन सिद्धान्तों में भटकते फिरते हैं, अद्वैत-सिद्धान्तवादियों का तो कहना ही क्या।

निसर्गोपचार के अनुयायियों को यह अद्वैत सिद्धान्त अनुभूति-सिद्ध है और युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

(मूल संस्कृत में प्राप्त, अनु० ब्र० रामपाल)

पृथ्वी की गति

शिवपूजनसिंह कुशवाहा

ऋषि दयानन्द ने प्रतिपादित किया है कि पृथिवी आदि लोक गतिमान् हैं[1]। महर्षि के इस वैज्ञानिक वेदानुकूल सिद्धांत पर विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने 'दयानन्द तिमिर भास्कर'[2] तथा पं० कालूराम शास्त्री ने 'अर्यसमाज की मौत'[3] में तथा अन्य पौराणिक पण्डितों के यह आरोप किया है कि 'भू० भ्रमण' वेदानुकूल नहीं है और यह योरोपियनों का नक़ल है। और भी जो पूर्वपक्ष है, वह नीचे दिये जाते हैं—

उव्वर, महीधर और सायण प्रभृति प्राचीन भाष्यकार सूर्य का घूमना ही मानते हैं। यथा—'ऋ० १०। १६०।१ ; अथर्व० ६।३१।१; सामवेद उ० ६ प्र०। १ अर्द्ध।११ सू। १ ऋचा, तैत्तिरीय संहिता १।५।३।१ में 'ऐषु सर्वत्रै व गौर्गमनशील सूर्य इत्येवाह' सर्वत्र सूर्य पृथिवी के चारों ओर घूमता है और पृथिवी स्थिर है, ऐसा लिखा है।

ऐतरेय ब्रा० ५।२३।३ के भाष्य में विनियोगमात्र दर्शाते हुए पृथिवी को स्थिर ही लिखा है। अथर्व० ६।८।३ में 'सद्यः पर्येति सूर्यः' सूर्य द्याव पृथिवी की अतिशीघ्र परिक्रमा करता है। ऋ० १। ३५।२. ३ में 'सविता देवो याति' सूर्य भगवान् चलता है।

श्री भास्काचार्य ने 'सिद्धान्त शिरोमणि' में लिखा है, 'मरुच्चलो भूरचलां स्वाभावतः' स्वभाव से ही वायु, जल तथा पृथिवी अचल है।

---

१ देखो—'सत्यार्थ प्रकाश' अष्टम समुल्लास।

२ देखो—'दयानन्द-तिमिर-भास्कर' तृतीय संस्करण, पृष्ठ ३१६, ३२०।

३ देखो—'आर्यसमाज की मौत' पृष्ठ २७०; १७१; २७१; ६३; २७२।

श्री अमरसिंह ने लिखा है–'भूर्भूमिरचला ऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा' (अमरकोष)

आर्यभट्ट के 'भू-भ्रमण' सिद्धान्त के विरुद्ध ब्रह्मगुप्त 'ब्रह्मसिद्धान्त' में लिखते हैं—

'प्राणेनैति कलां भूर्यदि,
तर्हि कुतो व्रजेत् कमध्वानम्।
आवर्त्तनमुर्व्याश्चेन्न,
पतन्ति समुच्छ्रयाः कस्मात्॥'

अर्थ–'यदि पृथिवी एक श्वास में एक कला पूर्व की ओर चलती है तो यह कहां से चलती है और किस मार्ग से चलती है? यदि कहो कि पृथिवी अपने अक्ष पर घूमती है तो बड़ी २ अट्टालिकाएं तथा मीनार आदि क्यों नहीं टूट कर गिर जाते।'

लल्ल ने आक्षेप किया कि–

'यदि च भ्रमति क्ष्मा तदा,
स्वकुलायं कथमाप्नुयुः खगाः।
इषवोऽभिनभः समुज्झिता,
निपतन्तः स्युरपांपतेर्दिशि॥
पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो,
वरुणाशाभिमुखो व्रजेद् घनः।
अथ मन्द गमात्तथा भवेत्,
कथमेकेन दिवा परिभ्रमः॥'

अर्थ–'यदि पृथिवी घूमती है तो चिड़ियाएं अपने २ घोंसलों को कैसे पाती हैं? फिर आकाश की ओर चलाए हुए बाण, चलाने के स्थान से पश्चिम की ओर गिरने चाहिएं। यदि पृथिवी का घूमना पूर्व की ओर है तो बादलों को सर्वदा पश्चिम की ओर चलना चाहिए। यदि कहो कि पृथ्वी की गति के मन्द होने से वैसा नहीं होता, तो फिर केवल एक ही दिन में पृथ्वी का पूरा आवर्त्तन कैसे हो जाता है?'

श्रीपति ने लिखा कि:—

'यद्येवमम्बरचरा विहगा स्वनीड

मासादयन्ति न खलु भ्रमणे धरित्र्याः।
किंचाम्बुदा अपि न भूरिपयोमुचः
स्युर्देशस्यपूर्वगमनेन चिराय हन्त॥
भूगोल वेग जनितेन समीरणेन
केत्वादयोप्य परदिग्गनयः सदा स्युः।
प्रासाद भूधर शिरांस्यपिसम्पतन्ति
तस्माद् भ्रमत्युड्गण स्त्वचलाऽचलैव॥'

अर्थ–'यदि पृथिवी चलती है तो आकाश में उड़ने वाले पक्षियों को अपना घोंसला न मिलना चाहिये। यदि देश पूर्व की ओर जा रहा है तो किसी एक स्थान में देर तक वृष्टि नहीं होनी होनी चाहिए। भूमण्डल के वेग से उत्पन्न हुए वायु के वश हो कर पताका आदि को सदा पश्चिम की ओर उड़ना चाहिये; तथा मकान, पहाड़ आदि की चोटियों को भी गिर जाना चाहिए; पर ये सब बातें नहीं होतीं, अतः नक्षत्र-चक्र ही चल रहा है, अचला (पृथ्वी) अचला (गतिहीन) ही है।'

विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित 'सूर्य सिद्धान्त' पर श्रीयुत् बा० महावीर प्रसाद जी श्रीवास्तव बी. एस. सी., एल. टी., विशारद कृत 'विज्ञान भाष्य' अत्यन्त उपयोगी है; परन्तु आप भी ऋषियों पर आक्षेप करते हैं–

'हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों को भूमि-भ्रमण का ज्ञान नहीं था। वे शीघ्र मन्दोच्चपात नामक विशेष चल बिन्दुओं में आकर्षण मानते थे। उन्हें ग्रहों की दूरी तथा क्रम का ज्ञान नहीं था आदि...।'

यह तो हुआ पूर्वपक्ष, अब उत्तरपक्ष सुनिए –

सायणभाष्य के अनुगामी नाममात्र के वेद-भाष्यकारों में भी आंख मूँद कर अपने आचार्य का अनुकरण करते हुए, सूर्य पृथिवी के चारों ओर घूमता है, ऐसा अर्थ किया है। यदि ये सब महानुभाव सूर्य अपनी परिधि पर घूमता है,

ऐसा भी लिख लेते तो किसी को कोई आपत्ति न होती। उस समय की रूढ़िवाद की परम्परा के आधीन हो कर ही यह सब भूल हुई है।

अथर्व० ६।८।३ में 'द्यावा पृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः' यहां सूर्य द्यु लोक तथा पृथिवीलोक को प्राप्त होता है वा व्याप जाता है, ऐसा अर्थ है। ऋ० १।३५।२, ३ में 'सविता देवो याति' इस में 'आयाति' का अर्थ 'प्राप्नोति' (प्राप्त होता है) ऐसा है। क्यों कि ऐसे गोण प्रयोग देखे जाते हैं यथा–'ग्राम आ गया'; 'नगर आ गया।'

न्याय वात्स्यायन भाष्य (१।१।५ न्याय वा० भाष्य) तथा महाभाष्य (अथर्व०२।२।५ भाष्य) में सूर्य की गति कही है, वहां 'आदित्य-गति' से आदित्य को लक्षित कर के पृथिवी की जो गति है वह उपचार से आदित्य गात कही जाती है।

'सूर्य एकाकी चरति' (यजु० २३।१०)

'सूर्योऽसहायोगच्छति' (महीधरः) सूर्य अकेला घूमता है।

सूर्य किसी दूसरे के चारों ओर नहीं वरन् अपने ही अक्ष पर घूमता है।

संशययुक्त सायणाचार्य जी ने एक अन्य मन्त्र के व्याख्यान में भूमि चलती है ऐसा भी लिखा है—

'नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं' (ऋ० ३।३०।६) के भाष्य में–

'इषरां स्थानाभावेन चलन्तीं एवं विधां भूमिं' 'स्थानाभाव से चलती हुई इस प्रकार की भूमि को' ऐसा अर्थ किया है। 'स्थानाभाव से चलती हुई' यह क्यों युक्ति है सो विद्वान् ही स्वयं विचारें।

इस प्रकार सायणाचार्य ने भूभ्रमण में संशययुक्त होने से परस्पर विरुद्ध ही लेखन कि[या] है। अज्ञानान्धकार फैलने के पश्चात् शायद [भू] भ्रमण की चर्चा सर्वप्रथम श्रीयुत् पं० आर्यभ[ट्ट] जी ने चलाई। परन्तु अवनतिग्रस्त ज्योतिष [के] उस समय में लल्ल, ब्रह्मगुप्त तथा श्रीपति द्वा[रा] भूमि भ्रमण पर किए गये आक्षेपों का उत्तर [न] दिया जा सका। ये आक्षेप ठीक वही हैं [जो] आजकल भूगोल कक्षा का प्रत्येक प्रारम्भि[क] समझदार विद्यार्थी करता है।

ब्रह्मगुप्त के आक्षेप का निराकरण—[य]ह ऊंचा है, यह नीचा है, यह कल्पना भी [तो] पृथिवी के आश्रित ही है। पृथिवी के एक भा[ग] के दूसरी ओर हो जाने पर भी मकान-छतें-शिख[रा]दि आकाश की ओर ऊंचे होंगे, पृथिवी[के] आकर्षण[1] से इन में कुछ भेद न आवेगा, न [वे]

---

१ पृथिवी में आकर्षण शक्ति पृथिवी के केन्द्र से सब ओर चलती है, आकर्षण का बिन्दु केन्द्र है कारण कि पार्थिव अग्नि का केन्द्र [से] प्रसार होता है केन्द्रस्थ अग्नि ही आकर्षणकार[क] है यह कहा जा सकता है। इस आकर्षणब[ल] को वेद में 'ऊर्ज' नाम से कहा है—'यत् [ते] मध्यं पृथिवी यच्च नभ्यं यास्ता ऊर्जस्तन्वः सम्ब[भू]वुः। तासु नो धेहि' (अथर्व० १२।१।१२) 'हे पृथिवी ! जो तेरा 'नभ्य' केन्द्र-केन्द्र का बल जो 'मध्य'-मध्य का बल और जो 'तत्व' बाहर परत के 'ऊर्जः' बल हैं उनमें धारण कर।

पृथिवी हमें अपने आकर्षण बल के अधीन रखती है इस से यह सिद्ध होता है।

'बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम' (ऋ० ७।३४।७) पृथिवी भार को धारण करती है, भार-भारवाली वस्तु को पृथिवी अपने ऊपर धारण करती है, अतएव कोई वस्तु पृथिवी से ऊपर जाकर पुनः पृथिवी पर आ जाती है। यह आकर्षण है।

गिर सकेंगे। अतः पृथिवी के भ्रमण करते हुए भी उपर्युक्त सब शिखरादि, अट्टालिकाएं तथा मीनार आकाश की ओर ही रहेंगे, न कि पृथिवी की ओर गिर पड़ेंगे।

पृथिवी वेग से भागती हुई भी तनिक नहीं हिलती, और नहीं हिलने का यह कारण है कि इसे अपने मार्ग में किसी बाहरी वस्तु के साथ संघर्ष (Collision) नहीं होता। हां जब कभी किसी अन्य कारण से, जैसे भूकम्प के अवसर पर हिलती है, तो बड़ी २ इमारतें अवश्य टूट कर गिर जाती हैं तथा अन्यान्य भी उपद्रव हुआ करते हैं।

लल्ल के आक्षेप का निराकरण—जब पृथिवी घूमती है तो उस में जो वेग है वह पक्षीगण तथा उन के घोंसलों में भी विद्यमान है। क्यों कि पृथिवी के ऊपर जो एक वायु का चक्र रहता है जिस के कारण कि पृथिवी छिन्न-भिन्न नहीं होती, वह चक्र पृथिवी के साथ २ ही

'महाभाष्य व्याकरण' में कहा है—'लोष्ठः क्षिप्तो बाहुवेगं गत्वा नैव तिर्यगागच्छति नोर्ध्वम्मारोहति पृथिवी विकारः पृथिवीमेव गच्छति' (महाभाष्य १।१।७ मिट्टी का ढेला ऊपर फेंका हुआ बाहुवेग को पूरा कर के नहीं टेढ़ा जाता है और न अधिक ऊपर चढ़ता है किन्तु पृथिवी का विकार होने से पृथिवी पर ही आता है।

'आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरुस्वाभिमुखं स्वशक्त्या। आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात्क्व पतत्वियं खे' (सिद्धान्त शिरोमणि भुवनकोषः ६) अर्थात्—पृथिवी में आकर्षण शक्ति है, उस से ऊपर की भारी वस्तु को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है उक्त वस्तु गिरती हुई सी लगती है।

रहता है जितने वेग से घोंसले पूर्व की ओर जाते हैं उतने ही वेग से पक्षी भी घूमते रहते हैं, वह उस गति को जान नहीं सकते। जैसे तीव्र गति से चलने वाली बन्द गाड़ी में पुरुष वेग को अनुभव नहीं करता। चलती गाड़ी में उसी डिब्बे में जहां चाहे इधर उधर चलता फिरता भी रहता है। इसी प्रकार आकाश में भी पृथिवी का वेग बना रहता है, उसी से पक्षी और घोंसले भी चलते रहते हैं। वैज्ञानिकों ने इस वेग की परिधि ४००० मील तक मानी है।

बादल तथा छूटे हुए बाण भी पृथिवी की दैनिक तथा वार्षिक गति में उस का साथ बराबर देते रहते हैं, जिस से उनका सदा पश्चिम की ओर जाना आवश्यक नहीं होता।

श्रीपति के आक्षेप का निराकरण—पताका तथा ध्वजादि के प्रत्येक अंश वा परमाणु में पृथिवी भ्रमण का वेग बराबर रहता है। इसी से पताकादि पश्चिम की ओर उड़ते हुए दिखाई नहीं देते। जैसे बन्द गाड़ी के बन्द डिब्बे में उस के अन्दर वाली पताकाएं डिब्बे की वायु के वेग के साथ २ होने से विपरीत दिशा में नहीं उड़तीं। इसी प्रकार यहां भी समझना चाहिए। वायु मण्डल कुछ पृथिवी से पृथक् तथा स्वतन्त्र पदार्थ नही है।'

पृथिवी आदि गोलों का घूमना भिन्न २ तीन केन्द्रों पर तीन प्रकार का होता है। एक तो अपने केन्द्र पर सूर्य के सन्मुख पश्चिम से पूर्व को दूसरे सूर्य को केन्द्र बना कर उसके चारों ओर घूमना तीसरे ध्रुवीय अक्ष पर घूमना। वेद में लिखा है—'द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि' (ऋ० १।१६४।४८ तथा अथर्व १०।८।४)

इस से प्रत्येक आकाशीय पिण्ड का तीन केन्द्रों पर भ्रमण अनिवार्य है।

परन्तु सूर्य किसी दूसरे के चारों ओर न घूम कर अपने ही अन्दर तीनों केन्द्र बना कर घूमता है। लिखा है: -

'सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको
अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा
विश्वा भुवना अधितस्थुः ॥'
(ऋ० १।१६४।२; तथा अथर्व० ६।६।२)

अर्थ-(एक चक्रं रथं सप्त युजन्ति) एक चक्र वाले सूर्य मण्डल रथ को सात किरणें युक्त होती हैं (एकः अश्वः सप्त नामा वहति) सात नामों वाला-सात किरणें जिसके प्रति रसों को नमाती हैं वह सूर्य उक्त अपने मण्डल रूप रथ को ले जाता है[1] (त्रिनाभि चक्रम, अजरम अनर्वम्) वह चक्र तीन नाभियों वाला-तीन केन्द्रों वाला क्षय रहित अप्रहित न रुकने वाला दूसरे पर अनाश्रित है (यत्-इमा विश्वा भुवना अधितस्थुः) जिस में ये सब पृथिवी आदि गो[ले] आश्रित हैं।

यहां सूर्य मण्डल के चक्र को तीन नाभियों वाला-तीन केन्द्रों वाला कहा है। ये तीन नाभियां अर्थात् केन्द्र सूर्य मण्डल के चक्र के अन्दर कही हैं।

१ सप्तनामादित्यः सप्तास्मै रश्मियो रसानभि सन्नामयन्ति। (निरुक्त ४।२७)

(अपूर्ण)

पुस्तक-परिचय

समालोचना के लिये पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं। एक प्रति आने पर केवल प्राप्ति-स्वीकार ही देना सम्भव होगा।

भारतीय ग्रन्थमाला

(दारागंज, प्रयाग) की पांच पुस्तकें

लेखक—भगवानदास केला।

भावी नागरिकों से—

अपने जीवन के ५५ वर्षों को पूर्ण कर लेखक ने इस भय से कि शायद अब वह देर तक नवयुवकों का पथ प्रदर्शन न कर सकेगा, अन्तिम रूप से भावी नागरिकों को कुछ सन्देश दिया है। विद्यार्थी अपने विद्यार्थी जीवन को समाप्त कर नागरिक जीवन में पदार्पण करता है। अपनी शिक्षा के अनुरूप वह किसी व्यवसाय को अपनाना चाहता है। उस समय यह सन्देश उसको एक चेतावनी देता है। सन्देश डाक्टर, लेखक, मजदूर, किसान व्यापारी आदि प्रत्येक व्यवसाय में प्रवेश के इच्छुक के लिए पृथक् २ है। उनको सम्मिलत रूप में भी कहा गया है कि अगर तुम्हारे अन्दर मानवता लेशमात्र भी है तो अपने व्यवसाय को एक मात्र स्वार्थ का साधन न बनाकर अधिक से अधिक समाज के हित का ध्यान रखना। प्रत्येक विद्यार्थी को नागरिकता के द्वार में प्रवेश करने से पूर्व इसका अध्ययन करके आपने कर्तव्यों तथा मार्ग की बाधाओं को अवश्य जान लेना चाहिये। मूल्य १॥)

व्यवसाय का आदर्श—

प्रायः सर्वत्र, सभी व्यवसायों में अधिकांश व्यक्तियों के सन्मुख कोई उच्च आदर्श नहीं होता। वे इस व्यवसाय को केवल इसलिए अपनाते हैं कि उनका जीवन निर्वाह हो सके। चाहे उसके साधन अच्छे हों या बुरे, वे अधिक से अधिक अर्थोपार्जन करना चाहते हैं। परन्तु वे इस बात का ख्याल नहीं करते कि उनके कार्य से किसी अन्य को कोई हानि व कष्ट तो नहीं उठाना पड़ता। प्रस्तुत पुस्तक ऐसे व्यक्तियों के लिए एक गम्भीर चेतावनी है। हम समाज के अङ्ग हैं और हमें प्रत्येक कार्य में स्वार्थ से ऊपर उठकर अपने समाज के हित का ध्यान रखना चाहिये। पुस्तक में लेखक, व्यापारी, कारीगर आदि प्रत्येक व्यवसायी के लिए उसके व्यवसाय का आदर्श मार्ग प्रकट किया गया है। अपने व्यवसाय को अधिक से अधिक सफल बनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को इसका अध्ययन करना चाहिए। मूल्य १)

देशी राज्यों की जन-जागृति—

भारतीय रियासतों की समस्या भारत के उपप्रधान मन्त्री सरदार पटेल की नीति कुशलता के कारण सुलझ सी गई है परन्तु अंग्रेजों ने अपने जाने से पूर्व इसे उलझाने में कोई कसर उठा न रखी थी। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि शायद भारत कई टुकड़ों में विभक्त हो जायगा परन्तु रियासतों के अन्दर और बाहर भी निरन्तर आन्दोलन ने उपर्युक्त खतरे को दूर कर दिया। रियासती प्रजा ने किस प्रकार अपने निरंकुश शासकों से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष किया और किस प्रकार क्रमशः वह सफल होती गई इसके रोमांचकारी इतिहास को लेखक ने अपनी इस पुस्तक में संकलित करने का प्रयत्न किया

है। प्रयत्न निस्सन्देह सफल रहा है। रियासती जन जागरण के प्रेमियों को अवश्यमेव यह पुस्तक रुचिकर प्रतीत होगी। मूल्य ५)

नागरिक शिक्षा—

दीर्घकालीन अंग्रेजी शासन में हमारे अंग्रेज महाप्रभुओं ने इस बात का पूरा प्रयत्न किया कि हमें नागरिक शास्त्र का ज्ञान न हो सके। एक सामान्य विषय जिसका ज्ञान प्रत्येक स्कूल के विद्यार्थी को भी होना चाहिए हमारे यहां के एम० ए० पास व्यक्तियों को भी न हो पाता था। वे यह भी न जानते थे कि म्युनिसिपैलिटी का संगठन किस प्रकार का होता है। परन्तु परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ ही यह कमी भी दूर होती जा रही है। अब शिक्षा विभाग ने स्कूलों में इस विषय के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया है। प्रस्तुत पुस्तक में नागरिक के अधिकारों व कर्तव्यों का सरल ढंग से विवेचन किया गया है। पुस्तक विशेषकर स्कूलों के विद्यार्थियों व अध्यापकों के लिए अधिक उपयोगी है।

मूल्य १॥)

निर्वाचन पद्धति—

ले०—श्री दयाशङ्कर दुबे और श्री भगवानदास केला। आज के प्रजातन्त्रीय युग में जबकि सर्वत्र बालिग मताधिकार को स्वीकार किया जा रहा है प्रत्येक निर्वाचक को यह जान लेना ज़रूरी है कि उसके तथा उसके अन्य साथियों के मत से जो उम्मीदवार किसी पद के लिए चुना जाता है उसके चुनाव में किन २ नियमों का पालन किया जा रहा है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने इसी विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। साथ ही यह भी बताया है कि किसी भी चुनाव में चाहे वह किसी सभा सोसाइटी का हो अथवा असेम्बली व म्युनिसिपैलिटी का है निर्वाचक तथा उम्मीदवारों को किन २ कर्तव्यों का अवश्य पालन करना चाहिए। पुस्तक प्रत्येक नागरिक को पढ़नी चाहिये। मूल्य १

श्याम सुन्दर रसायनशाला, काशी द्वारा प्रकाशित श्री केदारनाथ पाठक की लिखी पुस्तकें

आहार सूत्रावली--

आहार के समुचित उपयोग से असीम लाभ उठाया जा सकता है! प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेदीय प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के आधार पर यह प्रतिपादित किया गया है कि आहार कैसा हो, उसका उपयोग किस समय करें और कैसे करें और किस प्रकार का भोजन किस समय उपादेय नहीं होता। आयुर्वेद के आहार सम्बन्धी सिद्धान्तों को जानने के इच्छुक इस से लाभ उठा सकते हैं।

मूल्य ।

मधु के उपयोग--

हमारे अधिकांश डाक्टर, वैद्य अनेक रोगों में मधु जैसे प्राकृतिक पदार्थों की अपेक्षा ग्लूकोज आदि अप्राकृतिक पदार्थों का सेवन कराना अधिक पसन्द करते हैं। इसका कारण यह है कि वे मधु के उपयोग प्रायः भूल से गए हैं। मधु स्वस्थ व्यक्ति के लिए भी सेवनीय है क्योंकि यह शक्तिवर्धक है। पुस्तक में मधुमक्खी पालन पर भी प्रकाश डाला गया है। परन्तु यह प्रायः गलत है। जैसे कि बताया गया है कि नर मधुमक्खी बाहर जाकर फूलों से रस संग्रह करती हैं जबकि यह काम केवल मजदूर मक्खियों का ही है। मूल्य

नीम के उपयोग—

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखक ने नीम के पत्ते, फूल, कच्ची एवं परिपक्व निमोली, बीज, तेल, गों

पढ़ाइयां नियमित रूप से चल रही हैं। आश्रम की सभाएं और क्रीड़ा भी प्रगतिशील है। आगामी श्रद्धानन्द बलिदान पर्व के शुभ अवसर पर एक हॉकी टूर्नामेन्ट का आयोजन किया जा रहा है। टूर्नामेन्ट २३ दिसम्बर से प्रारम्भ होगा।

दीपावली

दीपावली पर्व कुलवासियों ने बड़े स्नेह और उत्साह से मनाया। अमावस की रात को माध्यमिक विभाग के नव-निर्मित छात्र-भवन में कुलवासियों की एक सभा श्रीयुत् आचार्य प्रियव्रत जी के सभापतित्व में समवेत हुई। जिसमें ब्रह्मचारियों तथा गुरुजनों ने दीपावली के वीर-पुरुषों के चरित्रों तथा कार्य-कलापों पर विवेचन किया। रात होते ही विश्वविद्यालय के केन्द्रवर्ती प्रमुख भवनों पर दीपमालाएं जलाई गईं। इस वर्ष कागज सुलभ होने से महाविद्यालय विभाग के छात्रों द्वारा गुब्बारे अच्छी संख्या में तैयार किए गए थे। अतः भोजनान्तर गुब्बारे उड़ाने का कार्यक्रम बहुत मनोरञ्जक रहा।

अगले दिन श्री दयानन्दाब्द के उपलक्ष्य में साहित्य-परिषद् की ओर से एक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें विभिन्न वक्ताओं ने महर्षि दयानन्द जी के जीवन और कार्यों पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया। सभापति-पद से श्री आचार्य जी ने बताया कि १६वीं शती की भारत की सर्वश्रेष्ठ विभूति के रूप में महर्षि दयानन्द को युगावतार कह सकते हैं। नव-भारत की जागृति के सर्व प्रकार के बीज हमें उनकी शिक्षाओं में उपलब्ध होते हैं।

मान्य अतिथि

संगीतसम्राट् श्री पं० ओंकारनाथ जी गुरुकुल के पुराने प्रेमी और मित्र हैं। पिछले दिनों एक सम्मेलन के अवसर पर वे हरिद्वार तीर्थ में पधारे थे। गुरुकुल का पुराना स्नेह उनको गुरुकुल भूमि में भी खींच लाया। गुरुकुल में पधार कर आपने बड़े स्नेह से अपनी अपूर्व संगीत-माधुरी का पान कराया। आपने "चदरिया राम नाम रस भीनी" तथा "वन्दे मातरम्" के गीत अपनी मनोमुग्धकारी रसपूर्ण शैली में सुना कर समस्त कुलवासियों को मुग्ध कर दिया।

मध्य-प्रदेश की सरकार के आदिवासी विकास-विभाग के अध्यक्ष श्री वासुदेव गोविन्द वर्णीकर महोदय भी पिछले दिनों अपने सहायकों सहित गुरुकुल का अवलोकन करने पधारे थे। गुरुकुल नगरी की परिक्रमा करके आपने समस्त कार्यों का अवलोकन कर बड़ी प्रसन्नता अनुभव की।

गुरुकुल के आदिकाल में उसके महाविद्यालय विभाग में रसायन-शास्त्र के विद्वान् उपाध्याय और हिन्दी में 'विकासवाद' नामक मौलिक ग्रन्थ के प्रणेता श्रीयुत विनायक गणेश साठे कोई बत्तीस वर्ष बाद गुरुकुल में पधारे। अतिशय प्रेम और श्रद्धा भरे हृदयों से कुलवासियों ने उनका स्वागत और समादर किया। मान्यवर साठे जी संप्रति मुम्बई के उपनगर विलेपारले में एक रासायनिक उद्योगशाला चला रहे हैं। गुरुकुल की रासायनिक उद्योगशाला के विकास के लिए आपने बहुत से कीमती सुझाव और परामर्श प्रदान किये हैं।

अभी उस दिन बम्बई प्रान्त के प्रधान मन्त्री श्रीयुत बाल गंगाधर खेर महोदय गुरुकुल में पधारे! आपने श्रद्धानन्द शिक्षानगर में घूम-घूम कर समस्त विभागों का निरीक्षण किया। बड़ी श्रेणियों के छात्रों के साथ

विश्रंभालाप करके गुरुकुल की कार्यप्रवृत्तियों के प्रति बड़ी दिलचस्पी और आत्मीयता प्रकट की। विदा होते हुए आप गुरुकुल की सम्मति-पत्रिका में निम्नलिखित वचन अङ्कित कर गए हैं– 'आज के ज़माने में ऐसी संस्कारदायी शिक्षा पद्धति को कितनी आवश्यकता है कहने की जरूरत नहीं।'

नेशनल मेडिकल ग्रेजुएट्स एशोसियेशन

पिछले दिनों अखिल भारतीय नेशनल मेडिकल एशोसियेशन का प्रथम अधिवेशन वेजवाड़ा के प्रसिद्ध डाक्टर सूर्यनारायणराव के सभापतित्व में नई दिल्ली में संपन्न हुआ था। इस सम्मेलन में गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में गुरुकुल के चिकित्सक डा० सत्यपाल जी आयुर्वेदालंकार सम्मिलित हुए थे। भारत में अनेक ऐसे राष्ट्रीय और स्वशासित कालेज हैं जहां पूर्वीय तथा पश्चिमी चिकित्सा-शास्त्र तुलनात्मक शैली से पढ़ाए जाते हैं। परन्तु उन के स्नातकों को सरकार द्वारा उनकी योग्यता के अनुपात में आंशिक रूप से ही अधिकार-पत्र तथा रजिस्ट्रेशन के पत्र दिए जाते हैं। ऐसी दशा में उन स्नातकों के कार्य में बड़ी कठिनाई रहती है। वे अपनी पढ़ी हुई विविध चिकित्सा पद्धतियों का व्यवहार नहीं कर पाते। औषधियों के विषय में भी उन पर कई प्रकार के प्रतिबंध लगे हुए हैं। इन व्यावहारिक कठिनाईयों को दूर करने के लिए नेशनल मेडिकल एशोसियेशन का संगठन किया गया है जिस से यह सरकार से इस दिशा में न्याय्य अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता रहे। इस संगठन के निर्माण में गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक डा० भद्रसेन जी आयुर्वेदालंकार ने बहुत प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। नई दिल्ली में संपन्न इस मंडल के अधिवेशन में इस प्रकार की संस्थाओं की सर्वविध कठिनाईयों को दूर करने के लिए सरकार से जोरदार अपील की गई है।

दिवंगत श्री पं० भवानी प्रसाद जी

समस्त गुरुकुल-जगत्, आर्य-जगत् और हिन्दीप्रेमी-जगत् में यह समाचार अत्यन्त खेद से सुना जायगा कि गुरुकुल कांगड़ी के जन्मकाल से ही उसके घनिष्ठ मित्र, परम सहायक और गत दस वर्षों से गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय में निसर्गोपचार–शास्त्र के विद्वान् उपाध्याय श्रीयुत पं० भवानीप्रसाद जी का गत दो नवम्बर को अपने जन्म-स्थान हल्दौर (जिला बिजनौर) में देहावसान हो गया है।

प्रशंसित पण्डित जी गुरुकुल और आर्य समाज के उन विद्या-विलासी और तपस्वी सत्पुरुषों एवं सेवकों में से थे जो थोड़ा बोल कर अधिक काम किया करते हैं। उनका समस्त जीवन स्वभाषा, स्वभूषा, स्वसंस्कृति स्वदेश और स्वदेशी की साधना, सेवा, प्रचार और प्रसार में व्यतीत हुआ। पंडित जी की प्रारम्भिक शिक्षा फारसी से प्रारम्भ हुई थी। आर्यसमाज की शिक्षा से उनके मन में हिन्दी और संस्कृत भाषा के प्रति अपार भक्ति उत्पन्न हुई। हिन्दी और संस्कृतभाषा तथा उनके साहित्य के अध्ययन और अनुशीलन के लिए उन्होंने अपने को समर्पित कर दिया। बिना किसी पाठशाला में जाकर, गुरुकुल के आदिकाल की पंडित-मण्डली की सत्संगति और आत्म-पुरुषार्थ से उन्होंने हिन्दीभाषा, संस्कृत–साहित्य तथा आर्य-शास्त्रों में स्पृहणीय पाण्डित्य प्राप्त किया। इसी प्रकार स्वावलम्बन से ही उन्होंने अङ्ग्रेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। उनकी संस्कृत-भक्ति का यह हाल था कि वे संस्कृतभाषा

को लोक-भाषा और राज-भाषा बना हुआ देखा चाहते थे। हिन्दी और संस्कृत में उन्होंने उत्तमोत्तम ग्रन्थों की रचना की है। उनकी बनाई हुई "आर्यभाषा पाठावलियाँ" आधी शती से गुरुकुलों तथा अन्य आर्य-शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाई जा रही हैं। "आर्य पर्व-पद्धति" लिखकर तो उन्होंने आर्यसमाज की अपूर्व सेवा की है। आज आर्यमात्र के घर घर में मान्य पंडित जी द्वारा प्रदर्शित पद्धति से समस्त त्यौहार, ऋतु-पर्व और वीर-पूजा के उत्सव मनाए जाते हैं। अपने जीवन के उत्तरार्ध में उनको निसर्गोपचार विद्या के प्रति प्रगाढ़ प्रेम हो गया था। पिछले दिनों वे प्राकृतिक चिकित्साशास्त्र के विषय में संस्कृत भाषा में पद्य रूप में एक ग्रन्थ का प्रणयन कर रहे थे। इस पुस्तक का कुछ अंश काशी के संस्कृत मासिक-पत्र "सुप्रभातम्" में प्रकाशित भी हो चुका है। सरल सादा जीवन, उन्नत विचार और शास्त्र-चिन्तन का आर्य आदर्श उनके जीवन में चरितार्थ हो रहा था। गुरुकुल के प्रतिष्ठापक स्वामी श्रद्धानन्द जी के वे पुराने मित्र और सहकर्मी थे।

उन्होंने अपने समस्त सुपुत्रों और सुपुत्रियों को बड़े जतन से उत्तम प्रकार की शिक्षा-दीक्षा और शील-संस्कार देकर विद्वान्, चारित्रवान् और शीलवान् बनाया है। जिनमें से तीन सुपुत्र श्री पं० मदनगोपाल विद्यालंकार, श्री पं० राम-गोपाल विद्यालंकार और श्री पं० सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ तो अपनी सेवा और सुकृतियों द्वारा हिन्दीसाहित्य-संसार में पर्याप्त कीर्ति पाए हुए हैं। इसी प्रकार जामाताओं में डॉक्टर सत्यकेतु विद्यालंकार और श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार भी माने हुए कृतिशील विद्वान् और यशस्वी लेखक हैं।

मान्य पंडित जी की ज्ञानवृद्धता, वयोवृद्धता और अनुभववृद्धता, गुरुकुल वासियों के लिए आशीर्वादरूप थी। कुल परिवार के छोटे बड़े सभी व्यक्ति उनसे सत्प्रेरणा, परामर्श, सुझाव और मार्ग-दर्शन प्राप्त करते रहते थे। गुरुकुल की बालसृष्टि और तरुण बन्धु मण्डली उनके प्यार-दुलार, स्नेह-सौजन्य और अनुग्रह से आप्लावित होकर व्यवहार में सर्वत्र ही अतिशय आत्मीयता भरे "पिता जी" इस उपनाम से स्मरण करती थी।

ऐसे एक मुनिकल्प-मनीषी और सहृदय सत्पुरुष की पावन स्मृति में समस्त गुरुकुल वासियों के अश्रु भीने नयन और श्रद्धा भरे मस्तक झुके हुए हैं। उनके सम्मान में एक दिवस के लिए गुरुकुल के सब विभाग बन्द रहे और समस्त कुलवासियों ने समवेत होकर उनका गुणानुवाद करके उनकी अमूल्य सेवाओं के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलियां अर्पित की तथा उनके आत्मीयजनों और मित्रों के साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति व्यक्त की। परम पिता परमात्मा दिवंगत पण्डित जी की आत्मा को चिरशान्ति प्रदान करे यही प्रार्थना है।

ग्राहकों के पत्र

मान्य महोदय, पत्रिका के अन्य लेख तो उपयोगी तथा पठनीय हैं ही, परन्तु गुरुकुल-समाचार स्तम्भ अत्यन्त उपयोगी तथा आवश्यक है। गुरुकुल के समाचारों के साथ ही ब्रह्मचारियों के तोल तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी सूचना उनके संरक्षकों के लिए सन्तोष का साधन होगी तथा उनकी स्वाभाविक जिज्ञासा को दूर करने में भी सहायक होगी।

ब्रह्मचारी ललित मोहन के संरक्षक होने के नाते मैं आपको अपनी तथा कुटुम्ब की ओर से बधाई देता हूं और पत्रिका की सफलता के लिए सद्कामनाएं भी।   भवदीय—

चमनलाल वर्मा (ग्राहक नं० १५६)

हिमाचल प्रदेश द्वारा—गुरुकुल की उपाधियां स्वीकृत

समस्त गुरुकुल प्रेमियों विशेषतः स्नातक बन्धुओं को यह जान कर हर्ष होगा कि हिमाचल प्रदेश की सरकार ने गुरुकुल विश्वविद्यालय की उपाधियों को अपने प्रदेश के लिए स्वीकृत कर लिया है। उक्त प्रदेश की सरकार ने गुरुकुल की पदवियों को निम्नलिखित प्रकार से अन्य युनिवर्सिटियों की उपाधियों के समान माना है।

मेट्रिकुलेशन = विद्याधिकारी
बी० ए० = अलंकार
एम० ए० = वाचस्पति

सरकार के मूल-पत्र की प्रतिलिपि नीचे अङ्कित हैं।

TRUE COPY

No. E-19-153/48

Erom

The Chief Education officer.
Himachal Pradesh, Simla.

To

The Pro-Vice-Chancellor,
Gurukula University Kangri,
P.O. Gurukula Kangri,
Dt. Saharanpur (U.P)

Dated Simla, the 6th November 1948.

Dear Sir,

With reference to your letter No. 6088 dated the 19 th October 1948, the Chief Commissioner. Himachal Pradesh, is pleased to recognise the following examinations of the Gurukula Kangri University as equivalent to the examinations of Indian Universities noted against them :-

Name of the Examinations of of the Gurukula Kangri University.	Name of the Examinations of recognised Indian Universities.
(1) Vidyadhikari	Matriculation or High School
(2) Alankar	B. A.
(3) Vachaspati	M. A.

Yours faithfully.
Sd/- Gokal Chand
Chief Educational Officer.

कड़ी और छाल आदि नीम के प्रत्येक अवयव गुणों की विवेचना की है।

श्रीयुत म्हस्कर और कायस ने यह दिखाया (सर्प दंशे प्रयुज्यमानाः भारतवर्षीयाः वनस्पतयः, १९३० के आयुर्वेद महासम्मेलन में पठित भाषण) कि नीम से किसी भी तरह सर्पविष नहीं उतारा जा सकता। लेखक ने इस विषय भ्रमपूर्ण विचार फैलाया है। मूल्य १)

आरोग्य लेखाञ्जलि-- पृष्ठ ८८. मूल्य १)

यह स्वास्थ्य, आहार, तथा रोगविज्ञान आदि विषयक बारह छोटे निबन्धों का संग्रह है। मालिश, स्वच्छता आदि विषयों के वर्णन के अनन्तर आमला, अमरूद, पपीता, करेला व आलू आदि के गुणों का संक्षेप में प्रतिपादन किया गया है।

प्रारम्भक स्वास्थ्य-- ले० गौरीशंकर गुप्त।

पुस्तक में स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य नियमों का संकलन है। इन नियमों को भलीभांति समझ कर उनके अनुरूप आचरण किया जाय तो अनेक रोगों से बचा जा सकता है। सर्व-साधारण इस से लाभ उठा सकते हैं। मूल्य ।≈)

मनोरञ्जन (दीपावली विशेषांक)-- व्यावस्थापक--श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति। सम्पादक-श्री चिरञ्जीत। पृ० ९६, मूल्य ।।।)

मनोरञ्जन गत दो वर्षों से हिन्दी जगत् का बौद्धिक तृप्ति कर रहा है। प्रस्तुत अंक में पांच कहानी, ८ कवितायें ७ विभिन्न साहित्यिक व सामयिक लेख तथा बाल-मनोरञ्जन एवं फुलझड़ियां दो विशेष स्तम्भ हैं। कहानियों तथा कविताओं का संग्रह बहुत उत्तम है।

विकास (त्रैमासिक)—सम्पादक—डा० फतहसिंह, हरिबल्लभ तथा अञ्जल शर्मा। प्रकाशक—श्री भारतीय संसत्, कोटा। पृ० संख्या ९६ मूल्य एक प्रति १।।), वार्षिक ५)।

अभी हाल में कोटा से विकास नामक त्रैमासिक साहित्यिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ है। पत्र हिन्दी-साहित्य को स्थिर सामग्री प्रदान करता है। विभिन्न प्रकार की साहित्यिक सामग्री तथा विज्ञान, इतिहास, राजनीति व समाज-शास्त्र सम्बन्धी महत्वपूर्ण लेखों का सुन्दर संग्रह है।

अतीत (पद्यात्मक मासिक)— अतीत महल हाथरस. यू० पी०। वार्षिक मूल्य ६)। भारत के अतीत कालीन गौरवमय इतिहास की विभिन्न गाथाओं को लेकर इसकी रचना की जाती है। पत्र भारतीय-संस्कृति का पोषक तथा हिन्दुत्व का समर्थक है।

प्रवाह (मासिक) संचालक—श्री ब्रिजलाल बियाणी। अस्थायी सम्पादक—श्री विनयकुमार तथा कुमारी सुमित्रा शर्मा। वार्षिक मूल्य ६)। अकोला से कुछ मास पूर्व ही 'प्रवाह' का प्रकाशन आरम्भ हुआ है। प्रवाह तीव्र गति से मानव समाज को प्रगति पथ पर अग्रसर करने के लिए प्रयत्नशील है। कविता, कहानी, एकांकी, तथा साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक लेखों का इसमें उत्तम संग्रह है। 'विचार-प्रवाह' शीर्षक स्तम्भ में विभिन्न विद्वानों द्वारा विविध विषयों पर अपने विचार प्रकट किये जाते हैं। हिन्दी के प्रथम पंक्ति के सुसंपादित पत्रों में प्रवाह का स्थान ऊंचा है।

साधना-(मासिक) सम्पादक व प्रकाशक—परमानन्द शर्मा। वार्षिक मूल्य ६)।

इस वर्ष कलकत्ता से एक पठनीय हिन्दी मासिक 'साधना' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है। इसका श्रावण व भाद्रपद का एक ही अंक हमारे सन्मुख है। पत्रिका में साहित्यिक लेखों व कविताओं का उत्तम संग्रह है। कहानियों व गद्यगीतों को भी उचित स्थान दिया गया है। —यश।

सम्पादक के नाम पत्र

जाति-भेद को मिटाइये

भारत के पाकिस्तान और हिन्द में विभाजन से जो अनर्थ हुआ है, वह आपसे छिपा नहीं। कोई समय था समूचे भारत में आर्यों का अखण्ड राज्य था। इतना ही क्यों, नवीं शताब्दी में काबुल में भी हिन्दु राजे राज करते थे। पर आज यह दशा है कि अमृतसर से परे कोई हिन्दु देखने को भी नहीं मिलता। वेद और ऋषि दयानन्द का आदेश सकल विश्व को आर्य बनाने का था। पर हो उलटा रहा है। फैलने के स्थान में आर्यों का पैर गत १३०० वर्ष से पीछे और पीछे हटता जा रहा है। सिंध में सत्यार्थ प्रकाश के १४ वें समुल्लास पर जब प्रतिबन्ध लगाया गया था, तो हम लोग बहुत गरजे थे और उसे हटाने के संबंध में हमने नाना प्रकार की प्रतिज्ञायें की थीं। पर उस प्रतिबंध का हटना तो दूर, उलटा सब हिन्दुओं को उस प्रदेश से निकल आना पड़ा।

इस दुरवस्था का कारण क्या है? यदि आर्यसमाज ने 'शुद्धि' पर बल दिया होता, यदि उसका शुद्धि-आन्दोलन सफल हुआ होता, तो पाकिस्तान बनने की कभी नौबत न आई होती। हिन्दु न तो मुसलमान को नीच और अपवित्र समझ कर उससे घृणा करना छोड़ता है और न उसे शुद्ध करके रोटी-बेटी व्यवहार द्वारा अपने में पचाने को ही तैयार है। ऐसी दशा में मुसलमान अलग वासभूमि न बनाते तो क्या करते। पर 'शुद्धि' के रास्ते में सब से बड़ी रुकावट जाति-पांति है। जब तक जाति-भेद है 'शुद्धि' द्वारा मुसलमानों को पचाना तो दूर, हिन्दुओं की विभिन्न जातियां भी संगठित होकर एक राष्ट्र नहीं बना सकतीं। जांत-पाँत के कारण जाट और बनिए का, भूमिहार और कायस्थ का आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक हित एक नहीं हो सकता। चार करोड़ के लगभग जो मुसलमान भारत-संघ में रह गए हैं, वे कुछ काल तक डर के मारे चाहे चुप रहें, पर देर तक वे अपना सामाजिक तिरस्कार सहन न कर सकेंगे। फलतः वह दिन दूर न होगा जब भीतर से वे असन्तुष्ट मुसलमान और बाहर से पाकिस्तान भारत के लिए घोर विपत्ति का कारण बन जायेंगे।

इस रोग का दारू कांग्रेस या किसी दूसरी सरकार के पास नहीं। इसे ऋषि दयानन्द का आर्य समाज ही दूर कर सकता है। इसलिए आवश्यक है कि आर्य समाज शेष सब गौण बातों को छोड़ कर जाति-भेद को मिटाने पर बल दे। इस ओर ध्यान न देने का ही यह कुफल है कि आर्य समाज को पश्चिमी पंजाब में कालेज, स्कूल और बड़ी बड़ी सम्पतियां छोड़कर भाग आना पड़ा है।

आपका

नालन्द प्रकाशन, बम्बई। — द्वारिकाप्रसाद सेवक

अखिल भारतीय षष्ठ आर्य महासम्मेलन

आगामी ३१ दिसम्बर १९४८ एवं १,२ जनवरी १९४९ को कलकत्ता में अखिल भारतीय षष्ठ आर्य महासम्मेलन के अवसर पर 'स्वागत कारिणी' सभा द्वारा एक ऐसी पुस्तक निकालने का निश्चय किया गया है जिसमें आर्य समाज का संक्षिप्त इतिहास तथा समाज द्वारा किए गए कार्य-कलाप का संक्षिप्त विवरण हो। अतएव समस्त आर्य समाजों, आर्य-प्रतिनिधि-सभाओं तथा विज्ञ आर्य महानुभावों से प्रार्थना है कि इस सम्बन्ध की उपयोगी एवं ज्ञातव्य बातें

लिख कर भेजने की कृपा करें।

अवधबिहारीलाल
प्रचार मन्त्री आर्यसमाज मन्दिर,
१९ कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता।

गुरुकुल की पारिभाषिक शब्दावली

मैंने जन्तुशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद देखा, देख कर प्रसन्नता हुई। इस उत्साह के लिए मेरी ओर से श्री चम्पतस्वरूप जी को धन्यवाद दीजिये।

आर्य सेवक
रामस्वरूपसिंह,
डिस्ट्रिक्ट एग्रिकलचरल ऑफिसर, बुलन्दशहर।

जन्तु-शास्त्र के पारिभाषिक शब्द

चम्पत स्वरूप

Backbone पृष्ठवंश या मेरुदण्ड
Bacteria जीवाणु
Balancers समतोलक
Balanoglosus सिन्दूरफलरसन
Balantidium coli स्यूतुपम बृहदन्त्री
Banacle बग्नकिल
Base आधार
Basal granule आधारीय कण
Battery धर्षक
Beaver बृहद्बभ्रु
Bed bug शय्या मत्कुण या खटमल
Beetle गुबरीला, भौंरा
Bell animal cule घण्टाजन्तुक
Belly तुन्द, तोंद
Belly of a muscle स्फीति
Belt पेटी
Biceps द्विशिख नामक माँसपेशी
Biconcave युगलनतोदर
Biconvex युगलोन्नतोदर
Bifid द्विधाकृत
Bilateral द्विपार्श्वीय
Bile पित्त
Bile duct पित्त प्रणाली
Bile passage पित्तमार्ग
Bilharzia बिलहार्ज़िया
Bilharziasis बिलहार्ज़ियारुक
Binary fission द्वयित विभाजन
Binomial nomenclature द्विनाम पद्धति
Binturong बिनचुरांग
Biology जीव विज्ञान
Bipolar द्विध्रुवीय
Bird पक्षी
Birth opening जन्म छिद्र
Bivalve द्विकपाटिक
Bladder (urinary) वस्ति, मूत्राशय
Bladder (gall) पित्तकोश
Bladder worm वस्ति कृमि
Blastocoele कोरकदरी, कोरकगह्वर
Blastomere कोरकांश
Blastopore कोरकरन्ध्र
Blastostyle कोरकस्तंभ
Blastula कोरकुल
Blepharoplast पक्ष्मछदपिंड
Blind spot अन्धबिन्दु
Blood रक्त, रुधिर
Blood corpuscles रुधिर कण
Blood corpscles red लोहित रुधिर कण
Blood corpuscles white श्वेत रुधिर कण

Blood sinus रक्त सारणि
Blood stream रुधिर धारा
Blood vessels रक्त वाहिनियां
Blood vascular system रक्तवाहक संस्थान
Blood fly अण्ड मक्खी
Body cavity शरीर गह्वर
Body (of a vertebra) गात्र
Body louse कायजूं
Bone अस्थि
Bone marrow अस्थि मज्जा
Bone tissue अस्थि धातु
Bony अस्थिल
Book gill पुस्तक गलफड़
Book lung पुस्तक फुप्फुस
Bot fly सूंडी मक्खी
Botany वनस्पतिशास्त्र, उद्भिज शास्त्र
Brachial बाहवी
Brachium प्रगंड
Brain मस्तिष्क
Brain case शिर सम्पुट
Branchial गलफड़िक
Branchial aperture गलफड़िक छिद्र
" arch " चाप
" cleft " दरार
" septum " प्राचीर
" vessels " वाहिनि
Breast bone उरफलक, वक्षिका
Bristle शूक
Brittle star भंगुर तारा
Brown पिंगल
Bubonic plague गण्डकीय मारिका
Buccal cavity वक्त्र गुहा
Buccal respiration वक्त्रीय श्वासक्रि
Bud कलिका
Budding कलियाना
Bufo कटुरव
Bufonidae कटुरवादि
Bug मत्कुण
Bulbous aorta कन्दीय महाधमनी
Bushy लोमश
Butter fly तितली

गुरुकुल समाचार

ऋतु तथा स्वास्थ्य

दीपावली के बाद से ही शीतकाल का सौन्दर्य और सुहावनापन कुलभूमि में दृष्टिगोचर हो रहा है। इन दिनों प्रातः सायं अच्छा शीत पड़ रहा है। शीत के बढ़ते ही रोगों का वातावरण नष्ट हो चुका है और गुरुकुल के रोगीगृह में छात्रों की संख्या नगण्य हो गई है। चहुँ ओर शीत ऋतु की प्रफुल्लता, स्फूर्ति और ताजगी दृष्टिगोचर होने लगी है। प्रभात में बहने वाला पूर्व दिशा का शीतल पवन (जिसे इस प्रदेश में ढाढू कहते हैं) बहना प्रारम्भ हो चुका है। इस वर्ष वर्षण होने से शीत का प्रभाव कुछ ज प्रारम्भ हो गया है गुरुकुल नगरी के आंधवासि का स्वास्थ्य सुखावह और सुन्दर है। समीप वनों में बेर, आँवले आदि की बहार प्रारम्भ है अतः छुट्टी के समय होने वाले वन-विहार प्रारम्भ हो गए हैं। गंगा पार की पुण्यभूमि शाक-पात की खेतियां लहलहा रही हैं।

नवीन-सत्र

दीपावली के बाद से पढ़ाई का शीतकाल सत्र प्रारम्भ हो चुका है। सभी विभागों

गुरुकुल मुद्रणालय

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
वैदिक विनय, पहला, दूसरा, और तीसरा भाग	श्री अभय २), समाप्त,	१॥)
वैदिक ब्रह्मचर्य-गीत	”	२)
ब्राह्मण की गौ	”	॥|)
वेदगीताञ्जली (वैदिक गीतियाँ)	श्री वेदव्रत	२)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द	श्री चमूपति	२), १॥)
वरुण की नौका (दो भाग)	श्री प्रियव्रत	६)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१॥)
सन्ध्या सुमन	श्री नित्यानन्द	१|)
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश (तीन भाग)	श्री लब्भूराम नय्यड़	२॥)
आत्ममीमांसा	श्री नन्दलाल	२)
भारत वर्ष का इतिहास [तीन भाग]	श्री रामदेव	७)
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द, अजिल्द	श्री चन्द्रगुप्त	७), ६)
अपने देश की कथा (दूसरा संस्करण) -बच्चों के लिए	श्री सत्यकेतु	१|=)
ऋषिदयानन्द का पत्र व्यवहार	श्री श्रद्धानन्द	॥|)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव	श्री क्षितीश	॥)
बालनीति कथामाला ॥=)	रघुवंश, संशोधित (तीन सर्ग)	|)
नीतिशतक (संशोधित) /)	साहित्य-दर्पण, संशोधित	२)
संस्कृत प्रवेशिका. प्रथम भाग. द्वितीय भाग		॥|=),॥=)
साहित्य-सुधासंग्रह. प्रथम, द्वितीय, और तृतीय बिन्दु		१|), २॥), १|)
विज्ञान प्रवेशिका (दो भाग) —मिडिल स्कूलों के लिए	श्री यज्ञदत्त	२॥)
गुणात्मक विश्लेषण (बी. एस. सी. के लिए)	श्री रामशरण दास	२)
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार)	श्री ओम्प्रकाश	॥|)
प्रार्थनावली (प्रेरणा देने वाली प्रार्थनाए और गीतियां)	श्री वागीश	|)
आर्यभाषा पाठावली (आठवां संस्करण)	श्री भवानीप्रसाद	१॥)
आहार (भोजन सम्बन्धी पूर्ण जानकारी के लिए)	श्री रामरत्नपाठक	५)
जलचिकित्सा (पानी से ही रोगों को दूर करने के उपाय)	श्री देवराज	३॥)
लहसुनः प्याज (दूसरा परिवर्द्धित संस्करण)	श्री रामेश बेदी	२॥)
तुलसी (दूसरा परिवर्द्धित संस्करण)	”	२)
सोंठ (तीसरा परिवर्द्धित संस्करण)	”	१॥)
देहाती इलाज (दूसरा परिवर्द्धित संस्करण)	”	१)

मिलने का पता— प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

श्रद्धानन्द-अङ्क

गुरुकुल-पत्रिका

पौष २००५

पुण्यश्लोक श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

वर्ष १ **गुरुकुल-पत्रिका** अङ्क ५

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति।
श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

मूल्य देश में ४ वार्षिक एक प्रति

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

स्वामी श्रद्धानन्द जी

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हमारे देश की अधोगति का एक मुख्य कारण यह है कि इस देश में ऐसे व्यक्ति विरले ही हैं जो सत्य को अपने जीवन में चरितार्थ कर दिखाने की क्षमता रखते हैं; जो केवल जीने के लिए ही नहीं जीते अपितु कुछ कर दिखाने के लिए जीते हैं। हमारे इस देश में जहां उत्साह की इतनी कमी है, यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सत्य के उपासक स्वामी श्रद्धानन्द जी की मृत्यु से कितनी महान् क्षति हुई है। और इस दुर्घटना का प्रकार भी कितना जघन्य है। ध्यान देने की बात यह है कि उनकी क्षति को हम जितना अधिक अनुभव करते हैं उनके जीवन और चरित्र की गरिमा हमारे सामने उतनी ही अधिक स्पष्ट होती जाती है।

संसार में महान् पुरुष सत्य के प्रकाश के लिए अवतीर्ण हुआ करते हैं। इसके लिए वे अपने जीवन को अर्पित कर देते हैं। इस सत्य के लिए आत्मोत्सर्ग द्वारा वे मृत्यु पर विजय पा लेते हैं। हमारे भोजन के पौष्टिक तत्व भौमिक वायुमण्डल में सदैव विद्यमान रहते हैं, उन्हें प्रयोगशालाओं में पृथक् भी किया जा सकता है; परन्तु वे हमें तब तक पुष्टि नहीं दे सकते जब तक उन्हें कुछ ऐन्द्रियिक पदार्थों द्वारा जीवित रूप न दे दिया जाय। ठीक यही सत्य के विषय में भी कहा जा सकता है। कितने इने गिने व्यक्ति हैं जिनमें सत्य को शब्द जाल से पृथक् करने की क्षमता और उसको अपने जीवन में सदा के लिए निर्माण-शील रूप में चरितार्थ करने का सामर्थ्य है। सत्य का ज्ञान तो कइयों को हो सकता है परन्तु भाग्यवान् व्यक्ति ही इसका जीवन के साथ स्वारस्य अनुभव करके इसे मूर्त रूप दे सकते हैं। और उसे सर्वलभ्य बना देते हैं। यह प्राणवान् अनुभूति एक अमित शक्ति है और जो इसका लाभ मानवता को पहुँचाते हैं, वे विश्व का महान् उपकार करते हैं।

श्रद्धानन्द जी की भारत को देन उनकी सत्य में अगाध श्रद्धा है। 'श्रद्धानन्द' यह नाम ही उनकी उस भावना का परिचायक है। (वे सत्य के प्रति श्रद्धावान् थे और उसी में आनन्द मनाते थे)। उनके लिए सत्य और जीवन एक हो गए थे। सत्य ही जीवन था और जीवन ही सत्य था! उनकी मृत्यु उनके निर्भीक अनथक प्रयत्नों के अमर चित्रों को आलोकित करती हुई एक प्रकाश किरण की तरह हमारे सामने आती है।

महान् पुरुष ही इस आकस्मिक मृत्यु के धक्के को सह सकते हैं, केवल उन्हीं के लिए यह एक सामान्य घटना है। क्योंकि जो मनुष्य मृत्यु को स्वार्थ से ऊंचा उठ कर देखते हैं वे जीवित होते हुए भी मुक्त हो जाते हैं। परन्तु मृत्युदूत इस एकमात्र श्रद्धानन्द जी की जीवनलीला समाप्त करने से सन्तुष्ट नहीं हो गए। कुछ दिन पहले ही हमने धर्म के नाम पर रक्तरञ्जित धर्मान्धता को गलियों में नग्न नृत्य करते देखा है। जो व्यक्ति इसके शिकार हुए वे पूर्णतया तबाह ही हो गए। उनके लिए तो यह मृत्यु एक असीम क्षति थी। घरों में विलाप करती हुई माताओं व स्त्रियों को कोई सान्त्वना देने वाला न बचा था। व्यक्ति के जीवन को समाप्त कर देने वाली यह नृशंसता वस्तुतः ही असह्य है। वह जन समुदाय जिसके सदस्य इसमें तबाह हो गए हैं—इस विनाशकारी हिंसा के गुरुतर भार को किस प्रकार सहन कर सकता है। इस समय उनकी दशा क्या होगी जब एक दूसरे को मारने की प्रच्छन्न प्रतिस्पर्धा में मृत्यु के दरवाजे फिर एक बार खुल गये हैं। आज हम इस दुःख और लज्जा के भार से दबे हुए हैं।

दुःख के समय दर्शन देने वाले भगवान् हमारे बीच में एक प्रश्न के रूप में आते हैं। प्रश्न यह है कि हम इस विषय में क्या करने जा रहे हैं। न तो यह ही सम्भव है कि हम इस दुर्भाग्य को पूर्णतः समाप्त कर दें और न ही इससे बचने का कोई तात्कालिक उपाय निकाला जा सकता है। ऐसी अवस्था में हमारे सामने यह प्रश्न आता है कि हम इस घटना से किस प्रकार लाभ उठा सकते हैं।

बच्चा फर्श पर गिरने से जब चोट खाता है तो वह ठोकर मार कर फर्श से बदला चुकाता है। परन्तु बदले के स्थान पर अपने आप बार बार चोट खाता है। जब वयस्क ठोकर खाता है तब वह टकराने वाली चीज को देखता है और उसे दूर करने का प्रयत्न करता है। परन्तु हम देखते हैं कि वेदना के असह्य होने पर वयस्क भी बच्चे की तरह बदला लेने लगता है। उस समय वह शान्त रहना भीरुता समझता है और क्रुद्ध हो जाने से वीरता अनुभव करता है। क्रुद्ध हो जाना मनुष्य प्रकृति के लिये जितना अनुकूल है; अपने पर क्रोध को हावी न होने देना भी मनुष्य प्रकृति के उतना ही अनुकूल है। जब पड़ौसी आग की लपटों में हो; आग के व्यवहार पर बौखलाना व्यर्थ है। विनाश तो सर्वत्र घात में छिपे रहते हैं; इसलिये दूषणीय वे व्यक्ति हैं जो पहले से इसके प्रतिरोध का उपाय नहीं करते। जिन गांव वालों के घर जल कर भस्म हो गये हैं यदि उनमें यह समझ आगई है कि कुओं के अभाव में ही यह गलती हुई है तब सम्भव है कि वे भविष्य में ऐसी विपत्ति से बच सकें। यही बात है जिसे आज हमें समझना चाहिये। अर्थात् हमें इस विपत्ति के मूल कारण पर विचार करना चाहिए।

भारत के लिये सबसे बड़ी क्लेश की बात यह है कि इस देश में भिन्न भिन्न जातियां बिलकुल पास पास रहती हुई भी आपस में लेश मात्र सम्बन्ध नहीं रखतीं और जो थोड़े बहुत सम्बन्ध हैं वे भी अवरोधक प्रवृति वाले। उदाहरण के लिये शासक जाति के साथ हमारे सम्बन्ध केवल विदेशियों की तरह हैं; उनमें कोई आत्मीयता नहीं है। यही तत्व है जिसके कारण हम विदेशी शासन में सबसे अधिक कष्ट पाते हैं। आवश्यक या बाधित बन्धन अन्ततोगत्वा शिथिल या अपमानजनक हो जाते हैं। भारत की मुख्य जातियों (हिन्दू और मुसलमानों) के मध्य

विद्यमान गहरी खाई के कारण ही हमें समय समय पर घातक बुराइयां सफल होती दिखाई देती हैं।

जब कभी अपने देश में (राष्ट्रिय कांग्रेस में या अन्यत्र) हमने समान योग-क्षेम की वृद्धि के लिये हाथ से हाथ मिलाने का प्रयत्न किया है तभी हम असफल हुए हैं। उन्नति में बाधक बनने वाली ये खाइयां सदियों से मुंह बाये खड़ी हैं। जब हमारे प्रान्त में 'स्वदेशी' आन्दोलन आरम्भ हुआ मैं भी उसमें भाग लेने वालों में से एक था। उस समय कुछ मुसलमानों ने इसमें भाग नहीं लिया। इस पर हमारे कुछ एक जन-प्रिय नेता खूब गरम हुए और कहने लगे कि उन्हें (मुसलमानों को) बिलकुल छोड़ देना चाहिए। वे हमसे नहीं मिलेंगे : यह मैं जानता हूं; परन्तु क्यों नहीं मिलेंगे : यह हम नहीं समझ पाये हैं। बंगाल के हिंदुओं ने इस आन्दोलन में जो सम्मिलित मोर्चा लिया वह वस्तुतः असामान्य था; परन्तु जनता का यह विद्रोहात्मक भावावेश भी मुस्लिम जाति को प्रभावित न कर सका। और फिर भी हम इस से कोई शिक्षा न ले सके।

वस्तुस्थिति यह है कि हमारे सामाजिक रीति-रिवाज़ हिन्दु-मुसलिम की खाई को बनाये रखने में सदा सहायक रहे हैं। हम इन सामाजिक रीति-रिवाजों को कायम भी रखें और हिन्दु मुस्लिम एकता भी प्राप्त करलें; यह कोई व्यवहार्य प्रस्तावना नहीं है। यह कहना व्यर्थ है कि पुराने जमाने में हम अपने अपने सिद्धान्तों को मानते हुए अपना दैनिक व्यवहार भली भांति चला लेते थे। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि उस जमाने में राजनैतिक विचारों का विशेष महत्व न था। जब शुरु शुरु में मैंने अपनी जमीदारी का प्रबन्ध सम्भाला और कचहरी में प्रविष्ट हुआ तो मैंने देखा कि उसका फर्श पर बिछा हुआ कपड़ा लपेट दिया गया था। कारण पूछने पर मुझे बताया गया कि यह अति सम्माननीय मुसलमानों के लिये किया गया है। उन्हें भवन में प्रवेश की अनुमति तो दी गई परन्तु दुराव का तत्व फिर भी अक्षुण्ण रखा गया है। यह परिपाटी बहुत देर से चली आ रही है; और मुसलमान व हिन्दू दोनों ही इसे समान रूप से मानते आए हैं। इसके बाद सहसा एक दिन आया और हमने मुसलमानों को यह कहते हुए 'स्वदेशी'आन्दोलन में सहयोग देने के लिये निमन्त्रित किया कि तुम हमारे भाई हो; तुम भी क्षति के भागीदार होगे इसलिये समान उद्देश्य स्वतन्त्रता की प्राप्ति तथा विदेशी अत्याचार–को दूर करने में साथ दो। हमें यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि वे लाल लाल फैज कैप पहने हुए हैं और मानों ये घोषित कर रहे हैं कि हम इस दुराव को कायम रखना चाहते हैं। इस पर विस्मयान्वित चित्त से हमने सोचा कि राजनीति के क्षेत्र में कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने में क्या कठिनाई है। यह कठिनाई इससे अधिक कुछ न थी जो कि दरी वाले फर्श और बिना दरी के फर्श के बीच के अन्तर में थी। कभी कभी होने वाला यह तुच्छ अन्तर सार्वजनिक मंचों पर भाषण देने से कभी भी दूर नहीं किया जा सकता।

यह सत्य है कि राजनैतिक चेतना के जागृत होने के कारण यह विभेद की खाई बिलकुल स्पष्ट हो गई है। यही कारण है कि यह समस्या हमारे सामने कई रूपों में आती है जिसमें सबसे अन्तिम रूप जिसके लिये हम शोक मना रहे हैं उस महान् आत्मा की मृत्यु है। महापुरुष सदा ही स्वयं बुराइयों के शिकार होकर इसको प्रकाश

में लाया करते हैं। इसके कारण बहुत समय बाद हम विचार करने के लिये विवश हो जाते हैं। इसी प्रकार यह समस्या अब हमारे सम्मुख है। अपने आवेशों में आकर क्या हम विचार के इस सुअवसर को भी अपने हाथ से जाने देंगे या क्या हम अपने नेताओं से इस विरोध के अन्तर को दूर करने के लिये नहीं कहेंगे।

एक दृष्टि से यह अच्छा ही हुआ कि यह बुराई अन्त में अपने पूर्ण भयङ्कर रूप में हमारे सामने आ गई। यह हमें बाध्य करती है कि हम सोचें कि एक बारी में इसे कैसे सदा के लिए दूर किया जा सकता है। इस समस्या का यह रूप हो सकता है: इस दिशा में हमारा क्या कदम होना चाहिए? यह बताने का मुझमें सामर्थ्य नहीं है। परन्तु यह मैं निश्चय के साथ कह सकता हूं कि यदि हम केवल उत्साह और एकाग्रता के साथ इस दिशा में प्रयत्न करने लगें तो मार्ग स्वयमेव ही स्पष्ट होता जायगा। और यह कार्य आज के दिन ही आरम्भ कर देना चाहिए।

हमें चाहिए कि हम एक दम इस अन्वेषण में लग जांय कि हिन्दू प्रणाली में कहां-कहां दोष है और सर्वात्मना उन छिद्रों को दूर करने का प्रयत्न करें जहां से ये दुर्बलतायें हमारे समाज में प्रविष्ट होती हैं। क्योंकि दुर्बलता ही सबल को पाप करने के लिए लुभाया करती हैं। यदि मुसलमान लोग आक्रमण करते हैं तो हम एक पालतू प्राणी की तरह उनके वशवर्ती हो जाते हैं। हमको जानना चाहिए कि यह वस्तु-स्थिति इसलिए सम्भव हो सकी है क्योंकि हमारे में संगठन का अभाव है अतएव हम दुर्बल हैं। उनको यह अपील करना कि तुम अच्छे बन जाओ, निर्दयी मत बनो, यह बताना कि कोई भी धर्म हिंसा के बल पर नहीं स्थापित किया जा सकता: सबल के निर्बल पर अत्याचार को रोकने के लिए उतना ही निरर्थक है जितना कि अपने चारों ओर के वातावरण से आकाश के एक भाग के हलके हो जाने पर तूफान से बचने का प्रयत्न करना।

अनुवादक—रामपाल।

कुछ संस्मरण

देवराज विद्यावाचस्पति

प्रथम दर्शन

जिन्हें आज कल स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम से लोग जानते हैं, पहिले उनका नाम लाला मुन्शीराम था, जब लाला मुन्शीराम जी ने गुरुकुल कांगड़ी के किसी वार्षिकोत्सव के समय अपना मकान और अपनी सम्पत्ति गुरुकुल को अर्पण करदी, जनता के सम्मुख लिखित प्रतिज्ञा पत्र पढ़ कर सुना दिया कि उनके पास जो कुछ भी है उस पर न उनका और न उनके पुत्रों का अधिकार है, तब जनता ने उनके अपूर्व त्याग को देख कर उनके नाम के साथ लाला शब्द को हटा कर महात्मा शब्द जोड़ दिया। तब वे लाला मुन्शीराम के स्थान में महात्मा मुन्शीराम कहलाने लगे, मुझे याद है कि गुरुकुल की स्थापना से पहिले हरिद्वार में हर की पौड़ी के समीप के एक मकान की ऊपर की मञ्जिल में आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब की अन्त-

रंग सभा की एक बैठक हुई थी। उसमें गुरुकुल स्थापन करने का निश्चय हुआ था, उस समय प्रधान लाला रलाराम जी थे, मेरे पिता जी ने मुझे लाला रलाराम जी के हाथों में सौंप दिया था कि इसे आप ले जाइये. मुझे वे अपने साथ गुंजरांवाला में अपनी कोठी में ले आये, मैं युक्त-प्रान्त से प्रथम बालक ही गया था। कुछ बालक पहिले से वहां विद्यमान थे। हम सब मिल कर ३२ बालक थे। उस समय हमारे शिक्षक और हमारे अधिष्ठाता सब कुछ पं० विष्णुमित्र जी थे। मेरी उम्र का ७ वां वर्ष ही बीता था तो भी मुझे याद है कि एक दिन मैंने उस कोठी में आते हुए एक विशालकाय भव्य मूर्ति को लम्बे लम्बे कदम बढ़ाते आते हुए देखा था, यह मूर्ति महात्मा मुन्शीराम जी की थी। खुला सिर, साधारण बाल, हाथ में दण्ड, नीचे धोती, बादामी रंग का लम्बा कुर्ता, ऊपर पीला दुपट्टा, अन्त तक उनका सीधा सादा बिना किसी प्रकार की बनावट का यही सरल वेष रहा। उस दिन प्रथम दर्शन में ही मुझे उनके अन्दर महत्व और पितृत्व का अनुभव हुआ, उन्होंने अपने जीवन से बताया कि बड़प्पन की प्राप्ति बनावटी जीवन से नहीं किन्तु सरल और सत्यनिष्ठ जीवन से होती है।

स्वावलम्बन

गुजरांवाला से लग भग एक वर्ष के बाद हम ३२ बालक गुरुकुल कांगड़ी की पुरानी भूमि में लाये गये। तब तक बालकों में श्रेणी विभाग नहीं था। उस समय हमारे आचार्य श्री पं० गङ्गादत्त जी हुए। श्रेणी विभाग के अनुसार मैं द्वितीय श्रेणी में रक्खा गया, हमारे अधिष्ठाता पं० विष्णुदत्त जी थे और गणिताध्यापक श्री मुन्शी मोहनलाल जी थे। मुन्शी जी गणित के थोड़े से प्रश्न करा कर हमें अनेक प्रकार की उत्तम शिक्षा दिया करते थे। वे कहा करते थे कि प्रधान जी (महात्मा मुन्शीराम जी गुरुकुल में आने से पहिले आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान रहे थे, अतः उन्हें सब 'प्रधान जी' 'प्रधान जी' कहा कहा करते थे) अपने बङ्गले में अपने आप झाड़ू लगाते हैं, तुम्हें भी अपने रहने के स्थान में अपने आप झाड़ू लगाना चाहिए। तब मुझे मालूम हुआ था कि महात्मा जी में अपने कार्य के लिये किसी पर आश्रित न रहने का महान् गुण था। कोई काम क्षुद्र है और कोई महान् है ऐसा उनके जीवन में नहीं था। समय पड़ने पर बिना हिचक के छोटे से छोटा काम और बिना घबराहट के महान् से महान् काम कर डालना उन के स्वभाव में था।

खरास की उपयोगिता पर बल

आरोग्य और दीर्घजीवन के नियमों के अनुसार उन्होंने खरास (बैलों से चलाई जाने वाली चक्की) में पिसा हुआ गेहूं का मोटा आटा और वह भी बिना छना हुआ उसकी अच्छी सिकी हुई लाल लाल रोटी ब्रह्मचारियों को खिलाने का प्रबन्ध किया। मुझे याद है कि ऐसी रोटी खाने में स्वादिष्ट और अधिक मधुर मालूम होती थी, आरोग्य प्रद तो थी ही। कब्ज की शिकायत नहीं रहती थी, महात्मा जी ऐसी सिकी हुई रोटी को रढ़ी हुई रोटी कहा करते थे, स्वयं भी ऐसी ही रोटी खाया करते थे।

नियम-पालन

महात्मा जी रात को नियम पूर्वक प्रति दिन ३ बजे उठ जाया करते थे, और अपने कार्य में लग जाया करते थे। मुझे याद है एक बार वे अतिशय दन्त-वेदना से पीड़ित हुए। रात को उनकी सेवा के लिये ब्रह्मचारियों की

बारी बांधी गई। अन्तिम बारी ३ से ५ तक मेरी थी, मैं दस मिनट पहिले ही उनके स्थान पर पहुँच गया, दस मिनट बाद वे झट से उठ बठे। मैंने उनके दर्द का और नींद का हाल पूछा, उन्होंने कहा—"अब मैं उठ गया, तीन बजे उठा ही करता हूं, दर्द तो वैसा ही है, नींद नही आई। मैं तो चुप चाप पड़ा रहा और देखता रहा ब्रह्मचारी अपने २ समय पर आते और चले जाते थे. मैं सोचता था कि किसी को क्या तकलीफ देनी है। इसलिये मैं चुप चाप पड़ा रहा, अब कुछ आवश्यकता नहीं है, तुम जाओ विश्राम करो"। मुझे उनके शब्द सुन कर आश्चर्य का पारावार न रहा, मैंने अपने मन में कहा, कितना अधिक नियम पालन। नियम पालन के सामने अपना कष्ट कोई वस्तु नहीं। महान् कष्ट होते हुए भी अपने कष्ट की कोई चिन्ता न थी किन्तु दूसरे स्वस्थ मनुष्य को अपना कार्य करते हुए देख कर उसके कष्ट की चिन्ता। महात्मा जी के इन महान् गुणों ने उनको संसार में चमका दिया।

कार्य—तत्परता

महात्मा जी ३ बजे रात को उठ कर दन्त-धावन आदि नैत्यिक क्रियाओं को करके सब से पहिला सामाजिक काय, पत्र लिखना और उसके पश्चात् "सद्धर्म प्रचारक" साप्ताहिक के लिये आवश्यक लेख लिखने का कार्य करते थे। लगभग तीन चौथाई पत्र-व्यवहार का कार्य वे अपने हाथ से करते थे। भृत्यों को, अध्यापक अधिष्ठाताओं को और स्नातकों को वे अपने हाथ से ही पत्र लिखा करते थे, उनके हाथ का लिखा पत्र बांच कर इनको सन्तोष होता था। इस से मुझे महात्मा जी के अन्दर कार्य की जिम्मेवारी और कार्य तत्परता विशेष मालूम पड़ती थी।

प्रभात-कालीन प्रवचन

प्रातः काल का उनका घूमना कभी नहीं छूटता था, लम्बा डण्डा लेकर अपने नियत वेष में वे जङ्गल में घूमने निकल जाते थे। एक घण्टे तक भ्रमण करके स्नान, व्यायाम, सन्ध्योपासन, प्राणायाम, अग्निहोत्र आदि नित्य कर्म करके वेद, उपनिषद्, दर्शन आदि किसी वदिक साहित्य की पुस्तक का स्वाध्याय अवश्य करते थे। स्वाध्याय के पश्चात् यज्ञशाला में जब प्रातःकाल ब्रह्मचारी अग्निहोत्र कर चुकते थे तब वे उच्चासन (चौकी) पर बैठ कर किये हुए स्वाध्याय का प्रवचन करते थे। उनकी योग-दर्शन उपनिषद् और वेद मन्त्रों की व्याख्या बड़ी मधुर लगती थीं। कर्तव्य का बोध दिलाने वाले उनके प्रिय और मनोहर उपदेशों को सुनने के लिये गुरुकुल का भृत्य-वर्ग भी उनकी चौकी पीछे यज्ञ-शाला के पास उपस्थित होता था।

अङ्गस्पर्श का निषेध

मुझे याद है ब्रह्मचर्य सम्बन्धी उपदेश में कई बार उन्होंने आग्रह के साथ निषेध किया था कि कोई ब्रह्मचारी दूसरे के गले में वा बगल में हाथ डाल कर वा कन्धे पर हाथ धर कर और एक दूसरे का हाथ पकड़ कर न चला करे।

माता, पिता और आचार्य रूप में

वे दिन में तीन वार प्रायः आश्रम में ब्रह्मचारियों को देखने आते थे। प्रातःकाल हवन के पश्चात् जब ब्रह्मचारी स्वाध्याय कर रहे होते थे, दुपहर को भोजन के पश्चात् स्वाध्याय के समय और रात को भोजन के पश्चात्। मुझे याद है कि एक-एक ब्रह्मचारी उनकी करुणा बरसाने वाली दृष्टि को प्राप्त करके उनमें मातृ-स्नेह का अनुभव करता था, वे सचमुच मातृस्नेह के कारण माता समान थे।

पितृस्नेह के कारण पिता समान थे और आचार्य तो थे ही।

एक व्यवस्थापक

सायंकाल को ४ बजे वे अपना दैनिक कार्य समाप्त कर देते थे और गुरुकुल के प्रत्येक विभाग को देखने के लिए भ्रमणार्थ निकलते थे। सब विभागों को देखते हुए गुरुकुल से १ मील दूर कांगड़ी ग्राम को देखने जाते थे। वहां से जंगल में घूमते हुए गुरुकुल में अपने स्थान पर लौट आते थे। इस प्रकार सब कार्यों को अपनी दृष्टि में रखने से कर्मकर्ताओं को बड़ा आश्वासन मिलता था। जहां-जहां जो त्रुटि देखते थे वहां के कार्यकर्ता को अपने पास बुला कर इस प्रकार समझाते थे कि गुरुकुल की भावना से ओतप्रोत होकर सबके कार्य सुचारु रूप से सुसंगत रहते थे।

अध्ययन का निरीक्षण

सम्पूर्ण विद्यालय की पढ़ाई का निरीक्षण और अध्यापकों के पढ़ाने के ढंग का निरीक्षण प्रायः स्वयं किया करते थे। विद्यालय के बरामदे में घूमते हुए ही कमरे में बैठी हुई श्रेणी पर एक दृष्टि डालने पर वहां की सब हालत समझ लेते थे। कभी कभी तो पढ़ाते हुए अध्यापक के साथ ही एक कुर्सी डलवा कर वहीं बैठ कर पढ़ाने के ढंग का निरीक्षण किया करते थे।

उनकी सरलता

जब गुरुकुल का जन्मोत्सव निकट आता था तब उत्सव से पहिले ही एक दिन महाविद्यालय के सब ब्रह्मचारियों के बीच में बैठ कर सब को खुली शिकायत करने की छूट देते थे जिस से जन्मोत्सव के समय किसी भी प्रकार से दौर्मनस्य का उद्भव न हो। एक बार एक ब्रह्मचारी ने शिकायत की, हमें फल खाने को नहीं मिलते। उन्होंने अपने सिर पर हाथ फेरते हुए उत्तर दिया--ओ हो! मैंने बड़ी ग़लती की, मैंने ध्यान नहीं रक्खा, अब मैं ध्यान रक्खूंगा और तुम्हें फल अवश्य मिलेंगे। दूसरे ब्रह्मचारी ने शिकायत की आप प्रायः बाहिर रहते हैं आपको हमारे बीच में रहना चाहिए। उन्होंने उत्तर दिया--तुम्हारा कहना ठीक है परन्तु भाई तुम्हारे लिये ही मुझे बाहर जाना पड़ता है, बहुत से लोग धन सीधा यहां नहीं भेजते, अपने पास मुझे बुला कर ही देते हैं, दूसरा कारण यह है कि सभा से मैं बंधा हुआ हूँ, सभा में मुझे उपस्थिति देनी पड़ती है, मैं पहिले की अपेक्षा अधिक तुम्हारे अन्दर रहने का प्रयत्न करूंगा।

तप और साहस के पथ पर

वनों में, पर्वतों में, तथा नदियों में घुमाने और इसी प्रकार सर्वत्र साहस के कामों में ब्रह्मचारियों को डालने की अत्यधिक प्रवृत्ति उनमें देखने में आती थी। बचपन से ही बीहड़ जंगल में घुसते हुए चलना, कुछ परवाह न करके खदिर और बदर के कांटों पर दौड़ जाना, अस्त-व्यस्त पड़े हुए छोटे और बड़े २ पत्थरों पर नंगे पांव और खड़ाऊं पहने हुए भी भागते फिरना, लोह चूर से भरी हुई गङ्गा की तप्त रेत में आराम से चलना, पाला पड़ी हुई घास पर ठण्ड की परवाह किये बिना चलना, उछलते कूदते पर्वत माला शिखर से शिखर पर भागते फिरना, मार्ग में मिलते हुए जङ्गली जानवरों की कुछ परवाह न करना, आदि कार्यों की आदत डाली जाती थी। सींभल (शाल्मली) के मोटे मोटे और ऊंचे वृक्षों पर बड़ी फुर्ति के साथ कम से कम समय में शिखर तक पहुँचने में जीते हुए ब्रह्मचारियों को वृक्षारोहण-सान्मुख्य के पारितोषिक दिये जाते थे। नदी में लम्बी तैरी और सिंह-तैरी में

विजयी ब्रह्मचारियों को पारितोषिक दिए जाते थे। मुझे याद है मैं सख्त सर्दी के दिनों में भी प्रातः सध्या हवन और उपदेश के समय केवल एक कुर्ता धोती पहिन कर बैठा करता था परन्तु महात्मा जी ने, वहां के चिकित्सक डा० सुखदेव जी ने तथा किसी अध्यापक अधिष्ठाता वा ब्रह्मचारी ने मुझे कभी निषेध नहीं किया। एक बार ठण्ड के कारण बीमार हो जाने पर फिर स्वस्थ हो जाने पर मैंने पूर्ववत् फिर अपना जीवन आरम्भ कर दिया परन्तु किसी ने मुझे हतोत्साह नहीं किया। कारण यह था कि महात्मा जी तपस्या और साहस को साथ साथ सहायक समझते थे और इस के लिये ब्रह्मचारियों को प्रोत्साहन देते थे। महात्मा जी के जीवन में तपस्या और साहस विद्यमान था अतः उसी की छाप ब्रह्मचारियों और इतरजनों पर पड़ती थी, इस में आश्चर्य कुछ भी नहीं है।

विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना

किसी ब्रह्मचारी में कुछ नये काम कर दिखाने की उमग आती थी तो उस की उमंग को मार नहीं देते थे चाहै उस में कुछ भी खर्च क्यों न उठाना पड़े। वे मानते थे कि होनहार बालकों की उम्गों को दबा देने से न में मौलिकता का विकास नहीं होने पाता।

जब मैं दशम श्रेणी में पढ़ता था तब की एक बात मुझे याद है। मेरी श्रेणी के ब्र० श्वेतकेतु ने एक चित्र बनाया उसे वह मेरे पास दिखाने आया चित्र में बताया गया था कि बैलों से चलने वाले अरहट का पानी लौटा कर अरहट को चलाने में काम आ सकता है। इस प्रकार से अरहट की योजना की जा सकती है। कि यदि एक बार उसे चला दिया जाय तो फिर वह स्वयं ही चलता रह सकता है। मैंने उस चित्र को ध्यान से देखा और समझा मैंने उत्तर दिया कि ऐसा नहीं हो सकता, क्यों कि अरहट को चलाने में जो शक्ति लगाई जायेगी वह स्थिर नहीं रहेगी, और पीछे लौटाया हुआ पानी उस शक्ति को न स्थिर रख सकता है और न बढ़ा सकता है, अतः यह कार्य नहीं हो सकेगा। श्वेतकेतु को हतोत्साह-सा होते-हुए देखकर मैंने कहा अच्छा, इस चित्र को महात्मा जी के पास लेजाकर दिखाओ और उन्हें समझाओ वे इस का परीक्षण करने की आज्ञा दे देंगे तो सब कुछ हो सकेगा। श्वेतकेतु तो तुरन्त महात्मा जी के पास पहुँचे और यन्त्र चलने के प्रकार को समझाया उन्होंने झटपट मिस्त्री खाने के कारीगर को आज्ञा लिखदी कि श्वेतकेतु जिस प्रकार कहे उस प्रकार यन्त्र तयार करो। यन्त्र तैयार हुआ लगभग ५० रुपये खर्च हुए। गङ्गा के पानी में लगाकर परीक्षण किया गया। सफलता नहीं मिली। इस असफलता के कारण उन्हें गुस्सा वा नाराज़गी नहीं हुई। उन्होंने ऐसे ख़र्च की सफलता इसी में समझी कि ब्रह्मचारियों में कुछ नया कर दिखाने की इच्छा हो रही है।

श्रद्धाञ्जलि

महान् कार्य

स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने जीवन में बड़े २ काम किये थे पर गुरुकुल की स्थापना ने उनको ऊपर कर दिया है देश के बच्चों को वह अपना बच्चा समझते थे इसलिये शिक्षा देने के साथ साथ उनको सदाचारी और प्राचीन संस्कृति के पुजारी बनाने की अभिलाषा थी। ईश्वर की कृपा से उनका संकल्प पूरा हुआ।

रामनारायण
नागरी प्रचारिणी सभा का

यदि आज स्वामी श्रद्धानन्द जीवित होते—

रामनारायण यादवेन्दु

१

फर्वरी सन् १६२५ में मथुरा नगर में आर्य समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द की प्रथम जन्म शताब्दी बड़े समारोह और अपूर्व उत्साह के साथ मनाई गई। इन पंक्तियों के लेखक को इस महान एवं अपूर्व धार्मिक समारोह में सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और इसी शताब्दी–समारोह में वर्तमान लेखक ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के भव्य और सौम्य व्यक्तित्व के प्रथम और अन्तिम दर्शन लिये थे।

स्वामी श्रद्धानन्द के अनुपम व्यक्तित्व की वर्तमान लेखक के मानस-पटल पर जो छाप पड़ी वह आज पर्यन्त भाग्य-रेखा के समान अमिट है। उनके पवित्र दर्शन और उनके मुखारविन्द से अमर सन्देश को ग्रहण कर मुझे जो अपार आनन्द प्राप्त हुआ वह अवर्णनीय है।

शताब्दी-समारोह में मैंने भारत के भविष्य की जो सुखद कल्पना अनुभूत की, उससे मुझे उत्साह, बल और स्फूर्ति मिली। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि वह दिन दूर नहीं जब कि भारत पुनः अपने पूर्व गौरव को प्राप्त कर विश्व को आर्य बनाने के पवित्र संकल्प को सिद्ध करने में सफलता प्राप्त करेगा। मुझे ऐसा लगा कि भारत में फिर धर्म का राज स्थापित होगा और देश में सुधार, निरीश्वरवाद, पाखण्ड तथा पाप का खात्मा होकर उसके स्थान पर न्याय और धर्म का राज्य स्थापित होगा। इसी समय से मेरी स्वामी जी में गहरी श्रद्धा होगई और मैंने ऐसा अनुभव किया कि इस अनुष्ठान के लिए ईश्वर ने स्वामी श्रद्धानन्द को माध्यम चुना है।

इस प्रकार अपने हृदय पर स्वामी श्रद्धानन्द और उनके द्वारा आयोजित इस बृहद् अपूर्व धार्मिक समारोह का सुखद प्रभाव लेकर मैं मथुरा से विदा हुआ।

२

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द एक महान् क्रान्तिकारी समाज-सुधारक और धार्मिक उन्नायक थे। इसके साथ ही साथ वे उच्च-कोटि के राजनितिज्ञ भी थे। वे भारत में स्वराज्य के लिये एक योजना के साथ कार्य कर रहे थे। स्वामी श्रद्धानन्द भारत में एक ऐसी नवीन समाज व्यवस्था की प्रतिष्ठा करना चाहते थे, जिसमें मानव–कृत जातपांत का कोई भेद–भाव न हो, सब एक दूसरे के साथ बन्धुत्व का व्यवहार करें और इस प्रकार एक वर्ग–विहीन समाज की स्थापना हो जाय। वे स्वराज्य की सफलता के लिये ब्रह्मचर्य और सच्ची राष्ट्रीय एकता को परम आवश्यक समझते थे। इसी लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य जीवन की साधना के हेतु गुरुकुल विश्वविद्यालय हरिद्वार की स्थापना की और इस प्रकार एक ऐसे युग में सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा का शिलान्यास किया जब कि भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ें बड़ी शक्तिशाली थीं।

३

सन् १६१६–२० में भारत के राजनीतिक क्षितिज में एक नवीन तारे का उदय हुआ। वे भारत में स्वराज्य के संदेश को लेकर अवतीर्ण हुआ और उसने इसके लिए सत्य एवं अहिंसा के प्रबल अस्त्र भारतीयों को सौंपे। परन्तु महात्मा गांधी भी स्वराज्य के लिए राष्ट्रीय एकता और आत्म–शुद्धि को परम आवश्यक समझते थे। गांधी जी ने राष्ट्रीय काग्रेस के कार्य-क्रम में अस्पृश्यता–निवारण के प्रश्न को महत्वपूर्ण

स्थान देकर जनता को एक नूतन मार्ग दिखलाया। इस आन्दोलन के प्रचार व संगठन के लिये कांग्रेस कार्य-समिति ने एक उपसमिति नियुक्त की, जिसमें स्वामी श्रद्धानन्द जी, श्रीमती सरोजनी नायडू, श्री देश पांडे और श्री यज्ञिक सम्मिलित थे। इस उपसमिति को २ लाख रुपये का चन्दा कर अपना कार्य आरम्भ करने का आदेश मिला। स्वामी श्रद्धानन्द जी को इस समिति का संयोजक नियुक्त किया गया।

स्वामी श्रद्धानन्द जी यह चाहते थे कि उन्हें कमसे कम ५ लाख रुपये इसके व्यय के लिये मिले और जिसमें १ लाख रुपये नक़द कांग्रेस की निधि में से मिले। परन्तु कांग्रेस-समिति इससे अधिक व्यय करना नहीं चाहती थी। इसलिये उसने श्री देश पांडे को समिति का संयोजक बना दिया और कार्य आरम्भ कर दिया। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इससे असन्तुष्ट होकर उपसमिति से त्याग पत्र दे दिया। २३ जुलाई १९२२ को स्वामी जी ने अखिल भारतीय कांग्रेस महा समिति के प्रधान मंत्री पं० मोतीलाल नेहरू को अपने त्याग पत्र में यह लिखा—

'अमृतसर और मियांवाली जेलों में मेरे अनुभव तथा वहां मुझे जो ज्ञान उपलब्ध हुआ उसने मेरी यह धारणा और भी सुदृढ़ करदी है कि जबतक प्राचीन आर्य आदर्श के अनुसार ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा नहीं की जायगी तथा भारतीय समाज से अस्पृश्यता के अभिशाप को न मिटाया जायगा तबतक कांग्रेस को स्वराज्य प्राप्ति के प्रयत्नों में सफलता नहीं मिलेगी और चूंकि राष्ट्रीय आत्मबोध एवं ओजस्वी जीवन स्वराज्य के बिना असंभव है इसलिये मुझे एक संन्यासी के रूप में अपने जीवन के शेष दिन इस पवित्र अनुष्ठान को समर्पित कर देने चाहिये।'

स्वामी श्रद्धानन्द ने राष्ट्रीय एकता के लिये देहली में दलितोद्धार सभा की स्थापना की। वे स्वयं उसके संचालक एवं अध्यक्ष थे। यही नहीं, जो लोग दूसरे धर्मानुयायियों ने बलपूर्वक अपने धर्मों में दीक्षित कर लिये थे, उन्हें पुनः आर्य धर्म—वैदिक धर्म—में वापस लाने के लिये अखिल भारतीय शुद्धि सभा को जन्म दिया। इस प्रकार स्वामी जी वास्तव में हिन्दु-समाज के अन्तर्गत सच्ची सामाजिक समता (Social equality) एवं एकता का विकास करना चाहते थे और वे राष्ट्रीय एकता के लिये वैदिक धर्म के विस्तार एवं उसकी व्यापकता को परम आवश्यक मानते थे। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा, दलितोद्धार तथा शुद्धि-आन्दोलन द्वारा वे राष्ट्रीयता को शक्तिशाली आधार पर स्थिर कर देना चाहते थे।

परन्तु यह देश का दुर्भाग्य था कि दयानन्द जन्म शताब्दि उत्सव के एक वर्ष के बाद ही वे देहली में रुग्णावस्था में एक मतान्ध मुस्लिम की गोली के शिकार बने और इस बलिदान से भारत का सबसे महान् क्रान्तिकारी आदर्श नेता और धर्माचार्य हमारे बीच से सदैव के लिए उठ गया।

४

१५ अगस्त १९४७ से भारत ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र उपनिवेश है। स्वतन्त्र भारत को आज स्वमी श्रद्धानन्द जैसे महान् कर्मयोगी की आवश्यकता थी, जो भारतीय समाज को एक नवीन ढांचे में ढाल कर एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की प्रतिष्ठा करने का कार्य अपने हाथ में लेता, जिससे भारतीय व्यक्तित्व, चरित्र और मानवता का पूर्ण विकास होता—समाज से पापाचार, भ्रष्टाचार, नैतिक पतन, चारित्रिक दूषण, तथा स्वार्थ-पूर्ण लोक-विरोधी-प्रवृत्तियों का अन्त करके लोक कल्याणकारी व्यवस्था की प्रतिष्ठा की जाती।

आज देश के सामाजिक तथा नैतिक उत्कर्ष के लिए हमें स्वामी श्रद्धानन्द जैसे आदर्श तपस्वी और महान् नेता की आवश्यकता थी। जो आर्य-समाज में नूतन विचार धारा का इन्जेक्शन देकर नवीन रक्त संचार कर देता। देश में बढ़ती हुई स्वार्थ परायणता, धनिकों द्वारा शोषित वर्गों की जनता के दोहन, नानाप्रकार के भ्रष्टाचार और चारित्रिक पतन के बढ़ते हुए प्रवाह को रोकने के लिये नैतिक बांध योजना की परम आवश्यकता है। हमारे देश की राष्ट्रीय सरकार विविध नदियों की जलराशि को बांध बनाकर रोकने के लिये बड़ी-बड़ी योजनाऐं बनारही है। परन्तु भारतीय जनता का जो चारित्रिक पतन हो रहा है, उसके निवारण के लिये क्या किया जारहा है, इसकी न हमारे नेताओं को चिन्ता है और न इधर हमारे देश के शिक्षाविद् और आचार्य ही ध्यान दे रहे हैं। इसी लिये हमें इस युग में श्रद्धास्पद स्वामी श्रद्धानन्द जी की आवश्यकता अनुभव हो रही है।

आज यदि वह इस भारत भूमि पर विराजमान होते तो पंजाब का इतिहास ही दूसरा होता। देश के चरित्र तथा शिक्षा के निर्माण का कार्य आज एक आदर्श रीत्यानुसार संचालित होता। समाज में जो आज इतना भ्रष्टाचार हो रहा है, उसे वे आर्य-समाज द्वारा रोकने में अपनी पूरी शक्ति लगा देते।

भारतीय राष्ट्र को यदि अपनी स्वाधीनता को सुरक्षित रखना है; यदि भारत को संसार के जीवन-संग्राम अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष में विजय प्राप्त करना है; यदि भारत संसार में स्थाई शांति, मानव-सहयोग एवं मानवता का विकास चाहता है, तो उसे देश में सच्चे, कर्मवीर, सदाचारी और उच्च चरित्र वाले नागरिक पैदा करने चाहिये। जबतक देश में नैतिकता तथा चारित्रिक उत्कर्ष के लिये कोई ठोस योजना बना कर कार्य नहीं किया जायगा, तबतक चाहे अन्न-वस्त्र-नियन्त्रण रहें या न रहें, चाहे कांग्रेस का शासन हो अथवा समाजवादी शासन या विशुद्ध पूंजी-पतियों का शासन या मजदूर-किसान राज सामान्य जनता सुखी और सन्तुष्ट नहीं रह सकेगी।

नेतृत्व

इन्द्र विद्यावाचस्पति

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज स्वभावसिद्ध नेता थे। कहा जाता है कि कवि उत्पन्न होते हैं, बनाए नहीं जाते। इसी प्रकार नेता भी उत्पन्न होते हैं बनाए नहीं जाते।

श्री स्वामी जी मनुष्यों के स्वभावसिद्ध नेता थे। नेतृत्व न केवल बुद्धि से मिलता है—और न केवल वाक् शक्ति से। वह उस नैसर्गिक प्रतिभा से मिलता है, जो मनुष्यों की मानसिक गति को पहिचान कर उन्हें अपना अनुगामी बना सकती है। मैंने शिष्य और अनुगामी की हैसियत से उनके समीप रह कर यह बात अनेक वार अनुभव की कि उनमें नेतृत्व की शक्ति जन्मसिद्ध थी। वह उन्हें अनायास प्राप्त था, कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता था।

मेरे स्मृति-भण्डार में स्वामी जी की नेतृत्व शक्ति के अनेक दृष्टान्त सम्मिलित हैं। मैं उनमें से केवल एक दृष्टान्त यहां उपस्थित करता हूँ।

वे सन्यास ले चुके थे, और उसके साथ

ही गुरुकुल का मुख्याधिष्ठातृत्व छोड़ चुके थे। आप गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर सम्मानित अतिथि बन कर आए थे, और गंगातट वाले बंगले में ठहरे हुए थे।

उत्सव का मुख्य दिन था। सायंकाल के समय भजन व्याख्यानादि हो जाने पर गुरुकुल के लिए धन की अपील हो रही थी, कि इतने में उत्सव के कैम्प की ओर धुँआ दिखाई दिया। उन दिनों उत्सव कैम्प फूस के छप्परों का बना करता था। फूस के छप्पर को बारूद का ढेर ही समझना चाहिए। ज़रासी चिनगारी गांव के गांव को फूंक देने के लिए पर्याप्त होती है। धुएं के पीछे क्षण भर में आग की ज्वाला दिखाई दी और पंडाल में कोलाहल मच गया कि 'कैम्प में आग लग गई' कैम्प में हज़ारों परिवार ठहरे हुए थे। सब लोग उत्सव-मण्डप में आए हुए थे—कैम्पों की देख-भाल केवल स्वयंसेवक कर रहे थे। भयानक भगदड़ पड़ना स्वाभाविक था, सब लोग कैम्प की ओर ताबड़तोड़ भागे।

जाकर देखा तो बहुत भयङ्कर दृश्य सामने आया। फूस के छप्परों की तीन चार पंक्तियां जल रही थीं। आग की शिखायें पेड़ों से ऊंची जा रही थीं। दर्शकों का सामान तो छप्परों में पड़ा ही था, कई छोटे छोटे बच्चे भी सोये पड़े थे। पुरुष भागदौड़ कर रहे थे, और स्त्रियां हाहाकार मचा रही थीं। परिस्थिति ऐसी विकट थी कि गुरुकुल के अधिकारी सर्वथा किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। कोई अपने घर की रक्षा के लिए घर की ओर भागा तो कोई ऊंची जगह खड़ा होकर दुःखित हृदय से उस हृदयविदारक दृश्य को देख कर हाथ मलने लगा।

स्वामी जी आग लगने के समय बंगले पर थे। वहां खबर पहुँची कि कैम्प में आग लग गई। स्वामी जी ने अपना लम्बा डण्डा बंगले के कोने से उठाया और उस तीव्रगति से—जो उनकी विशेषता थी—कैम्प की ओर चल दिये। वहां जाकर देखा तो अव्यवस्था का राज्य था। सब लोग किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर सोच रहे थे कि अभी २ इस भयानक आग का उपाय हो ही क्या सकता है। स्वामी जी ने मेहता द्वार से सम्पूर्ण दृश्य को देखते ही परिस्थिति को पहिचान लिया, और प्रतीक्षा किये बिना ही कि कोई उनसे आकर सम्मति पूछे कि क्या करना चाहिये. इतिकर्तव्यता का निश्चय कर लिया। जो लोग वहां खड़े थे वे स्वामी जी को देखकर उनके चारों ओर इकट्ठे हो गये। स्वामी जी ने उनसे कहा —

'आप लोग खड़े खड़े क्या कर रहे हैं? आप में से १० आदमी भागकर जाओ और बाग़ में से जितने फावड़े और टोकरियां मिलें, उठा लाओ, १० आदमी वस्तुभण्डार में जाओ और जितनी बाल्टियां मिलें ले आओ। पानी खींचने के लिये रस्सियां भी वस्तु-भण्डार से ले आना। शेष आदमी चार-चार की टुकड़ियों में बंट जाओ, और एक-एक छप्पर से सामान निकालने का कार्य करो। शेष सारी भीड़ को आग के पास से हटा दिया जाय'। इस प्रकार स्पष्ट ऊंचे शब्द से सब आज्ञायें निकाल कर स्वामी जी कैम्प में पहुंच गये, उनकी परिचित विशाल मूर्ति के देखते ही भरोसे की लहर दौड़ गई। पुरुषों ने इधर उधर भागना बन्द कर दिया, और स्त्रियों ने रोना। थोड़ी देर में सब सामान इकट्ठा हो गया। कुछ आदमी मिट्टी खोदने लगे, कुछ मिट्टी को टोकरियों में भर कर लाने लगे, और जलते हुए फूस पर डालने लगे। यह स्मरण रखना चाहिये कि जलते हुए फूंस की आग मिट्टी से दबती और पानी से भड़कती है। पानी तब डालना चाहिये जब आग

दाब जाय। इतने में बाल्टियां और रस्सी लेकर लोग आ पहुंचे। उन्हें स्वामी जी ने कुएं पर भेज दिया। कुआं दूर था। वहां से लेकर आग के स्थान तक लोगों की पंक्तियां बांध दी गईं ताकि पानी की भरी हुई बाल्टी हाथों हाथ आग तक पहुंचाई जा सके। यह सारी योजना लगभग २१० मिनट में पूरी हो गई और शायद इतना ही समय लगा होगा, कि वह अग्निकाण्ड समाप्त हो गया। दर्शकों का अधिकतर सामान बचा लिया गया। केवल एक बच्चा जो आग लगते ही जल गया था, न बचाया जा सका. शेष सब बच्चे छप्परों से निकाल लिये गये, और माताओं के सुपुर्द कर दिये गये। नेतृत्व न अधिकार में है, और न लिखी हुई योजनाओं में, नेतृत्व उस स्वभाव सिद्ध प्रतिभा में है, जो समय पर कठिनाई का ठीक समाधान सोच कर वीरता पूर्वक उसे प्रयोग में ला सके। जनता उसी के सामने सिर झुकाती है, जो उसे संकट के समय संकट-मोचन का उपाय न केवल बतला सके, उपाय को काम में भी ला सके। यह स्वभावसिद्ध प्रतिभा स्वामी जी में पूर्ण रूप से विद्यमान थी, इसी कारण वे दीर्घ काल तक ऐसा सफल नेतृत्व कर सके।

सांस्कृतिक चेतना के प्रदीप—श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी

प्रभुदयाल अग्निहोत्री

पुण्य श्लोक श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के दर्शन किये शताब्दी का एक चतुर्थांश व्यतीत होने आया पर ऐसा प्रतीत होता है, अभी चार दिन भी तो नहीं बीते। कितनी जल्दी भाग रहा है समय ? लम्बा, स्वस्थ, गौर शरीर, मुख पर बोलता संयम और ब्रह्मचर्य, नेत्रों से झांकती दृढ़ता और सततनीःस्यन्दिनी करुणा। इतने वर्षों के सार्वजनिक जीवन में एक भी ऐसा दृढ़, मधुर और पुष्ट व्यक्तित्व दृष्टि में न आया।

राजनितिक संघर्ष देश में आते हैं, चले जाते हैं। उन संघर्षों में बाढ़ की लहरों के समान अनेक व्यक्तित्व उभरते हैं और विलीन हो जाते हैं। राजनीतिक आन्दोलन पावस के समान उमड़ते घुमड़ते दैनन्दिन जीवन के आकाश पर छाते हैं। उनमें विद्युत की चकाचौंध और करका का भय होना स्वाभाविक है। नाना प्रकार के घास पात इस काल में उगते और सुन्दर सुन्दर वल्लरियों को आवृत कर लेते हैं। न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित, सन्तुलन-अवतुलन का विवेक धारा सवारा में बह जाता है। न जाने कितने झोंपड़े उजड़ते और कितने सस्य श्यामल खेत जलमय हो जाते हैं। किन्तु प्रलय का परिणाम सदा नवसृष्टि, नव-आलोक और नव नव स्पन्दन होता है। शरद का विकास एवं देवोत्थान वर्षा की देन हैं। इसी प्रकार राजनितिक संघर्ष का लक्ष्य होता है (और यदि नहीं होता तो होना चाहिये) सांस्कृतिक उत्कर्ष। मानसिक भाव भूमि के अनावश्यक झाड़ झंखाड़ों से परिवृत हो जाने पर राजनीतिक उखाड़ पछाड़ अनिवार्य हैं अवरुद्ध पथ को प्रशस्त करने के लिये। किन्तु राजनीतिक संघर्ष की समाप्ति और सांस्कृतिक उत्थान के बीच विभाजक रेखा नही खींची जा सकती। कोई देश यह नहीं कह सकता कि अमुक दिन देश को राजनितिक स्वतंत्रता मिली और अमुक दिन सांस्कृतिक विकास का आरम्भ हुआ। प्रलय के साथ-साथ सृष्टि चलती है, मृत्यु के साथ जन्म। प्रलय और सृष्टि क्या है ! नाम-रूप के परिवर्तन। पुरातन के नवीन संस्करण का नाम है सर्जन। वस्तुतः सतत परिवर्तमान विश्व में

पुरातन कुछ होता ही नहीं। दृष्टि का आरोप मात्र है यह।

गत चालीस - पैंतालीस वर्षों के भारतीय जीवन ने भी एक उथल-पुथल देखी है। इस बीच देश ने बहुत कुछ खोया, बहुत कुछ पाया। झांसी की रानी से ले कर सेनानी सुभाश तक जितने राजनीतिक व्यक्तित्व मंच पर आये उनका हमने स्वागत किया, उनके सामने मस्तक झुकाया, उन्हें हार अर्पण किये, उनके नाम पर स्मारक बनवाये, उनकी प्रशस्तियां गायीं, चरित्र लिखे, अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किये और उस समय सूझा नहीं; नहीं तो आज के विश्वविद्यालय 'डॉक्टरेट' देने की भी होड़ लगाते। पर यह था देश का बहिर्जीवन। जिन सन्तों ने इस समस्त संघर्षों के बीच जीवन के नैतिक स्तर को स्थिर रखा। । प्रति क्षण मर्यादा के कगारों को तोड़ डालने का व्यग्र जीवन रेता को जिन सन्तों ने अपने वैयक्तिक चरण और अध्यवसाय से बांध कर रखा उन्हें मालायें नहीं मिलीं, अभिनन्दन ग्रन्थ नहीं समर्पित किये गये, उनके नाम पर स्मारक नहीं बने प्रत्येक देश में और प्रत्येक काल में इन सन्तों ने लोक जीवन में प्रविष्ट होकर चकाचौंध से बच कर ही काम किया है। ऐसा लगता है, मानों इस अन्तर्मुखी को स्पष्ट करने के लिये ही पुराणों ने सरस्वती (वाग्धारा) को अन्तः सलिला कहा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजाराम मोहनराय, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र-विद्यासागर, आशुतोष मुखर्जी, स्वामी श्रद्धानन्द, मालवीय जी, महात्मा हंसराज और न जाने कितनी आत्माओं का अथक उद्योग भारत को योरोप का शिष्य बनने से बचा सका है।

राजनीतिक उत्थान के उषः काल में जिस सन्त ने जागृति का शंख फूंका था उसकी विमल पुण्य प्रभा ने देश को जो अनेक तेजस्वी व्यक्तित्व दिये उनमें श्री स्वामी श्रद्धानन्द का नाम सब से ऊपर है। आर्य समाज का आन्दोलन शुद्ध सांस्कृतिक आन्दोलन था। धर्म, राजनीति, अर्थ और जिन अन्य बातों पर चर्चा की गयी वे उसी की अंगीभूत थीं। शत योजन की गति से बढ़ी आती हुई योरोपीय सभ्यता और संस्कृति सुप्त भारत को आक्रान्त करे कि श्री स्वामी जी ने वेद-मंत्रों के पवित्रोच्चार से उसे जगा कर चैतन्य कर दिया। आर्यसमाज का आन्दोलन आज के राजनीतिक और सामाजिक उत्थान की पूर्व-पीठिका है। धार्मिक विचारों में क्रान्ति भी आर्यसमाज के दृढ़ विचारों के प्रचार का ही परिणाम है। यह आर्यसमाज के आन्दोलन की ही प्रतिक्रिया है कि पुरातन कदीमी अपनी अन्धमान्यताओं को विज्ञान की भित्ति पर अधिष्ठित करने के लिये माथा खुरच-खुरच कर नई-नई व्याख्याओं की सृष्टि करने लगे हैं। पर आर्यसमाज का दुर्भाग्य यह है कि देश के नेता वर्ग ने इस बात को खुले आम कभी स्वीकार नहीं किया। उसकी देन ससुराल के उस दहेज के समान ग्रहण की गयी जिसका उपभोग सब करते हैं किन्तु कृतज्ञता को कोई स्वीकार नहीं करना चाहता।

और इसका कारण है। सत्य का प्रकाश बड़ा तीव्र होता है। युग की दुर्बल आंखें उसे सीधे स्पर्श करना नहीं चाहतीं। आर्यसमाज जिस सीधे नग्न सत्य को लेकर चला उसे युग ने विवश होकर स्वीकार किया। स्वीकार इस लिये कि उससे इन्कार करना सम्भव न था। विश्व में सभी स्पष्ट वक्ताओं को इस स्थिति से गुजरना पड़ता है।

फिर भी क्या हुआ! अन्धेजग ने जब वट की महानता पर मुग्ध होकर उसे यज्ञोपवीत पहनाये, आरती उतारी, अर्घ्य अर्पण किये तो क्या बीज

कभी अपनी उपेक्षा के लिये पूजकों की कृतघ्नता पर खीझने गया।

और श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का प्रयोग तो न केवल योरोप के लिये अपितु भारतीय संस्कृति के नाम किये जाने वाले अभारतीय प्रयत्नों के लिये भी एक चुनौती थी। अतः उनके कांटे दोहरे थे। चट्टानों को चीर कर अधोमुख प्रवाहित होने वाले ब्रह्मपुत्र को ऊर्ध्वमुख करने जैसा प्रयत्न उनका था। विश्वास और श्रद्धा के पहियों पर उनका क्रिया रथ चला और इस गति से चला कि सप्तसप्ति के रथ की गति भी मन्द दीखने लगी।

गुरुकुल कांगड़ी के रूप में स्वामी जी की देन भारतीय संस्कृति के भवन की वह आधार शिला है जिसे हिलाया नहीं जा सकता। एक गुरुकुल कांगड़ी ही क्यों; न जाने कितने गुरुकुल उनसे प्रेरणा पाकर स्थापित हुये। अंगरेजी विश्वविद्यालयों में पले-पनपे हमारे स्वतन्त्र भारत के शिक्षण-कर्णधार यदि इस देन का मूल्य न आंक सकें तो इसमें आश्चर्य क्या ?

और श्री स्वामी जी का कर्तव्य राजनीतिक हिन्दू संगठन, अछूतोद्धार, आदि की दिशा में भी क्या कुछ कम है!

अन्त में मैं उनके जीवन के समान उनकी महान् मृत्यु को भी वन्दन करता हूं। जीवन की दृढ़ता से आच्छादित कितनी करुणा उनके हृदय में निहित थी यह उनकी इहचर्या के अन्तिम क्षणों ने स्पष्ट कर दिया। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का प्रकाश अमर है। भगवान् हमें उससे आलोकित पथ पर चलते जाने की सुबुद्धि और शक्ति दें।

स्वामी जी का बलिदान—एक राष्ट्रीय पर्व

श्री स्वामी जी महाराज जीवन पर्यन्त देश तथा जाति के हितचिन्तन में व्यस्त रहे। उनका जीवन एक क्रियात्मक तपस्वी जीवन था। देश की सर्वाङ्गपूर्ण उन्नति उनका लक्ष्य था राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक एवं शिक्षा सभी क्षेत्रों में वे आगे रहे। दलितोद्धार का जो कार्य उन्होंने आरम्भ किया वह राष्ट्रीयता का सबल स्तम्भ बन गया है। उनका बलिदान-पर्व केवल गुरुकुल का ही पर्व नहीं किन्तु राष्ट्रीय पर्व है। स्वतन्त्र भारत के इतिहास में उनका एक उच्च स्थान है। इस पर्व पर उनके तपस्वी और तेजोमय जीवन से हमें उत्साह प्रदान होता है और विश्वास है कि समस्त देशवासी इस पुण्य पर्व से प्राण, प्रेरणा और प्रोत्साहन, प्राप्त कर राष्ट्र को उच्च शिखर पर पहुँचावेंगे।

आत्माराम गोविन्द खेर,
मन्त्री, स्वायत्त शासन विभाग, स० प्रा०।

आर्य-संस्कृति के विकास का मार्ग

आर्य संस्कृति का जयध्वज स्वामी जी ने हिंद में और हिंद के बाहर भी फहराया है। वर्तमान में आर्य-संस्कृति का विकास और उसकी प्रगति की साधना करने में स्वामी जी का त्याग, भक्ति, व्यवस्था शक्ति और बलिदान की तत्परता और भी आवश्यक है।

स्वातंत्र्य की रक्षा के लिये युवक गण में उसी आत्म बलिदान की अग्नि को जाग्रत करना चाहिये जो स्वामी जी के जीवन में ज्वलंत शिखा के समान है। एकता, संगठन, और त्याग के ऊपर ही भावी आर्य संस्कृति का विकास सम्भव है। तरुण आर्यगण अपने उत्तरदायित्व को निभाने में पूज्य स्वामी जी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करें।

अंबालाल पुराणी
श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी।

पावन स्मृतियां

जनमेजय विद्यालकार

पुत्र वत्सलता

सन् १९१५ या १९१६ की बात है। मैं उस समय अष्टम श्रेणीमें पढ़ता था। गुरुकुल के पुराने और अनुभवी डॉक्टर सुखदेव जी किसी कार्यवश कहीं बाहर गये हुए थे। चिकित्सालय में केवल दो कम्पाउण्डर रह गए थे। अकस्मात् मेरी जंघा में एक गिलटी पैदा हुई और पक गई। उस दर्द से मैं व्याकुल था। कम्पाउण्डरों ने महात्मा जी को समाचार दिया और चीरा लगाने में अपनी असमर्थता प्रकट की महात्मा जी तत्काल चिकित्सालय में आए। गिलटी को देखा, मुझे बहुत ढाढस बंधवाया। तत्काल एक कर्मचारी को हरिद्वार भेजा गया। हरिद्वार के सरकारी अस्पताल के सब से बड़े डॉक्टर को बुलाया गया। शाम को डॉक्टर साहब गुरुकुल के बैलतांगे पर सवार होकर गंगा के तीन पुलों पार कर के, हरिद्वार से लगभग पांच मील दूरी पर, पुरानी भूमि में, गुरुकुल पधारे। आपरेशन की तैयारी हुई। जिस तख्त पर मैं लेटा हुआ था, उसी पर मेरे सिरहाने, महात्मा जी चौकड़ी लगाकर स्थिर बैठ गये। मेरा सिर उन्होंने अपनी गोदी में अच्छी तरह रख लिया। वह उनका वास्तविक अकृत्रिम वात्सल्य था, मैं निहाल हो गया, सचमुच निहाल हो गया। प्रेम और वात्सल्य से परिपूर्ण वाणी से आचार्य बोले, पुत्र,! घबराओ नहीं, डरो नहीं, तुम गुरुकुल के ब्रह्मचारी हो, अष्टम श्रेणी में पढ़ते हो, अभी दो चार मिनटों में ही अच्छे हो जाओगे। मै निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ कि कोई सगी माता या कोई सगा पिता भी अपने बच्चे पर स्नेह की अमृत-वृष्टि इससे अधिक न कर सकेगा। मुझे विश्वास हो ही नहीं सकता कि कभी कुलपिता महात्मा जी की अपनी सन्तान ने भी इससे अधिक स्नेह उनसे प्राप्त किया होगा। डाक्टर ने तेज़ चाकू से आपरेशन किया। मैं तड़फ उठा, चिल्ला उठा। परन्तु एक क्षण में ही मेरा साहस दुगुना तिगना हो गया। कुलपिता की गोद में पड़ा हुआ मैं, उनके उत्साहवर्धक शब्दों से, और उनके अकृत्रिम स्नेह पूर्ण हृदय के मौन प्रभाव से, इतना अभिभूत हो चुका था कि दर्द का विशेष अनुभव ही देर तक न हो सका।

अब तो यह सब बातें स्वप्न हो गई हैं। इस पापी संसार में, जहां सर्वत्र बनावटी प्रेम और स्वार्थ का ही बोलबाला है, अब मैं जब कभी कुलपिता के अकृत्रिम और वास्तविक तथा निःस्वार्थ स्नेह का स्मरण करता हूं। तो गद्‌गद् हो जाता हूं, स्मरणमात्र से ही निहाल हो जाता हूं। उस रात को मैं सुख से सोया। जब प्रातः-काल जागा तो चिकित्सालय के भृत्य ने कहा, ब्रह्मचारी जी आज तो रात भर आप खूब गाढ़ी नींद से सोये। महात्मा जी रात में तीन वार यहां आए थे और तीनों बार आपको सोते देख कर बहुत सन्तुष्ट हुए थे।

उस डाक्टर ने सोलह रुपये फीस ली थी तथा उसी रात उसे हरिद्वार भेज दिया गया था। कुछ दिनों बाद मुझे कार्यालय से मालूम हुआ कि डाक्टर ने दो तीन दिन बाद रुपये वापस भेज दिये थे और पत्र द्वारा महात्मा जी से क्षमा भी मांगी थी कि मैंने गुरुकुल से ग़लती से फीस ले ली थी।

मर्मस्पर्शी भाषण

सन् १९१७ की बात है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का वार्षिकोत्सव हो रहा था।

कुल-पिता ने अभी संन्यास नहीं लिया था । वे तब महात्मा मुंशीराम जी, आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी कहे जाते थे । उस समय गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर आज कल की अपेक्षा बहुत बड़ी भीड़ होती थी । उत्सव के प्रथम और द्वितीय दिवस गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने बड़े अच्छे-अच्छे भाषण दिए थे, अनेक सम्मेलनों में प्रमुख भाग लिया था, इसलिए जनता पर गुरुकुल का बहुत प्रभाव पड़ चुका था । तृतीय दिवस अपराह्न में होने वाली कार्यवाही प्रारम्भ हो चुकी थी । समय-विभाग में छपा हुआ था कि चार से पौने पांच बजे तक श्री मुख्याधिष्ठाता जी गुरुकुल की वार्षिक रिपोर्ट पढ़ेंगे और गुरुकुल के लिए धन की अपील करेंगे तथा तत्पश्चात् धन संग्रह होगा ।

ठीक चार बजे कुलपिता महात्मा मुंशीराम जी खड़े हुए । सारा पण्डाल तालियों से गूंज उठा । बहुत देर तक लोगों ने उच्च जय-जयकारां से उनका अभिनन्दन किया । फिर, एकदम निस्तब्धता छा गई । सब लोग महात्मा जी की बात सुनना चाहते थे, इसलिए इतनी लम्बी-चौड़ी भीड़ भीं बिलकुल चुपचाप निस्तब्ध हो गई । कुलपिता के उस व्याख्यान के प्रारम्भिक दो वाक्य और अन्तिम दो वाक्य मुझे अबतक अक्षरशः वैसे के वैसे ही स्मरण हैं । व्याख्यान का प्रथम वाक्य ही इतना सधा हुआ और प्रभावशाली था कि जनता पर जादू का सा असर हुआ । महात्मा जी अपनी धीर, गम्भीर तथा गूंजती हुई वाणी में बोले । देवियो और भद्रपुरुषो मैं इस समय आपके सामने गुरुकुल की वार्षिक रिपोर्ट पढ़ने नहीं खड़ा हुआ हूँ । गुरुकुल की रिपोर्ट आज तीन दिन से यहां बरार पढ़ी जा रही है और आप उसे बराबर सुन रहे हैं । जो कुछ आप लोग यहां देखते हैं या सुनते हैं या अनुभव करते हैं, वह सब इस गुरुकुल की रिपोर्ट ही है । अविधा में न कह कर लक्षणा या व्यञ्जना में कहना—यह उनके व्याख्यानों की अपनी विशेषता थी । इसी विशेषता के द्वारा उनके व्याख्यान जनता के अन्तस्तल तक पहुँचते थे ।

व्याख्यान का आशातीत प्रभाव हुआ । अन्तिम वाक्य जो उनके श्रीमुख से उस समय निकले थे, श्रोताओं पर महात्मा जी के व्यक्तित्व की अमिट छाप डाल गए । 'जब मैंने गुरुकुल का कार्य प्रारम्भ किया था तब अपने पर मुझे कम विश्वास था, आप लोगों पर कुछ अधिक था और परमात्मा पर सबसे अधिक तथा पूरा विश्वास था । वही विश्वा । अब भी स्थिर है और मैं घोषणा करता हूँ कि यदि आप लोग धन देंगे तो यह गुरुकुल चलेगा, यदि आप लोग धन नहीं देंगे तो भा चलेगा ।' ईश्वर विश्वासपूर्ण इस वाक्य का अद्भुत प्रभाव हुआ था, रुपयों की वर्षा होने लगी थी ।

विशाल हृदयता

सन् १९२६ की सितम्बर मास की बात है । बलिदान होने से चार महिने पहिले । अब वे विश्वविदित श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी थे । कुलपिता से यह मेरी अन्तिम भेंट थी । देहली नगर में, अपने निवास स्थान में, वे मुख से कुर्सी पर विराजमान थे । मैं उनके दर्शन प्राप्त करने गया । उन दिनों गुरुकुल कांगड़ी को इस पार लाने या न लाने का आन्दोलन सर्वत्र चल रहा था । आर्यसमाज में भी और आर्यसमाज के बाहर भी इस विषय में बहुत उग्र रूप से चर्चा हो रही थी श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज कई बार अपनी दृढ़ सम्मति प्रकट कर चुके थे कि गुरुकुल अपनी पुरानी भूमि में ही रहना चाहिए, कहीं अन्यत्र नहीं जाना चाहिए । हज़ारों आर्यसमाजी सज्जनों की तरह, और लगभग सभी स्नातक भाइयों की

तरह, मेरी भी यही सम्मति थी कि गुरुकुल अपनी पुरानी जगह पर ही रहना चाहिए। इस लिए स्वामी जी महाराज से बातचीत करते हुए मैंने यही चर्चा छेड़ दी। मैंने कहा कि श्री आचार्य रामदेव जी, श्री पं० विश्वम्भर नाथ जी और श्री महाशय कृष्ण जी, ये तीन ही व्यक्ति हैं जो गुरुकुल के स्थान को बदलना चाहते हैं, इन तीनों व्यक्तियों को आर्य प्रतिनिधि सभा से निकाल देना कोई कठिन काम नहीं है, क्योंकि जनता सब हमारे साथ है, आगामी चुनाव में ही इनको निकाल दिया जा सकता है, यदि आपकी आज्ञा हो।

श्री स्वामी जी बड़ी धीरता के साथ गम्भीरता पूर्वक बोले, उस समय उनके तेजस्वी चेहरे पर महापुरुषों के से लक्षण प्रकट हो रहे थे। अरे भाई यह निकालने की प्रथा बन्द करो, आर्यसमाज के पास कार्यकर्ता हैं ही नहीं। जो कुछ इने गिने हैं भी, उन्हें भी बाहर निकाल दोगे तो काम कैसे चलेगा। गुरुकुल को ये लोग जहां ले जाना चाहते हैं वहीं ले जाने दो, कोई चिंता की बात नहीं है, अब गुरुकुल इतना बड़ा हो गया है कि स्थान परिवर्तन से भी इसका कुछ अहित नहीं हो सकता। यह लोग गुरुकुल की सेवा ही तो कर रहे हैं, इनके उत्साह में विघ्न मत डालो।

इसके बाद अन्य अनेक विषयों पर बातचीत होती रही। श्री स्वामी जी की महत्ता को मैं पहिले भी जानता था, किन्तु उनके साथ यह जो अन्तिम भेंट हुई इससे उनकी उदारता तथा विशालहृदयता और अन्य महापुरुषोंचित गुणों का बहुत अच्छा परिचय मुझे मिला। बड़ी श्रद्धा के साथ मैंने उनकी चरणधूलि अपने मस्तक पर लगाई और नमस्ते करके विदा हुआ।

सच्चे वीर

पूज्यवर स्वामी जी महाराज का जीवन संयम और शौर्य का प्रतीक था। उनके समान उनके समय में स्पष्ट द्रष्टा, स्पष्टवक्ता और स्पष्ट मति वाला दूसरा कोई भी मनुष्य नहीं था। वे सच्चे वीर थे। समाचार पत्रों द्वारा प्रतिदिन बनने बिगड़ने वाले वीर नहीं थे। और वीर ही की भांति वीर गति उन्होंने पाई। आधुनिक भारत और आगामी भारत के भव्य भवन के वे अचल स्तम्भ के रूप में सदा अमर रहेंगे।

राजनाथ पाण्डेय
हिंदी विभाग, सागर विश्वविद्यालय।

स्वामी जी और देशसेवा

स्वामी जी की देशसेवाओं का मूल्य इस समय आंकना कठिन है। आज हम विश्वविद्यालय वाले व्यक्ति अपनी भाषा में ही सर्वोच्च शिक्षा देने के लिये व्यग्र और उत्सुक हो रहे हैं और हमने ऐसा करने का निश्चय भी कर लिया है। पर अपनी भाषा द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा का प्रथम स्वप्न देखने वाले तो आपके कुलगुरु श्री स्वामी जी महाराज ही थे। इस प्रकार की शिक्षा का जब इतिहास लिखा जायगा तो आपकी संस्था और आपके कुलगुरु को उसमें दिव्य स्थान प्राप्त होगा।

भारतीय राजनितिक जीवन सम्बन्धी संस्मरणों पर दृष्टि डालते समय स्थान-स्थान पर मुझे यह अनुभव होता है कि यदि कांग्रेस श्री स्वामी जी महाराज की नैतिक धारणाओं का समर्थन करती तो देश में वे दुष्परिणाम न होते जिनका फल हमें हाल ही में भोगना पड़ा है।

सत्यप्रकाश, डी. एस. सी.
रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय।

निराली शान वाला

सन्तराम, बी० ए०

महा पुरुषों की तुलना करना प्रायः विरक्तिकर होता है। फिर भी कहना पड़ता है कि दयानन्द के बाद आर्यसमाज में, नहीं नहीं समूचे भारत में, जो महान् व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं, उन में श्रद्धानन्द की शान निराली है। जैसे किसी पर्वतमाला में अनेक चोटियां होती हैं और वे सब अपने-अपने स्थान पर सुन्दर प्रतीत होती हैं, पर उन सब में एक पर्वत-शृङ्ग विशेष रूप में ऊंचा उठ कर दर्शकों को दूर से अपनी भव्यता से और अनोखेपन के कारण आकर्षित करता है, वैसे ही श्रद्धानन्द एक विशेष शान के मालिक थे। रूस के ऋषि काऊंट टालस्टाय की भांति उन का प्रारम्भिक जीवन उतना अच्छा न था। पर उन की आत्मा प्रगतिशील थी। हम उसे बुराइयों के विरुद्ध युद्ध करके प्रति क्षण ऊपर उठते पाते हैं। अन्त में वे इतने ऊंचे उठ गये थे कि उन को देखने के लिए सिर को पीछे की ओर झुकाना पड़ता था।

आज इस देश में राजनीतिक नेताओं को ही बहुत उच्च आसन दिया जा रहा है। पर स्मरण रहे कि सामाजिक सुधार के लिए अपना बलिदान करने वाले हुतात्मा के लिए जितनी तितिक्षा और दीर्घोद्योग की आवश्यकता होती है उस से आधी भी विदेशी सरकार से लड़ने वाले देश भक्त के लिए नहीं होती। जब कोई देश भक्त अपने देश को विदेशी सरकार से मुक्त कराने के लिए लड़ता या जेल जाता है, तो सारा देश उस की पीठ पर रहता है, उस का प्रशंसा के पुल बांधे जाते हैं, उसे आकाश पर चढ़ाया जाता है, समाचार-पत्रों में उस के चित्र छपते हैं, पर जब कोई व्यक्ति सामाजिक सुधार करने लगता है तो दूसरों का तो कहना ही क्या उस के अपने भाई-बंधु भी उस का विरोध करने लगते हैं। उस के रक्त के प्यासे हो जाते हैं। उसे जीवन पर्यन्त जाती चिता में जलना पड़ता है। पत्रों में उस का नाम तक नहीं छपता। कोई उस का सहायक नहीं होता। सब ओर से उसे हतोत्सा हित किया जाता है। उसे पागल कहा जाता है। पर राष्ट्र-निर्माण की जो सुदृढ़ आधार-शिला वह तैयार करता है उस के अभाव में देश की राजनीतिक स्वतंत्रता का युद्ध कभी सफलतापूर्वक लड़ा ही नहीं जा सकता। सामाजिक और चारित्रिक दोषों को वही दूर करता है और उनको दूर किए बिना कोई जन-समूह कभी भी सगठित राष्ट्र का रूप धारण नहीं कर सकता। वह उस ईंट की नाईं होता है जो भूमि के नीचे नींव में पड़ी रहती है और जिस के ऊपर राजनीतिक स्वतंत्रता का विशाल भवन खड़ा रहता है। संन्यासी श्रद्धानन्द के महान् जीवन पर इसी दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है तभी हम उस महापुरुष के वास्तविक महत्व को समझ सकेंगे।

मेरे जीवन के गत पच्चीस वर्ष जात-पांत के विरुद्ध युद्ध में बीते हैं। कुछ मित्रों के साथ मिल कर मैंने सन् १९२२ में लाहौर में जात-पांत तोड़क मण्डल स्थापित किया था। हमें चारों ओर से हतोत्साहित किया जाता था। मुझे पूरी तरह स्मरण है, स्थानीय आर्य-नेताओं के निष्क्रिय प्रतिरोध के कारण, एक वर्ष हमें अपने वार्षिक सम्मेलन के लिये कोई प्रधान मिलना कठिन हो गया था। स्वामी श्रद्धानन्द उस वर्ष लाहौर आर्यसमाज से कुछ अप्रसन्न थे। उन्होंने उस के वार्षिकोत्सव पर आने से

इन्कार कर दिया था। पर जात-पांत तोड़क मण्डल की प्रार्थना पर उन्होंने हमारा प्रधान बनना स्वीकार कर के हमारी मान-रक्षा की थी। सभापति के आसन से बोलते हुए उन्होंने तब कहा था 'मुझे पता नहीं था कि आर्य-समाजी लोग जात-पांत तोड़ने से इतना भय-भीत हैं। आज इस प्लेटफार्म पर एक भी आर्य-नेता को न देख मुझे दुःख हो रहा है। मुझे ऐसा पता होता तो मैं गुरुकुल न बना कर जात-पांत तोड़क मण्डल ही बनाता।' उन की इस अमर वाणी से मण्डल के कार्यकर्ताओं को बड़ा भारी उत्साह मिला था। वे सदा हमारे लिए प्रकाश-स्तम्भ बने रहे। जात-पांत तोड़ने के आन्दोलन की कठिनाइयों को देख कर जब भी मेरा उत्साह भंग होने लगता है, उस ज्योति-स्तम्भ से मैं नव जीवन पाने लगता हूं। उन्होंने उस घोर अंधकार के समय में, जब पंजाब में परदा प्रथा तक को दूर करना कठिन था, अपनी बेटी और बेटों का विवाह जाति भेद को तोड़ कर करते हुए आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया था। तुलसीदास ने कहा है —

जाकी रही भावना जैसी,
प्रभु-मूर्ति देखी तिन वैसी।

स्वामी श्रद्धानन्द को कोई उन के किसी गुण के कारण महान समझता है और कोई किसी दूसरे गुण के कारण। पर जाति भेद जैसे भारत के महारोग पर क्रियात्मक रूप से कुठाराघात करने के कारण ही मेरे हृदय में उन के लिए बहुत ऊंचा स्थान है। कारण यह कि आज भी मैं बड़े बड़े सामाजिक एवं राज-नीतिक नेताओं में जात-पांत को तोड़ने का साहस नहीं देखता। यदि कांग्रेस और आर्य-समाज ने स्वामी श्रद्धानन्द का अनुकरण किया होता तो देश के विभाजन और विध्वंस की नौबत कभी न आई होती। आज नहीं, कुछ वर्ष बाद भारत-वासी अनुभव करेंगे कि उस कल्याण मार्ग के पथिक श्रद्धानन्द ने जाति-भेद पर आक्रमण कर के कितना पुण्य एवं महान् कार्य किया था।

स्वामी जी का मुझ पर एक और बड़ा उपकार है। उनकी कृपा से ही मैंने हिन्दी लिखना पढ़ना सीखा था। मैं उन के उर्दू पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' को बड़े प्रेम से पढ़ा करता था। स्वामी जी ने जब उसे उर्दू में बंद कर के हिन्दी में निकालना आरम्भ किया तो मुझे भी उस के प्रेम से विवश होकर, उसे पढ़ने के लिए हिन्दी सीखनी पड़ी। मैं समझता हूं, मेरी ही तरह और भी अनेक भाइयों ने सद्धर्म प्रचारक पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी है।

स्वामी जी के महान् व्यक्तित्व का प्रभाव मुझ पर मेरे कालेज के दिनों में ही पड़ चुका था। मैं लाहौर के गवर्नमेण्ट की थर्ड ईयर में पढ़ा करता था कि एक मित्र को साथ ले उनके दर्शनार्थ गंगा के पार काङ्गड़ी में गया था। शायद सन् १९०९ की बात है। आर्य समाज पर बड़ी भारी विपत्ति आई थी। आर्य समाज को विद्रोही ठहरा कर ब्रिटिश सरकार कुचल डालने पर तुली हुई थी। पटियाला में आर्य समाजियों पर राज-द्रोह का अभियोग चल रहा था। सत्यार्थप्रकाश को ज़ब्त किया जा रहा था। श्री लाजपतराय कारागार में डाल दिए गए थे। आर्य-समाज के एक विभाग ने डर कर उन का नाम अपने सदस्यों की सूची से काट डाला था। आर्यसमाजी कहलाना अपने को भारी खतरे में डालना था। चारों ओर आर्यसमाज पर दमन का चक्र चल रहा था। ऐसे संकट काल में श्रद्धानन्द (तब महात्मा मुन्शीराम) का

एक व्याख्यान लाहौर (बच्छोवाली) आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर हुआ। उसे सुनने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ था। उसे मैं आज तक नहीं भूला हूं और शायद इस जीवन में भूल भी नहीं सकूंगा।

बीस-पचीस सहस्र नर-नारी पण्डाल में खचा खच भरे थे। भय के कारण सब डरे हुए थे। पण्डाल में एक ओर पुलिस के देसी और अंगरेज़ अफसर हथकड़ियां लिए बैठे थे। सभी की जिह्वा पर था कि आज महात्मा जी को गिरफ़तार कर लिया जायगा। जनता सांस रोके अपने महान नेता का आदेश सुनने के लिए चुप-चाप बैठी थी। गैस के बड़े बड़े लैम्पों की सांय-सांय के सिवा और कोई शब्द सुनाई न पड़ता था। इतने में उन्नत ललाट, नग्न सिर, पीताम्बर धारी लंबी दाढ़ी वाले एक विशाल काय मनुष्य वेदी पर खड़े हुए। उन को देखते ही पण्डाल करतल-ध्वनि से गूंज उठा। मनुष्य नहीं, वह देवता था। लाखों मनुष्यों की भावना उस के हृदय में भरी थी। वह युग पुरुष था। आर्य-जगत् उस की जिह्वा से बोल रहा था। महात्मा मुन्शीराम ने उस समय अपना व्याख्यान आरम्भ करने के पहले भगवान से जो प्रार्थना की वह आज भी मेरे कानों में गूंज रही है। उन्होंने कहा — "हे घट-घट वासी, रोम रोम में रम रहे परमेश्वर, हे नर और नारी के सृजनहार! मुझे शक्ति दीजिए कि सत्य ही मेरी वाणी से निकले। मैं चाहता हूं कि आज मेरे यहां बोले हुए शब्द केवल भारत-मण्डल में ही नहीं, वरन् इंग्लैंड के पार्लियामेण्ट के भवन के ऊपर से गूँजते हुए उस जगदीश्वर के चरणों में पहुँचें जिस के सामने बड़े-बड़े ताजदार भी सिर झुकाते हैं।" उन के इन शब्दों में बिजली भरी थी। सारा वायु-मण्डल प्रभावित हो उठा। सब के गले भर आए। महात्मा जी ने कहा कि 'मुझे पूछा जाता है कि व्याख्यान देने तो चले हो, पर क्या अपना भाषण लिख भी लिया है; आज तुम्हारे एक-एक शब्द को ले कर तुम्हें दण्ड दिया जायगा। मैं पूछने वाले भाइयों से कहता हूँ, मेरा कोई सेक्रेटरी नहीं जो मेरे लिए व्याख्यान के नोट लिखे; मैंने अपने को सत्य स्वरूप परमेश्वर के भरोसे पर छोड़ दिया है—सरे तसलीम ख़म है, जो मिज़ाजे यार में आए। सत्य के प्रकाश के लिए सब कष्ट और दण्ड सहन कर लूंगा।' मालूम नहीं उन की वाणी में क्या जादू भरा था। श्रोतागण के नेत्रों से अश्रु धारा बह रही थी। उन का व्याख्यान अबाध गति से कोई पौने दो घन्टे तक होता रहा, पर श्रोतागण चित्रवत् बैठे थे। उन की उस दिन की निर्भीकता और प्रभु-विश्वास ने कट्टर सनातन धर्मियों को भी उनका भक्त बना दिया था।

स्वामी जी का एक बड़ा गुण यह था कि जिस चीज़ को वे मानते थे उस पर आचरण भी करके दिखाते थे। जात-पांत और परदा-प्रथा को उन्होंने उड़ा दिया था। अपने बच्चों को सब से पहले गुरुकुल में प्रविष्ट किया था। उर्दू 'सद्धर्म प्रचारक' को बंद कर उसे हिन्दी में कर दिया था। गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ और उस के बाद संन्यासी बने थे। अछूतों और मुसलमानों को गले लगा कर उन के साथ खुल्लम खुल्ला खान-पान किया था। खेद है कि ऐसा देदीप्यमान नक्षत्र भारत के गगन-मण्डल को आलोकित रखने के लिए बहुत दिन हम में रह न सका। उनका जीवन जितना शानदार था उन की मृत्यु भी वैसी ही शानदार थी। ऐसा जान पड़ता है, भगवान् ने उन्हें यशो-पार्जन के लिए ही संसार में भेजा था।

महात्मा मुंशीराम से मेरा परिचय

राजा महेन्द्र प्रताप

मैं इन प्रसिद्ध महाशय से केवल एक बार ही मिला हूं। परन्तु मैं उस दिन को कभी नहीं भूलता। मैं इस को किसी से मिलना नहीं कहता कि कहीं कभी किसी को किसी सभा में देख लिया। यह एक बार ही हुआ कि मैं उनके स्थान पर जाकर उनका अतिथि बना।

मुझे गुरुकुल आने को कई बार कहा था परन्तु कभी कुछ कभी कुछ रुकावट रास्ते में आई और मैं न जा सका। उस दिन मैं पहुँचा और महात्मा जी के निवास-स्थान के निकट ही एक कोठे में ठहरा। मुझे आज उनका वह स्वरूप याद है। लम्बे थे, दाढ़ी वाले थे, साधुओं की तरह एक दुपट्टा भी कन्धे पर पड़ा था। पर अभी साधु नहीं बने थे। मेरी भेंट महात्मा मुंशी राम जी से हुई, स्वामी श्रद्धानन्द जी से नहीं।

सायंकाल साथ भोजन पाया, बातें हुईं। मैंने अपने विचार प्रकट किये; महात्मा जी के विचार सुने। मेरे बहुत से आर्य-समाजी मित्र थे। मैं बहुत-सी आर्य-समाज की सेवाओं का आदर करता था; परन्तु मैं कभी आर्य-समाजी नहीं बना। और नहीं आर्य-समाजी हूँ जैसे आज मैं अपनी ही रागिनी अलापता हूं, उसी प्रकार उस समय भी अपनी ही कुछ बातों पर दृढ़ रहता था। यहां तक कि यत्न यह करता था कि पूज्यनीय पण्डित मदन मोहन मालवीय जी से भी और माननीय स्वामी नित्यानन्द जी से भी अपनी ही बात मनवाऊँ। उस रात भी मैंने ऐसी ही कुछ चेष्टा की कि महात्मा जी हमारे प्रेम-महाविद्यालय की शिक्षा-प्रणाली को स्वीकार करें और संस्कृत अधिक न पढ़वा कर आजकल की विद्याओं को अधिक सिखायें।

वह १९१४ की बात है। उस दिन की दो बातें और यहां उल्लेखनीय हैं। उसी दिन सब से पहले और सब से पीछे प्रसिद्ध श्री गणेशशङ्कर जी विद्यार्थी से भेंट हुई थी। उस रोज़ उन्होंने हम सबके सामने यह बतलाया कि वे हिन्दी का एक पत्र निकालना चाहते हैं. कुछ लोगों ने शंका की और कुछ लोगों ने हँसी उड़ाई परन्तु बाद को श्री विद्यार्थी जी का पत्र निकला और समस्त भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो गया। दूसरी बात यह हुई कि महात्मा मुंशी राम जी के सुयोग्य बड़े पुत्र श्री हरिश्चन्द्र जी ने निश्चय किया कि वे मेरे सेक्रेटरी होकर कुछ दिन मेरे साथ रहेंगे और बाद को 'निर्बल-सेवक' पत्र के सम्पादक बनकर कमसे-कम तीन वर्ष सहयोग देंगे।

उस समय गुरुकुल काँगड़ी में एक मेरे मिलने वाले साइन्स के प्रोफ़ेसर थे। उनका नाम है श्री महेश चरण सिंह। उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी में साइन्स विभाग की बड़ी उन्नति की थी। उनके विभाग का निरीक्षण करके मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। गुरुकुल कांगड़ी उस समय अपने ढंग का निराला विद्यालय था और आज तक अपूर्व निरालेपन को सुरक्षित रख रहा है।

देश की अद्भुत विभूति

स्वर्गीय स्वामी जी देश की एक विभूति थे। उन्होंने अपने त्याग, तपस्या और बलिदान से देश का तथा जर्जर हिन्दुसमाज का मस्तक ऊँचा किया था। उनका सारा जीवन समाज सेवा में ही बीता। ऐसे महापुरुषों के जीवन से सदा प्रेरणा मिलती रहेगी।

बीरबल सिंह
आचार्य, श्री काशी विद्यापीठ, बनारस।

अमर श्रद्धेय आचार्य जी की पुण्य स्मृति में

धर्मदेव विद्यावाचस्पति

अमर धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के दर्शन सबसे प्रथम बार मुझे सन १९०९ में हुए, जब मुलतान में गुरुकुल कांगड़ी की प्रथम शाखा के स्थापनार्थ वे वहां पधारे। महात्मा मुन्शीराम जी के रुप में उनकी वह भव्य दिव्य-मूर्ति इस लेख को लिखते हुए भी मेरी आंखों के सन्मुख है। उस भव्य मूर्ति को भूल जाना असम्भव है। में अपना परम सौभाग्य समझता हूँ कि उन के करकमलों से मैंने यज्ञोपवीत ग्रहण कर वेदमाता की शरण ली तथा उनका मैं सदा आशीर्वाद पात्र प्रिय शिष्य बना रहा। मुलतान गुरुकुल के कई उत्सवों पर पूज्यपाद महात्मा जी के उपदेशामृत सुनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। कोटा आर्य समाज के उत्सव पर सन् १९१५ में जब हम मुलतान गुरुकुल के ब्रह्मचारी सरस्वती यात्रा करते हुए पहुँचे तो वहाँ पूज्यपाद आचार्य जी के मुखारविन्द से वह सच्चे भक्त की भावना पूर्ण पद्य सुना जो मुझे जीवन भर नहीं भुल सकता। वह निम्नलिखित पद्य था।

जब दांत न थे तब दूध दियो
जब दांत दिये तब अन्न न देह हैं ?
जल में थल में पशु पक्षिन की
सब की सुध लेत सो तोइ न लेइहैं ?
काहे को सोच करे मन मूरख
सोच करे कछु हाथ न ऐहैं
जान को देत अजान को देत
जहान को देत सो तोइ न देहैं ?

गुरुकुल कांगड़ी हम लोग सन् १९१७ के प्रारम्भ में अधिकारी परीक्षा देने गये। जब अधिकारी परीक्षा का परिणाम प्रकाशित हुआ तब गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर मुझे संस्कृत और अंग्रेजी में प्रथम रहने पर पदकादि अपने करकमलों से प्रदान करते हुए श्रद्धेय आचार्य जी ने जो भविष्यद्वक्ता के रूप में शब्द कहो उन्हें मैं कैसे भूल सकता हूँ ? आज इस साधारण सी घटना को ३१ वर्ष हो गये हैं। किन्तु पूज्यपाद आचार्य जी के अपने प्रति अगाध प्रेम सूचक वे शब्द आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जो कुछ अल्प स्वल्प समाज सेवा मुझ से इस काल में बन पड़ी है वह सब उन्हीं के आशीर्वाद का फल था। श्रद्धेय आचार्य जी ने पदक और पुस्तकों का पारितोषक देते हुए यह कहने की कृपा की कि मुझे दृढ निश्चय है कि यह ब्रह्मचारी॰ भावी जीवन में समाज की बहुत सेवा करेगा। मेरा इसे हार्दिक आशीर्वाद है। मेरा समाज की बहुत बड़ी सेवा का कोई दावा नहीं. किन्तु यह श्रद्धेय आचार्य जी के द्वारा प्राप्त स्फूर्ति और उनका विशुद्ध आशीर्वाद था जिसने दक्षिण भारत जैसे दूरस्थ प्रदेश में अनेक असुविधाएं होते हुए भी लगभग २० वर्ष निरन्तर कार्य करने को मुझे प्रेरित किया। सन् १९१८ में मैं जब गुरुकुल विश्वविद्यालय में द्वादश श्रेणी में पढ़ता था और गुरुकुलीय साहित्यपरिषत् का (जिसके प्रधान पूज्य स्वा० श्रद्धानन्द जी थे) उपमन्त्री था, एक दिन परिषत् के अधिवेशन के पश्चात् श्रद्धेय स्वामी जी ने दक्षिण भारत को शोचनीय सामाजिक अवस्था का चित्रण करते हुए कहा कि मैं दक्षिणभारत के प्रत्येक प्रान्त में चार २ स्नातकों को प्रचारार्थ भेजना चाहता हूँ जिससे वहां की अवस्था सुधर

सके। मैंने उसी दिन अपने मन में दृढ़ संकल्प कर लिया कि मैं जीवन के अनेक वर्ष दक्षिण-भारत में प्रचारार्थ लगाऊंगा। स्नातक-परीक्षा समाप्त होने पर उस समय आर्य-सिद्धान्त के मुख्योपाध्याय और सहायक मुख्याधिष्ठाता श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने मुझे बुलाया और गुरुकुल में आर्य सिद्धान्त के उपाध्याय के रूप में कार्य करने की प्रेरणा की। किंतु मेरे मन में जो दृढ़ संकल्प पूज्य आचार्य जी की प्रेरणा के फल स्वरूप उत्पन्न हो चुका था उस को प्रकट करते हुए मैंने धन्यवाद और विनय के साथ मान्य पण्डित जी की इच्छा को पूर्ण करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। श्रद्धेय आचार्य जी ने जब मुझे बुलाया और भविष्य जीवन विषयक मेरा कार्यक्रम जानना चाहा तो मैंने दो वर्ष पूर्व की गई उनकी प्रेरणा का निर्देश करते हुए दक्षिण भारत में कई वर्ष कार्य करने की इच्छा प्रकट की जिसको सुनकर वे गद्‌गद हो गये और उन्होंने हार्दिक आशीर्वाद देकर उस का यथोचित प्रबन्ध सार्वदेशिक सभा द्वारा करवा दिया। उन के अधीन कार्य करने में जो आनन्द आया उसका शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता। माता पिता से भी बढ़कर उन का मङ्गलमय हस्त मैंने सदा अपने ऊपर अनुभव किया। यदि समस्त गुरुकुलों के आचार्य तथा संस्थाओं के अधिकारी श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी का आदर्श अपने सन्मुख रक्खें तो इन संस्थाओं के उद्देश्य की पूर्ति में अद्भुत सहायता मिले। सन् १६१८ में जब गढ़वाल में अकाल पड़ा तो पूज्य स्वामी जी के आदेशानुसार हम में से बहुतों ने अपनी सेवाएं अकाल पीड़ित बन्धुओं की सहायतार्थ अर्पित कीं। उन दिनों पूज्य स्वामी जी के घनिष्ट सम्पर्क में आने का मुझे सौभाग्य पुनः प्राप्त हुआ। उन का हृदय कितना सरल और दयापूर्ण था, किस प्रकार वे दुःखितों की अवस्था को देख कर द्रवित हो जाते थे तथा किस प्रकार वे पीड़ित भाइयों के कष्ट निवारणार्थ हमारे साथ कई बार २०-२२ मील की पैदल यात्रा करने में भी संकोच न करते थे। यह सब देख कर हमारा मस्तक उन के चरणों में अत्यधिक श्रद्धा पूर्वक झुक जाता था। दक्षिण भारत की लम्बी यात्राओं में भी (जो विशेषत: अस्पृश्यता निवारण और दलितोद्धार का सन्देश जनता को देने के लिये पूज्य स्वामी जी महाराज ने लगभग ७० वर्ष की वृद्धावस्था में की थी) श्रद्धेय आचार्य जी के साथ रहते हुए उनकी कर्तव्य तत्परता और सेवा की भावना को मैंने विशेष रूप से अनुभव किया था। गुरुकुल के ब्रह्मचारीयों तथा अन्य सब युवकों में श्रद्धेय स्वामी जी इसी भावना और श्रद्धा को विशेष रूप से जागृत करना चाहते थे। संवत् १६७० में देहली में भारतवर्षीय आर्यकुमार सम्मेलन के प्रधान पद से महत्वपूर्ण भाषण देते हुए पूज्य महात्मा मुन्शीराम जी ने आर्य-कुमारों और युवकों को सम्बोधन करते हुए ये स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य शब्द कहे—

'सेवक बनने का यत्न करो क्योंकि लीडरों की अपेक्षा आर्य जाति को सेवकों की बहुत अधिक आवश्यकता है। जब आपका पांव डगमगाने लगे तो राम का सेवक हनुमान् का स्मरण कर लिया करो। दयानन्द रूपी राम का सेवक हनुमान् बनने का यत्न करो। दयानन्द का काम पूरा करने के लिये, पाप की लङ्का का विध्वंस करने के लिये महावीर की आवश्यकता है।'

यदि आर्य युवक इन महत्त्वपूर्ण शब्दों को हृदयाङ्कित कर के आर्य जाति और देश की सेवा का व्रत लेते तो कितना कल्याण हो?

गुरुकुल कांगड़ी के अतिरिक्त कलकत्ता तथा दक्षिणभारत की यात्राओं में श्रद्धेय स्वामी जी महाराज के साथ रहते हुए मैंने देखा कि ईश्वर में अविचल विश्वास, भक्ति और धर्म

पर श्रद्धा ही उनके पवित्र जीवन का तत्त्व था। प्रातः काल दो घंटे के नियमपूर्वक भगवान् के ध्यान और चिंतन में लगाते थे और उससे दिव्य-शक्ति प्राप्त करते थे। मैं उस समय उपस्थित था जब सन् १९१७ में मायापुर वाटिका में संन्यास लेते हुए श्रद्धेय महात्मा मुन्शीराम जी ने कहा था कि गत ३०-३५ वर्षों से श्रद्धा ही कल्याण-मयी माता की तरह मेरी रक्षा करती रही है। इसी से मुझे आनन्द की प्राप्ति हुई है इसलिये मैं श्रद्धानन्द यह नाम ग्रहण करता हूँ और तीनों एषणाओं से ऊपर उठ कर लोक-सेवा का व्रत लेता हूँ।

हम सब स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम बड़े आदर के साथ लेते हैं। उन द्वारा प्रवर्तित और संचालित गुरुकुल शिक्षा प्रणाली, दलितोद्धार तथा शुद्धि आदि आन्दोलनों का महत्त्व जनता को बताते हैं किन्तु इस बात को प्रायः भूल जाते हैं कि श्रद्धा से ही प्रेरित हो कर वे समस्त कार्य करते थे। श्रद्धा ही उनके बल का स्रोत थी। इस श्रद्धा की न्यूनता के कारण हमारे कार्य प्रायः निस्तेज और निष्प्रभाव हो रहे हैं। इस श्रद्धा को अपने अन्दर बढ़ाने का प्रयत्न करते हुए यदि हम अमर धर्म वीर स्वामी श्रद्धा-नन्द जी महाराज के निम्नलिखित सन्देश को जो उन्होंने मेरे द्वारा ११-५-१९२५ को दक्षिण के आर्यों को भेजा था अपने हृदयों में अङ्कित कर लें और उसे कार्य में परिणत करें तो हमारे जीवन अत्यन्त उन्नत बन जाएं। वह सन्देश निम्न था --

कृपया इस बात को न भूल जाओ कि वैदिक-धर्म का सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय के साथ नहीं, नांही यह मत या मज़हब है। यह सनातन (नित्य) धर्म है जिस के बिना जगत् की सामाजिक स्थिति असम्भव है। तुम आर्यों को वह चाबी दी गई थी जो प्राचीन काल में असंख्य आध्यात्मिक कोषों को खोलती थी और अब भी यह तुम्हारा ही अधिकार है कि पीड़ित जगत को तुम शान्ति प्रदान कर सको। किन्तु सब से पहले तुम्हें अपनी सब अपवित्रताओं को पूर करना होगा। आज एक गम्भीर प्रतिज्ञा करो और व्रत लो कि (१) तुम पञ्च महायज्ञों के अनुष्ठान में प्रमाद न करोगे (२) तुम अस्वाभाविक जाति भेद की शृङ्खलाओं को तोड़ डालोगे और वर्णाश्रम व्यवस्था को अपने जीवनों में क्रियात्मक रुप दोगे (३) तुम अपने देश से अस्पृश्यता के अभिशाप का समूलोन्मूलन कर दोगे और आर्य-समाज रूपी सार्वभौम मन्दिर के द्वार को तुम मत, सम्प्रदाय, जाति, रंग आदि के भेद के बिना मनुष्य मात्र के लिए खुला रक्खोगे।'

भगवान् हम सबको श्रद्धेय अमर धर्म वीर के सच्चे शिष्य बनने की शक्ति प्रदान करें।

आज़ाद आत्मा का आशीर्वाद

अब जब कि भारत आजाद हो गया है, स्वामी जी जैसे महापुरुषों की याद बहुत आती है, क्यों कि सच्ची आज़ादी तो आत्मा की आज़ादी है, यह सत्य तो वे ही हम सबको सिखा सकते हैं। और आत्मा की आज़ादी हासिल करने का तरीका तो हमारी अपनी संस्कृति में ही है, यह तो पूज्य स्वामी जी से हमने सीखा। अमर हो स्वामी जी की आत्मा, और उस आज़ाद आत्मा आशीर्वाद हम सब पर हो, यह मेरी हार्दि प्रार्थना है।

गुरु दयाल मल्लिक।

आर्यवर की आवश्यकता

कन्या गुरुकुल देहरादून की अधिकारिणी परीक्षोत्तीर्ण १६ वर्षीय स्वस्थ और सुन्दर कन्या के हेतु आर्यवर की आवश्यकता है। गुरुकुल स्नातक को विशेषता दी जायेगी।

विश्वनाथ
विश्व-भवन, ईशापुर, जौनपुर, यू. पी.।

स्वामी जी के दो गुण

प्रियव्रत वेदवाचस्पति

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज एक आदर्श वैदिक संन्यासी थे। वेद में संन्यासी के लिये जिन विशेषणों का प्रयोग हुआ है उन में से दो 'महान्' और 'मीढ्वान्' हैं। महान् ऊंचे, उदार, उदात्त और बड़े आत्मा वाले महात्मा को कहते हैं। स्वामी जी एक महात्मा थे। छोटापन, तुच्छता और क्षुद्रता उनके पास नहीं फटकते थे। क्षुद्रात्मा लोगों की यह निशानी होती है कि वे जनता के आगे अपना असली स्वरूप प्रकट करने में संकोच करते हैं। वे जैसे नहीं हैं वैसा अपने आप को दिखाते हैं। एक आदमी धनी नहीं है। उसे अपनी कन्या या बालक का विवाह करना है। उसे चाहिये तो यह कि जैसी उस की आर्थिक स्थिति है उसी के अनुसार वह विवाह में खर्च करे। पर वह ऐसा नहीं करता। अपने निर्धन रूप को छिपा कर लोगों के आगे अपने को धनी प्रदर्शित करना चाहता है। इस के लिये वह ऋण लेता है और बड़ी धूम-धाम से विवाह करता है और विवाह का कार्य हो चुकने पर सारी आयु भर ऋण चुकाते रहने की विपत्ति में अपने आप को डाल लेता है। निर्धन आदमी अपने को निर्धन प्रकट करने में सकोच करे यह क्षुद्रता का निशानी है। क्षुद्रात्मा आदमी में एक बात यह भी होती है कि वह दूसरे लोगों को बड़प्पन, महत्व या श्रेष्ठता को सहन नहीं कर सकता। वह दूसरों की श्रेष्ठता न केवल स्वीकार ही नहीं करता प्रत्युत उन पर दोषारोप करके उन्हें हीन दिखाने का प्रयत्न भी करता है। परन्तु महात्मा कोटि के लोग इस से भिन्न प्रकार के होते हैं। वे जैसे हैं वैसा ही लोगों के आगे अपने को प्रकट करते हैं। अपने में कोई दोष है तो उन्हें भी वे मन्द कण्ठ से स्वीकार करते हैं। इस के साथ ही वे दूसरों की महत्ता को पहिचानते और स्वीकार करने में भी संकोच नहीं करते। बल्कि उन्हें दूसरों की महत्ता को पहचान कर उसे प्रकाशित करने में आनन्द प्राप्त होता है। स्वामी जी महाराज इसी प्रकार के महात्मा पुरुष थे। उन्होंने अपने आप को सदा वैसा ही प्रकट किया है जैसे कि वे थे। उन्होंने कल्याण मार्ग का पथिक नाम से जो अपना आत्मचरित्र लिखा है उस में अपने यौवन के जीवन की ऐसी त्रुटियों का उल्लेख भी किया है जिन्हें कोई ऐसा लेखक कभी न लिखता जो महात्मा न हो। भारतीय आत्मचरित्र लेखकों में सम्भवतः स्वामी जी सर्व प्रथम हैं जिन्होंने अपने जीवन वृत्तान्त में अपना सब कुछ लिख दिया है। गान्धी जी की आत्मकथा बाद में लिखी गई है। स्वामी जी दूसरों की महत्ता को पहिचान कर उस की घोषणा करने में भी पीछे नहीं रहते थे। महात्मा गान्धी जी को महात्मा की उपाधि सब से पहले महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) जी ने ही दी थी। गान्धी जी ने दक्षिण अफ्रीका में जो कार्य किया था उसके कारण भारतवासी उन्हें 'कर्मवीर' कहने लगे थे। दक्षिण अफ्रीका से लौटने पर जब गान्धी जी प्रथम बार गुरुकुल के उत्सव पर आये थे तब महात्मा मुन्शीराम (श्रद्धानन्द) जी ने सर्व प्रथम गान्धी जी को कर्मवीर गान्धी न कह कर महात्मा गान्धी कहा था। स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा दिया गया यह महात्मा का विशेषण गुरुकुलोत्सव के विवरणों में समाचार पत्रों में छपा। और तब से गान्धी

जी महात्मा गान्धी कहलाने लगे। स्वामी जी ने देश के एक उदीयमान नेता में महात्मापन देखा और उसके महात्मापन को जनता के आगे घोषित कर दिया। उन्हें उसके महात्मापन से ईर्ष्या नहीं हुई। क्योंकि वे स्वयं महात्मा थे।

संन्यासी के लिये वेद में जो 'मीढ्वान' विशेषण आया है उस का अर्थ होता है बादल की तरह बरसने वाला। स्वामी जी बादल की भांति बरसने वाले थे। स्वामी जी के पास जो कुछ कभी रहा है उसे वे सदा जनता के कल्याण के लिये निः स्वार्थभाव से बरसाते रहे हैं, अपनी सारी शक्तियों को वे जनता के मंगल के लिये व्यय करते रहे हैं। जब वे जलन्धर में वकालत करते थे। तब वे अपने समय का बड़ा भाग ऋषि दयानन्द का जन्म मंगलकारी संदेश जनता को सुनाने में खर्च किया करते थे। जलन्धर के और आस पास के नगरों के बाज़ारों में कहीं भी खड़े हो जाते और ऋषि के सन्देश की वृष्टि जनता पर करने लगते। आर्यसमाजों के वार्षिक उत्सवों पर जाकर भी ऋषि से प्राप्त धर्मोपदेशामृत की वर्षा करते रहते। यह धर्म-मेघ अपने "सद्धर्म-प्रचारक' द्वारा भी जनता की सन्तप्त आत्माओं की तृप्ति के लिये ज्ञानामृत की वर्षा करता रहता। ऋषि के सन्देश को और अधिक सक्रिय और मूर्त रुप देने की आवश्यकता अनुभव की गई तब गुरुकुल खोला गया। स्वामी जी ने गुरुकुल के लिये अपनी वकालत छोड़ी। अपना प्रेस और कोठी सब कुछ गुरुकुल को दान कर दया। अपने प्यारे आर्य-समाज की इस अद्वितीय संस्था के पौदे को पल्लवित और संवर्धित करने के लिये उन्होंने अपना सब कुछ इस पर बरसा दिया। गुरुकुल के अपने पैरों पर खड़ा होने योग्य बन जाने पर आप संन्यासी बने। और अब तक जो कुछ विशेष रूप से आर्यसमाज और गुरुकुल को मिलता था वह सारे देश को मिलने लगा। जो बादल एक प्रदेश के कल्याण के लिये बरस रहा था वह सारे देश के लिये बरसने लगा। जहां कहीं स्वामी जी को अन्याय, अधर्म और अत्याचार दिखाई देता था वहीं उसका विरोध करने और पीड़ित जनता पर सान्त्वना की वृष्टि करने को आप पहुँचते थे। इसके लिये बड़े से बड़ा कष्ट उठाने के लिये भी उद्यत रहते थे।। संन्यासी हो कर जनता की सेवा के लिये विस्तृत कार्य क्षेत्र चुनने पर आपने दलितोद्धार सभा, शुद्धि सभा, हिन्दू महासभा और कांग्रेस आदि अनेक संस्थाओं के कार्य में सहयोग देकर उनके कार्यों को प्रगति दी। जहां भी कार्य किया पूरी शक्ति और मनोयोग से कार्य किया। अपनी शक्ति से उन संस्थाओं को चमका दिया। जहां भी गये वहीं अपनी समग्र शक्ति बादल का तरह बरसा दी। जीवन काल में अपनी ज्ञान, वाणी और धन आदि की शक्तियों को जनता के कल्याण के लिये बरसाते रहे। अन्त में अब्दुलरशीद की गोलियें छाती में खाकर अपना रुधिर भी जनता के कल्याण के लिये बरसा गये।

ऐसे धर्ममेघ थे हमारे गुरु!

प्रकाशकों और लेखकों से

गुरुकुल पत्रिका में प्रति मास विविध विषयों की पुस्तकों की समालोचनाएं अधिकारी विद्वानों द्वारा करवाने का हमने समुचित प्रबन्ध किया है। समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की दो-दो प्रतियां नीचे लिखे पते पर भेजने की कृपा करें।

सम्पादक,
गुरुकुल-पत्रिका, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

स्वामी जी

सत्यकाम आयुर्वेदालंकार

इतिहास की एक अनुश्रुति—श्रद्धा, अमरता व आनन्द की साकार अभिव्यक्ति, कठोर तर्क व अन्धविश्वास की अपूर्ण समन्वय स्थली, विशाल देह व विशाल मस्तिष्क लघु हृदय व उदारता की साकार मूर्ति–जिस दिन इस पृथ्वी स्थल पर प्रथम बार सुनी गई . न कोई विश्वास कर सका और न ही किसी ने उसकी चिन्तना की। तर्क उससे हार गया भावना उस के सन्मुख अवनत हुई, लज्जा कुछ सहमी सी सिमट गई प्रेरणा ने प्राण पाये और पूर्व की चमकती ऊषाने पाश्चात्य को नित्यनूतन सन्देश दिया,—'प्राच्य संस्कृति अजेय है।'

ऋषि दयानन्द के स्वप्नों ने जो विशाल सात्म्यता व साकारता स्वामी श्रद्धानन्द के रूप में पाई वह राष्ट्रीय चेतना का श्रीगणेश था। राष्ट्र निर्माण की आधारस्थली थी, पराङ्मुखता पर आश्रय की विजय थी, छिद्रान्वेषण से गुणानुवाद ने करवट बदली। प्राच्य संस्कृति एक बार फिर गूँज उठी 'भारत जगद्गुरु है।'

विदेशी शासक और अधिवासी गुलाम–आश्चर्य के इस स्थल पर इस नवीन प्रयोग ने अणुशक्ति का कार्य किया–कार्य की जगह भावना ने अतुल प्रसार पाया–चोरों के घर में ही जो चोरी हो रही थी, लुटेरों का साजो सामान व ख्वाबो–इशरत जो लुट रहा था। नन्हें से पौधे पर प्रहार होने लगे, चिन्ता की लहर सी दौड़ी—'कहीं सूख न जाय। पर इस विशालकाय माली के साहस ने सिर आंखों उस ताप को झेल लिया। फिर स्वच्छन्द वनपक्षी को स्वर्णपिंजर बढ़ाया गया। पंखी घबरा गया। उसे सूखे जंगल के चुगे हुए दो दाने मंजूर थे स्वर्णमन्दिर की बंधी रोटी नहीं। निराश!

साधना पूर्ण थी, अपूर्णता ने उभरना चाहा। जुम्मामस्जिद के गुम्बदों ने जिस स्वरलहरी को संसार भर में गूँजा दिया, दो समानान्तर के मिल जाने की उस से असम्भाव्य कल्पना प्रबल हो उठी थी। पर विस्फोट हुआ और ऐसा कि जिससे गुञ्जन की जगह धुंआ अधिक हुआ और उसमें सब विलीन होने लगा जो साधना तपस्या व त्याग का परिणाम था। साधु आगे बढ़ा। जिस छाती की कठिनाई से हार मानकर सैनिक की संगीन झुक गई थी उसी छाती ने नरम हो शिर नवाँ कर छोटी सी पिस्तौल की तीन गोलियों को अपने पर ले लिया! मानो दुनियां को सत्य व स्वच्छ प्रमाण दे दिया कि सचमुच ही वे तीनों ऐषणाओं से ऊपर उठ चुके थे।

उनका ध्वज आज भी लहरा रहा हैं, उनकी आशाएं अब भी साधार हैं, वे अब भी अमर हैं। श्रद्धानन्द–अमर रहे।

आर्य संस्कृति का मूर्तिमान् प्रतिनिधि

स्वामी जी आर्य संस्कृति के सम्पूर्ण उत्कृष्ट तत्वों का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करते थे। वे शूरवीरता, आत्मत्याग, निष्ठा और देश भक्ति का उज्वल उदाहरण हमारे सामने रख गये हैं। मैं उनके व्यक्तित्व की भूरि २ प्रशंसा करता हूं। अत्यन्त प्रेम और आदर से उनका स्मरण करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता अनुभव होती है। सचमुच उनका उदाहरण हम में से प्रत्येक के लिये प्रेरणा का अनश्वर स्रोत बना रहेगा।

जमनादास मेहता

स्नेह स्मृति, राकीहिल, मुंबई।

पुस्तक परिचय

समालोचना के लिये पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं। एक प्रति आने पर केवल प्राप्ति-स्वीकार ही देना सम्भव होगा।

स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश (तीन भाग)

गुरुकुल के संस्थापक अमरशहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की पुण्यस्मृति में श्रद्धानन्द स्मारकनिधि की स्थापना की गई थी। इस निधि के सदस्य महानुभावों को प्रति वर्ष स्वाध्याय मञ्जरी की एक उत्तम पुस्तक भेंट की जाती है। इस निधि के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सज्जन स्वाध्याय मञ्जरी के ग्रन्थों से लाभ उठाने से वंचित रहते थे अतः उनके लाभ के लिए स्वाध्याय मञ्जरी के ग्रन्थ विक्रयार्थ प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी में रखे गये हैं। स्वाध्याय मञ्जरी के अब तक १७ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। जनता ने इन ग्रन्थों को बहुत पसन्द किया है, इन में से कई ग्रन्थों के तीन-तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रस्तुत पुस्तक स्वाध्याय मञ्जरी के सातवें, दसवें तथा चौदहवें पुष्प के रूप में तीन भागों में प्रकाशित हुई है। इसमें श्री स्वामी जी महाराज के उच्च, गंभीर आत्मा को उठाने वाले उपदेशों का संग्रह है। संग्रह कर्ता हैं श्री स्वामीजी के अनन्य भक्त ला० लब्भूराम जी नैय्यड़। प्रत्येक घर और पुस्तकालय में इस पुस्तक की एक कापी का रहना आवश्यक है। मूल्य प्रथम भाग १) द्वितीय भाग १) तृतीय भाग १॥)। प्रकाशक—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

भारत की सांस्कृतिक दिग्विजय—लेखक हरिदत्त वेदालङ्कार, प्रकाशक—सर्वोदय साहित्य संसद्, रीगल बिल्डिंग्स, नई दिल्ली। मूल्य ॥)

इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने प्राचीन काल में विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार की कथा बड़े रोचक और प्रामाणिक रूप में लिखी है। इस में भारत की उस अनुपम दिग्विजय का वर्णन है, जिससे वह प्राचीन काल में जगद्गुरु कहलाया था। लङ्का, बर्मा स्याम, मलाया, जावा, सुमात्रा, बालि बोर्नियो, अफगानिस्तान, मध्य एशिया, चीन, कोरिया, जापान, तिब्बत द्वारा भारतीय संस्कृति ग्रहण करने तथा तुर्की, मिश्र, मेसोपोटामिया ईसाइयत, इस्लाम और योरोप पर पड़े भारत के प्रभावों का इस में मनोरंजक विवरण है।

भारत से बाहर भारतीयों ने कम्बोडिया चम्पा (अनाम), जावा में जो राज्य स्थापित किये, अङ्कोरवत् जैसी जगत्प्रसिद्ध कृतियों का निर्माण किया, उनपर भी इसमें प्रकाश डाला गया है। बृहत्तर भारत जैसे विशाल विषय को संक्षेप में लिख कर सागर को गागर में भरा गया है। भारतीय संस्कृति के प्रत्येक प्रेमी को इस का अवश्य स्वाध्याय करना चाहिये।

भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस के प्रकाशन

भार्गव टेबल डायरी (१९४९)—२०×३० सोलह पेजी आकार, सजिल्द, मूल्य ३)। प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर अंग्रेज़ी की तिथि के साथ देसी संवत् की तिथियां और वार भी लिखे गये हैं। सर्वजन उपयोगी इस डायरी के लिए

हम श्री कैलाशनाथ भार्गव जी को बधाई देते हैं।

२००६ का पंचाङ्ग—इस की विशेषता यह है कि इस में जयहिंद सम्वत् भी दिया गया है जयहिंद सम्वत् के प्रवर्तक श्री कैलाशनाथ भार्गव ' अमर ' हैं। 'अमर' जी की सूझ की हम प्रशंसा करते हैं। इन दिनों हमारे देखने में जो पञ्चाङ्ग आये हैं उन में यह सर्व श्रेष्ठ और उपयोगी प्रतीत होता है मूल्य ||=

—रामेश बेदी.

सुलभ अंग्रेजी हिंदी शिक्षक लेखक–प्रो० आर. सी. पाठक बी० ए० एल० टी० । पृ० सं०२२६ मूल्य २||)

व्यवहार में काम आने योग्य अंग्रेजी सिखाने के लिये यह उत्तम पुस्तक है। इसमें प्रयत्न किया गया है कि विद्यार्थी का उच्चारण अधिक से अधिक शुद्ध हो। इसी लिये प्रायः प्रत्येक अंग्रेजी शब्द के साथ इसका उच्चारण नागरी लिपि में भी लिख दिया गया है। व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले अनेक सामान्य अंग्रेजी शब्द तथा उनके अर्थ भी साथ में दिये गये हैं। ग्रामर के मुख्य २ नियम तथा प्रचलित मुहाविरों का भी अच्छा संकलन किया गया है।

अनोखी दुनियां—लेखक– श्रीयुत व्यथित हृदय ।पृष्ठ संख्या ११६ । मूल्य १)

बच्चों को आश्चर्य जनक घटनायें पढ़ने एवं सुनाने में विशेष आनन्द आता है। वे इसके लिये सदैव उत्सुक रहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनकी उसी उत्सुकता को तृप्त करने का एक प्रयत्न है। इसमें बच्चों के लिये संसार की कुछ विचित्र बातों का उल्लेख किया गया है जो उनके लिये मनोरंजक होने के साथ-साथ शिक्षाप्रद एवं ज्ञानवर्धक भी हैं। यद्यपि पुस्तक के अन्दर वर्णित विषय युवकों एवं वृद्धों के लिये भी कम महत्व के नहीं और वे इससे अपना ज्ञानवर्धन कर सकते हैं परन्तु पुस्तक को लिखते हुए बच्चों का ही विशेष ध्यान रखा गया है। इसीलिये भाषा को अत्यन्त सुगम व सुबोध बनाया गया है। प्रत्येक बालक को इस पुस्तक का पाठ कराया जाना चाहिये। ——यश

गुरुकुल समाचार

ऋतु और स्वास्थ्य

शीतकाल अपने पूर्ण यौवन पर है। प्रातः सायं अच्छी ठंड पड़ रही है। पूर्व दिशा से आने वाली ठंडी हवा के झोंके वातावरण को और भी अधिक शीतल बना देते हैं। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम प्रकार का है। दैनिक व्यायाम और नियमित क्रीड़ाओं के कारण छोटे बड़े सभी ब्रह्मचारी खूब स्वस्थ और प्रसन्न-चित्त हैं। छुट्टी के दिन ब्रह्मचारियों का वनभ्रमण भी इन दिनों चालू रहा है। गुरुकुल-नगरी के चारों ओर गेहूँ चने आदि की खेतियां लह-लहा रही हैं। इन खेतियों के लिए इन दिनों शरत्कालीन वर्षा की विशेष आवश्यकता है। आकाश में बादल आ-आ कर रह जाते हैं। वर्षा की बड़ी प्रतिक्षा हो रही है। वर्षा का विलम्ब देखकर गुरुकुल की कुछ खेतियों में कुए के पानी द्वारा सिंचाई का काम प्रारम्भ कर दिया है। गंगा पार पुण्यभूमि की शात-पात की खेतियां इन दिनों खूब शाक-सब्ज़ी दे रही हैं।

श्रद्धानन्द बलिदान पर्व

प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी यह पर्व कुल-वासियों ने बड़े प्रेम और उत्साह के साथ मनाया। २३ दिसंबर को प्रातःकाल से ही श्रद्धानन्द-पथ पर जलूस (शोभायात्रा) की रौनक दृष्टिगोचर होने लगी। आठ बजते ही श्रद्धानन्द-द्वार पर

समस्त कुलवासी एकत्र हो गए। मंगल-वाद्यों के निर्घोष के साथ श्रेणी क्रम से जूलूस ने प्रयाण प्रारम्भ किया। आगे आगे गुरुजन प्रयाण कर रहे थे। बीच बीच में चौराहों पर कुलपिता और कुलमाता के गौरव-गीत गाए जारहे थे। समस्त कुलवासी कुलपताका की छाया में समवेत हुए। श्री० आचार्य जी ने कुलपताका फहराई और मांगलिक प्रवचन किया। उद्बोधन समाप्त होते ही समस्त कुलवासियों ने बड़ी शांति और गम्भीरता के साथ अपने व्रतों और संकल्पों का स्मरण किया और पताका गीत गाते हुए पुण्यश्लोक कुलपिता और कुलमाता के जयकार किए।

इसके अनन्तर वेदभवन में कुलपिता की पावनस्मृति में एक सार्वजनिक सभा आयोजित हुई। कुलवंदना के साथ सभा का श्रीगणेश हुआ। इस पुण्यपर्व के उपलक्ष्य में प्राप्त हुए भारत के अनेक लोक-नेताओं, और विद्वानों, शिक्षा तत्वज्ञों और साहित्यकारों के संदेश सुनाए गए। ब्रह्मचारियों और गुरुजनों ने प्रातर्वन्द्य स्वामी जी के तेजस्वी जीवन और बहुविध कार्यकलापों पर अनेक दृष्टियों से अपने विचार प्रकट करते हुए उनके प्रति अपनी अपनी भक्ति पुष्पांजलियां अर्पित कीं।

उसी दिन सायंकाल से श्री श्रद्धानन्द हॉकी टूर्नामैंट की क्रीड़ाएं बड़े उत्साह और उल्लास के साथ प्रारंभ हो गईं। सात दिन तक गुरुकुल का क्रीड़ाक्षेत्र खिलाड़ियों और प्रेक्षकों के आमोद और हर्षनाद से गूंजता रहा। देहरादून, हरिद्वार, रुड़की, मुजफ़र नगर, बिजनौर आदि स्थानों से आए हुए अनेक क्रीड़ादलों ने इस टूर्नामैंट में उत्साह पूर्वक भाग लिया। इस वर्ष के सान्मुख्यों में गुरुकुल के "ख" क्रीड़ादल का खेल बहुत ज़ोरदार और अच्छा रहा। और अन्त में अनेक मनोरंजक संघर्षों के पश्चात् 'ख" दल ही विजयोपहार प्राप्त करने में यशस्वी हुआ। अन्तिम निर्णायक - सान्मुख्य में 'ख" दल का मुकाबला गुरुकुल के "क" दल से था। इस प्रकार "ख" दल का खेल इस बार बड़ा प्रशंसनीय रहा। श्रद्धानन्द बलिदान सप्ताह के विविध समारम्भों की योजना और व्यवस्था में भाग लेने वाले सभी ब्रह्मचारी साधुवाद के पात्र हैं। विशेष रूप से क्रीडामंत्री ब्रह्मचारी भूदेव, कुलमंत्री ब्र० सुभाषचन्द्र, "क" दल के नायक ब्र० विपिन चन्द्र और "ख" दल के नायक ब्र० देवव्रत का उत्साह और कार्य कुशलता अभिनंदनीय है।

अध्ययन और परीक्षाएं

श्रद्धानन्द पर्व समाप्त होते ही पढ़ाइयां जोर शोर से प्रारम्भ हो गई हैं। छात्रगण और उपाध्याय स्वाध्याय और प्रवचन के कार्य में दत्तचित्त हैं। वार्षिक परीक्षाएं ४ मार्च से प्रारम्भ हो जायेंगी। इस वार गुरुकुल का वार्षिक महोत्सव अप्रैल के मध्य में ईस्टर की छुट्टि[illegible] में संपन्न होगा।

मान्य अतिथि

पिछले दिनों कुमाऊं और गढ़वाल के प्रसि[illegible] सार्वजनिक नेता और कार्यकर्त्ता श्री पण्डित हरगोविन्द जी पंत कुल में पधारे। आपने बड़ी अभिरुचि से गुरुकुल का अवलोकन किया। छात्रों की एक सभा में भाषण देते हुए आपने अपनी मानसरोवर- यात्रा का बड़ा दिलचस्प वर्णन सुनाते हुए बताया कि किस प्रकार तिब्बत के लोग महात्मा गांधी और भारतवर्ष के प्रति अतिशय प्रेम रखते हैं। श्री पंत जी पूज्य बापू की भस्म लेकर मानसरोवर आदि पर्वतीय तीर्थों में विसर्जित करने के लिए जाने वाले यात्री दल के प्रमुख कार्यवाहक थे।

बनारस हिंदु विश्वविद्यालय के कांच उद्योग विभाग के अध्यक्ष श्री रमाचरण जी ने गुरुकुल की कार्य प्रवृतियों को देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। आपने गुरुकुल की उच्चश्रेणियों में रसायन-शास्त्र की पढ़ाई के प्रकार को विशेष दिलचस्पी से देखा और पारिभाषिक शब्द निर्माण के लिए गुरुकुल द्वारा प्रकाशित विज्ञान की पुस्तकें अपने साथ ले गए।

इनके अतिरिक्त जयपुर कांग्रेस से लाटने वाले अनेक लोक सेवक, पत्रकार और विद्वान् महानुभाव विशेष रूप से गुरुकुल की यात्रा के लिए पधारते रहे हैं। जिनमें निम्नलिखित महानुभावों के नाम उल्लेखनीय है।—श्रीयुत जगजीवनदास मेहता (सौराष्ट्र के सुप्रसिद्ध लोकसेवक और बड़ौदा-राज्य के दीवान डाक्टर जीवराज महेता के ज्येष्ठ बन्धु)। श्रीयुत सी० वी० लक्ष्मीनारायण (जेनेवा स्विट्जर लैण्ड के इंडियन एसोसियशन के मंत्री तथा पत्रकार), अमृत-बाजार-पत्रिका के एक पर्यटक प्रतिनिधि।

स्वास्थ्य-समाचार। मार्गशीर्ष मास की रिपोर्ट

श्रेणी	नाम रोगी ब्रह्मचारी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा	परिणाम
१४	यशपाल	ज्वर	६ दिन	ठीक है
१३	धीरेन्द्र	व्रण	रोगी है	
१२	सोम्प्रकाश	ज्वर	८ दिन	ठीक है
११	जगन्नाथ	,,	३ दिन	,,
११	क्रान्तिकुमार	,,	४ दिन	,,
६	ईशकुमार	,,	३ दिन	,,
५	योगेश्वर	,,	७ दिन	,,
५	शिवप्रकाश	,,	४ दिन	,,
४	मूलशंकर	,,	४ दिन	,,
४	कृष्णकुमार	,,	२ दिन	,,
३	कल्याण	,,	४ दिन	,,
४	ओम्प्रकाश	,,	२ दिन	,,
३	बद्रीनारायण	नेत्र	८ दिन	,,
३	रमेश (काशी)	मोच	५ दिन	,,
३	नरेन्द्र	चोट	७ दिन	,,
३	घनश्याम	ममस	७ दिन	,,
३	नारायणदत्त	,,	७ दिन	,,
२	वलराज	ज्वर	६ दिन	,,
३	बुद्धदेव	चोट	१० दिन	,,
२	वेदप्रकाश	,,	७ दिन	,,

उपरोक्त ब्रह्मचारी मार्गशीर्ष में चिकित्सालय में रुग्ण रहे अब सब स्वस्थ हैं। चि० ब्रह्मचारी धीरेन्द्र को अभी ज़खम है। आशा है शीघ्र ठीक हो जावेगा।

सत्यपाल
चीफ़ मेडिकल ऑफ़िसर।

मुद्रक श्री — हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

बनारस हिंदु विश्वविद्यालय के कांच उद्योग विभाग के अध्यक्ष श्री रमाचरण जी ने गुरुकुल की कार्य प्रवृतियों को देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। आपने गुरुकुल की उच्चश्रेणियों में रसायन-शास्त्र की पढ़ाई के प्रकार को विशेष दिलचस्पी से देखा और पारिभाषिक शब्द निर्माण के लिए गुरुकुल द्वारा प्रकाशित विज्ञान की पुस्तकें अपने साथ ले गए।

इनके अतिरिक्त जयपुर कांग्रेस से लाटने वाले अनेक लोक सेवक, पत्रकार और विद्वान् महानुभाव विशेष रूप से गुरुकुल की यात्रा के लिए पधारते रहे हैं। जिनमें निम्नलिखित महानुभावों के नाम उल्लेखनीय है।—श्रीयुत जगजीवनदास मेहता (सौराष्ट्र के सुप्रसिद्ध लोकसेवक और बड़ौदा-राज्य के दीवान डाक्टर जीवराज महेता के ज्येष्ठ बन्धु)। श्रीयुत सी० वी० लक्ष्मीनारायण (जेनेवा स्विट्जरलैण्ड के इंडियन एसोसियशन के मंत्री तथा पत्रकार), अमृत-बाजार-पत्रिका के एक पर्यटक प्रतिनिधि।

स्वास्थ्य-समाचार। मार्गशीर्ष मास की रिपोर्ट

श्रेणी	नाम रोगी ब्रह्मचारी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा	परिणाम
१४	यशपाल	ज्वर	६ दिन	ठीक है
१३	धीरेन्द्र	व्रण	रोगी है	
१२	सोम्प्रकाश	ज्वर	८ दिन	ठीक है
११	जगन्नाथ	"	३ दिन	"
११	क्रान्तिकुमार	"	४ दिन	"
६	ईशकुमार	"	३ दिन	"
५	योगेश्वर	"	७ दिन	"
५	शिवप्रकाश	"	४ दिन	"
४	मूलशंकर	"	४ दिन	"
४	कृष्णकुमार	"	२ दिन	"
३	कल्याण	"	४ दिन	"
४	ओम्प्रकाश	"	२ दिन	"
३	बद्रीनारायण	नेत्र	८ दिन	"
३	रमेश (काशी)	मोच	५ दिन	"
३	नरेन्द्र	चोट	७ दिन	"
३	घनश्याम	ममस	७ दिन	"
३	नारायणदत्त	"	७ दिन	"
२	बलराज	ज्वर	६ दिन	"
३	बुद्धदेव	चोट	१० दिन	"
२	वेदप्रकाश	"	७ दिन	"

उपरोक्त ब्रह्मचारी मार्गशीर्ष में चिकित्सालय में रुग्ण रहे अब सब स्वस्थ हैं। चि० ब्रह्मचारी धीरेन्द्र को अभी जख्म है। आशा है शीघ्र ठीक हो जावेगा।

सत्यपाल
चीफ़ मेडिकल ऑफ़िसर।

मुद्रक श्री — हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक— मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।

गुरुकुल-पत्रिका

माघ २००५

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

वर्ष १ **गुरुकुल-पत्रिका** अङ्क ६

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव
विद्यावाचस्पति।
श्री रामेश वेदी
आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक एक प्रति

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

असिद्ध स्वप्न

जयचन्द्र विद्यालङ्कार

साथियों द्वारा नेता का त्याग

स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने संन्यास लेने से पहले एक लेख लिखा था—'मेरे कुछ असिद्ध स्वप्न'। वे तब महात्मा मुंशीराम कहलाते थे। हमारे देश में राष्ट्रीय शिक्षा के प्रवर्त्तक वही थे। वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने एक भारतीय भाषा द्वारा आधुनिक ज्ञान की ऊंची शिक्षा दिलाने की हिम्मत की थी उनकी आदर्शपरायणता, उनकी श्रद्धा, उनका हौसला, उनका त्याग और उनकी धुन अनूठी थी, और इन्हीं गुणों की बदौलत वे इस शताब्दी के शुरू में, जब कि भारतवासिओं में आत्म-विश्वास कहीं मुश्किल से दिखाई देता था, ज़माने की लहर के मुकाबले में खड़े होकर ऐसा परीक्षण कर सके थे। उनका यह विश्वास था कि हमारे राष्ट्र का भविष्य राष्ट्रीय शिक्षा के संघटित होने पर निर्भर है। पर उस विश्वास को लेकर वे जहां तक बढ़ना चाहते थे, उनके साथी उन्हें वहां तक जाने देने को तैयार न हुए। इसी से निराश होकर मुंशीराम जी ने गुरुकुल छोड़ा और संन्यास लिया। और उस समय उन्होंने वह लेख लिख कर बताया कि उनके कौन-कौन-से विचार और आदर्श असिद्ध रह गए।

महात्मा गांधी अपने असिद्ध विचारों के विषय में कोई लेख हमें नहीं दे गये। तो भी उनके वचनों और कर्म से यह प्रकट है कि उनके अनेक स्वप्न असिद्ध रह गए हैं। उनके जीवन के अन्तिम महीनों में यह बात बिलकुल खुल गई थी कि उन्हें अपने निकटतम संगियों और खास अनुयायी माने जाने वालों के बर्ताव से विशेष असन्तोष था। उन्हीं के हृदय-परिवर्तन के लिए गांधी जी ने अपना अन्तिम उपवास किया। और यह कहा गया कि गांधी जी अपने जीवन में जो न कर सके, अपनी शहादत से व कर गए, अर्थात् अपने मुख्य हमराहियों को अप[ने] रास्ते पर फेर लाए। समय बतायगा कि इस कथन में कितना सत्य है, अर्थात् इन लोगों का हृदय-परिवर्तन वस्तुतः कितना हुआ है। तो भी इससे इतना तो सिद्ध है कि गांधी जी के जीवन के अन्तिम दिन तक उनके खास साथी उनके मार्ग पर न चल रहे थे और कि स्वामी श्रद्धानन्द की तरह महात्मा गांधी के अनेक स्वप्न भी अपने साथियों के साथ छोड़ देने के कारण पूरे नहीं हो सके।

देशी भाषाओं के विकास का स्वामी श्रद्धानन्द जी का स्वप्न

गुरुकुल कांगड़ी में जब देशी भाषा द्वारा आधुनिक ज्ञान देने का [illegible]

कुछ ही समय में यह प्रकट हो गया कि ऊंची शिक्षा के लिए देशी भाषाओं को जो साहित्य चाहिए, वह अंग्रेजी के निरे अनुवादों से नहीं बन सकता। विश्व के आधुनिक ज्ञान का भारत के पुराने ज्ञान के साथ समन्वय करना होगा और उसके लिए भारत के पहले दर्जे के दिमाग़ों को उच्चतम आधुनिक ज्ञान पाने के साथ-साथ भारत की परिस्थिति और इतिहास का बारीकी से अध्ययन करना होगा। यह भी प्रकट था कि ऐसे ही व्यक्ति इस काम को निभा सकेंगे, जिनमें ऊंचे दर्जे की प्रतिभा के साथ-साथ सच्ची लगन, आदर्शपरायणता और देशभक्ति होगी और जो इस कार्य को अपने जीवन का व्रत बना लेंगे। ऐसे व्यक्तियों के लिए कुछ सुविधाएं उपस्थित करना आवश्यक था और यह समूचा कार्य एक आयोजित चेष्टा के रूप में ही हो सकता था। महात्मा मुंशीराम इस चेष्टा के लिए अपने को पूरा तैयार कर चुके थे और इसके लिए वे गुरुकुल के शासन में कुछ परिवर्तन कराना चाहते थे। गुरुकुल के कर्ता-धर्ता वही थे, पर जाब्ते से उसका संचालन आर्यसमाज की पंजाब-प्रांतीय सभा करती थी। आर्यसमाज के उनके साथियों ने इस मामले में उनका साथ न दिया। वे उन परिवर्तनों की आवश्यकता ही न देख सके। यों मुंशीराम जी को निराश होना पड़ा।

महात्मा मुंशीराम का कोई विरला ही शिष्य होगा, जिस पर उनके जीवन, आदर्शों और विचारों की छाप न पड़ी हो। पिछले तीस बरस के अपने जीवन पर मैं आज निगाह डालता हूँ, तो स्पष्ट दिखाई देता है कि राष्ट्रीय शिक्षा और राष्ट्रीय साहित्य-निर्माण के उनके विचारों से मैं इतना प्रभावित हुआ था कि वे मेरे जीवन की मुख्य प्रेरणा बने रहे हैं और ऐसी प्रेरणा कि जिसे जितना संघर्ष करना पड़ा है, उतनी ही पैनी होती गई है। १९१९ में ही मैंने 'भारतवर्ष में जातीय शिक्षा' शीर्षक एक निबन्ध प्रकाशित किया था। राष्ट्रीय साहित्य-निर्माण की आयोजित चेष्टा का विचार उसमें स्पष्ट रूप से है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उसकी आलोचना में लिखा—'इस पुस्तक के लेखक ने उस विषय पर विचार किया है, जिस पर राष्ट्र का भविष्य निर्भर है।' इन शब्दों से प्रकट था कि संन्यास ले लेने के बाद भी अपने जीवन के मुख्य कार्य में उनकी रुचि कुछ कम न हुई थी। गुरुकुल में उनका स्वप्न असिद्ध रह जाने का कारण हमने यह माना था कि उसका संचालन एक आर्यप्रतिनिधि सभा के हाथ में था, जो राष्ट्रीय शिक्षा के आदर्श की राह पर और आगे बढ़ने को तैयार न थी।

असहयोग आन्दोलन के राष्ट्रीय विद्यापीठ

महात्मा गांधी ने जब असहयोग-आन्दोलन में राष्ट्रीय शिक्षा को मुख्य स्थान दिया और अनेक प्रांतों में राष्ट्रीय विद्यापीठ खोले, तब हम लोग फूले न समाए। हमने समझा, उस असिद्ध स्वप्न के सिद्ध होने का समय आ गया है। मैं एकदम इस नई लहर में कूद पड़ा। लेकिन सन् १९२१ में गुजरात-विद्यापीठ में रहते हुए ही मुझे इन नए शिक्षणालयों के नेताओं की सचाई में सन्देह होने लगा। तभी मैंने एक लेख में लिखा—'हमें रह-रहकर शंका होती है कि क्या नेताओं के इस रुख़ का उद्देश्य राष्ट्रीय शिक्षा के वास्तविक महत्व को समझ कर उसे अपना साध्य बना लेना है या केवल उसे अपने तरकश का एक तीर बना कर दूसरे-दूसरे मतलबों को पूरा करना है। ...राजनीतिक कारणों से जिन विद्यार्थियों से सरकारी स्कूल-कालेज छुड़वाना है, उनकी शिक्षा जारी रखने के बहाने करने के लिए ... राष्ट्रीय

शिक्षा का तमाशा रचना उचित नहीं है ।"

('प्रभा', सितम्बर, १९२१)

मैं अकेला ही वह बेवकूफ नहीं था, जो अपने राजनीतिक नेताओं से उचित से अधिक आस लगाकर पीछे निराश हुआ । रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने असहयोग-आन्दोलन के शुरु में अपने एक प्रसिद्ध लेख में कांग्रेसी नेताओं को ब्रिटिश सरकार के मुकाबले की सरकार खड़ी करने की सलाह दी थी । उस जमाने में मुकाबले की सरकार अपनी फ़ौज या अपने हाकिम खड़े करे, यह कोई सोच नहीं सकता था; पर अपनी शिक्षा-संस्थाएं वह चलावे, यही अभिप्राय कवीन्द्र का था । लेकिन कुछ मास बाद कांग्रेसी नेताओं का रंग-ढंग देख कर उन्हें शिक्षणालयों से असहयोग का खुला विरोध करना पड़ा था ।

अनेक निराशाओं के बावजूद भी मैं इस लहर में पड़ा रहा । दस बरस तक मैंने चार राष्ट्रीय विद्यापीठों में रहकर उनके जीवन को भीतर से अच्छी तरह देखा-समझा । गुरुकुल कांगड़ी के कार्य से आगे बढना तो दूर, राष्ट्रीय शिक्षा के परीक्षण में वे कभी वहां तक भी नहीं पहुँचे, जहां गुरुकुल १९१३-१४ में पहुँच चुका था । इसके अलावा जो अस्थिरचित्तता, जो संशयात्मता, जो ग़ैरज़िम्मेदारी, जो राष्ट्र की ज़रूरतों को समझने की अयोग्यता इनके संस्थापकों-संचालकों ने दिखाई, वह लाजवाब थ । जिस हल्ले के साथ राष्ट्रीय विद्यापीठ खोले गए और फिर जिस हलकेपन से उन्हें मँझधार में डूबने दिया गया, वह किसी भी मनुष्य के लिए शर्मिन्दा होने की बात थी ! क्या मनुष्य अपने वादों को इस तरह निभाया करते हैं ?

धर्म के लिए अपूर्व उत्सर्ग

स्वामी जी ने जीवन व चरित्र सम्बन्धी उच्च हिन्दू आदर्श की रक्षा के लिए अपना बलिदान किया जिसका महत्व हम आज स्वतन्त्र भारत में पग-पग पर अनुभव कर रहे हैं।

जब हिन्दुत्व महान् संकट में था, जब उसके चारों ओर वे शक्तियां मंडरा रही थीं जिनसे हमारी सत्ता भी सन्देह में पड़ गई थी, ऐसे समय में हिन्दुत्व के लिए स्वामी जी का वह अपूर्व प्राणोत्सर्ग हमारे लिए सदा प्रेरणा का केन्द्र बना रहेगा। भारतवर्ष में ब्रिटिश शासनकाल में हिन्दुत्व की रक्षा के लिए स्वामी जी का वह बलिदान अतुलनीय है।

पी. के. गोडे

अध्यक्ष,

भण्डारकर ओरीएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना।

राष्ट्रनिर्माण का प्रतीक

स्वामी जी ने अपने प्राण-दान द्वारा बताया कि वह आदर्श का स्वप्न झूठा है जो वास्तविकता का रूप नहीं लेता। उन्होंने मर कर जीवननिष्ठ की पूजा में अमर होना सिखाया। मैं उस समय बहुत छोटा था। लखनऊ में था। दिसम्बर की वह शाम आज भी नहीं भूलती, जब उनकी हत्या का संवाद लखनऊ में पहुँचा था। लगता था जैसे आकाश से आग बरसने लगेगी। इस अवसर पर मैं उस अमर शहीद की प्रेरणा दायिनी स्मृति को अपनी श्रद्धाञ्जलि प्रदान करता हूँ। राष्ट्र निर्माण के प्रतीक अपने इन शहीदों का हम जितना सम्मान करें थोड़ा है। युग–युगों तक उनके वन्दन में हमारे सिर नत होंगे और आत्मा अपना खोया प्रकाश पायेगी। – अञ्चल—

मनोविज्ञान का दोषयुक्त दृष्टि कोण

स्वामी कृष्णानन्द

संसार में जहां विज्ञान ने अनेक भौतिक आविष्कार कर सुख समृद्धि के विपुल साधन उपस्थित किये वहां इनके द्वारा अपने क्षेत्र के बाहर आक्रमण कर न्याय, युक्ति तथा निज सीमा का उल्लंघन किया है। जगत की अपार हानि भी की है। इस वैज्ञानिक अनधिकार के कारण ही मनुष्य पशु बन गया और इस ने मनुष्य को मट्टी आदि पञ्चभूत ही बना दिया। बन्दर को मनुष्य का पिता और मछली आदि पशुओं को मनुष्य का गुरु बना दिया। वह भी मात्स्य न्याय को मानने लगा। जिस प्रकार धार्मिक अंध-विश्वास ने वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रवेश करके संसार का अकल्याण किया है इसी प्रकार वैज्ञानिक अंध-विश्वास ने भी अपने क्षेत्र को छोड़ कर धार्मिक क्षेत्र में प्रवेश कर जगत् की कुछ कम क्षति नहीं की। जो मनुष्य वास्तव में प्रकृति तथा स्वभाव का स्वामी था उसे प्रकृति तथा पशु भाव का दास बना दिया। यही है आज कल की उन्नति, विकास, शिक्षा, सभ्यता जिसका हम अभिमान करते हैं और जिसकी प्रशंसा करते हम थकते नहीं। परन्तु वह भ्रान्ति, पागलपन और पतन ही क्या हुआ जिस में भ्रान्त मनुष्य अपनी भ्रान्ति को भ्रान्ति समझ ले। क्या वह मनुष्य पागल हो सकता है जो अपने आप को पागल समझ ले। पागल अपने आप को कभी पागल नहीं समझता। इन संपूर्ण स्थितियों तथा धारणाओं पर हमें लजा आनी चाहिए थी। परन्तु भ्रान्ति इतनी प्रबल है कि हमने वर्तमान काल को ही शुद्ध माप मान लिया है तथा कहते हैं कि ऐसी उन्नति पूर्व काल में कभी नहीं हुई और पूर्व की [illegible] तथा [illegible] थीं। ठीक भी है; जब हमने शिक्षा, सभ्यता की परिभाषा ही ऐसी भ्रान्त कर दी फिर भूल परंपरा की क्या कमी रह सकती है। माना कि वैज्ञानिक क्षेत्र में अपूर्व विकास हुआ है। परन्तु इस का परिणाम क्या हुआ? जैसे हमने पहले भी कहा है कि वैज्ञानिक आविष्कारों ने भौतिक सुख-स्मृद्धि के साधन मात्र उत्पन्न किये; इन का वास्तविक फल तो इन के सदुपयोग या दुरुपयोग में ही निहित है। तलवार से चाहे तो अपना तथा अपने संबंधियों के सिर काटे जावें अथवा चोर शत्रु से रक्षा की जावे। इन साधनों का सदुपयोग तो मानवीय शुद्ध भावों पर आश्रित था। परन्तु जब हमने पशु स्वभावों को ही मुख्य, मूल और प्राकृतिक मान लिया और दिव्य भावों को गौण, कार्य तथा विकार माना तो इस के अतिरिक्त और किस परिणाम की आशा हो सकती थी; विचित्र उन्नति, विचित्र-शिक्षा और विचित्र सभ्यता। मनुष्य समाज पर हमने पशुपन के प्रभुत्व और साम्राज्य का स्थापन किया। हमारी इस भूल ने संसार की संपूर्ण मर्यादा को अस्त व्यस्त कर दिया, हमने दिन को रात और रात को दिन; उन्नति को पतन तथा पतन को उन्नति मान लिया।

विकार अपने आप में कभी भी आदरणीय, उपादेय लक्ष्य नहीं बन सकता। आदरणीय, उपादेय, महत्व पूर्ण तो मूल वस्तु ही होती है, जिसका कि विकार एक विकृत रूप होता है। सुन्दर, रसपूर्ण, सेब ही मूल वस्तु होने से उपादेय होता है। विकृत, गला सड़ा दुर्गन्धयुक्त कृमियुक्त सेब तो हेय ही है। प्रकृति ही सहज स्वभाव होने से स्थिर रह सकती है, उसकी प्राप्ति से कुछ स्थायी वस्तु प्राप्त हो सकती है। विकार तो स्थिर नहीं

रह सकता। यदि उसे ही उपादेय बना दिया जावे तब तो मनुष्य की इष्ट सिद्धि कभी हो नहीं सकती, क्योंकि सिद्ध होने पर भी पुनः उसका छिन जाना स्वाभाविक है। विकार कभी उपादेय सिद्ध नहीं हो सकता। इसी लिए इस भ्रान्त विचार का यह परिणाम होना स्वाभाविक था। हमने पशु व्यवहार को ही मुख्य बना दिया। इसी का साम्राज्य संसार भर पर हो रहा है। परन्तु यह कितनी भयंकर भूल है कि विकृत गले, सड़े सेब को मूल, मुख्य माना जावे और सुन्दर सुगंधित को विकार। परन्तु यदि कहीं किसी स्थान में गला सड़ा सेब ही अधिक मात्रा में मिलता हो तो क्या यह कल्पना करना उचित होगा कि सेब का वास्तविक स्वरूप यही है और सुन्दर सेब उसका विकार है। यह तो बहु-पक्ष का दुरुपयोग मात्र है बहु पक्ष का यही परिणाम ला सकता है। केवल गिनती के बाहुल्य से किसी पदार्थ के स्वभाव का निर्णय नहीं हो सकता। स्वभाव, धर्म तो किसी पदार्थ का जीवन होता है। स्वभाव को छोड़ देने से ही उस पदार्थ का नाश, मृत्यु हो जाती है। प्राणी मात्र अपने स्वभाव के अनुसार ही सुख समृद्धि प्राप्त कर सकता है; स्वभाव या धर्म को छोड़ कर दुःख मृत्यु का भागी होता है। अतः गिनती या सर्व साधारण धर्म के आधार पर स्वभाव का निर्णय नहीं हो सकता। जीवन, सुख, समृद्धि के आधार पर ही स्वभाव का निर्णय होना चाहिए।

परन्तु हमने नवीन वैज्ञानिक ज्ञान तथा इस के वर्तमान मूल सिद्धान्त विकास वाद के आधार पर मनुष्य के संबंध में ऐसी ही भूल की है। विकास वाद को तो किसी न किसी रूप में मानना ही पड़ता है। सभी दार्शनिक इस को किसी न किसी रूप में मानते ही आए हैं। परन्तु डार्विन का इवोल्यूशन-विकास वाद-का सिद्धान्त कई महान् त्रुटियों से पूर्ण है। एक का वर्णन हम ऊपर कर आए हैं, जिस के आधार पर हमने पशु स्वभाव को मूल, स्वतंत्र, निरपेक्ष और दैवीस्वभाव को पशु स्वभाव का विकार मान लिया। यह भ्रान्ति ही वर्तमान संसार में पशु-स्वभाव के साम्राज्य का कारण हुई। जिस की लाठी उस की भैंस, यह मात्स्य न्याय है। कर्तव्य की उपेक्षा और अधिकारार्थ युद्ध आदि को ही श्रेष्ठ जीवन-नीति माना जाने लगा। प्रेम, दिव्य आत्म-ज्ञान, मनुष्य अथवा प्राणि-मात्र में एक अथवा समान चेतन सत्ता का निवास, इसके आधार पर सब प्राणियों से अपने समान दिव्य प्रेम तथा प्राणिमात्र की सेवा आदि दिव्य स्वभावों को हमने पाशविक स्वभावों का विकार, उन का कार्य, तथा परिवर्तित रूप मात्र समझ लिया और देह मात्र में आत्म बुद्धि के आधार पर देह अथवा (जाति, देश तथा सम्प्रदाय आदि) को ही अपना जीवन; देह केसुख उपभोग को ही अपना इष्ट मानकर संकुचित देह आदि में मोह तथा देह आदि के लिए अन्य संपूर्ण जगत् चराचर को निज सुख सामग्री का साधन मान कर उनके धन, जन और प्राण तक के अपहरण को ही मनुष्य का मूल, मुख, स्वतंत्र, निरपेक्ष स्वभाव मान लिया, फिर अवनति में क्या कमी रह सकती थी। स्वभाव से किसी को क्या लज्जा, भय, संकोच हो सकता है। स्वभाव को कहां तक कोई अन्यथा कर सकता है। अग्नि के ठण्डा करने का प्रयास कौन बुद्धिमान् कर सकता है। यदि करे भी तो इस में सिद्धि कैसे हो सकती है?

भौतिक विज्ञान ने पहिले तो केवल विज्ञान के द्वारा ही पृथ्वी पर स्वर्ग ले आने के प्रलोभन में आध्यात्मिक भावों से विमुख कर मनुष्य के दिव्य स्वभाव को विकृत कर दिया; फिर इस विकृत स्वभाव के अन्वेषण द्वारा सब भावों पर

कामादि पाशविक भावों का प्राबल्य पाकर इन्हें ही मनुष्य का स्वभाव कह दिया। इस में कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य में पाशविक भाव पर्याप्त बलवान होते हैं; परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि मनुष्य पशु ही है और इस में देव भाव हैं ही नहीं। मनुष्य में देव तथा असुरभाव (पशुभाव) दोनों ही सर्वदा विद्यमान होते हैं; दोनों में घोर संग्राम होता है; दिव्य स्वभावों की विद्यमानता से ही मनुष्य का मनुष्यत्त्व है; पशु से यही इस में विशेषता है।

दिव्य स्वभाव को ही सहज, प्राकृतिक और स्वाभाविक मानने में संसार का श्रेय है; क्योंकि यदि दिव्य स्वभाव को सहज न माना जावेगा तो अन्ततः इसके विजय पाने की कोई संभावना न रहेगी। क्योंकि स्वभाव ही स्थिर वस्तु होता है; वह बाह्य प्रभाव से कुछ समय के लिए दब सकता है। जैसे श्वेत वस्त्र पर रंग चढ़ा दिया जाये तो स्वाभाविक श्वेत रंग दब जाता है, परन्तु समय पाकर उपयुक्त प्रयोग द्वारा वह बाह्य प्रभाव दूर हो सकता है; और स्वाभाविक श्वेत रंग पुनः प्रकट हो जाता है। वह कहीं चला नहीं जाता। केवल बाह्य प्रभाव से दब जाता है। इसका नाश तो पदार्थ के नाश से ही हो सकता है। यह स्वभाव ही पदार्थ का जीवन या जीवन का हेतु है। स्वभाव का नाश मृत्यु है। मनुष्य का स्वभाव दिव्य है जो स्वतंत्र और निरपेक्ष है। पाशविक स्वभाव विकार है जो उसके दिव्य स्वभाव को दबा लेता है; परन्तु उचित साधन के प्रयोग से, पुरुषार्थ करने से पुनः दबा हुआ स्वभाव व्यक्त हो जाता है। यह आध्यात्मिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि कोण है। दृष्टान्त के रूप में शरीर को लिया जावे। शरीर का स्वस्थ रहना (स्वास्थ्य) स्वभाव है; रोग विकार है—ऐसा स्वास्थ्य-विज्ञान मानता है न कि रोग स्वभाव है और स्वास्थ्य विकार। यदि रोग ही स्वभाव होता तो स्वास्थ्य का होना असंभव हो जाता। रोग जो नाश का हेतु है वह जीवन, जन्म तथा स्थिरता का हेतु कदापि नहीं हो सकता। स्वास्थ्य रोग के प्रभाव से दब जाता है कहीं चला नहीं जाता, पुनः प्रकट होता है। यदि पूर्णतः चला ही गया हो तो ऐसी (दशा में) कोई भी औषधी आदि उपाय उसे पुनः वापस नहीं कर सकते। ऐसे ही आध्यात्मिक क्षेत्र में मन के ये स्वाभाविक गुण दिव्य हैं। ज्ञान, प्रेम, सेवा, सत्य, सन्तोष प्रयत्न आदि, और अज्ञान, द्वेष, पर हानि, असत्य, असन्तोष, प्रमाद, आदि इन के ही विकार हैं। ज्ञानादि किसी हेतु संगादि से दब जाते हैं पुनः उपयुक्त उपाय सत्संगादि से इस बाधा को दूर कर दिया जाता है तो पुनः वे दिव्य स्वभाव अपने शुद्ध उज्वल स्वरूप में प्रकाशित होते हैं। जैसे बच्चे का स्वभाव सत्य बोलना ही होता है। कई बार ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे को उसके घर पर मिलने के लिए जाता है और वह व्यक्ति उसे मिलना नहीं चाहता तो वह अपने बच्चों को कहता है कि कह दो कि पिता जी घर पर नहीं हैं। तो वह बच्चा ऐसे ही कहता है कि पिता जी कहते हैं कि वे घर पर नहीं हैं। इस से ही ज्ञात होता है कि अभी उस पर कुसंग, और कुशिक्षा का प्रभाव नहीं हुआ और झूठ ने उस के सत्य स्वभाव को दबा नहीं दिया है।

लेखकों से

१. लेख पत्रिका के तीन पृष्ठ से बड़े न हों।
२. कागज के एक ओर पूरे पूरे पंक्तियों में हाशिया छोड़ कर स्पष्ट लिखा जाय। टाइप की हुई पाण्डुलिपि हो तो अच्छा है।
३. अस्वीकृत रचनाएं समुचित डाक व्यय प्राप्त होने पर ही लौटाई जाती हैं।

सम्पादक, गुरुकुल-पत्रिका

स्वामी श्रद्धानन्द जी की विचारधारा के दृष्टि बिन्दु

धर्मदेव वेदवाचस्पति

राज्यस्य मूलं धर्मः । धर्मस्य मूलमिन्द्रियजयः
—चाणक्य ।

महापुरुषों का जीवन कुछ विशेष आदर्शों या विचारधाराओं को लेकर प्रारम्भ होता है। इसी में उनके जीवन का सारा महत्व निहित है। उस आदर्श के अनुसार जहां वे अपने जीवन का निर्माण करते हैं, वहां जन साधारण के स्तर को भी ऊंचा उठाते हैं और नवयुग-निर्माता कहलाते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन को हम लाला मुंशीराम, महात्मा मुंशीराम तथा स्वामी श्रद्धानन्द इन तीन रूपों में देख सकते हैं। आपका प्रारम्भिक जीवन एक सामान्य शहरी जीवन था, जो स्वामी दयानन्द सरस्वती के एक स्फुलिंग से प्रज्वलित होकर अगले रूपों में परिणत हुआ। वस्तुतः ऋषि की भावनाओं को आत्मसात् करके उन्हें क्रिया में परिणत करते हुए आपने राष्ट्र निर्माण में अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पण कर दिया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा राजा राममोहन राय आदि महापुरुषों ने उत्तर तथा पूर्व भारत में हिंदूजाति में प्राचीन भारतीय संस्कृति, साहित्य तथा धर्म के प्रति गौरव की भावना को जागृत किया। देश की मृत प्राय स्नायुओं में नव जीवन का संचार किया। आत्मसम्मान, चिन्तन शक्ति तथा संस्कृति प्रेम को जन्म दिया। जिस से आत्मविस्मृत हिंदू समाज चैतन्य हुआ। इसलामी, ईसाइयत तथा पाश्चात्य सभ्यता में दीक्षित होने का प्रवाह रुक गया और देश के बच्चों को पाश्चात्य सभ्यता के दूषित प्रभाव से उन्मुक्त करके भारतीय संस्कृति के सांचे में दीक्षित करने की भावना जागृत हुई, जिस के परिणाम स्वरूप क्रमशः स्वामी श्रद्धानन्द, महामना मदनमोहन मालवीय तथा श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने अपनी २ प्रकृति तथा दृष्टि के अनुसार गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी, हिन्दु यूनिवर्सिटी बनारस तथा शान्ति निकेतन की स्थापना की। तीनों महापुरुषों ने सरकारी शिक्षा प्रणाली में भारतीय संस्कृति तथा धार्मिक वातावरण का अभाव अनुभव किया और अपने लेखों व भाषणों द्वारा उस का विरोध किया। इस लिए इन तीनों संस्थाओं में थोड़ा बहुत उस अभाव को पूर्ण करने का प्रयत्न किया गया। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में ये संस्थाएं कांग्रेस के आन्दोलन से अछूति रहीं। इसका एक कारण जहां उस समय कांग्रेस के कार्य क्षेत्र का अत्यन्त सीमित होना था, वहां दूसरी तरफ़ इन संस्थाओं के संस्थापकों का भारतीय संस्कृति से सर्वथा शून्य कांग्रेस की विचार-धारा अपील भी नहीं करती थी। उन महापुरुषों ने इस बात को अनुभव कर लिया था कि राज्यस्य मूलं धर्म। किसी राष्ट्र की जड़ या आत्मा उसकी अपनी संस्कृति, सभ्यता व धर्म है! केवल कुछ लोगों के व्यक्तिगत या सामूहिक आर्थिक लाभ होजाने से राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता। राष्ट्र की आत्मा उसकी प्राचीन परम्परागत संस्कृति में तथा जीवन सम्बन्धी मूल तत्त्वों में अनुस्यूत है। अपने देश के धर्म एवं संस्कृति का परित्याग करके, किसी दूसरे देश या शासक वर्ग की परम्पराओं की नींव पर राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता। श्रीयुत गोखले तथा महात्मा गांधी जी के प्रोग्राम में इन महापुरुषों ने औचित्य तथा देश का हित अनुभव किया और सदा इसका समर्थन किया।

भारतीय संस्कृति के आधार पर देश का निर्माण करना तथा उसे स्वतन्त्र करने की सामान्य भावना के अतिरिक्त एक दूसरी तीव्र भावना भी स्वामी जी के हृदय में कार्य कर रही थी, जिसकी मूल प्रेरणा उन्हें ऋषि दयानन्द सरस्वती से प्राप्त हुई और जिसकी पूर्ति के लिए उन्होंने प्रचार के साथ-साथ गुरुकुल शिक्षा पद्धति का क्रियात्मक प्रोग्राम भी देश के सन्मुख रखा। उनका दृढ़ विश्वास था—धर्मस्य मूलं इन्द्रिय जयः। अर्थात् किसी देश के धर्म व संस्कृति की रक्षा केवल सिद्धान्त-वाद या साहित्य के अध्ययन पर नहीं; प्रत्युत उस देश के निवासियों के चरित्र बल पर आश्रित है, संयमी एवं कठोर जीवन पर अवलम्बित है। किसी देश का राजनैतिक व सांस्कृतिक विस्तार वहां के राजाओं की सामरिक विजयों या ब्राह्मणों के ग्रन्थों से नहीं हुआ, परन्तु उसकी दृढ़ नींव वही है उस देश के निवासियों के चरित्र बल पर। इसी लिए उन्होंने आर्यसमाज में भी इसी विचार-धारा को जन्म देकर उस के संरक्षण में गुरुकुल की स्थापना की और ब्रह्मचर्य तथा आश्रम प्रणाली को उस शिक्षा का केन्द्र बनाया। यही भावना शिक्षा - जगत् में परिवर्तन की मूल स्रोत रही।

परन्तु चारित्रिक बल के होते हुए भी यदि हम अपने उद्देश्य—भारतीय संस्कृति के आधार पर देश निर्माण—की पूर्ति एक होकर प्रयत्न न कर सकें, संगठित न हो सकें. छिन्न भिन्न रहें तो हमारा राष्ट्र नहीं बन सकता। किसी पदार्थ के अवयवों की भांति राष्ट्र की इकाइयों में संसक्ति बल—पारस्परिक बन्धुत्व की भावना होनी चाहिए। क्योंकि सामूहिक इच्छा व प्रयत्न ही राष्ट्र निर्माण के आधार हैं। वर्ण भेद, जात-पांत आदि के मज्जागत संस्कारों ने हिन्दू जाति को पृथक् २ दलबन्दियों में विभक्त कर रखा था। अस्पृश्यता की भावना हिन्दू जाति की एकता में बाधक थ तथा राजनैतिक शक्ति को क्षीण कर रही थी। हिन्दू जाति का सामाजिक जीवन लुप्त प्राय एवं अर्थ शून्य हो गया था। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सर्व प्रथम पंजाब के आर्यसामाजिक क्षेत्र में अपने विचारों को मूर्त-रूप दिया। डोम, मेघ आदि नीच जातियों को अपने में मिलाया। बाद में राजनैतिक रंग मंच पर आकर भी इन्होंने इन्हीं प्रोग्रामों को चलाने की प्रेरणा की। अमृतसर कांग्रेस में स्वागता-ध्यक्ष के पद से दिये गए अपने भाषण में आपने मुख्य रूप से राष्ट्रीय शिक्षा ब्रह्मचर्य तथा अछूतोद्धार के प्रोग्राम को देश के सन्मुख रखा। परन्तु उस समय देश के नेताओं ने आर्यसमाजी प्रोग्राम कह कर इस की खिल्ली उड़ाई। इस के बाद हिन्दु महासभा को भी सरकारी नौकरियों में हिन्दुओं की सीटें सुरक्षित करवाने की अपेक्षा उक्त प्रोग्राम को अपने हाथ में लेकर सांस्कृतिक उत्थान करने को कहा। वहां से भी निराश होने पर उन्होंने स्वयं स्वतन्त्र रूप से बन्धुत्व तथा समानता का आन्दोलन प्रारम्भ किया, जो शुद्धि व संगठन के नाम शीघ्र ही सम्पूर्ण भारत में फैल गया। स्वामी जी के कुछ पुराने सहयोगियों ने स्वामी जी के आर्यसमाज के क्षेत्र से बाहर जाकर भिन्न २ संस्थाओं में प्रविष्ट होने को कीर्ति-लिप्सा तथा अस्थिर मनोवृत्ति नाम दिया और कांग्रेस के कुछ नेताओं ने उन के विचारों को दकियानूसी तथा मुसलिम विरोधी साम्प्रदायिकता नाम देकर उन की निन्दा की। परन्तु बाद में ब्रिटिश सरकार की हिन्दू जाति को छोटे २ टुकड़ों में विभक्त करने की प्रच्छन्न नीति के प्रकट होने पर उन्हें स्वामी जी की चेतावनी

सत्यता दिखाई दी । महामना मदनमोहन मालवीय जी तथा महात्मा गांधी जी ने अस्पृश्यता निवारण एवं हरिजनोद्धार के प्रोग्राम को अपनाया । शुद्धि व संगठन के आन्दोलन को चलाने में साम्प्रदायिक भावना स्वामी जी के हृदय में कभी नहीं रही यह उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भली भांति जानते हैं । उन्होंने सदा इसलाम आदि धर्मों तथा उन के प्रतिष्ठित सज्जनों का आदर किया । परन्तु वे ऐसे तत्वों को सदा देशद्रोही समझते रहे हैं, जो ब्रिटिश राजनीति की प्रेरणा से इस देश की संस्कृति को नष्ट करके सवर्णों के अत्याचारों से पीड़ित निश्चवर्ग को प्रलोभन देकर अपना राजनैतिक बल प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश जूए को मजबूत बनाना चाहते थे । उनके विरुद्ध वे सदा राष्ट्र को चेतावनी देते रहे और उन तत्वों को असफल करने में स्वयं प्रयत्न शील रहे । अब देश के विभाजन के परिणामों को देख कर हम स्वामी श्रद्धानन्द जी के विचारों के महत्व को समझ सकते हैं और उनसे प्रबल प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं । संक्षेप में वे तीन मन्त्र निम्न हैं—

(१) भारतीय संस्कृति के आधार पर देश का निर्माण किया जाए ।

(२) प्रत्येक नागरिक का जीवन संयमी व कठोर तपस्यामय हो ।

(३) जन्मगत वर्णभेद, जाति - पाति तथा छूआछूत आदि विषमताओं को दूर करके समानता तथा बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत हमारा सामाजिक जीवन हो ।

यही स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन का सन्देश है । इन्हीं विचारों का आपने अपने जीवन काल में आर्यसमाज, हिन्दु-महासभा तथा कांग्रेस के रंगमंच पर प्रचार किया । आज भी उक्त तीनों संस्थाएं इन विचारों के आधार पर पारस्परिक सहयोग से सबल, स्वस्थ तथा सुन्दर राष्ट्र का निर्माण कर सकती हैं ।

आर्य समाज का भावी कार्य क्रम— जाति पांति को मिटाना

धर्मदेव शास्त्री

आर्यसमाज मुख्यतया समाज सुधारक संस्था है, आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती युग प्रवर्तक महापुरुष थे, उन्होंने देखा कि भारत के अधःपतन का मूल कारण सामाजिक पाखंड और भ्रमपूर्ण धारणा है, इसलिए उन्होंने निर्भयता के साथ पाखंड खंडिनी पताका को लेकर सामाजिक बुराइयों की कड़ी और कटु आलोचना की, इसी का परिणाम है कि आज हमारा देश बहुत कुछ आगे बढ़ा है । भारत की स्वतंत्रता का अन्तिम अध्याय यदि पूज्य महात्मा गांधी ने लिखा है तो इसका प्रथम अध्याय महर्षि दयानन्द का ही लिखा हुआ है, ऋषि दयानन्द ने समाज सुधार का जो कार्यक्रम देश के सन्मुख रखा उसे ही राष्ट्र के नेताओं ने क्रियात्मक रूप दिया, जिससे आज राजनीतिक स्वतंत्रता हमें मिली है । महर्षि दयानन्द के अधूरे कार्य का पूरा करने वाले महान पुरुषों में पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी प्रमुख हैं, स्वामी जी का जीवन सच्चे कर्मयोगी का आदर्श उपस्थित करता है, भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रति स्वामी जी की जो श्रद्धा थी उसे आज भी देशवासी गुरुकुल कांगड़ी के रूप में देख रहे हैं, गुरुकुल ने भारतीयता के [illegible]

स्तुत्य कार्य किया है वह सुविदित है।

स्वामी जी को सत्य पर अमिट आस्था अपने गुरु ऋषि दयानन्द से मिली थी और इसी पर स्वामी जी अपने गुरु के ही समान बलिदान हुए। जिस दिल्ली में स्वामी जी को गोली का निशाना बनाया गया उसी दिल्ली में विश्ववन्द्य महात्मा गांधी जी गोली का शिकार हुए। हिन्दू और मुसलमान का भेद हमारी कल्पना है। सत्य तो यह है कि अज्ञानी देश वासी ने अपने पूज्य नेता को मारा जिससे सारा राष्ट्र कलंकित है,

स्वामी जी महाराज अपने जीवन में जाति पांति के विरोध का प्रबल आन्दोलन कर रहे थे उन्होंने प्रतिज्ञा करली थी कि जिस विवाह में जाति पांति को नहीं तोड़ा गया हो, उसमें उन का आशीर्वाद नहीं मिलेगा।

ठीक यही बात महात्मा गांधी जी ने भी जीवन के अन्तिम वर्षों में अपनाई थी, सत्य तो यह है कि जाति पांति के ही कारण हमारा देश पराधीन हुआ और आज भी हजारों हिस्सों में विभक्त है, हमारा तो यह दृढ़ मत है कि देश के विभाजन का कारण भी जाति पांति ही है, स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने जो शुद्धि आन्दोलन चलाया था, उसकी पूरी सफलता न मिलने का प्रधान कारण हिन्दू समाज की जाति पांति ही है, हमारा विनम्र निवेदन है कि आर्य-समाज को आगामी १० वर्षों के लिए प्रधानतया जाति पांति के विनाश का आन्दोलन करना चाहिए, अन्यथा देश छोटी बड़ी अनेक बिरादरी और जातियों में बंट कर अपनी स्वतंत्रता खो देगा।

आर्य समाज ही इस कार्य को सफलता से कर सकता है, स्वामी श्रद्धानन्द जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने का सही तरीका यही है। आवश्यकता इस बात की है कि देश के शिक्षित युवक और युवतियां जाति पांति तोड़ कर विवाह करने का व्रत लें।

बस

लालचन्द्र, एम. ए.

संतों के सत्संग का मुझे बहुत शौक है, कई बार उनसे बहुत बढ़िया-बढ़िया बातें सुनने को मिलती हैं एक बार संत मथुरा दास दिगम्बर ने कहा 'बस' भी कोई चीज़ है। मनुष्य सारी आयु भोग मांगते रहते हैं, अन्त तक बस नहीं करते।

पर 'बस' करने वाले भी हैं, यद्यपि थोड़े। इन में स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम बहुत ऊंचे स्थान पर है, क्षुद्रता उनकी बनावट में नहीं थी। वे विशाल उदार थे, हर एक कार्य विशाल ढंग से करते थे, जब भोग भोगे तो खूब भोगे, जब छोड़े तो खूब छोड़े, जब छोड़ दिये तो छोड़ दिये फिर हसरत से मुड़ कर नहीं देखा कि क्या छोड़ा। इधर का भी पूरा अनुभव लिया, उधर का भी पूरा अनुभव लिया। भोग में भी पहला नम्बर, त्याग में भी पहला नम्बर। ऐसे महापुरुषों के पहले जीवन का अनुकरण तो सभी कर लेते हैं पर पिछले का नहीं, उधर से आंखें मूंद लेते हैं। आसान तरीके से महान बनना चाहते हैं। जब मना करो कि भाई तुम कहां फंसे पड़े हो तो बड़ों बड़ों का नाम ले देते हैं कि वह भी तो फंसे थे। पर वह निकले भी तो थे। इस की हिम्मत नहीं हम में। 'बस' करना हमारे बस में नहीं।

पर सबको भोग मिलते भी नहीं, एक कवि ने क्या खूब कहा है—

मेरी हसरतें घुट के मर गईं।
मैं उन हसरतों का मज़ार हूं॥

या हम अपनी इच्छाएं पूरी कर नहीं सकते या डर डर कर पूरी करते हैं। परिणाम यह है कि तृप्ति का नाम नहीं है

'प्रेम' भारत में बंधा पड़ा है 'प्रेम' को अभी स्वराज्य नहीं मिला, प्रेम अभी सामाजिक बंधनों में जकड़ा पड़ा है। जिस देश में जो जिससे चाहे प्रेम नहीं कर सकता उस देश में चरित्र का ठीक निर्माण नहीं हो सकता उस देश में ब्रह्मचारी नहीं अपितु मिथ्याचारी पैदा होते हैं। ऊपर से शरीफ़ और अन्दर वासना और व्याकुलता।

जो सीधे ब्रह्मचर्य से संन्यास ले लें ऐसे बहुत विरले महात्मा होते हैं। वह पिछले जन्मों में भोगों से तृप्त हो कर अपवर्ग के लिये तय्यार हो कर आते हैं। पर सामान्य मार्ग तो यह नहीं है, सामान्य कार्य तो ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ ही है।

मार्ग में चलने के लिये ज़रूरी है कि हम पिछले पांव को आगे रखें पीछे से उठावें और आगे बढ़ावें। पर यदि हम पीछे से हटावें ही नहीं तो आगे कैसे बढ़ सकते हैं। 'बुल्लेआ रबदा की पावना। एथों पुट्ट के ओथे लावना॥' ऐसे भी बहुत से मनुष्य हैं जिन्हें सब सुख उपलब्ध है पर वे त्याग नही कर सकते।

परमहंस रामकृष्ण जी कहा करते थे कि गीता गीता गीता बोलने से गीता में त्याग की ध्वनि सुनाई देती है। स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन में भी यही ध्वनि सुनाई देती है, उन्हों ने क्या नहीं छोड़ा। गृहस्थ के सुख छोड़े, भोग के सामान छोड़े, बड़े २ मकान छोड़े, जीवन के स्वाद छोड़े, तप तपे, महान् बने, अनेक शानदार सेवाएं कीं, प्रेम प्राप्त किया, प्रकाश का प्रसार किया।

भारत ने अब नये युग में प्रवेश किया है। भारत पर सब संसार की आंखें लगी हैं, भारत तभी महान् हो सकता है जब उसके वासी महान् हों। स्वामी श्रद्धानन्दजी की आत्मा भारतवासियों को पुकार-पुकार कर कह रही है "भाइयो" मैंने भी एक दिन 'बस' किया था तुम भी बस करो। और बस कर के कल्याण मार्ग के पथिक बन जाओ, अमीरो भोग विलास छोड़ दो गरीबों का खून चूसना छोड़ दो, व्यापारिओ चोर बाजार को समाप्त करो, विद्यार्थियो उद्दण्डता और समय तथा शक्ति का दुरुपयोग छोड़ दो, मज़दूरो हड़तालें, शराब खोरी और सुस्ती छोड़ दो, सरकारी नौकरो रिश्वत लेना छोड़ दो, सब अपने अपने दोषों को छोड़ कर उनसे सदा के लिये मुह मोड़ कर अपने कर्तव्य के पालन करने में जुट जाओ। भारत को फिर से संसार में ऊंचा कर दो। प्रेम मार्ग पर बहुत चल लिये कहीं बन्द भी तो करना चाहिये अब शेष मार्ग पर चलना शुरु कर दो देखो जीवन का क्या आनन्द आता है।

यहां के तो सुख दुख बहुत चख चुके
वहां की 'फिज़ा' का भी आनन्द लो

अश्मन्वती रीयते संरभध्वं उत्तिष्ठित प्रतरता सखायः। अत्रा जहीको अशिवा ये असन् शिवान वयम्-उत्तरेमाभिवातान॥

पत्थरों वाली नदी वेग से बह रही है। हे मित्रो उठो एक दूसरे को सहारा देते हुए ही इसको तर जाओ। आओ जो हमारे अकल्याणकारी संग्रह हैं उन्हें हम यहीं छोड़ दें और कल्याणकारी सुखों, बलों और ज्ञानों को पाने के लिये हम इस नदी के पार हो जावें।

कला और काल

गोपीलाल 'विद्यार्थी' बी० ए०

कला मनुष्य के अन्तर्जगत की सृष्टि है और अनन्त जीवन को पुष्टि देने वाली है। अनन्त प्रकृति के दर्शन से अनन्त का जो अनुभव होता है उसी को प्रकट करने के लिए कला का जन्म होता है। अतः कला मनुष्य की अनन्त शक्ति की परिचायिका है वह मानव-शक्ति की महत्ता की द्योतिका है। चूँकि कला मनुष्य की कर्तृत्व शक्ति का फल है उसमें उसकी सभ्यता का भी दिग्दर्शन है अर्थात् वह मनुष्यों की प्रकृति-विजय का चिह्न है। इस प्रकार कला मनुष्य को बौद्धिक चेतना प्रदान करने वाली वह शक्ति है। जिससे मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियां—ज्ञान लिप्सा अतीत से सम्बन्ध, सौन्दर्यानुराग और प्रेम विकसित होते हैं।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज मनुष्यों के ऐसे समुदाय का नाम है जहां वे समस्त भेद-भाव भूलकर एकत्र रहते हैं। समाज का हित एवं जीवन इसी में है कि यह भावना दृढ़ से दृढ़तर होती रहे तथा इसकी मूल सहयोगिता और उसकी विधात्री सहानुभूति फलती-फूलती रहे। जब समाज दृढ़ और सम्पन्न होता है तो उसका उत्कर्ष होता है। ज्यों-ज्यों उत्कर्ष की ओर समाज प्रगतिशील होता है त्यों-त्यों ही सभ्यता का विकास होता है। सभ्यता की उन्नति के साथ आवश्यकताओं की अभिवृद्धि होती है और आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयत्नों में ही कला का अंकुर प्रस्फुटित हुआ है। समाज का विकास और आवश्यकताएं देश-काल में परिमित हैं। अतः कला पर भी देश व काल की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। यद्यपि कला अनन्त के प्रति अनन्त की अभिव्यक्ति है। कलाकार की विशेषता यही है कि जो देश काल से परिमित है उसमें अपरिमित अनन्त का दिग्दर्शन करावे; विशेष में निर्विशेष की अभिव्यंजना ही उसकी कला की उत्कृष्टता है।

कलाकार समय और संसार की प्रवृत्तियों का अनुशीलन करते हुए उनकी विभूतियों से प्रभावित होता है। जिससे उसमें छिपी हुई शक्ति प्रस्फुटित होती है। इस प्रकार लोक-जीवन से प्राप्त अनुभूति तीन गुणों से विशिष्ट होती है सत्यता, शिवता और सुन्दरता। सत्यता अनुभूति की सत्ता प्रमाणित करती है, शिवता उपयोगिता को और सुन्दरता आकर्षण को। सत्यता और शिवता कला के आन्तरिक गुण हैं और सुन्दरता बाह्य। कलाकार बाह्य गुणों से ही आकर्षित होता है। इस प्रकार उसको अपने मानस में प्रकृति देवी की जिस आनन्ददायिनि मूर्ति के दर्शन होते हैं वही उसकी कला में प्रकट होती है। कवि की कविता उसी का शब्दार्थ है, चित्रकार का चित्र उसी की छाया है और शिल्पकार का शिल्प उसी का सौन्दर्य है। अतएव जिसका अन्तःकरण मलिन है उसकी कला में सौन्दर्य का विशद रूप प्रकट नहीं होगा। कला में काल का यही प्रभाव है।

सौन्दर्य एक मानसिक अवस्था है, वह केवल काल्पनिक है। मानसिक अवस्थाएं समय के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं अतः सौन्दर्य की अनुभूति में भी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ संध्या कालीन आकाश की लालिमा साधारण अवस्था में सुन्दर है, आकर्षक है, मन मोहक है और प्रिय है परन्तु इसी लालिमा

को यदि कोई शोकग्रस्त कलाकार चित्रित करने बैठेगा तो वह अपने चित्र में चिता को अग्नि शखायें बतावेगा तथा भय और घृणा का वातावरण अंकित कर देगा। कौन ऐसा मानव है जो शीतल एवं स्वच्छ ज्योतिर्मय सुधाकर को नहीं चाहता परन्तु वियोगिनी की कला उसमें से अग्निशर निकलते ही दिखावेगी और ज्योत्स्ना को उनकी जलन।

कहते हैं स्पेन के उत्तर में अल्टामीरा नाम की प्राचीन गुफ़ाएं हैं। जिनकी छतों पर अनेक जीव-जंतुओं के रंगीन चित्र अंकित हैं। पुरातत्व वेत्ताओं के अनुसार इन चित्रों को बने कई हज़ार वर्ष हो गये। विद्वानों की राय है कि प्राचीन काल में लोगों में विश्वास था कि जिन प्राणियों का चित्र वे खींचेंगे वे उनके वश में हो जावेंगे। ये चित्र इसी धारणा के आधार पर बने हैं। इन्हीं चित्रांकित जीवों से वहां के लोग अपने जीवन की रक्षा करते थे और शरीर को पुष्ट रखते थे। उनकी इस सहज रुचि से स्पष्ट है कि समय जिसे शिव और सुन्दर बताता है कलाकार उसमें ही अक्षय सत्य निहित कर देता है।

प्राचीन काल में जिन दो उन्नत देशों में सम्पर्क हुआ है उनमें एक की सभ्यता दूसरे की सभ्यता से प्रभावित हुई है। जिसके अवशेष हमें वहां प्राचीन खंडहरों, चित्रों व साहित्य से स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। यह क्यों हुआ? इस पर विचार करें तो एक सीधी सी बात दिखाई देती है कि जब दो अज्ञात देशों के निवासी मिलते हैं तो वे एक दूसरे के विषय में विविध बातें जानने की इच्छा करते हैं और एक दूसरे से ग्राह्य वस्तुएं ग्रहण भी करते हैं। इसे वहां के विद्वान् व कलाविद् अध्ययनोपरांत अपने देशवासियों को देते हैं तो उनके देशगत व जातिगत व्यक्तित्व विदेश की कला को व्यंजित करते हैं। उनकी यह अभिव्यक्ति समय की मांग के अनुसार होती है और समय के अनुकूल ही जन-रुचि की अभिव्यंजना होती है।

आज कल हमारे देश में कलाकोविद् गान्धी जी व जवाहरलाल जी के चित्र तथा मूर्तियां विशेष रूप से बना रहे हैं। क्योंकि ये युग पुरुष हैं और इस काल में इनके चित्र व मूर्तियां बनाना समयानुकूल है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कलाकार युग का स्रष्टा है और प्रतिनिधि है क्योंकि उसकी कला से युग की जनता की रुचि व्यक्त होती है; वह अपनी तूलिका, छैनी या लेखनी से समय की ज्ञेय और अज्ञेय शक्ति का रहस्योद्घाटन करता है। इस रहस्य को जितना जितना अधिक समझता है वह उतना ही अधिक कुशल कलाकार समझा जाता है।

भवसागर पार करूँ

वेदव्रत वेदालङ्कार

तिनके की नैया से प्यारे!
मैं भव-सागर पार करूँ॥
महा कँटीले जीवन-पथ पर,
फूलों का विस्तार करूँ॥
मुक्त गगन की दिव्य उषा में,
मैं स्वच्छन्द विहार करूँ॥

सकल विश्व के अन्तस्तल में,
प्रेम-सुधा-संचार करूँ॥
ज्योतिर्मय रस की धारा में,
वह, ममता निस्सार करूँ॥
उस अनन्त झरने में गिर कर,
प्रिय! बस केवल प्यार करूँ॥

भूचाल और उससे बचने का उपाय

विष्णुमित्र

अखबारों में दूसरे तीसरे दिन भूचाल के धक्कों के आने का समाचार पढ़ने को मिल जाता है। जब मैं पढ़ता हूँ तो कोइटे के भूचाल का दृश्य मेरे सामने आ खड़ा होता है। तब मेरा हृदय तो दहल जाता है, क्योंकि वह दृश्य मैंने अपनी आंखों देखा है। उन दिनों मैं वहीं था। भूचाल क्या बला है जो एक दो मिनटों के अन्दर हज़ारों आदमियों का और लाखों की सम्पति का नाश कर देता है। यह भूचाल क्यों आता है इस विषय में भिन्न-भिन्न विचार रहे है।

चीनी

भारतीय लोग अक्सर मेंडकी को जुकाम होने का मखौल उठाया करते हैं। लेकिन अगर चीनी भाइयों के अनुसार मेंडकी को वास्तव में जुकाम हो जाय तो सारी पृथ्वी के नष्ट होने में देर न लगे। क्योंकि चीनियों के विश्वास के अनुसार पृथिवी एक मेंडकी के सिर पर स्थित है। जब वह सिर खुजलाती है तब भूचाल आता है।

मुसलमान

मुसलमानों में यह विश्वास प्रचलित है कि पृथिवी गाय के सिर पर है। जब वह सींग हिलाती है तब भूचाल आता है।

हिन्दू

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार शेष नाग के फन पर पृथिवी स्थिर है। जब शेष नाग का एक फन थक जाता है तब वह दूसरे फन पर रखता है। इस परिवर्तन में जो धक्का लगता है वह भूचाल है।

जापानी

जापानियों का विश्वास है कि उनका देश मछली की पीठ पर है। मछली जब कभी कुपित होजाती है तब वह अपनी दुम हिलाती है और भूचाल आता है।

भूचाल का वास्तविक कारण

"तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः। आकाशाद् वायुः! वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी।" इस सृष्टि क्रमानुसार पृथिवी की उत्पत्ति सबसे पीछे हैं। ज्यों ज्यों वह बनती जाती है त्यों त्यों वह—वनस्पति तथा मनुष्यों के रहने के लिये तय्यार होती जाती है। पृथिवी की बनावट धीरे २ होती है। वह इस प्रकार कि जैसे पात्र में रखे हुए गर्म घी पर ज्यों २ सर्दी असर करती है, त्यों २ घी की पपड़ी ऊपर जमती जाती है। मगर नीचे घी पिंघला होता है। ठीक वैसे ही गर्म लोहे की शकल का लावा ज्यों २ ठंडा होता जाता है, पृथिवी बनती जाती है! कभी दबाव से वह बना हुआ पृथिवी का भाग उस लावे में गिर जाता है अथवा इधर उधर हो जाता है। तब पृथिवी में कम्पन या भूचाल आजाता है। कई वैज्ञानिकों का कहना है कि समुद्र की लहरों के दबाव से अथवा जोर की आन्धियों के आने से या सर्दी या गर्मी की अधिकता से पृथिवी में स्पन्दन क्रिया पैदा हो जाती है। कोइटे के भूचाल के समय कई मास के होने पर भी उन दिनों इतनी सर्दी होगई थी कि रजाई ओढ कर अन्दर सोना पड़ा था। भूचाल दो प्रकार के कहे जा सकते हैं। एक तो ज्वालामुखी सम्बन्धी अर्थात् जब ज्वालामुखी का स्फोट होता है। दूसरा भूचाल की निर्माण क्रिया के फल स्वरूप अर्थात् भीतरी स्तल के स्थान-च्युत होने से।

सबसे पहिले भूचाल कहां आया

प्राप्त रिकॉर्डों के अनुसार सबसे पहिले १७५५ में पुर्तुगाल के लिस्बन नगर में और १७८८ में इटली के दक्षिण में कैले जिले में भूचाल आया। तब से भूचाल वेत्ताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। तब फनहाक नामक वैज्ञानिक ने १८२१ से १८३२ तक और एलेक्सिस वेरी नामक फ्रेंच विद्वान् ने १८४३ से १८७१ तक की सूची तय्यार की।

उपर्युक्त दोनों वैज्ञानिकों का कथन है कि प्रायः भूचाल अमावस्या और पूर्णिमा को आते देखे गये हैं। आपको स्मरण होगा कि १५ जनवरी १९३४ का बिहार का भूचाल और क्वोइटा का भूचाल दोनों अमावस्या को ही आये हैं।

भूचाल अधिक कहां आते हैं

वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है कि पृथिवी का कोई भी ऐसा भाग नहीं जो भूचालों से सुरक्षित हो। पृथिवी पर दो भूचाल रेखायें हैं, जिनके भीतर भूचाल अधिक ज़ोर के आते हैं। एक रेखा न्यूजीलैंड से लेकर उत्तर की ओर चल कर चीन पहुँचती है। वहां से जाप्पान होती हुई अमेरिका के अलास्का प्रान्त में प्रवेश करती है। दूसरी पूर्वीय द्वीप से लेकर बंगाल की खाड़ी में आती है। वहां से बर्मा, आस्साम,तिब्बत हिमालय, तुर्किस्तान,ईरान, टर्की, बाल्कन प्रदेश,इटली,स्पे न, पुर्तगाल होती, हुई एटलांटिक समुद्र में पहुँचती है। ऐटलांटिक को पार कर पहिली मेखला से मैक्सिको में जा मिली है। बिहार हिमालय के पादतल में स्थित है। क्वेटा भी पहाड़ के पादतल में स्थित है। अतः भूचाल का आना कोई आश्चर्य की बात नहीं। वैज्ञानिकों का मत है कि जहां समुद्र बहुत गहरा है वहां भूचाल अधिक आते हैं।

भूचाल के फल स्वरूप परिवर्तन

कभी २ भूचाल से बड़ी २ दरारें पड़ जाती हैं। सन् १८९७ के भूचाल से आसाम में भूचाल की दरार १२ मील लम्बी और ३५ फ़ीट गहरी थी। सन् १८१६ के सिन्ध के भूचाल में ५० मील लम्बी दरार हुई थी। जिसे वहां के लोग अल्ला का बान्ध कहते हैं। कभी यह दरारें फट कर बन्द भी हो जाती हैं। ऐसे बिहार के भूचाल में देखने में आया है। कभी २ जल के पुराने सोते बन्द हो जाते हैं और कभी नये पैदा भी हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप बिहार में सैंकड़ों कूएं बन्द हो गये थे। कोइटे का भूचाल धरातल के ऊपर के हिस्से में था। वह तो ऐसा था जैसे कोई मनुष्य जमीन में गडे थम्बे को जोर २ से हिलाता हो।

भूचाल आने की सूचना का रूप

भूचाल के आने से पूर्व तोपों के गर्जन जैसी आवाज़ होती है। पहिले दो तीन साधारण धक्के आते हैं। लोग इस सूचना को पा कर उन की पर्वाह नहीं करते।

क्या भूचाल में ईश्वर का हाथ है

ईश्वरीय नियमानुसार पांचों तत्व दुनियां को लाभ पहुँचा रहे हैं। मनुष्य अपनी भूल से उन तत्वों की शक्ति को न समझ कर कष्ट उठाता है। मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है और फल भोगने में परतन्त्र। वह कभी ऐसे कर्म कर बैठता है जिससे उन तत्वों द्वारा उसे हानि उठानी पड़ती है। तब वह दुःखी होकर अपना दोष ईश्वर पर मढ़ देता है।

भूचाल भयंकर क्यों समझा जाता है

बिहार के भूचाल में लगभग २० वा २५ हजार आदमी और कोइटे के भूचाल में ३० वा ३५ हजार आदमी मरे बताये जाते हैं। यह संख्या हैजा प्लेग इन्फ्लूएंजा के मुकाबले में कुछ नहीं। फिर यह प्रश्न होता है कि भूचाल

ही भयंकर क्यों मालूम होता है। उसका कारण यह है कि भूचाल दो तीन मिनट में ही हज़ारों आदमियों को मार देता है और लाखों की सम्पत्ति नष्ट कर देता है। वह लोगों को अपने उपाय का कुछ अवसर नहीं देता। साधारण और विशेष भूचाल सदा आते रहते हैं शोक कि हमने इनसे कभी कोई शिक्षा नहीं ली। वही दुमंजले-तिमंजले मकान बनते जाते हैं। कोइटे के भूचाल के बाद लोग कहते हुए सुने गये कि हमने अपने आप ही कबरें खोदी थीं, आप ही उनमें दफ़ना गये। जापान ने शिक्षा ली। उसने अपने मकानों का ढांचा बदल दिया। लकड़ी के मकान बनाने लगा। कोइटा निवासियों ने शिक्षा ली। मकानों की बनावट बदल दी। अब वहां कैसा ही भूचाल आये हानि की कोई सम्भावना नहीं। जिन लोगों ने भूचाल के बाद कोइटे को देखा है वे जानते हैं कि या तो वहां मकान लकड़ी के बने हैं या दिवारों में लोहे के सरिया डाल कर एक २ ईंएटर की सीमेंट से दीवारें बनाई गई हैं। या टीन की ही दीवारें और टीन की ही छतें डाली गई हैं।

मकानों के बनाने में वेद की आज्ञा

उपमितां प्रति मिता मथो परिमिता मुत।
शालाया विश्व वाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥
अथर्ववेद

संस्कार विधि में ऋषि ने इस मंत्र का अर्थ इस प्रकार किया है। जो कोई किसी प्रकार का घर बनावे तो वह सब प्रकार की उत्तम उपमायुक्त-बनावे, जिसको देख कर विद्वान् लोग सराहना करें। प्रतिमिता हो अर्थात् द्वार, कोणे और कक्षा आदि एक दूसरे के सन्मुख हों। इसके अनन्तर वह शाला चारों ओर के परिमाण से सम चौरस हो। उस शाला अर्थात् घर के द्वार चारों ओर के वायु को स्वीकार करने वाले हों। उसके बन्धन और चिनाई दृढ़ हों। दूसरा मंत्र और देखिये।

मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव।
वधूमिव त्वा शाले यत्र कामं भरामसि ॥
अथर्ववेद

हे शिल्पी लोगो जैसे हमारी शाला अर्थात् गृह बन्धन को कभी न छोड़ें, जिसमें बड़ा भार छोटा हो, वैसा बनाओ। उस शाला को जहां जैसी कामना हो वहां वैसी हम लोग, स्त्री के समान, स्वीकार करते हैं, वैसे तुम भी ग्रहण करो। बस हमें वेद की आज्ञानुसार जिसके बन्धन और चिनाई दृढ़ हो, जिसका बड़ा भार भी छोटा हो, ऐसे मकान बनाने चाहिये। अन्यथा भूचाल से हम निर्भय नहीं हो सकते।

नम्र वन्दना

वेदव्रत वेदालङ्कार

शासन-सुधार दे,
उच्च सुविचार दे,
वीरता उभार दे,
छूटे यह छन्दना।
मानस उदार दे,
हृदय में प्यार दे,
सौम्य-भाव-भार दे,
काटे नित क्रन्दना।

अमि-गल हार दे,
विधि को विहार दे,
मन्त्रि-दल हार दे,
रहे कूट फन्दना।
भारत उबार दे,
शान्ति तप सार दे,
दिव्य देवि शारदे!
नित्य नम्र वन्दना ॥

पृथ्वी की गति

शिवपूजनसिंह कुशवाहा

"उद्वेति प्रसविता जनानां महान्
केतुरर्णवः सूर्यस्य।
समानं चक्रंपर्याविवृत्सन् यदेतशो वहति धूर्षुयुक्तः"
(ऋ० ७। ६३। २)

अर्थ-(सूर्यस्य-अर्णवः महान्केतुः) सूर्य का समुद्र तुल्य वेगवान् महान् स्फुरणशील ज्वाला-समूह (जनानां प्रसविता उद्वेति) जायमान ग्रह उपग्रह आदि का प्रेरक उदय होता है सूर्य-के अन्दर से बाहर स्फुरित होता है। जो कि (समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्) सब पृथिवी आदि गोलों के एक मान कारी थामने वाले चक्ररूप गोलाकारमध्यस्थ सूर्यपिण्ड को पर्याविवृत्सन् = पर्यावर्तयितुमिच्छन् - पर्यावर्तवन्निव- परिभ्रामयन्निव स्वस्मिन् स्थाने भ्रामयन्नित्यर्थः'

घुमाना चाहता हुआ घुमाता हुआ जैसा अर्थात् किसी दूसरे गोले के चारों ओर नहीं, किन्तु स्वकेन्द्र एवं स्वपरिधिमण्डल पर ही घुमाता हुआ धूर्षु युक्तः-एतशः वहति) धुरा में जुड़े हुए घोड़े की भाँति गतियुक्त करता है।" इस मन्त्र में 'पर्याविवृत्सन्' शब्द से सूर्य का अपने केन्द्र पर घूमने का बर्णन है। साथ में उसके घूमने का कारण भी सूर्य का अपना "अर्णवाः महान् केतुः" समुद्र चक्र वेगवान् महान् स्फुरणशाल ज्वालासमूह बतलाया है।

सूर्य भ्रमण (पृथिवी के चारों ओर) में दोष-(क) पृथिवी का आह्निकी (प्रति दिन की) तथा वार्षिकी (वर्ष भर की) दो प्रकार की गति है, जिन से दिन रात तथा छः ऋतुएं बनती हैं। निरन्तर घूमती हुई पृथिवी का जो भाग सूर्य के सामने रहता है उस में दिन तथा दूसरे भाग में रात्रि होती है। यदि माना जावे कि २४ घण्टे में सूर्य पृथिवी के चारों ओर चक्कर लगाता है, तो सूर्य का उदय अवश्य ही प्रति दिन ठीक पूर्व दिशा में पृथिवी के एक नियत स्थान पर ही होना चाहिए, इसी प्रकार अस्त भी। ऐसा होता नहीं। वर्ष में केवल दो दिन ही सूर्य ठीक पूर्व दिशा में (भूमध्य रेखा पर) उदय तथा ठीक पश्चिम दिशा में अस्त होता हुआ दृष्टि गोचर होता है।

(ख) भू. भ्रमण प्रत्यक्ष भी है। जब कोई पदार्थ घूमता है तो उसका वेग अपने केन्द्रस्थान (ठीक बीच) की अपेक्षा दूरतर स्थान में अधिक होता है। इसी लिए यदि किसी बहुत ऊँचे स्तूप से कोई वस्तु गिराई जावे तो वह वस्तु कुछ दूर पूर्वांश में गिरेगी, जहां से गिराई जावे उस स्थान के ठीक नीचे नहीं। इसी से अनुमान होता है कि पृथिवी पश्चिम से पूर्व की ओर जाती है।

(ग) बहुत से नक्षत्र वर्ष में एक दिन अथवा वर्ष के नियत भाग में प्रकाशित होते दिखाई देते हैं, और दूसरे नियत समय में अस्त होते देखे जाते हैं। वर्ष भर के पश्चात् वे फिर ठीक नहीं दिखाई देते हैं। यह सब पृथिवी के सूर्य के चारों ओर वर्ष भर में घूमने से ही सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं।

ज्योतिः शास्त्र के प्रमाणः—
"भपञ्जर स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्य प्रतिदैवसिकौ।
उदयास्तमयौ सम्पादयति ग्रहनक्षत्राणाम्॥"
(आर्य सिद्धान्ते)

अर्थ-'सूर्यादि सब नक्षत्र स्थिर हैं। पृथ्वी ही बार २ अपनी धुरी पर घूमकर प्रति दिन इनके उदय और अस्त का सम्पादन करती है।'

यदि कोई शंका करे कि [illegible]

क्यों ज्ञात होता है, तो इस शङ्का का समाधान स्वय आर्य भट्ट जी यों करते हैं:—

"अनुलोम गतिनौ पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥"
आर्य सिद्धान्त गोलपादे ४। ६)

अर्थ जैसे चलती हुई नाव पर बैठे हुए मनुष्य को नाव स्थिर और किनारे के पेड़, घर आदि विपरीत दिशा में चलते हुए दिखाई पड़ते हैं, इसी तरह नक्षत्र चक्र अचल होने पर भी घूमने वाली पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों को पश्चिम की ओर घूमता हुआ देख पड़ता है ।

"प्राणेनैति कलां भूः"
(आर्य सिद्धान्त देश गो० आर्या० ४)

अर्थ– पृथिवी की गति कलात्मिका होती है अर्थात् कला २ करके चलती है। ❀ एक चतुर्युग में पृथिनी का दैनिक आवर्त्तन कितना होता है, उसे भी आर्य भट्ट जी ने बतलाया है–

"कुङिशिबुणलृख्ष्ट" आर्य सिद्धान्ते)

अर्थात् एक चतुर्युग में पृथिवी की भगण संख्या १. ५८ २२, ३७, ५०० एक अरब ५८ करोड़, २२ लाख, ३७ सहस्र पांच सौ है +

'कुलाल चक्र भ्रमिावामगत्या यान्तो न कीटा इव भान्ति यान्तः" (सिद्धान्त शिरोमणि)

अर्थ–जैसे कुम्हार के घूमते हुए चाक पर बैठे हुए कीड़े उस की गति को नहीं जान सकते। ऐसे ही मनुष्यों को पृथिवी चलती हुई नहीं प्रतीत होती है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों की साक्षी– "स वा एष न कदाचनास्तमेति नोदेति । तं यदस्तमेतीति मन्यन्त अह्न एव तदन्तमित्वाऽथात्मानं विपयस्यते रात्रीमेवा स्तात् कुरुतेऽअहःपरस्तात् ॥'

अथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तमित्वाऽथात्मानं विपर्यस्यतेऽहरेवावस्तात् कुरुतेरात्रिं परस्तात् स वा एष न कदाचन निम्लोचति । " (ऐतरेय ब्रह्मण अ.१४। ख. ६)

अर्थात् सूर्य न कभी छिपता है और न कभी निकलता है जब वह रात्रि के अन्त को प्राप्त होकर बदलता है अर्थात् भूमि के घूमने के कारण पश्चिम से फिर पूर्व में दिखलाई देता है और पृथ्वी के इस भाग में दिन और दूसरे भाग में रात्रि करता है, तब लोग सूर्य का उदय मानते हैं। इसी प्रकार जब दिन के अन्त को प्राप्त होकर सूर्य पश्चिम में दिखाई देता है और भूमि के इस भाग में रात्रि और दूसरे भाग में दिन करता है, तब लोग सूर्य का 'अस्त' मानते हैं। वास्तव में वह न कभी छिपता है न निकलता है ।'

यही बात डॉ० हॉग Dr. Haug) ने अपने ऐतरेय ब्राह्मण के अनुवाद में, स्वीकार की है। यथा–The Aitareya Brahmana explains that the sun neither sets notver rises, that when the earth, owing to the rotation on its axis is lighted up, it is called and so on. ❀

" स या एष न कदाचनास्तमयति, नोदयति । तद्यदेनं पश्चादस्तमयतीति मन्यन्ते, अह

❀ आधुनिक ज्योतिष-ग्रन्थकारों ने अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए "प्राणेनैति कलां भूः" के स्थान में "प्राणेनैति कलां भम् " ऐसा पाठ बदल दिया है —— लेखक ।

+ यहां पर यह याद रखना चाहिए कि यहाँ संख्या पृथ्वी की कुछ सूर्य केन्द्रक भगण संख्या नहीं है, प्रत्युत उसकी दैनिक आवर्त्तन संख्या लेखक

❀ Haug' S Aitereya Brahmana. V0L. II. P. 243.

एवं तदन्तं गत्वात्मानं विपर्यस्यतेऽहरेवाधस्तात् कुरुते रात्रीं परस्तात् ।

स वा एष न कदाचनास्तमयति नोदयति । तद्यदेनं पुरस्तादुदयतीति मन्यन्ते, रात्रेरेव तदन्तं गत्वाऽथात्मानं विपर्यस्यते । रात्रिमेवाधस्तात् कुरुतेऽहःपरस्तात् । स वा एष न कदाचनास्तमयति नोदयति। न ह वै कदाचन निम्लोचति ॥"

(गोपथ ब्राह्मण उत्तरार्द्ध ४।१०)×

इसका भी तात्पर्य ठीक ऐतरेय ब्रा० के सदृश है ब्राह्मण के उपर्युक्त दोनों प्रमाणों से सूर्य भ्रमण का खण्डन किया गया है. यही समझना चाहिए ।

वेदों के प्रमाण—

'आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः" ।

ऋ० १०. १८९. १. यजु० ३. ६. साम०-पू० ६. १४. ४; अथर्व० ६. ३१. १)

ऋषि दयानन्द जी का भाष्य (अयम्) यह प्रत्यक्ष (गौ) गोल रूप ६ पृथ्वी (पितरम्) पालन करने वाले (स्वः) सूर्य लोक के (पुरः) आगे २ (असदत्) चलती है और (मातरम्) अपनी योनिरूप जलों के साथ वर्त्तमान (प्रयन्) अच्छी प्रकार चलती हुई (पृश्निः) अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश में आक्रमीत्) चारों तरफ घूमती है ।

" गौः" शब्द का अर्थ पृथ्वी है । यथा—

"गौरिति पृथिवी नामसु पठितम्" (निघण्टु १. १)

" गौरिति पृथिव्या नामधेयम् । यद् दूरं गता भवति । यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति"

(निरुक्त २। ५)

" गमनात् पृथिवी गौः स्यादादित्यः पशुरेव च । वाग्वा सा गच्छति जलन्निम्नम्प्रत्येति सर्वदा ॥ "

(वेङ्कटमाधव ऋग्वेदानुक्रमण्यां " ३ । ६ । १३)

"इमे लोका गौः " (शतपथ ब्रा० ६ । ५ ।२ । १७)

" आयं गौः पृश्नि···" इस मंत्र की व्याख्या शतपथ ब्रा० २ । १ । ४ । २६ में भी है ।

अनेक लोग शङ्का करते हैं कि ' आदित्योऽपि गौरुच्यते " (निरुक्त २ । ५) इस प्रमाण से गौ नाम ' सूर्य ' का भी है, तो इस मंत्र का सूर्य भ्रमण करता है ऐसा अर्थ क्यों न लिया जावे । इसका समाधान यों है कि 'जो निरुक्त में "आदित्योऽपि गौरुच्यते" (निरुक्त २ । ५) इत्यादि कहा. इसका तात्पर्य है " अपनी कक्षा में सूर्य घूमता है " इस बात का द्योतक है । ' वेङ्कट माधव की ऋग्वेदानुक्रमणी ३ । ६ । १३ में " गमनात् पृथिवी गौः " चलने से पृथिवी को गौ कहते हैं

अवः परेण पर एनावरेण
पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् ॥
क स्वित् सूते नहि यूथे अन्तः " (ऋ० १६४ । १७)

अर्थ—यह पृथिवी सूर्य के चारों ओर जाती है । इसके पिछले आधे भाग में सदा अन्धकार तथा सामने आधे भाग में प्रकाश बना रहता है । बीच में सब पदार्थ हैं । यह पृथिवी माता के समान रक्षा करती है ।

"आवर्त्तयत् सूर्यो न चक्रम्" (ऋ० २ ११ । २०)

अर्थ—जैसे सूर्य चक्र को उत्पन्न करता है अर्थात् सूर्य पृथ्वी आदि के चक्रोत्पन्न होने में हेतु है, स्वयं चक्र नहीं करता ।

× देवी भागवत अ० १५ स्कन्ध ८ श्लोक २३, २४ में भी यही कहा है कि सूर्य न उदय होता है न अस्त, इत्यादि । —लेखक ।

६. पृथिवी गोल है, इसके लिए देखो-"पञ्च-सिद्धान्तिका त्रैलोक्य संस्थान १३ । १ ; ऋ० १ । ६२ । १ ; आर्यभट्टीय ४ । ५ ; आदि —लेखक ।

'अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः
शचीभिर्वेद्यानाम्।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्
विश्वायवे नि शिश्नथः" (ऋ० १०।२२।१४)

अर्थ--(क्षा) यह पृथ्वी (यत्) यद्यपि (अहस्ता) हस्त रहित (अपदी) तथा पैर से भी शून्य है, तथापि (शुष्णंपरि) सूर्य के चारों ओर (प्रदक्षिणित् प्रदक्षिणा करती हुई (वेद्यानाम्) जानने योग्य जो परमाणु हैं अथवा जानने योग्य जो पञ्चमूल तत्व हैं उनकी (शचीभिः) क्रियाओं से प्रेरित होकर अथवा उनकी क्रियाओं के साथ २ (वर्द्धत) अपनी कक्षा में आगे बढ़ रही है (विश्वायवे) विश्व के उपकारार्थ (निशिश्नथः) हे ईश्वर! तूने ऐसा प्रबन्ध रचा है।

"या गौर्वर्त्तनिं पर्येति निष्कृतं
पयो दुहाना व्रतनीरवारतः।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुष
देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते"

(ऋ०।१०।६५।६)

अर्थ--(या) जो (गौ पृथ्वी (व्रतनीः) अपने नियम का पालन करती (दाशेषु वरुणाय) दानी और श्रेष्ठ जनों के लिए (देवेभ्यः) और देवतास्वरूप विद्वानों के लिए (अधारतः) चारों ओर धारा प्रवाह से (निस्कृतं) निरन्तर (पयोदुहाना) अन्न, रस, फल, मूल, तृणादि भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करती (हविषा दाशत्) तथा अनेक प्रकार की सुख-सामग्रियों को प्रदान करती है (सा) वह गौ (प्रब्रुवाणा) प्रभु की महिमा का उपदेश करती हुई (वर्त्तनिं) अपनी कक्षा में (विवस्वते पर्य्येति) सूर्य के चारों ओर घूमती है।

"यदा सूर्य्यममु दीवि शुक्रं ज्योतिरधारयः।
आदित्त विश्वा भुवनानि येमिरे॥"

(ऋ० ८।१२।३०)

अर्थ--(यदा) जिस समय परमेश्वर ने (अमुम्) इस शुक्रं ज्योतिः) अनन्त तेजोमय प्रकाशस्वरूप (सूर्य्यम्) सूर्य को (दिवि) आकाश में (अधारयः) रच कर स्थापित किया। (ते आदित् उस समय के प्रारम्भ में ही (विश्वा भुवनानि) पृथिव्यादि सब लोक (येमिरे) नियम पूर्वक अपनी २ कक्षा में नियन्त्रित कर दिया।

"प्रजाह तिस्रो अत्यायमीयुर्न्यन्या
अर्कमभितो विविश्रे।
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः
पवामनो हरित आविवेश॥

(ऋ० ८।१०१।१४)

अर्थात्—सूर्य बहुत बड़ा है और सबके मध्य में स्थित है। पृथिव्यादि उसके चारों ओर घूमते हैं।

"आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥"
(ऋ० १।३५।२; यजु० ३३।४३)

अर्थ (सवितादेवः) प्रकाशस्वरूप सूर्य (आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानः) आकर्षण गुण के साथ वर्त्तमान (मर्त्यं निवेश्ययन्) लोक लोकान्तरों को अपनी २ कक्षा में स्थित करता हुआ (अमृतंच) और सब प्राणी अप्राणियों में अमृतरूप वृष्टि वा किरण द्वारा अमृत का प्रवेश कराता हुआ और (हिरण्येन रथेन ❀) प्रकाशमय और रमणीय स्वरूप से (भुवनानि) पृथिव्यादि लोकों को (पश्यन्) प्रकाशित करता हुआ (याति) अपनी परिधि में घूमता रहता है। किन्तु किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता।

"सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता-द्यामदृंहत।

अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥"

(ऋ० १० । १४९ । १)

अर्थ--(सविता) सूर्य (यन्त्रैः) अपने न त्रण करने वाले अनेक साधनों व बलों से (पृथिवीम्) पृथ्वी की (अरम्णात्) बांधे हुए है । (सविता) सूर्य (अस्कम्भने) बिना टेक के, निरवलम्ब महान् आकाश में (द्याम्) अपने परितः स्थित द्युलोकस्थ अन्यान्य ग्रहों को भी (अदृंहत्) दृढ़ किए हैं । (सविता) सूर्य (अतूर्त्ते) अविनाशी और अपार आकाश में (बद्धम्) बंधे हुए (धुनिम्) नाद करते हुए (समुद्रम्) वेग से भागने वाले पृथिव्यादि लोकों को (अन्तरिक्षम्) आकाश में (अश्वमिव) वेगवान् घोड़े के समान (अधुक्षत्) घुमा रहा है ।

" कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को विवेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्त्तेते अहनी चक्रियेव" ।

(ऋ० १ । १८५ । १)

अर्थ--अगस्त्य ऋषि विद्वानों से पूछते हैं कि (कवयः) हे विद्वानों ! (अयोः) इन दोनों पृथ्वी और द्युलोक में (कतरा) कौन सा (पूर्वा) आगे या ऊपर है (कतरा) और कौन सा (परा) पीछे वा नीचे है । (कथा) कैसे (जाते) ये दोनों उत्पन्न हुए हैं । (को विवेद) ये बातें कौन जानता है ? (यद्ध नाम) जो कुछ है सो सारे (विश्वम्) विश्व को (बिभृतोः) धारण करते हुए (अना) ये पृथ्वी और द्युलोक (अहनी) अहर्निश (चक्रिया इव) रथ के चक्र के समान (निवर्त्तेते) चक्कर लगा रहे हैं ।

इस लिए कौन ऊपर है और कौन नीचे है, यह नहीं कहा जा सकता ।

यहां द्युलोक से तत्रस्थ अन्यान्य ग्रहों का अभिप्राय है।, जो पृथ्वी की नाईं ही चक्कर लगा रहे हैं । जिससे वे कभी पृथ्वी के ऊपर तो कभी पृथ्वी के नीचे से चलते हुए ज्ञात होते हैं ।

" येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वा इव विश्पतिः ।
भिया यामेषु रेजते । (ऋ० १ । ३७ । ८)

अर्थ--"मरुतों अर्थात् वायुओं के अज्मों प्रक्षेपणों प्रेरण प्रवाहों में वर्त्तमान हुई पृथ्वी यामों अर्थात्-प्रहरों-आठ प्रहरों में बूढ़े पुत्र-पौत्र सन्तन्तिमान् गृहस्थ की भांति कुबड़ी-टेढ़ी-आड़ी होकर (रेजते +) गति करती है ।"

पृथ्वी गति करती है यह तो उपर्युक्त मंत्र के ' रेजते" शब्द से स्पष्ट ही हो गया । साथ में यहां तीन बातें [illegible] पूर्ण कही गई हैं, जिनमें एक यह कि 'मरुतों के प्रेरण प्रवाहों से पृथ्वी गति करती है अर्थात्-जैसे जल प्रवाहों में कोई वस्तु गति करती है ।

तात्पर्य यह है कि पृथ्वी-सम्बन्धी वायु-प्रवाह-वायुवेष्टन भी गति करता है। अतएव पक्षी प्रातःकाल अपने घोंसले से उठ कर सायंकाल पुनः उसी अपने घोंसले को पा लेता है । अन्यथा उसको अपना घोंसला न मिलता । किन्तु पृथ्वी का वायु मण्डल भी पृथ्वी के साथ गति करता है, अतएव वह घोंसले को पालता है।

ये मरुत-सात गणों में हैं । "सप्त हि मारुतोगणः" (शतपथ ब्रा० २ । ५ । १ । १३);

" सप्त गणा वै मरुतः " (तै० १ । ६ । २ ।
और प्रत्येक गण में सात-सात हैं

" सप्त सप्त ही मारुता गणाः " (शतपथ ब्रा०-६ । ३ । १ । २५) ये सात २ विभागों वाले सात मरुतों के गण हैं ।

इस प्रकार सब ४९ मरुत् हुए जो पृथ्वी के चारों ओर फैले हुए स्तर-परत-तह के रूप में हैं ।

+ रेजते- गति कर्मा (निघण्टु २ । १४)

दूसरी बात मंत्र में "जुजुर्वां इव विश्पतिः" बूढ़े गृहस्थ की नाई कुबड़ी-टेढ़ी-आड़ी चलने की है अर्थात् पृथ्वी अपने अक्ष पर टेढ़ी आड़ी गति करती है।

यदि पृथ्वी अपने अक्ष पर आड़ी गति न करती तो सब स्थानों पर दिन रात बराबर होते। तीसरी बात मंत्र में " यामों प्रहरों में पृथ्वी गति करती है " कही गई है। दिन रात के आठ याम प्रहर होते हैं, जो प्रत्येक तीन ३ घन्टे का होता है। इस प्रकार आठ यामों-प्रहरों, साठ घड़ियों, २४ घण्टों में गति करने की बात है, जो पृथ्वी की दैनिक गति को सिद्ध करती है।

पृथ्वी का अपने केन्द्र पर अपने वायु-मण्डल को साथ लेकर गति करना उसकी यह प्रथम दैनिक गति है। पृथ्वी की दैनिक गति से दिन रात प्रकट होते हैं, यह संकेत अन्यत्र है- " अहो रात्रे पृथिवि नो दुहाताम् "

(अथर्व० १२ । १ । ३६)

" दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्या "

(ऋ० ७ । ६६ । २)

अर्थ—"सूर्य पृथ्वी की पूर्व दिशा को धारण करता है।"

इस कथन से स्पष्ट होता है कि पृथ्वी पूर्व दिशा की ओर अपने केन्द्र पर चलती है, घूमती है।

" अहं परस्तादहमवस्ताद् यदन्तरिक्षं तदु मे पिताऽभूत्।

अहम् सूर्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत् "॥

(यजु० ८ । ६)

अर्थात्—' मैं सूर्य को दोनों ओर से देखता हूँ, पूर्व भी तथा पश्चिम भी। अर्थात् सूर्य पूर्व वा पश्चिम जाता है वा घूमता है यह बात नहीं, अपितु वह घूमता है ऐसा मैं समझता हूँ, घूम तेदेखना वा प्रतीत होना मेरी दृष्टि दोष से सम्बन्ध रखता है, वस्तुतः सूर्य घूमता नहीं।"

"यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते
अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृता वृता
सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि "

(अथर्व० १२ । १ । ५२

अर्थात्—"वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता"- वार्षिक गति (वर्ष भर में) पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्र काट कर लौट आती है। " अहो रात्रे-विहिते " प्रति दिन की गति भी इसी से सिद्ध है।

महा काव्यों के प्रमाण—

' या चेयं जगतो माता सर्वलोक नमस्कृता।
अस्याश्च चलनं भूमेर्दृश्यते कोशलेश्वर "।

(वाल्मीकिय रामायण, आरण्य काण्ड सर्ग ६६ श्लोक ६)

अर्थ—सब लोकों से नमस्कार करने योग्य जो यह जगत् की माता भूमि है। हे कोशले-श्वर ! इस का भी चलना दृष्टि में आता है।

"एतदेवं विधं दृष्टमाश्चर्यं तत्र ये द्विज। ५॥
सूर्येण सहितो ब्रह्मन् पृथिवी परिवर्तते॥ ६॥

(महाभारत शान्तिपर्वः अ० ३६३)

अर्थ हे ब्राह्मण ! वहां पर यह इस प्रकार से मैंने आश्चर्य देखा कि सूर्य समेत पृथिवी भ्रमण करती है।

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र "निर्ऋतिः' शब्द देकर शङ्का करते हैं कि— " निरुक्त " २। ७ में पृथ्वी का नाम "निर्ऋतिः" लिखा है [निर्ऋतिः निरमणात ' निश्चलत्वेनावस्थानात्] जिसमें गति नहीं होती अर्थात् जो स्थिर हो उसे निर्ऋति कहते हैं।" ७

---

७. देखो- "दयानन्द तिमिर-भास्कर" तृतीया वृत्ति पृष्ठ ३२२।

पं० कालूराम शास्त्री ने भी शङ्का उठाई है कि – "निघण्टु ने पृथ्वी को 'निऋ्र्ति' लिखा है। 'निऋ्र्ति का अर्थ है गमन रहित (चाल शून्य)। यदि पृथ्वी चलती होती तो निघण्टु इसको "निऋ्र्ति" कैसे लिखता।"८ विद्यावारिधि पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र तथा पं० कालूराम शास्त्री ने साधारण जनता को धोखा देने के लिए "निऋ्र्तिः का अर्थ 'गमनरहित' लिखा है। वास्तव में निरुक्तकार का यह तात्पर्य नहीं है क्योंकि श्री यास्काचार्य जी ने स्पष्ट लिखा है––

"गौः। निऋ्र्तिः ॥१॥ (निरुक्त अ० २ ख० ५)
गौरिति पृथिव्या नामधेयम्। यद् दूरङ्गता भवति।
"यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति" ॥२॥

(निरुक्त अ० २।५।२)

"तत्र निऋ्र्तिर्निरमणादृच्छतेः कृच्छ्रापत्तिरित्रा ॥३॥ (निरुक्त २।७)

अर्थ––गौः यह पृथ्वी का नाम है। जो यह घूमने के कारण दूर २ चली जाती है, इस लिए उसका नाम गौ है ॥१॥

और चूंकि प्राणी इसमें चलते फिरते हैं इस लिए पृथ्वी का नाम गौ है ॥२॥

"निरमणात् निविष्टानि रमन्ते अस्यां भूतानीति निऋ्र्तिः पृथ्वी।

रमेर्धातोः (भ्वा० आ०) ऋच्छते (तु० प०) इतरा कृच्छापत्तिःदुःखसंज्ञिका निऋ्र्तिः पाप्मा। सा पुनरियं समाननामधेयत्वात् समानश्रुतित्वात् पृथिव्या सन्दिह्यते। तयोः समाननामधेयत्वेपि सति एषः कर्मकृतो विभागः एका निविष्टानां भूतानां रमयित्री एका पुनः कृच्छ्रमापादयित्रि (दुर्गाचार्य)।

अर्थात्–'निऋ्र्ति' शब्द रम-आनन्द करना, ऋ जाना धातु से नि-उपसर्गपूर्वक बनता है। चूंकि इसमें प्राणी आनन्द पाते हैं इस लिए पृथ्वी का नाम निऋ्र्ति है। दूसरे दुःख संज्ञावाली पापिनी होने से पृथ्वी रहने वाले प्राणियों को आनन्द देती है। और एक पृथ्वी दुःखों के सम्पादन करने वाली है। इसी लिए पृथ्वी का नाम निऋ्र्ति है।"

श्री अमरसिंह जी ने भी निरुक्त के दूसरे अर्थ का समर्थन किया है। यथा––

"अलक्ष्मीस्तु निऋ्र्तिः" (अमरकोषः ६।२)

नरक की अशोभा का नाम निऋ्र्ति है।

अतएव श्रीयुत महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ने "सूर्य सिद्धान्त" के 'विज्ञान भाष्य' में जो आक्षेप किया है कि "प्राचीन ऋषियों को भूमि भ्रमण का ज्ञान नहीं था" एक दम निर्मूल है। ऋषि दयानन्द जी महाराज का जो सिद्धान्त है वह वेद, शास्त्रानुकूल है। शमित्योम्

८. देखो– "आर्यसमाज की मौत" पृष्ठ १७१

ग्राहक संख्या

हमारे कृपालु ग्राहक पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या प्रायः नहीं लिखा करते। ग्राहक संख्या न मालूम होने पर उनकी शिकायत समुचित ध्यान देना सम्भव नहीं होता। इसलिए पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या लिखना न भूलिये।

एक सम्मति

"गुरुकुल, भारतीय वैदिक-संस्कृति का उद्यान है पत्रिका में उसका सजीव प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देता है। प्रचीन भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित लेख विशेष महत्व का स्थान रखते हैं। नवभारत के निर्माण में उनका महत्व पूर्ण स्थान है।

लेखों के चयन एवं उनकी क्रम व्यवस्था का कार्य सफल हाथों में है; अतः पत्रिका का भविष्य उज्वल है।" प्रवाह, अकोला।

अनुसार का प्रयोग

किशोरीदास वाजपेयी

काशी के सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी श्री रामचन्द्र वर्मा ने इधर कुछ दिनों से हिन्दी-परिष्कार की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया है, और वैज्ञानिक पद्धति पर विवेचन शुरु किया है। आप ने 'आप की आज्ञानुसार' तथा 'अपनी इच्छानुसार' आदि प्रयोगों को गलत बतलाया है। तर्क यह है कि 'अनुसार' शब्द पुल्लिग है और तत्पुरुष समास में उत्तरपद प्रधान होता है। उसी (उत्तरपद) के अनुसार क्रियाएं तथा सम्बन्ध आदि होते हैं। इस लिए 'आप के आज्ञानुसार' और 'अपने इच्छानुसार, शुद्ध प्रयोग हैं। गलत प्रयोग छोड़ कर शुद्ध प्रयोग हिन्दी में अब चलने चाहिएं; यह वर्मा जी का उद्देश्य है। इसे अधिक स्पष्टता के साथ देख लीजिए। तत्पुरुष समास में उत्तरपद प्रधान होता ही है--

१-'मेरे लतापुष्प' और २-मेरी 'पुष्पलता'! प्रथम प्रयोग में 'पुष्प' के अनुसार 'मेरे' (सम्बन्ध में) है, और दूसरे में 'लता' के अनुसार 'मेरी'। इसी तरह 'आज्ञानुसार' में 'आज्ञा' का 'अनुसार' से तत्पुरुष समास है। आज्ञा के अनुसार--'आज्ञानुसार'। इसी तरह 'इच्छा के अनुसार'--'इच्छानुसार'। यों 'अनुसार' प्रधान है। और, वर्मा जी कहते हैं, यह पुल्लिग है। इस लिए 'आप के आज्ञानुसार' तथा 'अपने इच्छानुसार' प्रयोग ही शुद्ध हैं। काशी के 'आज' तथा संसार पत्र इस तरह लिखने भी लगे हैं। इस तरह हिन्दी में 'द्वैध शासन' इस समय है। काशी में 'अपने इच्छानुसार' 'और अन्यत्र' 'अपनी इच्छानुसार, चल रहा है। परन्तु वर्मा जी चाहते हैं कि सर्वत्र एक से शब्द-प्रयोग हों। यह तब हो, जब सब लोग वह पद्धति स्वीकार कर लें।

हमें इस पर विचार करना है। वर्मा जी यह ठीक कहते हैं कि तत्पुरुष में उत्तरपद प्रधान होता है और उसी के अनुसार शब्द-सम्बन्ध होते हैं। परन्तु 'अनुसार' हिन्दी में पुल्लिग है, यह कैसे मालूम हुआ? 'दीवार' तथा 'पुस्तक' आदि अकारान्त सहस्राशः शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं ही! 'अनुसार' अच्छा है' या 'सीताराम का अनुसार करती है। ऐसे प्रयोग होते नहीं कि जिस से इसे पुल्लिग कहा जा सके! जब अपनी इच्छा पर ही है, तब स्त्री-लिंग ही समझ लो! क्या हर्ज?

वस्तुतः 'अनुसार' हिन्दी में अव्यय है, न पुल्लिग और न स्त्री-लिंग। 'यथा' के अर्थ में इस का प्रयोग होता है--यथामति--'मति के 'अनुसार' आदि। सो, अव्यय को पुल्लिग कहना ठीक नहीं। संस्कृत में 'अनुसार' भाववाचक संज्ञा है; इस लिए हिन्दी में भी हो, यह आज्ञा चलेगी नहीं। किसी महिला के मुख पर तिल है, तो उसकी बेटी के भी वह अवश्य हो, ऐसी कोई बात नहीं। संस्कृत में सकर्मक क्रियाएं भाववाच्य नहीं होती हैं; पर हिन्दी में धड़ल्ले के साथ वैसी क्रियाएं भावे चलती हैं। यह मौखिक भेद है। संस्कृत का 'प्रति' उपसर्ग हिन्दी में संज्ञा के रूप में चलता है—'चार प्रतियां भेज दी हैं' इत्यादि। इसी तरह 'अनुसार' यहां अव्यय है। हां, 'अनुसरण' अवश्य हिन्दी में भाववाचक पुल्लिग संज्ञा है—सीता ने राम का अनुसरण किया। इसे यों नहीं कह सकते 'सीता ने राम का अनुसरण

किया'। ऐसा कहना गलत होगा। 'अभिसरण' अवश्य पुल्लिंग है।

सो, हिन्दी में 'अनुसार' पुल्लिंग नहीं एक अव्यय है। किसी अव्यय के योग में स्वभावतः पुल्लिंग विभक्ति-प्रयोग होता है—'राम के ऊपर' सीता के यहां' आदि। यहां' 'वहां' आदि अव्यय हैं, जिन के योग में पुल्लिंग विभक्ति-प्रयोग होते हैं। इसी तरह 'सीता के अनुसार' और 'आज्ञा के अनुसार'।

और 'आज्ञानुसार' तथा 'इच्छानुसार' में तत्पुरुष समास नहीं, अव्ययीभाव है। संस्कृत में अव्यय का पूर्व-प्रयोग होता है, अव्ययीभाव समास में। हिन्दी में क्वाचित्क पर-प्रयोग भी दृष्टचर है, अव्यय का। 'आज्ञानुसार' तथा 'इच्छानुसार' आदि में 'अनुसार, अव्यय का पर-प्रयोग है इस तरह 'आपकी आज्ञानुसार' तथा 'अपनी इच्छानुसार' बिलकुल शुद्ध प्रयोग हैं। इधर-उधर भटकना न चाहिए। 'अपने इच्छानुसार' तथा 'आपके आज्ञानुसार' लिखना अपनी भाषा को विकृत करना है!

और मान लो 'अनुसार' हिन्दी में संज्ञा ही है और पुल्लिंग ही है और 'आज्ञानुसार' आदि में तत्पुरुष समास भी है। परन्तु प्रवाह हिन्दी में 'आपकी आज्ञानुसार' तथा 'अपनी इच्छानुसार' का है, तो क्या ये गलत हो हो जायेंगे? भाषा के अनुसार व्याकरण बनता है कि व्याकरण के अनुसार भाषा को अपना प्रवाह बदलना पड़ता है? पाणिनि आदि ने तो लक्ष्य (शब्द का भाषा में चालू प्रयोग) ही मुख्य माना है और इसी के अनुसार लक्षण-निर्देश किया है। परन्तु वर्मा जी लक्ष्य को ही बदलना चाहते हैं। कहते हैं, हमने एक पुस्तक में लिखा है कि नदी का प्रवाह सीधा जाता है इस लिए यमुना को टेढ़ा-मेढ़ा बहना बन्द करना होगा—सीधा बहना होगा! यदि वे लिख दें कि गंगा हरिद्वार से चल कर मथुरा होती हुई कलकत्ते गयी है, तो गंगा को अपना मार्ग मथुरा हो कर बनाना पड़ेगा। लक्षण के अनुसार लक्ष्य जायगा। जब तत्पुरुष में उत्तर-पद प्रधान होता है, तब 'आपकी आज्ञानुसार' गलत है। यह वर्मा जी का मत है।

यदि 'अनुसार' पुल्लिंग मान भी लिया जाय, तो हिन्दी-व्याकरण में इस का समास अपवाद में रखना होगा। लिखना होगा कि जब 'अनुसार' के साथ किसी शब्द का तत्पुरुष समास हो, तो यह प्रधान नहीं रहता और शब्द-सम्बन्ध आदि उसी शब्द के अनुसार होते हैं, जिस के अन्त में यह (अनुसार) हो; जैसे—आपकी 'आज्ञानुसार' और 'आप के-आदेशानुसार'। 'आज्ञा' तथा 'आदेश' के अनुसार 'की' और के' विभक्ति-रूप हैं।

आप एक प्रश्न कर सकते हैं, पूछ सकते हैं कि हिन्दी में 'अनुसरण' भाव-वाचक संज्ञा जब है और वह पुल्लिंग है, तब उसी का सहोदर 'अनुसार' कैसे दूसरी चीज़ बन गया? उत्तर है कि भाषा में ऐसा होता है। संस्कृत में 'विहरति' का अर्थ है—विहारं करोति; परन्तु 'आहरति' का अर्थ 'आहार करता है' नहीं होता यही नहीं 'आहार' वहां 'भोजन है और 'आहरण' है अपनी ओर खींचना हिन्दी में ही 'निःसरण' है निकलना, भाव वाचक संज्ञा, पुल्लिंग; परन्तु 'निःसार' है विशेषण! कहीं एकार्थता भी रहती है। अनुकरण' 'अनुकृति' और 'अनुकार' एकार्थक हैं; यद्यपि 'अनुकार' का प्रयोग कम होता है। परन्तु 'विकारण' और 'विकार' में अन्तर है। 'विकार के अर्थ में 'विकृति' तो है; पर 'विकरण' संस्कृत में भी उस अर्थ में नहीं आता। कारण,

यह शब्द (विकरण) व्याकरण में एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होकर पारिभाषिक शब्द बन गया है। हिन्दी में भी 'विकार' के अर्थ में 'विकरण' नही आता। हां, प्रसार के साथ 'प्रसरण' जरूर (एकार्थ में ही) प्रयुक्त होता है — तम का प्रसरण हुआ' और तमः-प्रसार देख कर बढ़ता कमलों ने मुख बन्द किया !

सो, अनु' के साथ 'सृ' का प्रयोग समान होने पर भी हिन्दी ने 'अनुसार' तथा 'अनुसरण' में भेद कर दिया है। एक अव्यय और दूसरा भाव-वाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता है।

यही नहीं, संस्कृत में भी अनुसरण' के अर्थ में 'अनुसार' का प्रयोग 'जबांदान' लोग नहीं करते । 'तस्यानुसरणं कृतम्' को 'तस्यानुसारः कृतः' के रूप में नहीं बोल-लिख सकते। व्याकरण मना नहीं करता है। उस ने तो 'भावे ल्युट्' और 'भावेघन्' तथा 'भावे खच्' आदि कह दिया और 'भावे क्तिन्' भी रख दिया। अब इन का प्रयोग भाषा में अपनी प्रवृत्ति के अनुसार होगा। व्याकरण 'शशाङ्क' की तरह 'मृगाङ्क' बनाता है, उसी तरह 'शशी' की तरह 'मृगी' भी। परन्तु चन्द्रमा के अर्थ में शशी' की तरह 'मृगी' का प्रयोग कोन करता है ? सो, हिन्दी में 'अनुसरण' भाव-वाचक संज्ञा और 'अनुसार' अव्यय है, तो आप घबराये क्यों जाते हैं ? भट्टे पर ईंटे बना कर तैयार की जाती हैं. छोटी-बड़ी, सब तरह की। सुर्खी भी तैयार होती है। सब एक ही उपादान की चीजें हैं; पर मकान बनाते समय कारीगर उन के उपयोग में भेद करता है। कहां कौन ईंट चाहिए, किसे कांट-छांट कर रखना है, सुर्खी का कहां क्या उपयोग है; यह सब वह जानता है। कोई यह नहीं कह सकता कि सुर्खी की जगह ईंट या ईंट की जगह सुर्खी का उपयोग तू क्यों नहीं करता ? ईंट को सुर्खी भी कह देंगे यदि उस का चूरा कर के बस काम में उस का उपयोग किया जाय। व्याकरण भट्टा है, और भाषा-मन्दिर का निर्माण करने वाले साहित्यकार राज हैं, गृहनिर्माण-विशारद वर्मा जी ने 'अच्छी हिन्दी' और 'हिन्दी प्रयोग' नाम की जो पुस्तकें लिखी हैं, वे विभिन्न हिन्दी-परीक्षाओं में पाठ्यपुस्तक के रूप में हो गयी हैं। अब छात्रों को वे पढ़नी ही पड़ेंगी। उन पुस्तकों में शतशः ऐसे भ्रमोत्पादक निर्देश हैं, जिन से छात्र गड़बड़ी में पड़ जायेंगे और शुद्ध को अशुद्ध समझ बैठेंगे। फिर उन की हिन्दी कितनी बढ़िया और टकसाली होगी, समझ लीजिए ! इस प्रवृत्ति को कौन रोके ? हिन्दी में इस समय अराजकता है, इस में सन्देह नहीं।

गुरुकुल पत्रिका का स्वागत

"पत्रिका का दूसरा अङ्क हमारे सामने है। इसमें श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, डा० रघुवीर और श्री भगीरथ शास्त्री के लेख विशेष विचारणीय हैं। पं० इन्द्र जी ने अपने छोटे से लेख में वदिक शिक्षा के मूलतत्त्व अथवा ध्येय अति बल पूर्वक रख दिये हैं। अन्तिम ध्येय आत्मा है और आप ठीक ही कहते हैं कि आत्मिक शिक्षा के बिना अन्य सब प्रकार के शिक्षण निःसार हैं। हम पत्रिका का हार्दिक स्वागत करते हैं।"

—आदिति (नवम्बर १९४८),

श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी।

जन्तु-शास्त्र के पारिभाषिक शब्द

चम्पत स्वरूप

Caecilian अवशिष्टाच्छी
Caecum उण्डुक
Caenosarc सार्वमांस
Caenurus cerebralis सार्वपुच्छी मस्तिष्कीय
Calcaneum कुड्डुपक
Calcar दन्तक
Calcined भस्मीकृत
Canaliculi सूक्ष्म नलिका
Canine कीला, रदनक
Capillary केशिका
Capsule कोष
Capsular ligament कोष स्नायु
Carapace वर्म
Carchesium चषकी
Cardiac orifice हार्द द्वार
Cardinal vein प्रधान शिरा
Cardo कुलाबा
Carmine जतुजरंग
Carotid मातृका
Carotid labyrinth मातृका गहन
Carpus मणिबन्ध
Cartilage सक्थि
Caste जातपात, वर्ण
Casting of an earth worm केंचुए की सेवई
Cat fish विडाल मत्स्य
Catgut तांत
Caterpillar इल्ली
Cauda equina तुरंग पुच्छिका
Caudal vesicle पुच्छ प्रपिका
Caudal fin पुच्छ बाज
Caudata सपुच्छी
Caval vein महाशिरा
Cavity गुहा, विवर
Cavum aorticum महा धमनी गुहा
Cavum pulmocutaneum फुफ्फुसत्वचिक गुहा
Cell कोष्ठ
Cell colony कोष्ठ संघ
Cell division कोष्ठ विभाजन
Cell membrane कोष्ठ कला
Cement organ संश्लेषक
Centipede कनखजूरा. कांतर
Centrale केन्द्रा
Centrum गात्र
Cephalochorda शिरलगुडी
Cephalopoda शिरपदी
Cephalothorax शिरोर
Cercaria लूमिल
Cerebellum धम्मिल्लक
Cerebral ganglion मस्तिष्कीय कन्दिका
Cerebral hemispheres मस्तिष्कीय गोलार्द्ध
Cerebral nerves मस्तिष्कीय नाडिया
Cestoda रशनानिभ
Chaeta शूक
Chaetopoda शूक पदी
Chaos संवर्त
Chaos chaos संवर्त संवर्तीय
Chaos diffluens संवर्त विलीयमान
Chela खरूल
Chelate खारूल
Chelicerae खरूल शृंग

Chemical massengers रसायनिक दूत
Chiasma optic दृष्टिनाडी स्वस्तिक
Chitin कठिन
Chlorophyll हरित द्रव्य
Choanocytes निवाप कोष्ठ
Choanoflagellata निवापकषी
Cholera विसूचिका
Chondrocranium कैकस करोटि
Chordate लगुडी
Chordae tendinae सूत्र कण्डरिकाएं
Choroid of eye कर्बुरवृत्ति, जरायूपम
Choroid plexus जारायव जालक
Chromatin वर्णग्राही
Chromatophore वर्णवाही
Chrysalid कनकिल
Cilia पद्म
Ciliary muscle पद्मल पेशी सन्धान पेशी
Ciliated पद्मल
Ciliate पद्मली
Cingulum सारसन
Circular गोलाकार
Circulation परिभ्रमण
Circularory system परिभ्रामक संस्थान
Cirri आसंग
Cirrus शिश्न
Cirrus sac शिश्न कोष
Clamp stand कील आधार
Class श्रेणी
Classification श्रेणीकरण, वर्गीकरण
Climbing fish चढ़ाकू मछली
Clavicle अक्षक
Clitellum पर्याण
Cloaca मलनली
Cloacal aperture मलद्वार

Closed vascular system संवृत रक्तवाहक संस्थान
Clot of blood घन शोणित
Clot of lymph घन लसिका
Clypeus खेटक
Cnidoblast दंशक कोरक
Cnidocil दंशक पद्म
Coagulated स्त्यायित
Coagulation स्त्यायन
Cochlea शम्बूकी
Cockroach तिलचट्टा
Cocoon कोया
Coelentrate खातभूतान्त्री
Coeliac कौद्य
Coeliaco mesenteric कौद्यान्त्रिक
Coelomate गह्वरिल
Coelome शरीर गह्वर
Coelomic epithelium गह्वरिक आवरण
Coelomic fluid गह्वरिक द्रव
Coelomoducts गह्वर प्रणालियां
Coleoptera गोपक गरुत्
Collar ग्रैव
Collared ग्रैवीय
Collaterial gland चिपचिपक ग्रन्थि
Collecting canal संग्राहक नली
Colloblast श्लेष कोष्ठ
Colon बृहद् अन्त्र
Colony संघ
Columella auris कर्ण स्तंभ
Columnar epithelium स्तंभाकार आवरण
Comb jellies कंघा गिजगिजिया
Commensal सहभोजी
Commensalism सहभोजिता

Commissural योजनिकीय
Commissures योजनिका
Common bile duct सार्वपित्त प्रणाली
Complex जटिल
Compound समास
Compound eye सामासिक नेत्र
Compound tissue संयुक्त धातु, सामासिक धातु

गुरुकुल-समाचार

ऋतु शिशिर ऋतु की हवाओं ने वृक्षों को पत्र विहीन बना दिया है। जिस वर्षा की प्रतीक्षा करते करते लोग निराश हो चुके थे, वह प्रबल झंझावात के साथ पिछले दिनों आई और अपने साथ प्रबल शीत को पुनः लौटा लाई है। एक सप्ताह तक वर्षा, आंधी और प्रचंड शीत का वातावरण जमा रहा! कई स्थानों पर ओलों की वर्षा भी हुई है! वर्षा जल प्राप्त करके गेहूँ और चने की खेतियों में नई बहार आ गई है। चहुँ ओर खेतों में अपूर्व सौन्दर्य बिखरा पड़ा है! इस बार बसंत पंचमी पर भी वर्षण होता रहा। अतः वसंतोत्सव का रंग फीका रह गया। ब्रह्मचारीगण प्रमुदित और स्वस्थ हैं। रोगी गृह शून्य सा पड़ा है!

शरत्कालीन व्याख्यान-माला

विश्वविद्यालयव्याख्यान-माला के सिलसिले में इतिहास विषयक व्याख्यान देने के लिए गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक डाक्टर सत्यकेतु विद्यालंकार आजकल गुरुकुल में पधारे हुए हैं। गुप्तकाल के पश्चात् भारतीय इतिहास में हम सभी क्षेत्रों में ह्रास की प्रक्रिया देखते हैं, इस विषय को लेकर डाक्टर केतु जी बड़े खोज पूर्ण व्याख्यान दे रहे हैं। आपका कथन है कि गुप्तकाल में हमारा देश सभी क्षेत्रों में गौरव की उच्चतम कक्षा तक पहुँचा हुआ था और उसके पश्चात् हमारी मौलिक राजशक्ति, मौलिक प्रतिभा और सामाजिक व धार्मिक संस्थाएं पतन की ओर जाने लगी और भारतवर्ष वैसा गौरवमय स्थान कभी नहीं प्राप्त कर सका।

विद्यासभा

पिछले दिनों विद्या सभा का एक अधिवेशन गुरुकुल भूमि में समवेत हुआ था। जिसमें श्री प्रधान जी, उपप्रधान जी, मंत्री जी, मुख्याधिष्ठाता जी तथा अन्य मान्य सदस्यों ने आ कर गुरुकुल का अवलोकन किया। गुरुकुल का वार्षिक महोत्सव इस बार १३-१४-१५-१६ एप्रिल को होगा। भविष्य में सदा के लिए वैशाखी के आसपास उत्सव मनाने का स्थिर निश्चय विद्या सभा ने कर दिया है।

श्री आचार्य जी की लखनऊ यात्रा

लखनऊ विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती अवसर पर गुरुकुल की ओर से उसका अभिनंदन करने के लिए श्री आचार्य प्रियव्रत जी गुरुकुल का संदेश संस्कृत भाषा में उपनिबद्ध करके ले गए थे। वहां पर श्री आचार्य जी लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री आचार्य नरेन्द्रदेव जी आदि शिक्षाविज्ञ महानुभावों से भी मिले थे। आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने बड़े प्रेम के साथ गुरुकुल में पधारने का अभिवचन दिया है।

गुरुकुल द्वारा लखनऊ विश्वविद्यालय के अभिनन्दनार्थ प्रस्तुत किए पत्र की प्रतिलिपि यहां दी जाती है—

ओ३म्

लक्ष्मणपुर (लखनऊ) विश्वविद्यालयस्य समादरणीय कुलपते ! माननीयोपकुलपति महाभाग ! उपाध्याय महानुभावा; ! अन्तेवासिनश्च !!

अत्र भवद्भिरात्मनो विश्वविद्यालयस्य पञ्चविंशतिवार्षिको रजतजयन्तीमहोत्सवाभिधः समारोह आयोजयितुमुपक्रान्त इति महदानन्दस्य स्थानम् । माङ्गलिकेऽस्मिन्नवसरे सर्वस्यापि शिक्षाक्षेत्रे व्यवसायमातिष्ठतो जनस्य हृदयं हर्षनिर्झरिणीतरङ्गै राप्लुतम्भविष्यति । आत्मनो जीवनस्य व्यतीतैः पञ्चविंशतिवर्षैर्भावत्केन विश्वविद्यालयेन यः सर्वतोमुखीन उत्कर्षः समधिगतः स सर्वेषामेव विदितचरः । आत्मनोलघीयस्यस्मिन्नायुषि भवतां विश्वविद्यालयःप्रथमकोटिगतानां भारतीयविश्वविद्यालयानां श्रेणौ सम्मानितं स्थानमधिकुरुतु प्रथितैश्च विदेशीयविश्वविद्यालयैः सह तुलामधिरोहति । श्रीमता विश्वविद्यालयस्य तेन सम्बद्धानां महाविद्यालयानाञ्च प्रतिभावन्ति विशालानि भव्यानि चा भ्रंलिहानि भवनानि कस्मैचिदपि विश्वविद्यालयाय गौरवमावहेयुः । श्रैमत्केन विश्वविद्यालयेन सम्बद्धेषु महाविद्यालयेषु परःसहस्रा विद्यार्थिनोऽधीयने । नैकविधानि चात्र विद्याविज्ञानानि पाठ्यन्ते । तत्तद्विद्यानिष्णाता वाङ्मयपारदृश्वानो विद्वान्स उपाध्यायाश्चात्राध्यापनकर्म समाचरन्ति । महाविदुषां केषाञ्चिदत्रत्योपाध्यायमहाभागानां पाण्डित्यकीर्तिस्तु सर्वत्राऽपिभुवोऽलये विद्वत्समाजेनाभिगीयते । एतत् सर्वं कस्य न विश्वविद्यालयस्यावितथं गौरवमभिमानञ्च जनयेत् । अल्पीयस्यस्मिन्नात्मन आयुषि भवतां विश्वविद्यालयेन वास्तविकी भगवत्या सरस्वत्या उपासनामन्दिरैः समासादिता ।

अमरकीर्तिना देवभूयङ्गतेन श्रीस्वामिश्रद्धानंदयतिना स्थापितस्य हरद्वारीय—कांगड़ी—गुरुकुल—विश्वविद्यालयस्य प्रतिनिधिभूतोऽहम्भवतां विश्वविद्यालयस्य सर्वतोभद्रमुत्कर्षमिमं हृदयेनाभिनन्दामि । अस्माकं गुरुकुल-विश्वविद्यालयो भवतां विश्वविद्यालयेनैकविधां बन्धुतां वहति । भवतामिवास्माकमपि गुरुकुल-विश्वविद्यालय आश्रमपद्धतिमवलम्बते । अत्र भवन्त इव वयमपि भगवतीं सरस्वतीं समुपास्महे । आधुनिकपाश्चात्यविद्याविज्ञानानामुच्चैस्तमा शिक्षातंभाषां हिन्दीमाश्रित्य प्रदातुं शक्यते, मृतेति मन्यमाना संस्कृतभाषा जीविता भाषेवाऽध्येतुं भाषितुञ्च शक्यते, इतीदं सफलं परीक्षणमस्माभिः पञ्चाशद्भिर्वर्षैर्गुरुकुलेऽनुष्ठीयमानं वर्तते । एकस्मिन् मन्दिरे सरस्वतीं समुपासमाना अपरस्य सरस्वतीमंदिरस्योत्कर्षं श्रीवृद्धिञ्चावलोक्य भृशं प्रसीदेयुरुल्लासं हर्षञ्चानुभवेयुरितिनितान्तं स्वाभाविकम । एतस्मान्नैकात् कारणात् पुण्यतोयाया भगवत्या गङ्गाया रतध्वासिनो गुरुकुलनिवासिनोऽद्यास्मिन् मांगलिके रजतजयन्तीमहोत्सवावसरे भावत्कं विश्वविद्यालयमभिनन्दन्ति । दिवारात्रञ्च भवतां विश्वविद्यालय उत्तरोत्तरमुन्नतिमाकलयत्विति मङ्गलमयो भगवान् हृदयेन तैः प्रार्थ्यते ! आधुनिकपाश्चात्यविद्याविज्ञानानां प्रसारे यथा श्रीमतां विश्वविद्यालयेन सुदूरं प्रयतितं तथैवासौ भविष्यति प्राचीनभारतीयविद्यानामार्यसंस्कृतेश्चोद्धारप्रसारयोः पुण्ये कर्मण्यपि सुदूरतरं प्रयततामेवञ्चासौ प्राच्यप्रतीच्योभयविधविद्याविज्ञानानां प्रथितं केन्द्रं जायतां, यत्र नानादेशेभ्य आगत्य संख्यासीमानमतिक्रान्ता अन्तेवासिनो जिज्ञासोपशमं विदध्युरित्यपि हृदयान्तस्तलेन प्रार्थ्यते परमकारुणिको भगवान् ॥

अस्मिन्नवसर उपाधिग्रहणं कुर्वतां स्नातकानां भाविजीवनस्य सफलतायै सर्वविधमंगलानाञ्चापि कृते प्रार्थ्यते कल्याणानां वारिधिरसौ भगवान् ॥

प्रियव्रतो वेदवाचस्पतिः—
आचार्यः—
हरद्वारीय-कांगड़ी-गुरुकुल-विश्वविद्यालयस्य ।

परीक्षाएँ

तीनों महाविद्यालयों की वार्षिक परीक्षाएँ ४ मार्च से आरंभ होंगी। अतः आजकल छात्रगण विशेष रूप से स्वाध्याय में व्यस्त हैं। सभी श्रेणियों के पाठ्य विषयों की पढ़ाईयां समाप्त हो चुकी हैं। अधिकारी परीक्षाएँ मार्च से प्रारंभ होंगी। विद्यालय विभाग की पढ़ाईयां नियमपूर्वक चल रही हैं।

गुरुकुल में फ्रांसीसी विद्वान्

यूरोप के प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् और पेरिस विश्वविद्यालय के भारतीय संस्कृति अनुशीलन विभाग के प्रधान आचार्य प्रो० लुई रेणू महोदय अपनी भारत की सांस्कृतिक यात्रा के सिलसिले में पिछले दिनों गुरुकुल में सपरिवार पधारे। गुरुकुल वासियों ने बड़े प्रेम और समादर के साथ उनका स्वागत और अभिनंदन किया। श्री आचार्य जी ने संस्कृत भाषा में गुरुकुल विश्वविद्यालय की स्थापना का हेतु तथा इसके नियम वा कार्यालय का परिचय देते हुए मान्य मनीषी का स्वागत किया। उनकी सेवा में संस्कृत भाषा में एक सन्मान पत्र दिया गया। उन्हीं के सभापतित्व में ब्रह्मचारियों ने आशुवक्ता के रूप में संस्कृत भाषा में एक वाद विवाद प्रस्तुत किया। वाद विवाद का विषय था—भारत को ब्रिटिश राष्ट्र परिवार मंडल की सदस्यता स्वकार करनी चाहिए या नहीं। इस विवाद को सुनकर प्रो० रेणू अतिशय प्रभावित और विस्मयान्वित हुए। आपने अपने भाषण में कहा कि मैं भारत के विश्वविद्यालयों, विद्वत्परिषदों, पंडितों, पाठशालाओं और अन्य शिक्षाकेन्द्रों में भ्रमण कर रहा हूँ। मैंने किसी भी स्थान पर लोगों को संस्कृत भाषा में इस प्रकार सहज रूप में और प्रवाह रूप से प्रभुत्व के साथ भाषण करते हुए नहीं पाया और राजनीति के चालू विषय पर संस्कृत भाषा में इतने कौशल के साथ छात्रों को चर्चा और वाद विवाद करता हुआ देखकर तो मैं अवाक् रह जाता हूँ। मुझे यह नहीं ज्ञात था कि संस्कृत-भारत की इतनी सुन्दर सेवा और व्यवहार गुरुकुल में होता है, अन्यथा मैं अपनी भारतीय यात्रा के प्रोग्राम में गुरुकुल निवास के लिए डेढ़ दो मास का समय नियत करता और संस्कृत में वार्तालाप करने का अभ्यास करके फ्रांस देश को लौटता। मैं आपकी संस्कृतोपासना पर मुग्ध हूँ। आप धन्य हैं जो संसार की एक सुन्दरतम और समृद्धतम भाषा की उपासना कर रहे हैं। मुझे यह देखकर खेद होता है कि जिस संस्कृत भारती को अमर भाषा मानकर हम यूरोप वासी अपने विश्वविद्यालयों में उसका अनुशीलन कर रहे हैं तब भारत के बहुत से मनीषी और नेता लोग तक इसे मृतभाषा मान कर इसकी उपेक्षा कर रहे हैं। मेरी सम्मति में भारत के प्रत्येक विश्वविद्यालय में संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए। भारत में भाषा के विषय में आज कल वाद-विवाद चल रहे हैं। मुझ से अगर कोई पूछे तो मैं कहूँगा कि एशिया समस्त की संस्कार भाषा संस्कृत होनी चाहिए। अपने युग में संस्कृत और पाली द्वारा भारत ने सारे एशिया पर अपनी सांस्कृतिक विजय वैजयन्ती फहराई थी यह हमें नहीं भूलना चाहिए। जो भारतीय संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ हो वह भारतीय नहीं कहा जा सकता भारत का समस्त अतीत गौरव और उसकी समस्त सांस्कृतिक संपदा संस्कृत साहित्य में भरी पड़ी है। उस अक्षय्य उत्तराधिकार के आप स्वामी हैं! उसका अनुशीलन, उसका अध्ययन और उसकी उपासना से भारत अपना अतीत गौरव प्राप्त कर सकता है और भौतिकवाद से तंग आए हुए यूरोप को अध्यात्मवाद की संजीवनी पिला सकता है।

इस शिक्षा तपोवन के भाईयों ने मेरा जो सत्कार और संवर्धना की है वह मुझे जन्म भर याद रहेगी। मैं आपका स्नेह-संदेश फ्रांस के अपने प्रत्येक शिष्य को सुनाऊँगा और कहूँगा कि जिसने संस्कृत भाषा की शिक्षा के लिए आना हो वह गुरु श्रद्धानन्द की शिक्षा भूमि गुरुकुल में निवास करके उसका अनुशीलन करे। मैं आपको आशा दिलाता हूँ कि मैं अपनी अग्रिम भारत यात्रा में गुरुकुल के निवास के लिए विशेष समय लगाऊँगा। इस प्रकार तीन दिवस तक अपने पांडित्य, स्नेह और सौजन्य की सुवास से कुल वासियों को मुग्ध बनाकर इस फ्रांसिसी मनीषी ने "पुनर्दर्शनाय" कहकर गुरुकुल से विदा ली।

इस गुरुकुल यात्रा में प्रो० रेणू के प्रिय शिष्य और गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक डाक्टर सत्यकेतु जी विद्यालंकार लगातार उनके सान्निद्धय में रहे और फ्रेंच भाषा में समस्त कार्य-कलाप का परिचय उनको देते रहे। उनके आतिथ्य और सेवा सत्कार के लिए डाक्टर सत्यकेतु जी ने जो सहायता और सहयोग हमें प्रदान किए उनके लिए हम उनके अतिशय कृतज्ञ और आभारी हैं स्मरण रहे डा० सत्यकेतु जी ने प्रो० रेणू के तत्त्वावधान में ही पेरिस विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उपाधि इतिहास शास्त्र के विषय में प्राप्त की थी।

पौष मास की स्वास्थ्य रिपोर्ट

श्रेणी	नाम ब्रह्मचारी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा	परिणाम
१५	राजेश्वर	मोच	अभी रोगी है	
१४	धर्मेन्द्रनाथ	ज्वर कास	,,	
१४	विपिनचन्द्र	,,	२ दिन	ठीक
१२	ओम्प्रकाश	ज्वर	३ दिन	,,
१२	सुरेन्द्रपाल	मोच	४ दिन	,,
८	बद्रीनाथ	अतिसार	४ दिन	,,
६	ईशकुमार	ज्वर	३ दिन	,,
५	सुरेश	चोट	३ दिन	,,
५	विक्रम		अभी रोगी है।	
५	रणजीत	अतिसार		ठीक
५	महावीर	ज्वर कास	३ दिन	,,
४	ओम्प्रकाश	खुजली	अभी रोगी है	
३	वेदव्यास	चोट	१३ दिन	ठीक है
२	मदनमोहन	अतिसार	३ दिन	ठीक
२	ओम्प्रकाश	ज्वर	४ दिन	ठीक
१	महेन्द्र	,,	३ दिन	,,
१	शिवदेव	,,	२ दिन	,,

उपरोक्त ब्रह्मचारी गत मास रुग्ण हुए थे। कुछ दिन से अधिक सर्दी होने से कास का प्रकोप ब्रह्मचारियों में हो गया था अब आराम है।

लेखकों का परिचय

श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार—भारतीय इतिहास की रूप रेखा पर मंगला प्रसाद पुरस्कार प्राप्त। इतिहास सम्बन्धी अनेक पुस्तकों के प्रणेता। भारतीय इतिहास परिषद् के प्राण।

श्री स्वामी कृष्णानन्द—पत्रिका के दूसरे अङ्क में परिचय देखिये।

श्री धर्मदेव वेदवाचस्पति—गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्यापक।

श्री धर्मदेव शास्त्री-लगन वाले सार्वजनिक कार्यकर्त्ता, अशोक आश्रम, कालसी के संचालक।

प्रोफेसर लालचन्द्र एम० ए०—गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के उपाचार्य! अध्यात्म ज्ञान के पिपासु लेखक।

श्री गोपीलाल विद्यार्थी—राजस्थान के उदीयमान लेखक।

श्री वेदव्रत वेदालङ्कार—वेद गीताञ्जलि के विश्रुत लेखक। स्वर्गीय वेदव्रत जी की कुछ अप्रकाशित रचनाएं उनके भाई सत्यव्रत जी से मुझे प्राप्त हुई हैं।

श्री विष्णुमित्र—जानकारी बढ़ाने वाली बातों को रोचक तरीके से उपस्थित करने में कुशल लेखक।

श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा—शास्त्रीय सिद्धान्तों की विवेचना करने वाले अधिकारी विद्वान्।

श्री किशोरी दास वाजपेयी—हिन्दी के चिर-परिचित लेखक और समीक्षक।

श्री चम्पत स्वरूप—पहले अङ्क में परिचय।

मुद्रक श्री— हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरि...

गुरुकुल-पत्रिका

फाल्गुन २००५

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

वर्ष १ **गुरुकुल-पत्रिका** अङ्क ७

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

जीवन का उद्देश्य	स्वामी कृष्णानन्द
आधुनिक युग में भारत का पश्चिम पर प्रभाव	प्रोफेसर हरिदत्त वेदालङ्कार
स्वस्थ रहने के प्राकृतिक उपाय	डाक्टर के. लक्ष्मण शर्मा
जगद्दल विद्यापीठ	पण्डित शंकरदेव विद्यालङ्कार
युक्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करना	श्री जनमेजय विद्यालङ्कार
दक्षिण भारत में प्रचलित एक सामाजिक संस्कृति	श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा
अधिक जीने की इच्छा	लाला लभूराम नय्यड़
रात्रि स्वप्न	श्री भगवद्दत्त वेदालङ्कार

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक एक प्रति

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

पल में शाश्वतता

अंबालाल पुराणी

In Ho is Æternum

A far sail on the unchangeable monotone
of a slow slumbering sea,
A world of power hushed into symbols
of hue, silent unendingly;
Over its head like a gold ball
the sun tossed by the gods in their play,
Follows its curve, a blazing eye of Time
watching the motionless day.
Here or otherwhere,—poised
on the unreachable abrupt snow solitary ascent,
Earth aspiring lifts to the illimitable light,
then ceases broken and spent,
Or in the glowing expanse, arid, fiery
and austere, of the deserts' hungry soul,—
A breath, a cry, a glimmer
from Eternity's face in a fragment the mystic whole;
Moment-mere, yet with all eternity
packed, lone, fixed, in tense,
Out of the ring of these hours
that dance and die, caught by the spirit in sense,
In the greatness of a man, in music's outspread wings,
in a touch, in a smile, in a sound,
Something that waits, something that wanders
and settles not, a nothing that was all and is found ?

अविकारी, अव्यय, एकरंग, धीर, सुषुप्त महासागर पर सुदूर एक पाल दिखाई दे रहा है, मानों कोई शक्ति-प्रचुर सृष्टि मूक होकर केवल रंग के प्रतीकों का रूप लेकर निरवधि नीरवता में लीन पड़ी हुई है!

इस सृष्टि के ऊपर खेल खेलते हुए देवताओं द्वारा फेंके हुए सुवर्ण के एक गेंद जैसा सूर्य अपनी वक्ररेखा का अनुसरण कर रहा है—जैसे कि गतिहीन, स्थिर प्रचण्ड दिन का निरीक्षण करता हुआ महाकाल का जाज्वल्यमान नेत्र!

अत्र या अन्यत्र—दुरारोह सरलोन्नत हिमाक्रान्त शिखरों की ऊर्ध्वगामी पगडंडी पर अपने को स्थिर संतुलित करके वसुन्धरा की अभीप्सा असीम दिव्य ज्योति के प्रदेश तक पहुँच जाती है, फिर श्रान्ति-क्लान्ति से चूर होकर वहां शक्ति-हीन बन जाती है, अथवा शुष्क, रुक्ष और कठोर अरण्य के क्षुधित अन्तरात्मा के ज्वलन्त विस्तार में हम देखते हैं केवल एक श्वास, एक शब्द, शाश्वतता के मुख मंडल की एक झलक,—खंड में मानों रहस्यमय अखंड।

इस दृष्टि से, क्षणभर रंग में नाचकर विलीन हो जाने वाली दिन की नश्वर घड़ियों के गोल घेरे में से इन्द्रियों में बसने वाले आत्मा ने यदि कुछ छीन लिया होता है तो वह है केवल एक मात्र पल - फिर भी वह (पल) लबालब भरा होता है समग्र शाश्वतता से, निसंग, निश्चल तीव्र-किसी मानवेन्द्र की महत्ता में, सङ्गीत के विस्तीर्ण ...त्रों में, किसी स्पर्श में, किसी स्मित में, किसी ...क स्वर में प्रतीत एक मात्र पल—मानों अब तक बाट देखता खड़ा हुआ कोई हो, सतत भटक कर कभी स्थिर न होने वाला कोई हो। ऐसी वह वस्तु होती है निर्जीव वस्तु, फिर भी सर्व रूप। और दूसरी यह सर्व रूपता इस पल में आती है। पल में शाश्वतता! यह बात प्रथम दृष्टि में अशक्य लगती है। परन्तु इस काव्य का रस लेने के लिये हमें शाश्वतता के विषय के अपने विचारों का विश्लेषण करना आवश्यक है। सामान्यतया पल और शाश्वतता, परस्पर में इतनी विरोधी वस्तुएं मालूम देती हैं कि इन दोनों में कोई सम्बन्ध भी कल्पना में नहीं आता। यद्यपि शाश्वतता में पल, घड़ी, दिन, मास इत्यादि उत्तरोत्तर काल-मानों को तो स्थान है, पर 'पल में शाश्वतता' तो यदि यथार्थ में विरोधी न हो तो भी विरोधाभास तो अवश्य ही लगता है। मनुष्य शाश्वतता की कल्पना करता है अपनी बुद्धि द्वारा। और इस प्रकार से शाश्वतता अर्थात् काल के मानों—गतानुगतिक मानों—दिन, सप्ताह, मास, वर्ष या फिर प्रकाश-वर्षों को जोड़कर, गुणाकरके या वर्ग करके गणित की रीति से इसे बढ़ाकर अनन्त तक ले जाने का प्रयत्न करने से जो मानसिक अर्थ या वस्तु उत्पन्न होती है उसको मनुष्य 'शाश्वतता' मानता है। भेद भाव वाली, भेद के पाने पर ही अपना काम कर सकने वाली मानसिक चेतना में इन्द्रियों के कार्य द्वारा काल या दिशा का जो माप होता है उसको अनन्त तक बढ़ा लेने के परिणाम स्वरूप काल का जो समग्र रूप गठन होता है, वह है शाश्वतता।

मनुष्य काल को मापता है किसके द्वारा? विकार, परिवर्तन अथवा क्रिया द्वारा। अर्थात् यदि बाहर या भीतर कोई भी विकार पैदा न हो, परिवर्तन न आए, क्रिया न हो तो हमें काल का भान—अर्थात् काल जैसी कोई वस्तु है ऐसा अनुभव ही न हो। हमारी सामान्य जाग्रत चेतना के मापदंडों द्वारा हम जो माप निकालते हैं वह क्या पूर्णतया ठीक है, अन्तिम है? इस प्रश्न का उत्तर यह काव्य देता है........

पहले पहल हमें ऐसा लगता है कि काल का प्रवाह सदा निर्लिप्तभाव से, समान गति से बहता

ही रहता है और घड़ी जैसे स्थूल बाह्य साधनों द्वारा हमें उसका जो माप मिलता है वही इसका एक मात्र और शक्य माप है। परन्तु यह मान्यता ठीक नहीं। काल सब प्रकार से एक वस्तु निष्ठ या पदार्थ निष्ठ तत्त्व है. ऐसा हम बेशक मानें अथवा इसके नित्य प्रति के उपयोग में हम कोई एक रूढि स्वीकार करें यह भी ठीक है, परन्तु यथार्थ दृष्टि से काल हमारे लिये क्या एक ही माप में बहता है ? तो फिर विरह के क्षण, विरह के दिवस इतने अधिक रूखे क्यों मालूम देते हैं ? मिलन का लम्बा समय मानो एक क्षण में बीत गया हो ऐसा क्यों अनुभव होता है ? इतना ही नहीं, एक ही प्रसंग कवि चित्त के लिये लम्बा या संक्षिप्त होता है तो सामान्य मनुष्य को वह एक ही किसी विशिष्टता से रहित सा मालूम होता है, ऐसा क्यों ? स्वप्न में काल का जो भान होता है, वह जाग्रत में होने वाले भान से पृथक् ही मूल्य और प्रकार का होता है। अर्थात् चेतना की एक भूमिका पर जैसे कालमान पृथक २ होता है उसी तरह पृथक् २ भूमिकाओं पर भी काल और दिशा के मूल्य भिन्न होते हैं।

परन्तु शाश्वतता का स्वरूप हमारी मानसिक चेतना और हमारे करणों की गणना से स्वतन्त्र होता है। योग और गुणा की पद्धति से बांधा हुआ शाश्वतता का स्वरूप 'मानसिक' होता है। उस शाश्वतता का यह मन की चेतना पर पड़ने वाला प्रतिबिम्ब है। मानव मन इसी को शाश्वतता कहता है।

अनन्त वास्तविकता का स्वतःसिद्ध अर्थात् स्वयंभू गुण शाश्वतता है ऐसा कहना अधिक यथार्थ मालूम होगा। यह शाश्वतता मनुष्य के लिये दो रूपों में अनुभवगम्य बनती है। एक, गतिमान् काल के अनन्त सातत्य के रूप में— अर्थात्–प्रवहमान काल शाश्वतता, दूसरे, गतिमान् काल से परे अव्यापारमय सत् चित् और आनन्द की स्वयम्भू सत्ता में रहने वाली कालातीत शाश्वतता। काव्य के प्रारम्भ में कवि ऊर्ध्व में रहने वाले इस कालातीत शाश्वत का दर्शन हमें कराता है एकरंगी, धीर, सुषुप्त महासागर' के रूप में। कालातीत शाश्वतता का यह गति शून्य महासागर 'मूक, निरवधि नीरवता में लीन' पड़ा हुआ है। कालातीत शाश्वतता का यह महा सागर धीर, सुषुप्त, गतिहीन—एकरंगी, अव्यापारमय है। तो क्या यह शून्यवत् है ? कवि कहता है, 'नहीं'। सर्व प्रकार के सृजनों की अनन्तविध शक्यताओं को यह कालातीत शाश्वतता का महा सागर एक ही समय में धारण करता है। यह शक्ति प्रचुर होते हुए मूक है, शांत है, नीरव है। आदि से अन्त तक अनन्त ब्रह्माण्डों के सर्जन की समस्त शक्यताओं को जो एक ही समय में अपनी कालातीत सत्ता में धारण करे, देखे और माप करे तो ऐसी सत्चित् आनन्द की जो शक्ति है, वही है शाश्वतता। विश्व के और इसी कारण मनुष्य के काल के नियमों से यह परे है और इस अर्थ में यह कालातीत है।

तो फिर यह विश्व और इसमें प्रवाहित काल दोनों ही आए कहां से ? मीमांसा या तत्वज्ञान का शुष्क मार्ग लिये बिना कवि हमें कोई अपार्थिव दर्शन करवा कर इसका उत्तर देता है और ज्ञान के साथ रस का आस्वाद कराता है।

इस कालातीत शाश्वतता के नीरव महा सागर के एकरंगी अनन्त जलराशि पर वक्ररेखा में वेगपूर्वक गति करते हुए सुवर्ण की गेंद जैसा सूर्य आकाश में अपने रास्ते चल रहा है, गति कर रहा है। सोने की गेंद की तरह इस सूर्य को आकाश में किसने फेंका, किसने उछाला ? सहज लीला करते हुए देवताओं ने। ठीक है, अनन्त सृष्टि का लीलामात्र में सृजन करने वाले देवों ने इस जाज्वल्यमान सुवर्ण की गेंद रूपी सूर्य को

उछालकर काल को उत्पन्न किया, प्रवाहित किया और साथ साथ गतिमाम् काल की शाश्वतता को भी। देवताओं का उछाला हुआ यह हिरण्यमय गेंद (सूर्य) ही काल का जाज्वल्यमान नेत्र बन रहा है और काल के नेत्र रूपी इस सूर्य की दृष्टि जहां जहां पड़ती है, वहां वहां मनुष्य के काल का मानदण्ड समझा जाने वाला-दिन न गति करता, न हटता, न चलायमान होता है ! काल का यह "तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात्"-देवनिहित चक्षु समस्त दिन स्थिर, अचल खड़ा है ! सूर्य के प्रकाशित नेत्र पथ में हमेशा वर्तमान ही होता है, इसी से गतिमान् काल की शाश्वतता प्रत्यक्ष होती है।

गतिमान् काल की शाश्वतता में हमारी वसुन्धरा है। इसकी सामान्य गति नीचे के प्रदेशों में है। वहां अन्धकार और ज्योति दोनों इकट्ठे और अविभाज्य हैं। यथार्थ में वसुन्धरा के जीवन में ज्योति की बजाय अन्धकार अधिक है। पार्थिवता में सतत-गति है, क्रिया है उत्क्रान्ति है, विकासशीलता है। यह गति दो दिशाओं में होती है, एक सीधी. ऊर्ध्व प्रदेश की अपारमेय ज्योति की ओर और दूसरी तिर्यक् यानी समानान्तर ऊर्ध्व में रहने वाले दिव्य ज्योति के प्रदेशों की ओर आरोहण करने का प्रयत्न भी यह करती है। न 'दुरारोह, सीधे, कठिन, सरलोन्नत' प्रदेशों की तरफ आरोहण करने में उसको बहुत कठिनाइयां पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त पार्थिव जीवन की रंगलीला, इसके आकर्षक कार्यक्षेत्रों से अत्यधिक दूर जाकर बरफ में, जमे हुए प्रदेशों की कड़कती सरदी में और निर्जनता भरे अरण्य में इसको यह आरोहण करना है और इस अति कष्ट साध्य प्रदेश में वसुन्धरा की अभीप्सा अपने पैर को बहुत कठिनाई से स्थिर करके दिव्य अनन्त ज्योति के प्रदेशों की ओर जैसे तैसे करके पहुँचती है। परन्तु वह थोड़े ही समय के लिये तुरन्त ही श्रान्त क्लान्त होकर वह नीचे गिर जाती है। अपनी प्राप्ति के विजय का आनन्द मनाने के लिये भी वह स्थिर खड़ी नहीं रह सकती।

और फिर भी—मर्त्यकाल की मर्यादा में इसका कर्तव्य रहते हुए भी—वसुन्धरा की यह एकाग्र अभीप्सा ऊर्ध्व की ओर आरोहण करने में सफल होती है और असीम अनन्त ज्योति को आंकती है।

अथवा. वसुन्धरा की आत्मा के जीवन रूपी अरण्य के क्षुधार्त विस्तार में हमें इसके अन्तर में कार्य करने वाली अतृप्त तृष्णा की झांकी होती है। जीवन के अनन्तविध अरण्य जैसे शुष्क महा विस्तार में चाहे एक श्वास ही मालूम दे, चाहे एक आवाज ही हम सुनें. परन्तु यह श्वास, यह आवाज काल में गतिमान् हुई समग्र शाश्वतता की झलक हमें प्रत्यक्ष कराती है; इस छोटे से खंड में रहस्यमय अखंड का हम दर्शन करते हैं।

अब जीवन के इस विशाल अरण्य में से मर्त्य जीवन की नश्वर घड़ियों में आइये। वहां हिरण्यमय सूर्य के जाज्वल्यमान—कालनेत्र के पास स्थिर रहने वाले दिन की घड़ियां मनुष्य के लिये स्थिर नहीं, चंचल है, गतिमान् है, चारों तरफ फिरती—फिरती नाच रही हैं, और नाचती नाचती ही लय हो जाती है, शक्तिहीन हो जाती हैं, और नाश को प्राप्त होती हैं। फिर भी, इन घड़ियों में से देहधारी आत्मा द्वारा छीनी हुई एक आध पल की समग्र शाश्वतता से कैसे लबालब भरी हुई होती है ! किसी महापुरुष की महत्ता हमें इतनी अपार्थिव, इतनी दिव्यता के समीप. दिव्यता की ऐसी हूबहू प्रतिकृति रूप दिखाई देती है। संगीत के किसी एक दिव्य उड्डयन का असर आत्मा को ऊर्ध्व में, किसी अपार्थिव दिव्य लोक में इतना आरोहण करा देने वाला होता है, कोई

क्षणिक स्थूल स्पर्श सूक्ष्मातिसूक्ष्म और गूढ दिव्य भाव का इतना सफल वाहन बनता है, होठ के कोने में फड़क कर अदृश्य हो जाने वाला कोई एक स्मित ऐसे चिरस्थायी दिव्य आनन्द की छाप छोड़ देता है, कि यह नाशवान् मालूम देने वाली पल अनश्वर बन जाती है, किसी अमर वस्तु की पूर्णता हमें अनुभव कराती है। यद्यपि, हमारा अनुभव एक आध क्षण का ही शायद होता है, परन्तु इस क्षण में अथवा क्षण के भी अपूर्णांश में हमें समग्र शाश्वतता की–कालातीत सच्चिदानन्द की झलक की सम्पूर्ण झांकी हो जाती है। इसमें जिस सत्य का दर्शन होता है, वास्तविकता की जो अनुभूति होती है, वह अखंड कालातीत परात्परता की होती है। मानो काल के नेत्र रूपी सूर्य के सामने निश्चल खड़े हुए दिन की यह नाशवान् मालूम देने वाली क्षण, यह पल, 'कोई मुझे झपट ले,' कोई मेरे में लबालब भरी हुई शाश्वतता को देख ले ऐसी प्रतीक्षा कर रही हो !

और जहां तक यह शाश्वतता झपट ली नहीं जाती तब तक यह पल मानो भटकती ही रहती है, स्थिरता को प्राप्त नहीं करती, अपने स्थान में प्रतिष्ठित नहीं होती। बाहर से देखने में निर्जीव मालूम देने वाली परन्तु सर्वमयता को अपने में धारण करने वाली इस पल में जब देहधारी आत्मा इस सर्वमयता का दर्शन करता है तब शाश्वतता के अनुभव का निरतिशय आनन्द वह नश्वर पल में से भी प्राप्त कर सकता है।

एक तरफ उर्ध्व में सत् है, शाश्वत सत्ता है, निरपेक्ष केवल है, वह शाश्वत है। दूसरी तरफ, मानव चेतना की ओर से देखते हुए, इस कालातीत शाश्वत के साथ संयुक्त उसका शाश्वत आविर्भाव है अभिव्यक्ति है – विश्व है, जगत् है। यह भी शाश्वत है। आविर्भाव में गतिमान काल का जो प्रत्यक्ष स्वरूप है उसके एक एक पल में उसकी समग्रता मौजूद है। इतना ही नहीं परन्तु इस गतिमान काल की शाश्वतता का मूल गति से परे अचल शाश्वतता में है। इस लिये काल की नश्वर पल भी उस परात्पर कालातीत शाश्वतता की झलक हमें करा सकती है। कब ? हम उसे देखने का अधिकार प्राप्त करलें तब।

ऐसा दर्शन करने वाले ने ही कहा है. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्। यह सब प्रभु का निवास स्थान बनने के लायक है––जो कुछ इस जगत् में हिलजुल रहा है वह सब।' और ऐसा कहकर उसने इस समस्त विश्व को प्रभु के मन्दिर की पवित्रता प्रदान की––समस्त सृष्टि को पालनकारी बनाया !

सामान्य जीवन के अनुभवों में भी अखंड की, समग्रताकी, शाश्वतता की झांकी मनुष्य को किस तरह से होती है उसका कविवर टैगोर ने सादृश्यों का उपयोग करके उल्लेख किया है। गाने वाले के अन्तर में से जब संगीत प्रकट होता है, श्रोतागण तो एक के बाद एक आने वाले स्वर को सुन रहे होते हैं। परन्तु गाने वाले के अन्तर में समग्र संगीत एकत्रित हुआ रहता है और स्वानुभव के अखंड रस में से ये स्वर प्रकट हो रहे होते हैं। इन अलग अलग प्रकट होने वाले स्वरों की श्रेणी द्वारा श्रोता गाने वाले के अन्तर में रहने वाले आनन्द की समग्रता को प्राप्त कर सकता है और यह आस्वाद वह थोड़े स्वरसमूह द्वारा भी ले सकता है। तो फिर, संगीत एक ही समय में, अमर्यादित रूप से किस लिये प्रगट नहीं होता यह प्रश्न उठना सम्भव है। उत्तर यह है कि कला सर्जन, अर्थात् मर्यादाओं का, रूप निर्माण की शर्तों का स्वीकार। ऐसा स्वर विशिष्ट सर्जन मानव शक्तिओं को यदि ग्रहण करना हो तो वह मर्यादाओं में ही हो सकता है,

यह मर्यादाएं अमर्यादा को असीम को प्रगट करने का साधन रूप होती हैं, बंधन या कारागार रूप नहीं होतीं !

ऐसा एक दूसरा उदाहरण सामान्य जीवन में भी हमें देखने को मिलता है। जब डाक्टर किसी मनुष्य की तन्दरुस्ती की जांच करता है तब वह उसके हृदय की चिकित्सा उसकी कुछ धड़कन को सुनकर करता है। यह धड़कन समग्र जीवन शक्ति के प्रतीक के तौर पर वह समझता है और इन थोड़े से स्पन्दनों से ही समग्र का यथार्थ अन्दाजा वह लगा सकता है।

इस प्रकार से जब मर्यादित में अमर्यादित की, ऐहिक में परात्पर की, सांत में अनन्त की अभिव्यक्ति होती है तब काल की नश्वर, नीर्जीव मालूम देने वाली क्षण समग्र शाश्वतता का भार वहन करता है।

ठीक यही अनुभव श्री अरविन्द के अन्य वाक्यों में भिन्न २ रूप में हमें देखने को मिलता है। उ. त. सावित्री, पु. १ सर्ग १ में—

'Spiritual beauty illumining
human sight
Linis with its passion and
beauty Matter's mask
And squanders eternity
on a beat of Time,

प्रभु का दिव्य सौन्दर्य चौंधियाता मानव दृष्टि को
श्रेणीबद्ध करे जड़के बुर्के को उसके आवेग और
रूप के साथ
उँड़ेल दे समस्त शाश्वतता काल के क्षण एक पर।

जड़ पदार्थ को रूप का आश्रय लेकर दिव्य सौन्दर्य प्रगट होता है, इसमें कोई दिव्य भाव व्यक्त होता है परन्तु मनुष्य उसे अपने चर्मचक्षु से देख नहीं सकता। यह तो जब वह निखिल सौन्दर्य निधि अपनी दिव्य अंजन उसकी आंख में लगाते हैं तब उसे इस दिव्य सौन्दर्य का दर्शन होता है और तब यह देखता है कि काल की एक पल में यह परात्पर सौन्दर्य निधि अपनी शाश्वतता को किसी उड़ाउ व्यक्ति की तरह चारों तरफ बखेर रहा है। इसके इन कार्यों में मनुष्य देख सके ऐसा कोई हेतु, उपयोगिता या सकारणता होती नहीं। मनुष्य के चारों ओर यह दिव्य सौन्दर्य हमेशा व्यापित है, फिर भी मनुष्य उसे देखता नहीं, इस सौन्दर्य का प्रवाह व्यर्थ बहा जा रहा है। "पानी बिच मीन पियासी" ऐसा कहने वाले कबीर सच्चे थे इस दिव्य सौन्दर्य का दर्शन करने के लिये इन्द्रियों का निग्रह करने की या स्थूल चेतना से दूर किसी समाधि में जाने की जरूरत नहीं यह भी भक्त कबीर ने सुन्दर रूप में गाया है—

'संतो सहज समाध भली'........
आंख न मूंदुं, कान न रूंधुं, काया कष्ट न धारूं,
खुले नयन मैं हंस हंस देखू, सुन्दर रूप निहारूं।'
'सबहि मूरत बीच अमूरत, मूरत को बलिहारी।'

यह दर्शन कब होता है ? जब ऊपर जिस का उल्लेख किया है वह अंजन दिव्य चेतना डालता है। जीवन का यह एक परम रहस्य है इसके नश्वर स्वरूप भी परात्पर के और शाश्वत के वाहन बनकर रहते हैं और जीवन के शुष्क व्यवहार में भी इस दिव्य सौन्दर्य और अनन्त शाश्वतता का प्रवाह बहता है।

जिस स्थिति में ऐसा सौन्दर्य दर्शन होता है उसका वर्णन 'सावित्री' में दूसरी जगह हमें मिलता है—

'His mind could rest
on the supernal ground
And look down
on the magic and play
Where the god-child lies

on the lap of night and dawn
And the Everlasting puts
on Time's disguise.'

इस ऊर्ध्व लोक में रखकर चित्त अपना
नीचे देखे जग की लीला.
जहां उषा और निशा की गोद में
सोया है प्रभु बाल रूपे,
और शाश्वत जहां पहने हुए है काल का घूँघट
पु. १–सर्ग. २

यह रूपक ऋग्वेद में (१-६५-१) इस प्रकार दिखाई देता है—

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
'Knowledge and Ignorance suckle alternately the divine child.

विद्या और अविद्या कराती रहती है
स्तनपान इस बारी बारी से इस दिव्य शिशु को

अज्ञान दशा में भी कोई दिव्य आविर्भाव अपनी शक्यता सिद्ध करने की तरफ प्रगति करता रहता है, यह यहां देखा जा सकता है ।

शाश्वतता कालातीत है, भूत, भविष्यत्, वर्तमान से पर है, उसी तरह काल की अनवधि–काल के प्रवाह का सातत्य, वर्तमान, भूत, भविष्य की नित्यता–भी शाश्वत है । सनातन कालातीत परस्पर स्वयं ही काल की गति का रूप धारण करता है । और काल की इस गति में क्रम-क्रम से किसी दिव्य आविर्भाव की–दिव्य बालक के जन्म की घटना अनावरित होती आ रही है ।

हमारा अज्ञानमय जगत तो हमेशा माया के जाल के वश, दुःखी, अनाथ, अशक्त और इसी कारण पूर्णता का और प्रभुता का अनधिकारी ही रहता है, ऐसी धारणा जो जगत का बाह्य स्वरूप देखकर तथा अपने अन्तर का मौजूदा अहं प्रधान गठन देखकर होता है वह यथार्थ में ठीक नहीं । इस छोटे से काव्य (पल में शाश्वतता) के द्रष्टा हमें एक नवीन ही दृष्टि देते हैं और हमारे अन्तर का विश्वास दिलाते हैं कि अविद्या, अज्ञान और हमें खटकने वाले उनके भिन्न भिन्न स्वरूप यथार्थ में जैसे दिखाई देते हैं तैसे अन्त में नहीं रहने के । उदाहरणार्थ काल हमें नश्वर, विनाशी प्रतीत होता है परन्तु क्या इसी काल का आश्रय लेकर कोई अपार्थिव दिव्यता विकसित नहीं हो रही ? अविद्या अर्थात् ज्ञान की समूल विरोधी दशा ऐसा नहीं परन्तु ज्ञान की संकुचित स्थिति है। इसी कारण से अविद्या का आश्रय लेकर विकास करना तथा ज्ञान के उच्चोच्च या दिव्य शिखर को पहुँचना सम्भव है । इस सत्य का दर्शन श्री अरविन्द 'सावित्री' में दूसरी एक जगह कराते हैं—

'As a sculptor chisels
a deity out of stone
He slowly chips off
the dark envelope,
The illusion and mystery
of Inconscience
In whose black pall
the Eternal wraps his head
That he may act
unknown in cosmic Time'.

शिल्पी जसे खोदता पत्थर से देवमूर्ति,
वह प्रभु धीरे धीरे छेदता है अंधेरे का यह आवरण
इस अचेतना के गूढ़ रहस्य और माया का आवरण
इसी के काले कफन को लपेट कर अपने सिर में
कार्यकर्ता प्रभु अज्ञात रूपसे इस विश्व महाकाल में
(पु. १.–स. २)

यहां, परात्पर शाश्वत प्रभु की कार्य-पद्धति अचित् का—जड़ तत्व का आश्रय लेकर अपना कार्य स्वयं अज्ञात रहकर करने की है, इस सत्य का उल्लेख मिलता है । और इसके साथ २ सृष्टि का काल प्रवाह शाश्वत के कार्य करने का

क्षेत्र है यह भी स्पष्ट होता है। अन्त में, जैसे जड़ आकारहीन पत्थर में से देवता की मूर्ति तैयार होती है वैसे ही अज्ञानवश मानवता में प्रभु की दिव्य मूर्ति प्रगट होगी यह ध्वनि भी इसमें मौजूद है।

मनुष्य को काल बन्धन रूप लगता है, आत्मा की निरपेक्ष मुक्ति को, इसकी निर्बाधता को मानों काल मर्य्यादा में फंसाता है। वह स्वयं समय का गुलाम है, ऐसा मनुष्य भान करता है परन्तु मनुष्य बन्धन में है, इस लिये कि—

'Man in the succession of the moments lives'.

क्षणों की दारमाला में जीता है जग में यह मनुष्य

इसी लिये वह स्वयं समय का गुलाम है ऐसा उसे लगता है परन्तु क्या हमेंशा के लिये इस प्रकार क्षणों की गति या प्रवाह में रहने के लिये मनुष्य बंधा हुआ है ? कवि कहता है 'नहीं' अपूर्ण मानव जीवन यथार्थ में मर्त्यता की दया पर जीने के लिये नहीं सृजन किया गया। परन्तु इसके सृष्टिकर्ता का कोई दिव्य उद्देश्य पूरा करने के लिये यह सर्जित किया गया है।

"One who has shaped
this world is ever its Lord
Our errors are steps
on the way;
He works through the fierce
vicissitudes of our lives,
He works through hard breath
of battle and toil,
He works through our sins
and sorrows and our tears.'

'रची है सृष्टि जिसने वह हमेशा इसका नाथ है
हमारी भूलें हैं हमारे रास्ते में आगे बढ़ने के पगथिया
हमारे जीवनों की इस भीषण घटमाल में
हमारे रण संग्राम और कर्म संग्राम में
हमारे पाप, अश्रु और शोक में
प्रभु का हाथ है छुपा साधता निज लक्ष्य को।

यह आश्वासन ऐसा वैसा नहीं। अविद्या को, अज्ञान को यह ठेका मिला हुआ नहीं कि वह बिना किसी प्रतीकार के जगत पर अपना चाबुक चलाते रहे। सृष्टि के सर्जनहार ने अपनी रची हुई सृष्टि को प्रवाहित करके नहीं छोड़ दिया, उसने इसे अपने से अलग या दूर नहीं कर दिया। इसका चाहे जो कुछ हो यह शक्य नहीं। अथवा यह किसी अकस्मात् या अनियमित घटना का शिकार बने ऐसी भी शक्यता नहीं। तो फिर अविद्या की, अज्ञान की काली बिन्दी हमेशा के लिये मनुष्य के मस्तक पर रहती है, ऐसे तो प्रभु का निर्माण हो ही कैसे ?

तो फिर, मनुष्य का छुटकारा और केवल मुक्ति ही नहीं परन्तु दिव्यता की प्राप्ति काल की मर्यादा में रहकर प्राप्त करनी सम्भव है ? कवि कहता है, 'हां'। यह कैसे हो ? जब मनुष्य की अज्ञान दशा के अन्धकार में भी उसके अन्तर में किसी गूढ़ अभीप्सा का स्पन्दन हुआ और उसने पूर्णता की, प्रभुता के लिये अभीप्सा की, तब इसकी इस ऊर्मि के प्रत्युत्तर रूप में ऊर्ध्व चेतना में से—

'The brief perpetual
sign recurred above
A glamour from the
unreached transcendence
Iridiscent with the glory
of the unseen,
A message from the
unknown immortal light
Ablaze upon creation's
quivering edge,

Dawn built her aura
of magnificent hues
And buried its seed
of grandeur in the hours.'

हुआ गगन में फिर प्रगट क्षणस्थायी सनातन
संकेत एक
झलकी एक आभा वहां अगम्य परात्पर के धाम से
अदृष्ट प्रभुकी प्रभा से दमकती इन्द्रायुधवर्ण
मानों एक सन्देश हो अज्ञेय अमर्त्य प्रकाश से
जगत के प्रकंपित क्षितिज पै ज्वलंत, उषा ने
है अपना सुभव्य रंगमय तेजमंडल रचाकर
डाल दिया अपनी महान दीप्ति का परम बीज
काल की घड़ी के पेट में।
(सावित्री पु.–१–सर्ग १)

अचिन्त्य परात्पर का कोई दिव्य प्रकाश अमर ज्योति का सन्देश उषा के रूप में प्रगट हुआ। इस दिव्य जीवन की ज्योति, भव्यता और सुन्दरता धारण करने वाली उषा चाहे थोड़े समय के लिये ही दर्शन दे परन्तु वेद की भाषा में—'पुनः पुनः जायमाना।'—फिर फिर से जन्म लेने वाली है। मनुष्य चाहे जिस दिशा में जाए परन्तु अन्त में इस दिव्य जीवन की ऊषा इसको अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहती। क्योंकि अपने दिव्य ऊर्ध्वलोक की भव्यता को यह इस काल की नश्वर दिखाई देने वाली घड़ियों में अंकुरित करती है। जिससे कि काल के मर्यादित लगने वाले प्रवाह में–इसकी प्रवाहित घड़ियों में, भव्यता प्रगट हो, इस तरह मनुष्य को अपने जीवन की सार्थकता का भरोसा मानव जाति के अन्तर में दिव्यता के लिये प्रभु के लिये, फिर फिर से जगने वाली अभीप्सा द्वारा मिलता है और उससे भी अधिक प्रमाण में ऊपर से उसका प्रत्युत्तर देने वाली दिव्य परात्पर की करुणा द्वारा उसको मिलता है।

स्वामी श्रद्धानन्द और उनका महान् कार्य गुरुकुल

वीरेन्द्र विद्यावाचस्पति, एम. ए.

इमर्सन की निम्न लिखित पंक्तियां कितने सुन्दर रुप में स्वामी श्रद्धानन्द का चित्र हमारी आंखों के सामने ला खड़ा करती हैं। जब अन्य व्यक्ति निद्रा में विभोर थे वह वीर सतत चेष्टा कर रहा था; जब और भयाक्रान्त होकर पलायन कर रहे थे वह वीर हिम्मत को बांधे डटा था। उसने राष्ट्र के स्तम्भों की गहरी नींव डाली और गगन चुम्बी राष्ट्रप्रासाद खड़ा कर दिया। क्या सचमुच वह गीता का संयमी नहीं है, जो जाग रहा है। जब कि भुवन भर सोता है या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी

आज महात्मा गांधी और स्वामी श्रद्धानन्द जैसे हुतात्माओं की तपस्या से भारत स्वतंत्र हो चुका है - हम अपना मस्तक गर्व से ऊंचा करके दूसरे राष्ट्रों के साथ कदम से कदम मिला कर चलने की तैयारी कर रहे हैं। देश के सामने उसके विभाजन से उत्पन्न अनेक समस्यायें खड़ी हो गई थीं पर देश की क्रियाशीलता और हमारे योग्य नेता पं० जवाहरलाल नेहरु और सरदार पटेल आदि की जागरूकता उनको विच्छिन्न करती जा रही हैं। बाह्यरूप में हम स्वतन्त्र हो गये हैं पर क्या आन्तरिक स्वतन्त्रता अर्थात् स्वराज्य हमें प्राप्त हो गया है यह प्रश्न आन्तरिक निरीक्षण सहसा हमारे सामने उपस्थित कर देता है। हमारा 'स्व' अपने पर राज्य' है कि नहीं? यह आत्मसंयम और आत्मनियंत्रण ही हमें सामाजिक बाह्य स्वराज्य का अधिकारी बनाता है। योग्यतम नेताओं

के कर्णधार होने पर भी हमारी राष्ट्र नौका में भ्रष्टाचार और स्वार्थ लिप्सा के छिद्र अभी समाप्त होते नज़र नहीं आते। कर्णधारों का बहुत सा कीमती समय व्यर्थ इन छिद्रों के अन्वेषण में समाप्त हो रहा है। यह ठीक है कि यहां से विदा होती हुई ब्रिटिश सत्ता अपनी एक परम्परा हमारे नैतिक पतन के रूप में छोड़ गई है। पिछले महायुद्ध में किसी भी तरह अपना कार्य सिद्ध कर लेना और अर्थ प्राप्त कर लेना एक ध्येय सा बन गया था। वह अभ्यास अभी हमारा शीघ्र पिण्ड नहीं छोड़ रहा। पर हम हमेशा दूसरे के सिरे दोष फेंक कर अपनी मुक्ति नहीं कर सकते। वास्तव में देश के स्वतंत्र होने का एक बड़ा भारी मनोवैज्ञानिक प्रभाव, कि हम स्वतंत्र नागरिक हैं, हम पर या तो पड़ा ही नहीं या हमारी अनुभूति का भाग नहीं बना। हम थोड़ा सा हिल कर जहां के तहां खड़े रह जाना चाहते हैं। इसका एक मात्र कारण राष्ट्रनिर्माण के वास्तविक अंगों की रचनात्मक योजना की ओर ध्यान न देना है।

राष्ट्रनिर्माण करने वाले शिक्षणालय हैं। यदि उनसे पढ़ कर निकलने वाले राष्ट्र के सच्चे नागरिक बनते हैं तो स्वतः 'स्वराज्य' पूर्ण रूप में हमारे सामने आजायगा। अन्य नेता जहां देश को पराधीनता से मुक्त करने में ही अपना सारा समय लगाते रहे और स्वतंत्रता के बाद की रचनात्मक प्रक्रिया को भविष्य के गर्भ में छोड़ते रहे वहां स्वामी श्रद्धानन्द अपनी दूर दृष्टि से दोनों कार्यों में संलग्न रहे। 'गुरुकुल' उनका सबसे महान् कार्य है। विदेशी शासन के प्रभाव से सर्वथा पृथक् रख कर प्राचीन आदर्शों को नवीनतम वैज्ञानिक प्रगति से सामंजस्य उत्पन्न करने वाली संस्था का नगर से दूर प्रकृति के वातावरण में—घोर बन में—संचालन करना उन जैसे महात्मा का ही काम था। वे कहा करते थे स्वराज्य मिला भी पर उसके सम्भालने वाले और ठीक से चलाने वाले योग्य नागरिक न मिले तो वह स्वराज्य टिकेगा कैसे। जामामस्जिद के उच्च आसन से हिन्दू मुसलमानों की एकता उत्पन्न करने का अवसर उन्होंने प्राप्त किया; दिल्ली के घंटाघर के सामने दिल्ली की जनता का नेतृत्व करते हुए गोरखे सैनिकों के संगीनों का खुली छाती से स्वागत किया; जलियान वाला बाग के निर्भय हत्याकाण्ड के बाद पंजाब के आतङ्क ग्रस्त अंचलों का दौरा करके अमृतसर कांग्रेस में उपस्थित प्रतिनिधियों का स्वागताध्यक्ष-पद से स्वागत किया; गुरु का बाग के आन्दोलन में सिक्खों की सहायता करने के उपलक्ष में मियांवाली जेल का कष्ट सहन भी किया और इस तरह ब्रिटिश शासन से लड़ने में और देश को मुक्त करने में देश का नेतृत्व किया पर सबसे बढ़ कर जो उन्होंने काम किया और जो उनको प्राणप्यारा था वह था गुरुकुल। वह उनकी जीवन की साधना थी जिसके लिए आमोद प्रमोद को लात मार कर भिक्षा की झोली को प्रसन्नता से स्वीकार किया। इसे वे राष्ट्र प्रासाद की नींव समझते थे। मुझे वह उनकी गुरुकुल की अन्तिम यात्रा नहीं भूल सकती जिसमें गुरुकुल पताका की स्थापना करते हुए गुरुकुल की मान मर्यादा की रक्षा के लिये ब्रह्मचारियों और स्नातकों को वे आह्वान कर रहे थे। वे गुरुकुल को देश का अग्रणी देखना चाहते थे।

जब अंग्रेजी के गीत गाये जाते थे और अपनी मातृभाषा का उपहास किया जाता था उन्होंने क्रान्तदर्शी ऋषि का काम किया और

शिक्षा का माध्यम हिन्दी को, आर्यभाषा को बनाया। जब अचानक जात पांत के झगड़े, ऊंच नीच के भाव विद्यार्थियों में वैषम्य का बीज बो रहे थे, उन्होंने वास्तविक साम्यवाद की नींव डाली। ब्राह्मण-अब्राह्मण, सवर्ण-असवर्ण, स्पृश्य-अस्पृश्य, उच्च-नीच किसी का विचार नहीं। सब विद्यार्थी हैं, एक साथ रहने वाले हैं, एक सा पहनने वाले हैं और एक सा ही खान पीने वाले हैं। वेद सब पढ़ सकते हैं, संस्कृत माता-मही पर सब का एक सा अधिकार है, हिन्दी जननी की सेवा सब का पवित्र कार्य है, किसी प्रकार के ज्ञान से घृणा नहीं, सब मिल कर देश के सेवक नागरिक बनने की साधना कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में कहां से भेद भाव, कहां से भ्रष्टाचार और कहां से स्वार्थलिप्सा ! सचमुच यदि स्वामी श्रद्धानन्द के स्वप्न के अनुरूप योग्य नागरिक स्नातक बड़ी संख्या में निकलते और उनको सरकार के उत्तर-दायित्व पूर्ण पदों पर कार्य करने का विस्तृत रूप में अवसर मिलता तो नेताओं को, पदाधिकारियों को नैतिक पतन और भ्रष्टाचार से बचने का निरन्तर उपदेश न देना पड़ता।

अब तो विश्वविद्यालयों के दीक्षान्तों से यही ध्वनि आ रही है कि योग्य नागरिक बनो, सेवा-भाव रखो और अपना उत्तरदायित्व समझो। गुरुकुल ने इस दिशा में अपनी शक्ति भर बड़ा काम किया है। पर परिस्थितियों के अनुरूप अपने परिवर्तित करने में विलम्ब ने और कुछ दूर वर्तमान अपनी सरकार के सक्रिय सहयोग लेने में विलम्ब ने इसे जनता की दृष्टि में उपयुक्त स्थान से कुछ ओझल सा कर दिया। अब अपनी सरकार है; उससे असहयोग का कुछ मतलब नहीं। उसका सहयोग प्राप्त करके शीघ्र से शीघ्र गुरुकुल को एक 'चार्टर्ड यूनिवर्सिटी' बना लेना चाहिये। संयुक्त-प्रान्त की और बिहार की सरकारों ने नौकरियों के लिये गुरुकुल की उपाधि को स्वीकृत कर लिया, विद्या-लंकार और वेदालंकार बी. ए. के समकक्ष हैं और विद्यावाचस्पति एम. ए. के। 'आगरा यूनि-वर्सिटी' ने अलंकार को बी. ए. के बराबर स्वीकृत करके एम. ए. में प्रवेश का अधिकार दे दिया है। अन्यत्र भी इसी तरह का प्रयत्न चल रहा है। यह सब बड़ी प्रसन्नता की बात है पर क्यों न परमुखापेक्षी होने की अपेक्षा अपना स्वतन्त्र विश्वविद्यालय हो जो सरकार से स्वीकृत हो। संयुक्त प्रान्त की व्यवस्थापिका सभा में इस तरह का बिल कोई मान्य सदस्य उपस्थित कर सकते हैं। श्री गोविन्द वल्लभ पंत जैसे प्रधान मंत्री और श्री सम्पूर्णानन्द जैसे शिक्षा मंत्री इसको अवश्य स्वीकृत करेंगे, ऐसी आशा रखनी चाहिये। दोनों गुरुकुल का दीक्षान्त भाषण दे चुके हैं और उसकी गतिविधि से परिचित रहे हैं। स्नातकों को भी योग्य पदों पर जाकर अपनी कर्तव्य-निष्ठा की धाक जमानी चाहिये। देश विभाजन के कारण पंजाब से मिलने वाली सहायता में अवश्य कमी आ चुकी है। पर जनता उत्तम कार्य के लिये सहायता देने में कभी हिचक नहीं करती एक बार 'चार्टर्ड यूनिवर्सिटी' बन जाने पर अपनी प्राचीन परम्परा उदारता के साथ कायम रखने से और परिवर्तित परिस्थिति के अनुरूप आदर्शो-न्मुख वैधानिक परिवर्तित कर लेने से गुरुकुल स्वामी श्रद्धानन्द का नाम अमर रखेगा। स्वामी श्रद्धानन्द यदि जीवित रहते तो परिवर्तित परि-स्थिति में गुरुकुल सब विश्वविद्यालयों में मूर्धन्य हो गया होता। अब भी उनके योग्य पुत्र श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति का वरद हाथ है। उनसे आशा की जा सकती है कि वे गुरुकुल को इसी तरह का बनाकर छोड़ेंगे।

एक अंग्रेजी की लोकोक्ति है—'Time and tide wait for no man' समय

किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। उपयुक्त समय में उसका पूरा लाभ ले लेना यह मनुष्य की बड़ी योग्यता है। इस समय यदि हम 'गुरुकुल' को उचित स्थिति-आदर्श और क्रियात्मक दोनों रूपों में—प्राप्त करा सके तो हम स्वामी श्रद्धानन्द के योग्य शिष्य और अनुयायी कहला सकेंगे और जो एक वीर का कार्य उन्होंने किया था उसे जीवित जाग्रत रख सकेंगे। यही स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति सबसे बड़ी श्रद्धाञ्जलि होगी।

शिवरात्रि का अमर संदेश

चन्द्रकान्त वेदवाचस्पति

शिवरात्रि के अन्धेरे में शिव-मूर्ति पर चढ़े हुवे मूषक को देखकर मूलशंकर को ऐसा सत्य मिला जिससे वह रात शिवप्रभात बन गई। मूलशंकर गीता के "पश्यन्मुनि" बन गये। "यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः"। वृक्ष से गिरते हुवे फल को देख कर न्यूटन को 'गुरुत्वाकर्षण' के सिद्धांत का साक्षात्कार हुवा, शाक्यमुनि सिद्धार्थ ने वृद्ध, सन्यासी रोगी एवं मृत को देखकर मध्यम-प्रतिपदा से बुद्ध [Enlightend] पद पाया। इसी प्रकार मूलशंकर को मूषक ने निराकार बुद्ध का दर्शन कराया। अनित्य को नित्य, अशुचि को शुचि, दुःखमय को सुखमय और अनात्मा को आत्मा समझना अविद्या है, साकार की पूजा अविद्या है अतः सब पापों की जड़ है। शिव, विष्णु, गणेश ब्रह्मा आदि सब एक ही निराकार बुद्ध के नाम होते हुवे भी स्वार्थ-पटु मनुष्यों ने इसे पत्थर की मूर्तियों में सीमित कर दिया है, शिव, विष्णु को आगे करके एक दूसरे से लड़ाते हैं, छोटे छोटे विधि-विधान युद्ध के साधन बन गये हैं। मूर्ति पूजा विरोधी इस्लाम की भी यही अवस्था है. शिया, सुन्नी, वहाबी, भी एक दूसरे से मतमतान्तरों में होने वाली लड़ाइयों की जड़ में यदि कोई रोग है तो यही है। मुसलमान भाइयों ने मंदिर तोड़े परन्तु काबा, कुरान, और कब्र की पूजा न छोड़ी। अखण्ड निराकार बुद्ध विश्व का पिता होने से हमें आलिंगन किये हुवे है तथापि मंदिर, मसजिद, बांग, बाजे और तिलक के चक्कर में उसे हम भूल चुके हैं। हिन्दुओं के तथा हिन्दु और मुसलमानों के पारस्परिक झगड़ों की जड़ में मसजिद, मंदिर और बाजे ही तो हैं। सचमुच इस मूर्तिपूजा ने मनुष्यों को मनुष्यों से, एक जाति को दूसरी जाति से लड़वाया है, खून की नदियां बहाई हैं। यूरोप के इतिहास में [Crusade] धर्मयुद्धों के पीछे किसका हाथ था? कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट एक दूसरे के गले क्यों काटते रहे? ईसाइयों ने अपने पैगम्बर ईसामसीह के सम्बन्धी यहूदियों से क्यों अन्याय किया? इतिहास बताता है कि धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक युद्धों के मूल में तत्वतः मूर्तिपूजा का ही घुन लगा हुवा है। महर्षि ने इस दिव्य सत्य को समझकर ही सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में ही "यो देवानां नामध एक एव" का अमर मन्त्र हमें सुनाया है।

आज एक जाति दूसरी का गला घोंटने को तैयार है। दिव्य शांति के लिये शांतिपरिषदें बुलाई गई परंतु war to end war के स्थान पर तृतीय युद्ध के नज़ारे दीख रहे हैं। राष्ट्रीयता का हौवा युद्ध के देवता को तृप्त कर रहा है। हर एक राष्ट्र का अपना अलग अलग झंडा [Flag] है। इन झंडों के नीचे शांति के गान गाये जाते हैं परंतु हृदय में राग द्वेष की ज्वालायें जल रही होती हैं। क्या इन झंडों ने विश्व को खण्डित नहीं कर रक्खा?

राष्ट्रों के झंडे मूर्तिपूजा के मूर्तरूप हैं। महर्षी की आर्ष दृष्टि में संसार में शांति को फैलाने के लिए एक ओंकार का ही झंडा होना चाहिये। अलग अलग झंडे युद्धों के निशान हैं। इनसे शांति की आशा करना व्यर्थ है। मूर्तिपूजा ने हिन्दुओं को भेद की दीवालों में बांट कर जाति को विघटत किया है। जितने हिन्दु उतने ही उनके देव। फिर एकता कैसे हो? एक अल्ला की पूजा करने वाले मुसलमान एक आवाज़ पर एक हो जाते हैं। मूर्तिपूजा ने द्विजों के द्वारा शूद्रों को अपमानित किया परिणाम यह हुवा कि लाखों हिन्दु मुसलमान और ईसाई बने। वेद एवं गीता को छोड़ कर बाइबल और कुरान पढ़ने लगे। मूर्तिपूजा के कारण ही हिन्दुओं में सैंकड़ों भेद हुवे फिर मुसलमानों के साथ एकता कैसे हो सकती थी? हिन्दु पानी और मुसलिम पानी हिन्दु चाय, मुस्लिम चाय इसका क्या मतलब है? [Devide and rule] का मंत्र जपने वाले अंग्रेजों ने इसका लाभ उठाया, भारतवर्ष को छोड़ते हुवे भी फूट का बीज बोते गये। मुसलमानों ने नारे लगाये—"हंस हंस के लिया पाकिस्तान अब लडके लेंगे हिन्दुस्तान" हिन्दुओं के रोम रोम में रमी हुई मूर्तिपूजा ने भारत को खण्डित किया और हमने अपने राष्ट्र पिता महात्मा गांधी जी को खोया। परंतु अब भी मूर्तिपूजा गई नहीं है।

फरुखाबाद के मेजिस्ट्रेट स्कोट की सहायता से मूर्तिपूजा को दबाने की प्रेरणा करने वाले भाइयों को मेरे ऋषि ने क्या ही सुन्दर कहा—मुसलमानों ने मंदिरों को तुड़वाया पर मूर्तिपूजा बंद न हुई। हृदय मंदिर से मूर्तियों को दूर करोगे तब सफलता मिलेगी" हमें यह घटना रह रह कर याद आती है इस की २० वीं शती में दरिद्रनारायण के सेवक पूज्य महात्मा जी की राख पर बड़े २ मंदिर खड़े किये जा रहे हैं—यह कहां तक उचित है? मृत्यु शय्या पर पड़े हुवे मेरे ऋषि ने कविराज शामलदास को कहा था कि "मेरी राख को ज़मीन में डाल देना, नहीं तो लोग उस पर मंदिर बनावेंगे। शिवरात्रि की रात हमें संदेश सुना रही है कि मूर्तिपूजा रूपी अविद्या से बचो और देश को बचाओ" शिवरात्रि की रात में जली हुई मूलशंकर के हृदय की ज्योति दिव्य दयानन्द की अमर दीपावली बन गई। आओ! आज हम श्रद्धा से शिवरात्रि का संदेश सुनें।

दैनिक जीवन में आत्म निर्देश का प्रयोग

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.

सजेशन या निर्देश विधि बहुत पुरानी है। इसका प्रयोग भारत के ऋषि मुनियों तथा योरोप में मानस चिकित्सकों ने समान रूप से किया है। कूये साहब ने प्रथम बार इसे मनोवैज्ञानिक रूप देकर इसके वैज्ञानिक अध्ययन का प्रयत्न किया। कूये ने अपनी निर्देश विधि से हिस्टीरिया, अनिद्रा अकारण भय आदि मानसिक रोगों को सफलता से दूर किया। कूये साहब ने रोगी के गुप्त दलित भाव को जानने की इच्छा न की, न उसका विश्लेषण किया। इस लिए उनकी क्रिया कुछ अधूरी सी रही। आधुनिक युग में फ्रायड के मनोविश्लेषण के पश्चात् कूये की निर्देश विधि के द्वारा पुनः शिक्षा का प्रयत्न किया जाता है।

संकेत विधि उन स्वीकृतियों को कहते हैं जो रोगी करता जाता है। उसका मन उन्हें स्वीकार करता जाता है। प्रत्येक आत्म स्वीकृति से कुछ लाभ होता है। रेचन से कलुषित और गन्दे मनोभाव [illegible]

विचार और हितैषी भावनाएं अन्तर्गत में बिठाई जाती है। शुभ और ऐसे पवित्र विश्वास रोगी के मन में जमाने की क्रिया को पुनः शिक्षा कहते हैं यह एक प्रकार से रोगी के मन में नैतिक और शुभ दृष्टिकोण जमाना है। यह स्थायी स्वास्थ्य के लिए बहुत आवश्यक है। पुनः शिक्षण पद्धति से मानसिक अन्तर्द्वंद्व नष्ट हो जाता है और ठोस नैतिकता की सृष्टि होती है।

निर्देश के दो भाग हैं—दूसरों को निर्देश देना तथा आत्म निर्देश अर्थात् स्वयं अपने आप को निर्देश देना। दूसरों को वहीं स्वस्थ निर्देश दे सकता है, जो स्वयं पूर्ण रूप से स्वस्थ हो। अपने आपको पूर्ण स्वस्थ बनाने के लिए आत्म निर्देश का प्रयोग किया जाता है। आत्म निर्देश बहुत बड़ी आध्यात्मिक शक्ति है। जो व्यक्ति अकल्याणकारी विचारों में लिप्त रहता है, बुरा ही सोचता है, या अपने आपको रोगी समझता है, वह कैसे दूसरे को स्वस्थ करेगा?

आत्म निर्देश किया कीजिये। शान्तिदायक पवित्र विचारों, शुभ भावनाओं हितैषी विश्वासों में रमण करना मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा अच्छा है अपने आपको शक्तिशाली होने, महान् बनने, पूर्ण स्वस्थ रहने के निर्देश दिया कीजिये। जैसा आप अपने आपको समझते हैं, वस्तुतः वैसे ही आप हैं। इच्छाशक्ति को अपने सौभाग्य पर केन्द्रित किया कीजिये। दूसरों के अनुचित विचारों के साथ न बहने की शक्ति से ही हम ऊंचे उठ सकते हैं। यही आत्म-निर्देश का रहस्य है। प्रो० लालजीराम शुक्ल के शब्दों में; "आत्म निर्देश की शक्तिवृद्धि के लिए इस बाह्य दृश्य संसार से मन हटाकर अपने बारे में सोचना चाहिए; मनुष्य को बाहरी क्षणिक लाभों से छोड़कर मन को वश में करने की साधना करनी चाहिए। इससे इच्छाशक्ति बलवती होती है ऐसे व्यक्ति का आत्म निर्देश कभी विफल नहीं जा सकता।"

पेड़-पौदों का भारतीय वैज्ञानिक नामकरण

आचार्य रघुवीर

जिन भारतीय वनस्पति शास्त्रज्ञों की मातृभाषा कोई भारतीय भाषा है परन्तु जिन्होंने उद्भिद् विद्या का ज्ञान अंग्रेजी के द्वारा प्राप्त किया है, उनका यह दृढ़ विश्वास है कि वर्णनात्मक शब्दावली का तो आंग्ल भाषा से भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया जा सकता है, परन्तु वर्गों, कुलों प्रजातियों, जातियों आदि के नाम इतने पूज्य हैं कि उनको भारतीय भाषाओं में अनुवाद ही नहीं किया जाना चाहिये। उनकी स्थापना है कि वनस्पतियों के नाम लैटिन के हैं और हम भारतीयों को लैटिन के स्थान में संस्कृत शब्द रखने का कोई अधिकार नहीं। उनका तर्क है कि लैटिन नाम समस्त योरोपीय देशों में समान रूप से प्रचलित हैं और शेष संसार उन्हें अंगीकार करता है अथवा उसे अंगीकार करना चाहिये।

योरोपीय उद्भिद् विज्ञों में लैटिन अथवा उससे उद्भूत नामों के रखने की प्रगाढ़ रूढ़ि है। यदि ऐसी रूढ़ि योरोप में हो तो हम ऐसे नामकरण को क्यों न अपना लेवें? इसके लिये हम मूलभूत प्रश्न से आरंभ करेंगे कि हम किस हेतु अनुवाद करते हैं? हम उन लोगों के लाभ के लिये अनुवाद करते हैं जो विदेशी भाषा में दक्षता प्राप्त करने के लिए पांच से लेकर पन्द्रह वर्ष तक व्यतीत करने में असमर्थ हैं। संक्षेपतः, हम समय की बचत, श्रम की बचत के लिये अनुवाद करते हैं। हम सुकर और शीघ्र ज्ञान प्रसार के लिये अनुवाद करते हैं। यदि यह उद्देश्य उच्च है, तो किसी को भी लैटिन शब्दों के भाषान्तर पर

आपत्ति न करनी चाहिए।

लैटिन नाम हौवा हैं। वे औसत अंग्रेज के लिये भी बोधगम्य नहीं हैं। जी. एफ. ज़िमर कृत ए पाप्युलर डिक्शनरी आफ बोटेनिकल नेम्स एन्ड टर्म्स अर्थात् उद्भिद् नामों तथा शब्दों का सर्वप्रिय शब्दकोष का एक उद्धरण इस प्रकार है—

'हम अपने जन समुदाय और ज्ञान के सुन्दरतम द्वार अर्थात् वनस्पति शास्त्र के बीच विजातीय नामों के कंटकाकीर्ण मार्ग को अस्तित्व में रहने ही क्यों दें! ये अपरिचित तथा शुष्क नाम शब्दजात अभिरुचि का सूत्रपात करने में सर्वथा असमर्थ हैं। जिन पदार्थों का वे निरूपण करते हैं उन्हीं में से अभिरुचि का सम्पूर्णतः सर्जन होता है। इन विचित्र नामों को अपनी भाषा अर्थात् अंग्रेजी के पर्याय देकर अधिक रुचिकर बनाना ही इस शब्दकोष का मुख्य लक्ष्य है।' लन्दन, १९४६ संस्करण।

हम भारत-वासियों का सुसम्पन्न आयुर्वैदिक साहित्य है जिसमें एक सहस्र से अधिक पौधों और जड़ी बूटियों के नाम सुरक्षित हैं। ये नाम प्राचीन काल से समस्त भारतवर्ष में प्रचलित हैं। जो लोग आंग्ल भाषा का एक शब्द भी नहीं जानते वे भी इन शब्दों के उपयोग से उद्भिद् विद्या का क्रमबद्ध अभ्यास सरलता पूर्वक कर सकेंगे। कुलों के समानार्थक शब्द हम यहां देते हैं—

Amaryllidaceae सुदर्शन कुल। सुदर्शन से वैद्य अत्यन्त परिचित हैं।

Ampelideae द्राक्षाकुल। द्राक्ष-हिन्दी और पंजाबी में दाख, मराठी में द्राक्ष आदि।

Combretaceae हरीतकी कुल। हरीतकी, हिन्दी में हरड़, पंजाबी में हरीड़।

Coneferae देवदारू कुल। देवदार सुप्रसिद्ध है। मराठी और हिन्दी में देवदारू।

Dipteraceae कर्पूर कुल। कर्पूर यह फारसी, अरबी तथा समस्त आधुनिक योरोपीय भाषाओं में प्रयुक्त किया जाता है। हिन्दी में इसे कपूर तथा मराठी में कापूर कहते हैं।

Capparidaceae करीर कुल। करीर सुप्रसिद्ध है। सार्वजनिक भाषा तक में इसका नाम नहीं बदला।

Cruciferae राजिका कुल। राजिका को हिन्दी में राई कहते हैं।

Euphorbiaceae एरंड कुल। एरंड सुप्रसिद्ध है।

Rutaceae निम्बु कुल। निम्बु मूलतः भारत जात् है। यह समस्त विश्व में फैल चुका है। फारस, अरब और योरोपीय शब्द निम्बू के अपभ्रंश हैं।

Myrtaceae जम्बु कुल। जम्बु हिन्दी में जामुन कहलाता है, पंजाबी में जम्मू और मराठी में जम्बूड़।

Asclepediacea अर्क कुल। अर्क को हिन्दी में आक, और पंजाबी में अक्क कहते हैं।

Labiatae तुलसी कुल तुलसी विख्यात पौदा है।

Lythraceae दाड़िम कुल। दाड़िम अर्थात् अनार मराठी में डाड़िम्ब के नाम से प्रसिद्ध है।

Menispermaceae गुडूची कुल। गुडूची, पुनर्नवा और अपामार्ग परिचित आयुर्वैदिक शब्द हैं।

Nyctaginaceae पुनर्नवा कुल।

Amarantaceae अपामार्ग कुल।

Annonaceae सीताफल कुल।

Anacardiaceae भल्लात कुल। भल्लात के फल से धोबी कपड़ों पर चिन्ह लगाते हैं।

Sapindaceae अरिष्ट कुल। अरिष्ट का हिन्दी तथा मराठी पर्याय रीठा है।

Solanaceae धत्तुर कुल । धतूरा सुप्रसिद्ध विषैला भारतीय पौधा है ।

Magnoliaceae शोभाञ्जन कुल । शोभाञ्जन का पंजाबी नाम सोहांजना है ।

Rananculaceae जीर कुल । जीरा सुपरिचित मसाला है ।

Pedalinaea तिल कुल । तिल भी समस्त भारत भर में विख्यात है ।

Myristicaceae जातिफल कुल । जातिफल का हिन्दी तथा मराठी नाम जायफल है ।

Nymphaceae कमल कुल । कमल के लिये किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है ।

Piperaceae पिप्पली कुल । पिप्पली ने ही अंग्रेजी भाषा को पेप्पर शब्द दिया ।

Polygonaceae अम्लवेतस कुल । अम्लवेतस का आयुर्वेद में बहुतायत से उपयोग किया जाता है।

apotaceae मधुक कुल । मधूक से हिन्दी में महुआ ।

Scitaminacae हरिद्रा कुल । हरिद्रा से हिन्दी में हल्दी ।

Urticaceae वट कुल । हिन्दी में बड़ और मराठी में बड़ ।

Zygophyllaea गोक्षुर कुल । गोक्षुर से हिंदी पंजाबी, मराठी आदि के गोखरू शब्द का आविर्भाव हुआ ।

Onagoraceae शृंगाट कुल । शृंगाट से हिन्दी में सिंघाड़ा और मराठी में शिंगाढ़ा शब्द बने ।

Pendanaceae केतकी कुल । केतकी से हिन्दी और मराठी में केवड़ा शब्द उत्पन्न हुआ ।

Juglandaceee अक्षोट कुल । अक्षोट से हिन्दी में अखरोट और मराठी में अक्रोट ।

Betulaceae भूर्ज कुल । भूर्ज से उद्भिज सामासिक शब्द भूर्ज पत्र सुपरिचित है। भूर्ज पत्र पर पुस्तकें काश्मीर और नेपाल में लिखी जाती थीं। आंग्ल भाषा का बर्च शब्द संस्कृत के भूर्ज से उद्भूत हुआ है ।

Santelaceae चन्दन कुल । चन्दन भारत में सर्वत्र प्रसिद्ध है । अंग्रेजी का सैन्डल और अर्बी का सन्दल संस्कृत के चन्दन के अपभ्रंश हैं ।

भारतीय शब्दों से सारल्य की सरिता बहती है । आंग्ल शब्द अथवा लैटिन शब्द कुलिश के समान कठोर होते हैं और सरलता पूर्वक स्मरण नहीं किये जा सकते । इस समय हमारे बालक और बालिकाओं को लैटिन शब्द अपने मस्तिष्क में ठूँसने के प्रयास में सप्ताहों और मासों तक अथक श्रम करना पड़ता है । वनस्पति शास्त्र अत्यन्त रुचिकर विषय हो सकता है यदि उसका अभ्यास भारतीय शब्दों द्वारा कराया जावे, अन्यथा यह हमारे विश्वविद्यालयों में एक उपेक्षित विषय ही बना रहेगा ।

वनस्पति शास्त्र वर्णनात्मक विज्ञान है और यदि शुष्क लैटिन शब्दों के स्थान में उपयुक्त भारतीय शब्द रख दिये जावें तो शिक्षित जन में सर्वत्र उसके ज्ञान का प्रकाश फैलाने में कोई कठिनाई न होगी । वनस्पति शास्त्र का कृषि से प्रगाढ़ सम्बन्ध है । हम भारतीय शब्दावली के माध्यम से अपने कृषकों में वनस्पति ज्ञान का प्रसार करने में समर्थ हो सकेंगे जिसका परिणाम सुखद होगा । परन्तु यदि हम अंग्रेजी शब्दों के मोहजाल में पड़े रहे तो इसकी कल्पना तक करना दुस्साध्य होगा ।

सारे विश्व से सम्पर्क स्थापित करना केवल [illegible] का ही काम है जिन्हें अंग्रेजी और अंग्रेजी ही क्या परन्तु जर्मन, फ्रेंच, रूसी, जापानी

और अन्य भाषा सीखनी होगी जिसमें उस विशिष्ट शाखा की प्रख्यात रचनायें हैं, परन्तु उसे भी अपनी मातृभाषा के द्वारा विषयारम्भ करना अधिक रुचिकर प्रतीत होगा।

आजकल वनस्पति शास्त्र वर्ग का वैज्ञानिक अध्ययन लगभग पन्द्रह वर्ष की आयु से आरम्भ होता है। आंग्ल शब्दों के द्वारा इससे कम आयु में आरम्भ करना सम्भव ही नहीं। हमारे शब्दों की सहायता से उसके अभ्यास का श्री गणेश लगभग बारह वर्ष की आयु से किया जा सकेगा। इससे नव शिक्षार्थी, पत्तियों, पुष्पों, फलों तथा पौधों के साम्राज्य में अबोध रूप से परिभ्रमण करा सकेंगे, इसमें उन्हें एक खेल का सा ही आनन्द प्राप्त होगा। जोकि अणुवीक्ष (माइक्रसकोप) की सहायता से सरलता पूर्वक वैज्ञानिक अभ्यास में परिणत किया जा सकेगा।

पारिभाषिक अंग्रेजी शब्दों के प्रचलित रखने के पोषक उन लाभों से अनभिज्ञ हैं जो भारतीय पारिभाषिक शब्दों के परिणाम स्वरूप उद्भूत होंगे। इसके अतिरिक्त, उन लोगों को विश्वास नहीं कि भारतीय पारिभाषिक शब्दावली बनाई जा सकती है। तीसरे वे आलसी हैं और नई पारिभाषिक शब्दावली के सीखने के प्रति उत्साह विहीन हैं चाहे वह उनकी मातृभाषा की शब्दावली ही क्यों न हो। उनकी देशभक्ति तथा जन साधारण में वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार करने के अनुराग की रूपरेखा अभी अंकित ही नहीं हुई है। परन्तु ज्यों ही भारतीय पारिभाषिक शब्दावली का उन्हें साक्षात्कार होगा और वे उसके चमत्कारी परिणामों का अवलोकन करेंगे तो वे सब उसका स्वागत करेंगे। अन्तःकालीन अवधि वास्तव में कष्टसाध्य होगी। इसका साहस पूर्वक सामना करना ही चाहिये।

मध्यकालीन भारत में डाक व्यवस्था

(सन् १३०० से १६०० तक)

प्रोफेसर पी० के० गोडे

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (भाग १८, पृष्ठ ३०३–३१८, चतुर्दश संस्करण, १६२६) में 'डाक तथा उसकी व्यवस्था' नामक लेख में[1] लार्ड क्लाइव द्वारा १७६६ सन् में व्यवस्थापित डाक व्यवस्था से पूर्व भारत में किसी प्रकार की

१—इस लेख के कुछ अंश नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

(क) फारस के सम्राट् साइप्रस (मृत्यु तिथि ५२८ ई० पू०) के उत्तराधिकारियों ने सब से पूर्व डाक व्यवस्था स्थापित की।

(ख) फारस के बादशाहों के उत्तराधिकारी मैसिडोनियन राजाओं ने भी इस व्यवस्था को जारी रखा।

(ग) रोम साम्राज्य ने सरकारी डाक-व्यवस्था को बहुत अधिक उन्नत किया।

(घ) बर्लिन के डाक-म्यूज़ियम में टॉलेमी राजाओं में से किसी एक राजा के दरबार के प्राचीन डाक सम्बन्धी दस्तावेज संगृहीत हैं। यह मैसिडोनियन राजाओं का वंश एक था, जिसने मिश्र में ३२३ से ३० ई० पू० राज्य किया।

(ङ) रोमन साम्राज्य के पतन के साथ २ वहां की डाक व्यवस्था भी अस्त-व्यस्त हो गई।

(च) मध्ययुगों में विश्वविद्यालयों तथा व्यापारी संघों द्वारा स्वतन्त्र डाक व्यवस्थाएं जारी की गईं।

डाक व्यवस्था की चर्चा नहीं की। इस लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि ब्रिटिश आगमन से पूर्व भारतीय व्यवस्था के उद्धरण उपस्थित किये जाएं। इस सम्बन्ध में निम्न उद्धरण अधिक उपयोगी व मनोरञ्जक सिद्ध होंगे—

बर्नियर ने अपने यात्रा वर्णन में भारत में फलों के आयात के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए लिखा है—"यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि हिन्दुस्तान में समरकन्द, बल्ख, बुखारा तथा फारस के तरबूज, सेव, नासपाती तथा अंगूर आदि फलों की अत्यधिक मात्रा में खपत होती है। ये फल देहली में खाए जाते हैं और लगभग सम्पूर्ण शीतकाल में ऊँची कीमतों पर खरीदे जाते हैं। इसी प्रकार बादाम, पिश्ता आदि सूखे मेवों के साथ २ खजूर, खुमानी तथा किशमिश आदि भी बारह महीनों आते रहते हैं।"२

आश्चर्य होता है कि ये ताजे फल बिना खराब हुए किस प्रकार इतनी दूर से देहली में लाये जाते होंगे, जबकि इनके आने में कई सप्ताह नहीं तो कई दिन तो अवश्य लगते होंगे। इस लिए यह स्पष्ट है कि समरकन्द, बुखारा तथा फारस जैसे दूरस्थ प्रदेशों से ताजे फल को शीघ्रातिशीघ्र लाने की कोई विशेष व्यवस्था अवश्य होगी। सौभाग्य से इस व्यवस्था के सम्बन्ध में इब्न बतूता के यात्रा वर्णन में कुछ साक्षी मिलती है।३ इब्न बतूता ने भारतीय डाक व्यवस्था के दो भेद बताये हैं—घुड़ सवार हरकारों द्वारा तथा पैदल हरकारों द्वारा। इसकी कार्य शैली इस प्रकार थी—

"सिन्ध से सुलतानों की राजधानी देहली तक ५० दिनों का रास्ता है। परन्तु जब गुप्तचर विभाग के अधिकारी सिन्ध से सुलतान को पत्र भेजते हैं, वह डाक-सर्विस द्वारा वहां ५ दिन में पहुँच जाता है। इस समय भारत में डाक व्यवस्था दो प्रकार की है।

(क) कुछ घुड़ सवार हरकारे डाक लेकर सुलतान के घोड़ों पर सवार होकर चलते हैं और वे घोड़े प्रति चौथे मील पर बदल दिये जाते हैं।

(ख) पैदल हरकारों की व्यवस्था निम्न प्रकार है—

प्रत्येक तीसरे मील पर एक गांव होता है, जिसके बाहर तीन खेमे होते हैं। इनमें कमर पर पेटी बांधे तीन आदमी आगे जाने के लिए तय्यार बैठे रहते हैं। प्रत्येक के हाथ में १॥ गज़ लम्बी एक छड़ी होती है, जिसके अगले हिस्से पर पीतल के घुंघरू लगे होते हैं। जब हरकारा एक शहर से चलता है तो वह एक हाथ में चिट्ठियां पकड़ लेता है तथा दूसरे में घुंघरू वाली छड़ी और अत्यन्त वेग से दौड़ता है।

खेमे में बैठे हुए आदमी घुंघरू का शब्द सुनते ही तय्यार हो जाते हैं। जब वह पहुँचती है तो उनमें से एक उन चिट्ठियों को अपने हाथ में ले लेता है और अत्यन्त वेग से दौड़ पड़ता है और अगले स्थान पर पहुँचने तक सारे रास्ते में घुँघरू बजाता जाता है। इस प्रकार अपने लक्ष्य तक चिट्ठियां पहुँचा दी जाती हैं। घुड़ सवारों की

(छ) महारानी एलिज़ाबेथ के सन् १५६१ के घोषणा पत्र में सरकारी डाक-व्यवस्थापकों द्वारा अधिकृत संदेश वाहकों के अतिरिक्त समुद्र पार से डाक लाने तथा ले जाने वाली अन्य सब स्वतन्त्र संस्थाओं पर रोक लगा दी गई।

२—देखो Constable, London 1891 पृष्ठ २०३।

३—देखो एच. ए. आर. गिब द्वारा अनूदित 'इब्न बतूता' का २य खण्ड, अध्याय ६, पृष्ठ १८३।

अपेक्षा इस ढंग से डाक शीघ्र पहुँचती है। कभी कभी इस ढंग से फल भी खुरासान से भारत में लाए जाते हैं और बहुत कीमत में बिकते हैं। वे तश्तरियों में रखकर बड़ी तेज़ रफ्तार से सुलतान के पास पहुँचा दिए जाते हैं। इसी प्रकार बड़े २ अपराधी भी पहुँचाए जाते हैं। अपराधी को डोली पर लिटा दिया जाता है और वाहक उन्हें सिर पर उठाकर तेजी से दौड़ते हैं। सुलतान के पीने का पानी भी इसी ढँग से लाया जाता है। जब सुलतान दौलताबाद रहता है तो गंगा से-जो वहां से ४० दिन की यात्रा की दूरी पर स्थित है और हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ है-पानी लाया जाता है।"

उपर्युक्त उद्धरण को पढ़कर अत्यन्त आश्चर्य होता है कि सुलतान (मुहम्मद तुगलक) के समय डाक, ताजे फल, मेवे, अपराधी तथा गंगा जल लाने वाले पैदल हरकारों की कैसी शीघ्रगामी व्यवस्था थी।

इसके अतिरिक्त मैं एक और डाक व्यवस्था से पाठकों को अवगत कराना चाहता हूँ, जो १८वीं सदी के उत्तरार्ध तथा १९वीं सदी के पूर्वार्ध में भारत वर्ष में प्रचलित थी।

श्रीयुत एन. जी. चापेकर अपनी पुस्तक 'पेशवाईच्या सवालींत' पृष्ठ ४१-४३ में लिखते हैं-

पेशवाई सेनाओं के गति-विधियों के सम्पूर्ण भारत में व्यापक हो जाने के कारण भिन्न २ स्थानों में परस्पर सम्पर्क बनाए रखने के लिए सन्चर विभाग की स्थापना करना आवश्यक था। इस कार्य के लिए भारत के भिन्न २ भागों में विशेष व्यक्ति नियुक्त किए गए, जिन्हें पेशवा के समय समय २ पर विस्तृत समाचार भेजने का आदेश दिया गया। इस प्रकार की डाक लाने वाले कर्मचारियों को 'डाक हरकारा' कहा जाता था। कोंकण प्रदेश से समाचार लाने के लिए विशेष नौकाएं रखी गई। ये नौकाएं निश्चित दिनों में समाचार लाती थीं। यह नियम था कि अजुर्दार (वेतन भोगी हरकारा) को प्रति दिन कुछ नियत मील अवश्य चलना होगा। उन दिनों व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार की विशेष आवश्यकता अनुभव नहीं की जाती थी। केवल बनारस आदि की तीर्थ यात्रा करने वाले कुछ लोगों को ऐसी आवश्यकता अनुभव होती थी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए श्रीयुत अथनेल ने पूना और बनारस के बीच में ऐसी डाक-सर्विस जारी की। इस प्रकार उस समय दो प्रकार की डाक सर्विस थीं।

१-सावकारी डाक (महाजनों द्वारा व्यवस्थापित डाक व्यवस्था) तथा २-सरकारी डाक (सरकार द्वारा व्यवस्थापित डाक व्यवस्था)। श्रीयुत चापेकर के ग्रन्थ में डाक का सर्व प्रथम उल्लेख सन् १७७६ का मिलता है। यह डाक सर्विस निम्न स्थानों के बीच में जारी थी—

(क) कल्याण से बनारस। (ख) कल्याण से बम्बई, (ग) पूना से नासिक, त्र्यम्बक, (घ) ग्वालियर से सतारा।

इन प्रदेशों में चार आना प्रति तोला के हिसाब से डाक खर्च वसूल किया जाता था।

ब्रिटिश शासन के स्थापित हो जाने के बाद भी सन् १८४८ तक सावकारी डाक जारी रही। श्रीयुत चापेकर के ग्रन्थ में ब्रिटिश डाक सर्विस का सर्व प्रथम उल्लेख सन् १८३३ का किया गया है। इस डाक में बैरंग पत्र इस विश्वास के साथ भेजे जाते थे, कि वे निर्दिष्ट व्यक्ति को अवश्य मिल जाएंगे। डाक विभाग पत्र प्रेषकों को उनके बैरंग पत्र की रसीद दिया करता था। सन् १८५४ के दस्तावेज़ में पूना के जनरल पोस्ट आफिस का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। दौलताबाद की धनी बुआ कागज डाक भेजने के काम

आता था। सावकारी डाक में बीमा भेजने की भी व्यवस्था थी और २) प्रति सैकड़े के हिसाब चार्ज किया जाता था।

जिन स्थानों के लिए किसी डाक व्यवस्था का प्रबन्ध न था अथवा जहां डाक खर्च लेना अवैध था वहां डाक पहुँचाने तथा बांटने के लिए एक विशेष हरकारा नियुक्त किया जाता था। ऐसी दशा में पत्र प्रेषकों को किसी प्रकार का डाक-व्यय नहीं देना पड़ता था, संभवतः अब तक भी बैरंग डाक भेजने की परम्परा का कारण उक्त व्यवस्था है ?

ऊपर लिखित विशेष हरकारों द्वारा भेजे गए पत्रों का व्यय बेहूदा ढंग से लिया जाता था। जैसे कि देहली से पूना भेजे हुए पत्र पर एक आना डाक व्यय लिया जाता था। जबकि इसी पत्र के उत्तर में प्रेषक को भेजे हुए पत्र पर ४ आना डाक व्यय देना पड़ता था।

सत्र वाहक द्वारा बनारस से पूना लाए हुए पत्र का डाक व्यय दो आना था। ठीक पता न होने के कारण वापिस लौटे हुए प्रेषक को अतिरिक्त डाक व्यय देना पड़ता था। जैसे कि प्रेषित व्यक्ति के न मिल सकने के कारण पूना से बम्बई भेजे हुए पत्र के वापिस लौट आने पर ४ आना अतिरिक्त व्यय लिया जाता था। प्रेषित व्यक्ति से वसूल किया जाने वाला डाक व्यय पत्र के ऊपर ही लिखा होता था। पत्र प्रेषक को पता लिखने की पर्याप्त स्वतन्त्रता होती थी। कोई पत्र प्रेषक पते पर ऐसा भी लिख देते थे कि यदि प्रेषित व्यक्ति न मिले तो उसका मित्र, अमुक व्यक्ति, इस पत्र को उसके पते पर भेज दे शनैः शनैः जनता को पत्र का डाक व्यय शुरू में ही दे देने की आदत पड़ गई। Post paid आदि अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रकार के पूना से बम्बई भेजे हुए दो पत्रों पर डेढ़ आना चार्ज किया था, जबकि सन् १८५७ में उसी डाक व्यय में बम्बई से पूना तक तीन पत्र भेजे जा सकते थे।

जत तथा औंध रियासतों की १८६७ तथा १८६८ की रिपोर्टों से निम्न तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है।

१—जत रियासत—सरकार डाकखाना के क्लर्क को, जो जनता के पत्रों को भेजने की देखभाल करता था; १५) रु० मासिक देती थी। उसके नीचे सात-सात रुपये मासिक पर दो और सिपाही होते थे, जो विभिन्न गांवों में डाक बांटा करते थे। परन्तु वे नियत सरकारी डाक व्यय के अतिरिक्त जनता से कुछ नहीं ले सकते थे।

२—औंध रियासत—जनता के पत्र मामलेदार के चपड़ासियों द्वारा अपने २ पते पर भेज दिये जाते थे और इसके लिए जनता से एक आना चार्ज किया जाता था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का डाकखाना एक्ट सन् १८३७ में पास किया गया था। परन्तु इस एक्ट के पास होने से पूर्व भी उपयुक्त डाक सर्विसों की भांति कम्पनी की भी एक अपनी डाक व्यवस्था थी। मुसलमान ऐतिहासिकों का कहना है कि भारत वर्ष में सब से पहले १५४५ सन् में शेरशाह द्वारा डाक व्यवस्था जारी की गई थी और इस कार्य के लिए उसने सिन्ध से बंगाल तक २००० मील लम्बी एक सड़क बनवाई।

कौटिल्य ने अपने ग्रन्थों में किसी प्रकार की डाक व्यवस्था का उल्लेख नहीं किया।

[मूल लेख अंग्रेज़ी में प्राप्त। अनुवादक, श्री धर्मदेव वेदवाचस्पति]।

मातृभूमि

श्री रामनाथ वेदालङ्कार

अथर्ववेद के १२ वें काण्ड का प्रथम सूक्त मातृभूमि-सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। यह सूक्त धार्मिक, राजनैतिक, साहित्यिक कई दृष्टियों से बहुत ही सुन्दर और महत्वपूर्ण है। नीचे हम इस सूक्त में से कुछ मनोहर सूक्तियां दे रहे हैं। पाठक देखेंगे कि वेद में स्वदेश-भक्ति के भाव कैसे सुन्दर रूप में ग्रथित हुए हैं और वेद कैसे सुखी और समृद्ध राष्ट्र की कल्पना करता है।[१]

माता भूमिः पुत्रो अहम् पृथिव्याः
भूमि मेरी माता है, मैं उसका पुत्र हूँ।

पृथिव्या अकरं नमः
मातृभूमि को नमस्कार, वन्दे मातरम्।

भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु
मातृभूमि हमें ऐश्वर्य और तेज प्रदान करे।

सा नो मधु प्रियं दुहाम्
वह हमारे लिये प्रिय मधुर वस्तुओं की कामधेनु हो।

सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे
वह राष्ट्र में क्रान्ति और बल भर देवे।

सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहाम्
वह हमें भूरि २ धाराओं में दुग्धपान कराये।

सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः
माता भूमि मुझ पुत्र को अपना पयःपान कराये।

सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना
मातृभूमि उच्च होती हुई हमें उन्नत करती रहे।

वाचो मधु पृथिवी धेही मह्यम्
हे माताः! मुझे वाणी का माधुर्य प्रदान कर।

शिवां स्योनामनुचरेम विश्वहा
हम अपनी मंगलमयी, सुखकारी मातृभूमि के सदा सेवक बनें।

सा नो भूमे पुरोचय हिरण्यस्येव सन्दृशि
हे मातृभूमि! तू हमें सोने की तरह चमका दे।

जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु
मातृभूमि मुझे दीर्घजीवी करे।

पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि
हम अपनी अविचल विश्वछाया मातृभूमि का सदा गुणगान किया करें।

मा व्यथिष्महि भूम्याम्
मातृभूमि में रहते हुए हम दुःख न पायें।

स्वस्ति भूमे नो भव
हे मातृभूमि! तू हमारे लिये कल्याणकारिणी हो।

मा ते हृदयमर्पिपम्
हे मातः मैं कभी तेरे हृदय को न दुखाऊं।

सा नो भूमिरादिशतु यद्धनं कामयामहे
जो भी धन हम चाहें मातृभूमि हमें प्राप्त करा दे।

सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नान्
वह शत्रु को हमसे दूर करती रहे।

असपत्नं मा पृथिवी कृणोतु
मातृभूमि मुझे शत्रुरहित करदे।

मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे
मातृभूमि मुझे मणि-मुक्ता, हिरण्यादि देवे।

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहाम्
वह मेरे लिये धन की सहस्र धारायें दुह देवे।

चारु वदेम ते
हे मातृभूमि! हम तेरा यशोगान करते रहें।

वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम
हम तेरे लिये बलिदान करने को तैयार रहें।

श्रियां मा धेहि भूत्याम्
हे मातृभूमि! मुझे श्री और समृद्धि की गंगा में नहला दे।

---

१ लेखक की "वैदिक सूक्तियां" नामक अप्रकाशित पुस्तक से।

वैदिक प्राण विद्या

(बालखिल्य)

पं० भगवद्दत्त वेदालङ्कार

बालखिल्य सम्बन्धी यह संक्षिप्त लेख बलासुर के हनन में रचे गये ऐतरेय ब्राह्मण के कथानक का एक छोटा सा हिस्सा है। यहां पर बालखिल्य प्राण अपान और व्यान को कहा गया है। कुछ ऋषियों का नाम भी बालखिल्य है। वे बालखिल्य ऋषि कौन से हैं, उनका स्वरूप क्या है! इत्यादि बातें हम फिर कभी आपके सामने रक्खेगें।

ऐतरेय ब्राह्मण ६। २८ तथा गो० उ० २। ८ में यह उल्लेख आता है कि।

प्राणाः वै वालखिल्याः प्राणानेवास्य तत् कल्पयति। ताः विहृताः शंसति विहृताः वा इमे प्राणाः प्राणेनापानोऽपानेन व्यानः ।।

अर्थात् वालखिल्य प्राणों का नाम है। इस यजमान के प्राणों को वह सामर्थ्यवान् व शक्तिशाली बनाता है। इसके लिये वह करता क्या है कि बालखिल्य ऋचाओं को परस्पर मिले हुए बोलता है। क्यों कि बालखिल्य नामक ये प्राण भी परस्पर मिले हुए हैं। प्राण से अपान और अपान से व्यान मिला हुआ है

यह उपर्युक्त प्रकरण ऐतरेय ब्राह्मण के वलासुर सम्बन्धी कथानक में आता है। यहां पर प्राण अपान और व्यान इन तीनों को बालखिल्य कहा गया हैं। और जिन ऋचाओं व मन्त्रों में इन प्राणों का वर्णन आता है उन ऋचाओं को भी बालखिल्य कह देते हैं।

अब विचारणीय यह है कि इन प्राणों का वालखिल्य नाम क्यों पड़ा? वालखिल्य शब्द की व्युत्पत्ति जो ब्राह्मण ग्रन्थों में दी गई है, इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि शरीर में इन प्राणों की स्थिति के कारण इनको वालखिल्य नाम दे दिया गया है। इन प्राणों को वालखिल्य नाम देने से शरीर में इनकी किसी विशेष स्थिति की ओर संकेत प्रतीत होता है प्राणों की वह स्थिति क्या है? इस सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण ८। ३। ४। १ तथा शांखायन ब्राह्मण ३०। ८ में स्पष्ट किया गया है। वहां आता है कि—२

प्राणा वालखिल्या अनन्तर्हिता उ हेमे प्राणास्तदाहुः कस्माद् वालखिल्या इति यद्वा उर्वरयोरसम्भिन्नं भवति खिलमिति वै तदाचक्षते वालमात्रा उ हेमे प्राणा असम्भिन्नास्तद् य असम्भिन्नास्तस्माद् वालखिल्याः

अर्थात् प्राण ही वालखिल्य कहलाते हैं। ये प्राण व्यवधान रहित हैं अर्थात् इनके बीच में कोई व्यवधान नहीं है। अथवा यह कहा जा सकता है कि दो उर्वराओं अर्थात् वेदियों का जिस स्थान पर मेल होता है वह खिल कहलाता है। दो वेदियों का वह मेल (खिल) बाल बराबर मोटा होता है। क्योंकि इस बाल बराबर मेल से ये प्राण अपान और व्यान आदि परस्पर मिले हुऐ हैं। अतः इनका नाम वालखिल्य है।

लौकिक भाषा में उर्वरा वे क्षेत्र कहलाते हैं जहां कि अन्नादि की उत्पत्ति होती है। परन्तु शरीर में ये उर्वरा नामक क्षेत्र प्राण अपान और व्यान के हैं। ये तीनों प्राण अपने २ क्षेत्र में रहते हुए शरीर के लिये उपयोगी अन्न पैदा करते रहते हैं। इन प्राणापान आदि के क्षेत्रों को पृथक् २ करने के लिये एक दीवार है जो कि बाल बराबर मोटी है और इसे खिल कहते हैं। इसलिये यह कहा जा सकता है कि प्राण अपान और व्यान का वालखिल्य नाम इस बाल बराबर मोटी दीवार के कारण पड़ा है। उर्वरा

को वेदि भी कहते हैं। (ता० ब्रा० १६ । १३ । इस आधार पर शरीर को वेदियों में विभक्त करने पर एक प्राण की वेदि दूसरी अपान की और तीसरी व्यान की वेदि कही जा सकती है। इस प्रकार ये प्राण वेदियां खिल नामक दीवार से आपस में मिली हुई हैं।

अब विचारणीय यह है कि इन प्राणों के वे क्षेत्र कौन से हैं? और किस प्रकार ये खिल नामक दीवार से मिले हुए हैं?

शरीर में प्राण अपान और व्यान इनके क्षेत्र पृथक् २ बताये गये हैं। प्रश्नोपनिषत् के ३य प्रश्न में इनके क्षेत्रों के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि

पायूपस्थेऽपानं चक्षु श्रोत्रे मुखनासिकाभ्याम् प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते ३ । ५

अर्थात् पायु और उपस्थ में अपान वायु रहती है और मुखनासिका सहित चक्षु और श्रोत्र में प्राण स्वयं रहता है।

व्यान के सम्बन्ध में आगे कहा गया है कि—

हृदि ह्येष आत्मा। अत्रतदेकशतं नाडीनां तासां शतंशतमेकैकस्यां द्वा सप्तति र्द्वा सप्ततिः प्रतिशाखानाडी सहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति। प्रश्न ३ । ६

अर्थात् हृदय में यह आत्मा निवास करता है इस हृदय में १०१ नाड़ियां मुख्य हैं। इन १०१ में प्रत्येक से सौ २ (१००) नाड़ियां निकलती हैं। और फिर इन सौ (१००) में प्रत्येक से ७२ हजार ७२ हजार नाड़ियां और निकलती हैं। इन सब नाड़ियों में व्यान का सञ्चार होता है। इस प्रकार संक्षेप में यदि कहना चाहें तो यह कहते हैं कि प्राण का मुख्य केन्द्र सिर है, अपान का गुदा तथा उपस्थ है और व्यान का हृदय है। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि ये इनके मुख्य केन्द्र हैं। वैसे ये तीनों प्राण शरीर में सर्वत्र विचरते हैं। क्यों कि शरीर में मुख नासिका आदि केन्द्रों में रहती हुई प्राण वायु द्वारा प्राणनक्रिया शरीर में सर्वत्र हो रही है। इसीलिये यह कह सकते हैं कि प्राण शरीर में सर्वत्र विद्यमान है। इसी प्रकार गुदा और उपस्थ अपान का मुख्य केन्द्र है। परन्तु नाक, कान तथा चक्षु आदि से भी मल बाहर निकलता है और फिर पसीने द्वारा तो शरीर में सर्वत्र ही मल निकलता रहता है। इस लिये यह कह सकते हैं कि शरीर में अपान भी सर्वत्र है। इसी प्रकार व्यान का मुख्य स्थान हृदय है, परन्तु इन हजारों नाड़ियों द्वारा शरीर में यह व्यान वायु सर्वत्र विचरती है। इसलिये हम यह कह सकते हैं कि प्राण अपान और व्यान शरीर में सर्वत्र विद्यमान हैं। अब प्रश्न यह होता है कि शरीर में जब ये तीनों सर्वत्र विद्यमान हैं तो आपस में इनकी स्थिति क्या है? अर्थात् खिल नामक दीवार से आपस में ये किस प्रकार मिले हुए हैं? इस सम्बन्ध में काठक संहिता २७ । २ तथा तै० सं० ६ । ४ । ६ में इस प्रकार कहा है कि—

व्यानेन वा इमौ प्राणापानौ विधृतौ प्राङ् च प्रत्यङ् च न क्षीयते नायमूर्ध्व उत्क्रामति नेत्रोऽवाङ् संक्रामति व्यानमेव मध्यतो दधाति प्राणापानयो र्विधृत्ये। काठक संहिता २७ । २ ।

अर्थात् व्यान द्वारा धारण किये हुए ये प्राण और अपान आगे पीछे की ओर क्षीण नहीं होते। अर्थात् अपान अपने क्षेत्र को छोड़ कर प्राण की ओर ऊपर को संक्रमण नहीं करता और इसी प्रकार प्राण नीचे की ओर अपान की तरफ संक्रमण नहीं करता क्यों कि बीच में इन दोनों को व्यान ने धारण किया हुआ है।

इसी उपर्युक्त भाव को छान्दोग्योपनिषत् १ । ३ । ३ में इस प्रकार कहा गया है कि "अथ यः प्राणापानयोः सन्धि स व्यानः"

अर्थात् जो प्राण और अपान की सन्धि है वह व्यान है। इस प्रकार इन तीनों प्राणों के क्षेत्र या वेदियां (उर्वरा) पृथक् २ हैं। इन तीनों के क्षेत्रों को जो दीवार मिलाए हुए है वह 'खिल' कहलाती है। इसलिये इन प्राणों का इस खिल नामक दीवार के कारण वालखिल्य नाम पड़ा। परन्तु यहां यह बात अवश्य याद रखनी चाहिए कि शरीर में इन प्राणों की जो सर्वत्र पृथक् २ स्थिति व पृथक् २ क्षेत्र बताये गये हैं, इसका यह मतलब नहीं कि इनके पृथक् २ क्षेत्र आंखों से प्रत्यक्ष दिखाये जा सकते हैं। और फिर इन प्राणों के बीच में "खिल" नामक व्यवधान को जो वालमात्र अर्थात् वाल बराबर कहा गया है. इसका भी यह मतलब नहीं कि यह अवश्य ही बाल बराबर मोटा हो। बाल बराबर कहने का भाव इतना ही है कि इन तीनों के क्षेत्रों में कुछ भेद अवश्य है। क्योंकि ये तीनों प्राण एक ही स्थान पर कार्य करते हैं इसलिये इतना अवश्य होता है कि जिस स्थान पर निर्माण (Construction) हो रहा होता है, उसी स्थान पर विनाश (Destruction) नहीं होता। चाहे इन निर्माण व विनाश दोनों के स्थानों में बहुत ही सूक्ष्म भेद हो—भेद होता अवश्य है। उस भेद को वालमात्र कह देना तो भेद को समझाने के लिए है। अथवा वाल शब्द का बाल 'अर्थ न करके वृञ वरणे' धातु से इसको बनाया जा सकता है। जिसका यह अर्थ होगा व्यवधानमात्र (वार=वाल)। यह व्यवधान आवश्यक नहीं कि बाल बराबर ही हो। इससे यह स्पष्ट है कि इन तीनो प्राणों के क्षेत्रों की जो सन्धि है, उसे हम चाहें दीवार कहें. व्यवधान कहें, वह होती अवश्य है, और यह आवश्यक नहीं कि वह बाल बराबर मोटी हो। अब विचारणीय यह है कि प्राण अपान और व्यान की जो सन्धि 'खिल' बताई गई है, इस सन्धि के आधार पर इन प्राणों को क्यों सम्बोधित किया गया है ? इस सम्बन्ध में हमारा विचार यह है कि प्राणों की इस सन्धि का बलासुर के हनन में बहुत महत्व है। इसको हम इस प्रकार समझ सकते हैं क एक मशीन में तीन पुर्जे इस प्रकार लगे हुए हैं कि बीच के पुर्जे के गतिमान होने पर इधर उधर के पुर्जे भी गतिमय हो जाते हैं, और इस प्रकार मशीन चालू हो जाती है। इसी प्रकार हमें इन प्राणों को समझना चाहिये। प्राण और अपान के मध्य में व्यान रहता है। व्यान में चेष्टा है क्रिया है। यह व्यान वायु प्राण और अपान को गतिमय करती रहती है। और इस प्रकार शरीर रूपी मशीन चालू रहती है। इसलिये शरीर में व्यान वायु गति व चेष्टा का कारण है। त्रिशिखि ब्राह्मणोपनिषत् में कहा भी है कि—

"प्राणापानादि चेष्टादि क्रियते व्यानवायुना"
८४ श्लोक

अर्थात् प्राण अपान आदि में चेष्टाएं व्यान वायु द्वारा पैदा की जाती हैं।

जिस प्रकार मशीन में तीनों पुर्जों की सन्धियां ठीक न हों तो होगा यह कि तीनों पुर्जे नहीं चल सकते और यदि चलें तो बहुत मन्द व रुक रुककर चलेंगे। इस प्रकार मशी ठीक नहीं चलेगी। इसी प्रकार प्राण, अपान और व्यान की सन्धियां यदि ठीक नहीं है तो ये प्राण और अपान ठीक कार्य नहीं कर सकते। क्योंकि प्राण और अपान में गति व्यान से ही आती है और इनकी सन्धियां ठीक न होने से वह गति प्राण और अपान को पूरी तरह नहीं मिल सकती। इस प्रकार प्राण और अपान पूरी तरह कार्य नहीं कर सकते। इसीलिये इन तीनों प्राणों की सन्धिओं का ठीक होना अत्यन्त आवश्यक है। बलासुर के हनन में सन्धिओं का महत्व इसलिये है कि

वल भी एक प्रकार का सूक्ष्म मल है। यदि ये तीनों प्राण ठीक कार्य करते हों और अध्यात्म दृष्टि से इनकी शक्ति को खूब बढ़ाया जाय तो शरीर में सूक्ष्म से सूक्ष्म मल भी बचा नहीं रह सकता। इसी दृष्टि से प्राण अपान और व्यान इन तीनों में किस प्रकार की सन्धियां होनी चाहिये इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है। प्राण और अपान के साथ व्यान की सन्धि व संसर्ग को इतना महत्व दिया है कि यदि यह सन्धि किस प्रकार न रहे तो मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है।

इसी बात को तैत्तिरीय संहिता ६। ४। ६ ४ में इस प्रकार दिखाया है कि—

'यं कामयेत प्रमायुकः स्यादित्यसंस्पृष्टौ तस्य सादयेद् व्यानेनैवास्य प्राणापानौ विच्छिनत्ति ताजक प्रमीयते। यं कामयेत सर्वमायुरियादिति संस्पृष्टौ तस्य सादयेद् व्यानेनैवास्य प्राणापानौ संतनोति सर्वमायुरेति ॥ तै० स० ६। ४। ६। ४

अर्थात् जिसके सम्बन्ध में यह चाहे कि यह मर जाये तो वह यह करे कि उसके प्राण और अपान को व्यान से असंस्पृष्ठ अर्थात् अछूता करदे। इस प्रकार करने से प्राण और अपान का सम्बन्ध व्यान से कट जाता है और वह आदमी उसी समय मर जाता है। और जिसको यह चाहे कि यह सम्पूर्ण आयु भोगे तो वह यह करे कि उसके प्राण और अपान को व्यान से मिलादे। इस प्रकार करने से उसके प्राण और अपान बढ़ते हैं और वह चिरकाल तक स्वस्थ रहता हुआ पूर्ण आयु को भोगता है।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि प्राण अपान और व्यान का नाम बालखिल्य है। इन प्राणों को खिल नामक सन्धि के कारण ही इनका बालखिल्य नाम पड़ा। इनकी सन्धिओं के ठीक होने से ही प्राण और अपान सुचारु रूप से कार्य करते हैं। और इनके ठीक २ कार्य करने से शरीर का सब प्रकार का मल विनष्ट होता है। और इनकी सन्धिओं के ठीक २ ज्ञान हो जाने पर किसी विशेष स्थान पर इनके सम्बन्ध को तीव्रतम बना कर उस स्थान के सूक्ष्म से सूक्ष्म मल को निष्ट किया जा सकता है। और इस प्रकार वल रूपी मल का भी विनाश हो सकता है। इसलिये बाल-खिल्य नामक प्राणों की सन्धिओं को तथा उसकी प्रक्रिया को जानने की अत्यन्त आवश्यकता है।

जन्तु-शास्त्र के पारिभाषिक शब्द

चम्पत स्वरूप

Concave नतोदर
Concnetric समकेन्द्रिक
Conduction संवहन
Condyle अर्बुद
Cones of retina वेम
Conglobate gland गोलीभूत ग्रन्थियां
Conjugant समागमी
Conjugation समागम
Conjunctiva नेत्र वर्त्म
Connective tissue योजक धातु
Constriction आकुञ्चन
Contraction संकोचन
Conus arteriosus धामन सूची
Converge संसृत होना
Convergence संसरण
Convergent संसृत
Convex उन्नतोदर
Coordination सामंजस्य
Copromonas पुरीषैक
Copulation जनन संभोग
Copulatory papilla संभोग पिप्पल
Coracoid अंसतुण्ड

Coracoid process अंसतुण्ड प्रवर्धन
Coral मूँगा, प्रवाल
Coral Islands प्रवाल द्वीप
Cornea of eye स्वच्छ मण्डल
Corneal layer कादर स्तर
Cornu शृंग
Coronoid process हनुकुन्त
Corpuscles, red blood लोहित रुधिर कण
Corpuscles, white blood श्वेत रुधिर कण
Cortex वल्क
Covering layer आच्छादक स्तर
Cowrie कौड़ी
Coxa कक्ष
Crab कैंकड़ा
Crab louse कैंकड़ा जूँ
Cranial nerves शीर्षण्य नाडियां
Cranium शिरसम्पुट
Crayfish झिंगा
Creation सृजन
Crescent चन्द्रार्ध
Cricket झिल्ली, झींगुर
Cricoid cartilage कृकाटक शुक्ति

Crop पोटा
Cross fertilisation परफलप्रदकरण
Crura cerebri मस्तिष्क मृणालक
Crustacea class वाल्कल श्रेणी
Crypt शुक्र स्रोत
Crystalline lens of eye दृष्टिमण्डल
Ctenidium कंकतिका
Ctenoid कंकतनिभ
Ctenophora कंकतवह
Cubical घनाकार
Culex रणरण
Cutaneous glands त्वचिक ग्रन्थियां
Cuticle उच्चर्म
Cuttle bone मत्स्यस्थि
Cuttle fish मसीमत्स्य
Cyclostomate मंडल मुखी
Cycloid मंडलनिभ
Cylinderical वर्तुलाकार
Cyst अवगुन्ठिका
Cystic duct पित्तकोष प्रणाली
Cystogenous अवगुन्ठिका जनक
Cytopharynx कोष्ठगल
Cytoplasm कोष्ठ सार
Cytostome कोष्ठमुख

पत्रिका की समालोचना।

भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट पूना के एनल्स (जिल्द २८, भाग ३-४) में प्रकाशित गुरुकुल-पत्रिका की समालोचना।

GURUKULA PATRIKA

Vol. I, No. 1 (in Hindi)—A monthly Journal edited by Shri Ramesh Bedi and Shri Sukhadeva and published on behalf of the Gurukula Vishvavidya laya, Gurukula Kangdi, Hardwar.

The Gurukula Patrika is one of the many new Journals which have been recently started in India in Hindi. This Journal is being edited by the Joint-editors Pt. Ramesh Bedi and Shri Sukhadeva, who have received their education in the famous Gurukula Vishvavidyalaya. The Gurukula, which has been doing excellent work in the sphere of education during the last half a century according

to the old traditions of learning, deserves the warmests upport of all admirers and devotees of learning. The Gurukula has only recently started its own Journal for the revival of our ancient Indian culture and other allied subjects. The Gurukula has developed from a small Pathashala into a large residential University and it is but proper that it should have its own Journal.

There was a time when people were not attracted towards the study of different subjects through the medium of Hindi—our would be national language. But with the departure of the foreigners from our soil since the golden day of Indian Independence—the 15th of August 1947, we have been gradually learning the importance of Hindi. The study of English language will slowly recede into background in India. We, therefore, heartily welcome this new Hindi Journal.

Pt. Ramesh Bedi, the joint editor of the Gurukula-Patrika needs no introduction He has already made his name as an author of several medical monographs such as *Triphala, Somth, Tulasi, Dehati Ilaj* and *Lahsun*. He has made a deep study of the Ancient Plant lore. He had founded the Himalaya Herbal Institute at Lahore and was doing excellent work but owing to the political vicissitudes consequent upon the partition of India, he had to leave Lahore and through much hardshid and trouble at last came to the Gurukula his alma-mater. Pt. Bedi deserves all praise for his courage and unflinching faith. Within a short time he could succeed in starting the above Journal with the help of the authorities of this Vishvavidyalaya.

This first number of the Patrika contains several interesting and informative articles among which mention may be made of 'The Future of Indian Culture' by Haridatta Vedalamkara, 'The History of Spectacles' by P. K. Gode, 'The Place of potato in Diet' by Pt. Ramesh Bedi etc. The motto of Patrika—'Tamaso ma jyotirgamaya'—'Lead me from darkness to light' aptly indicates what the Patrika stands for. We hops the editors Pt Ramesh Bedi and Pt. Sukhadeva will carry on their good work and give us still more interesting articles in the future numbers of the Patrika and thus achieve their object of the spread of knowledge among the masses through the medium of Hindi.

S. N. Savadi

पुस्तक परिचय

वेद-रहस्य [प्रथम खण्ड]—मूल लेखक श्री अरविन्द, अनुवादक—आचार्य अभयदेव विद्यालङ्कार। पृष्ठ संख्या ३६५। मूल्य सजिल्द ६), अजिल्द ८)। छपाई, सफाई अति उत्तम।

आधुनिक जगत् श्री अरविन्द को एक महान् योगी के रूप में जानता है। उनकी योग सम्बन्धी अनेकों रचनाएं हमारे सामने आ चुकी हैं। परन्तु श्री अरविन्द भारतीय अध्यात्मवाद के आदिस्रोत वेद में भी पूर्ण रूप से अवगाहन करते हैं यह हमें उनकी इस "वेद-रहस्य" नामक पुस्तक पढ़ने से स्पष्ट पता चलता है। प्रस्तुत पुस्तक श्री अरविन्द की "The secret of the Veda" का हिन्दी अनुवाद है। वेदों व वैदिक-साहित्य का असली आधार अध्यात्मवाद है ऐसा वे मानते हैं। हमें भी यह प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण वैदिक-साहित्य में प्रमुख रूप से अध्यात्मवाद ही है। ब्राह्मण-ग्रन्थ जो कि कर्मकाण्ड के ग्रन्थ माने जाते हैं, उनमें भी पिण्ड व ब्रह्माण्ड में चल रहे यज्ञों का ही ड्रामे के रूप में बाह्य प्रदर्शन है। प्रमुखता उनमें भी अध्यात्मवाद की ही है। इसलिये श्री अरविन्द का यह कथन कि यज्ञ, यजमान, घृत, अश्व, गौ, दधि आदि

शब्द जहां बाह्य यज्ञ व भौतिक पदार्थों के लिये प्रयुक्त हुए है, वहां उनका असली अर्थ व सुसंगति अध्यात्मवाद में ही लग सकती है, बिल्कुल सही है। इस बृहत् ग्रन्थ में २४ अध्याय हैं, जिनमें लेखक ने वैदिक व्याख्या के भिन्न २ वादों का पर्यालोचनात्मक विवेचन करके फिर उच्च आध्यात्मिक दृष्टि से अग्नि, वरुण, मित्र अश्विन् इन्द्र, विश्वेदेवा, सरस्वती आदि नदियां, समुद्र, गौ, पितर, देवशुनी सरमा, दस्यु-विजय आदि अनेक विषयों का स्पष्टीकरण किया है।

श्री अरविन्द की इस 'वेद-रहस्य' पुस्तक में एक खूबी और है और वह यह कि श्री अरविन्द ग्रीक, लैटिन आदि अन्य कई भाषाओं के प्रकांड पंडित हैं। इस लिये भाषा-विज्ञान की दृष्टि से तुलनात्मक विवेचन द्वारा उन्होंने वैदिक शब्दों की गहराई में पहुँचकर उनके प्रयोग व सीमा आदि निर्धारण में एक सजीवता पैदा करदी है। श्री अरविन्द के इस ग्रन्थ को पढ़ने से हमें यह भी प्रतीत होता है कि जिन शब्दों को हम परस्पर पर्यायवाची समझते हैं वे पूर्ण पर्यायवाची न होकर अपना भी विभिन्न स्वरूप व अर्थ रखते हैं।

सायण आदि भाष्यकारों के सम्बन्ध में लिखते हुए स्वामी दयानन्द के भाष्य के सम्बन्ध में उन्होंने यह मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है कि "दयानन्द ने ऋषियों के भाषा सम्बन्धी रहस्य का मूल-सूत्र हमें पकड़ा दिया है और वैदिक-धर्म के एक केन्द्रभूत विचार पर फिर से बल दिया है।"

यह ग्रन्थ एक महान् योगी की अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों व दिव्य-दृष्टि का एक दिव्य प्रकाश है जोकि वैदिक-साहित्य के अध्ययन में क्रान्ति लाने वाला सिद्ध होगा। इसलिये हम इसका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। —भगवद्दत्त।

शक्ति रहस्य—लेखक-श्री यशपाल जी सिद्धान्तालंकार। प्रकाशक-आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, जालन्धर सिटी। मूल्य ?)

कहावत है कि साम्राज्य भोजन की थाली पर बनते हैं और बिगड़ते हैं। आज तो जगत् की प्रधान समस्या ही आहार की समस्या बनी हुई है। शक्ति-रहस्य के विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में यह दिखाया है कि हमारी शक्ति का वास्तविक स्रोत शाकाहार (अन्नाहार) ही है। शक्ति की प्राप्ति के विचार से जो लोग आमिषाहार करते हैं वे भूल में हैं। इसके साथ ही लेखक ने देशी और विदेशी विद्वानों के प्रमाणों से यह भी सिद्ध करने का अच्छा प्रयत्न किया है कि मांसाहार नैतिक, आर्थिक और धार्मिक दृष्टि से भी त्याज्य है। भारत में लोग धार्मिक-ग्रन्थों का प्रमाण देकर मांसाहार का पक्ष लेते हैं, उनका खंडन भी शास्त्रीय प्रमाणों से किया गया है। आहार के विषय में आजकल जो मुक्ताचार चल रहा है उसको देखते हुए इस पुस्तक का शिक्षित जन-समुदाय में तथा जन समाज में प्रचार होना चाहिए। 'आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः' इस सुवचन के सिद्धान्त को विद्वान् लेखक ने बड़ी खूबी के साथ परिपुष्ट किया है। अतः हम पुस्तक का अभिनन्दन करते हैं। पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है। —शंकर देव।

भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस के

छः प्रकाशन

चटनी—लेखक-हास्यरसाचार्य 'खु' पृ० संख्या १२८। मूल्य १॥)।

प्रस्तुत पुस्तक में हास्यरस पूर्ण पांच रचनाओं का संकलन है। रचनाओं को अधिक से अधिक हास्योत्पादक बनाने का प्रयत्न किया गया है। इस दृष्टि से 'पण्डित जी का भूत' सबसे सफल रचना रही है। 'ईश्वर की वकालत' तथा 'भगत जी' अपने विस्तार में जाकर सामान्य कहानी का रूप धारण कर लेती है और उनमें उतना हास्य नहीं रहता परन्तु

कहानी बन जाने पर भी इनसे पर्याप्त मनोरञ्जन होता है।

सवारियों की कहानियां — लेखक—श्रीयुत व्यथित हृदय। पृ० सं० १११। मूल्य १)।

बच्चे स्वभावतः कौतुहल प्रिय होते हैं। वे दुनियां की प्रत्येक चीज़ को आश्चर्यमयी नज़रों से देखते हैं और उसका इतिहास जानना चाहते है। वे रेलगाड़ी, मोटर, साइकिल, हवाई जहाज तथा अन्य इसी प्रकार के यानों को देखकर चकित रह जाते हैं परन्तु हम उनकी इस उत्कण्ठा को उच्च वैज्ञानिक सिद्धान्तों से तृप्त नहीं कर सकते। इसके लिये हमें बच्चों के लायक ही उत्तरों का आश्रय लेना पड़ेगा और ऐसे ढंग से विवेचना करनी पड़ेगी कि वह उनके लिये आसानी से बुद्धिगम्य हो। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने बच्चों की इसी प्रकार की उत्कण्ठा को तृप्त करने का प्रयत्न किया है। प्रत्येक बच्चे को इसका पाठ अवश्य कराया जाना चाहिये।

[शेष समालोचनाएं अगले अङ्क में देखें]

श्री शास्त्री जी का अभिनन्दन

समस्त गुरुकुलीय—जगत् में यह समाचार बड़े हर्ष, आत्मगौरव और अभिनन्दन के साथ सुना जायगा कि गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक, इस प्रदेश के तपस्वी राष्ट्र-कर्मी और गुरुकुल के व्यवसाय-विभाग के अध्यक्ष श्रीयुत दीनदयालु जी शास्त्री पिछले उपनिर्वाचनों में इस प्रदेश से एम. एल. ए. निर्वाचित हुए हैं। पिछले दिनों उनकी इस सफलता पर गुरुकुल के गुरुजनों और स्नातक—मण्डल ने एक जलपान-गोष्ठी द्वारा उनका अभिनन्दन करते हुए उनकी राष्ट्रीय और साहित्यिक—सेवाओं के प्रति समादर ओर श्रद्धा प्रदर्शित की।

श्री शास्त्री जी गुरुकुल के उन योग्यतम स्नातक में से हैं जिन्होंने स्नातक निकलने के बाद से ही राष्ट्रीय-सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित किया हुआ है। वे अपनी उगती तरुणाई के दिनों से ही देश-सेवा से स्वप्न लिया करते थे। देश के स्वातंत्र्य-संग्राम के लिए जब जब रणभेरी बजी, शास्त्री जी उसके लिऐ सन्नद्ध रहे और उन्हें जो जो कार्य सौंपा गया, उसे प्राणपन से निभाते रहे। इस सिलसिले में शास्त्री जी अनेकों बार तत्कालीन सरकार के बंदीघरों के अतिथि बनते रहे और राष्ट्र के लिए सर्व प्रकार का त्याग और तपस्या करते रहे। कुल—वासियों के लिए उचित अभिमान और गौरव का विषय तो यह है कि अपने बंदी-जीवन के दिनों में शास्त्री जी जिन जिन भी विद्वानों, राष्ट्रसेवकों और देशनायकों के संपर्क में आए उन्हें अपने चरित्र, ज्ञान और संस्कार की सुवास से विशेष रूप से प्रभावित करते रहे और गुरुकुल की कीर्ति को समुज्वल करते रहे।

श्री शास्त्री जी भूगोल, इतिहास, राजनीति, और समाज-शास्त्र के माने हुए विद्वान् और सुलेखक हैं। हिंदीसाहित्य में इन विषयों पर अधिकार पूर्ण लेखनी के साथ लिखने वालों में आप अन्यतम है। देश का शिक्षित-समाज आपके लेखों को बड़ी उत्सुकता के साथ पढ़ता है। अपने बंदी—जीवन के दिनों में राजनैतिक-चर्चा और विवाद की गोष्ठियों में शास्त्री जी अपनी तथ्यों की जानकारी, आंकड़ों की अद्भुत स्मृति और भौगोलिक विशेषज्ञता के आधार पर अनेक राजनीतिज्ञ विद्वानों तथा परदेश से शिक्षा-प्राप्त मनीषियों से लोहा लेते रहे हैं और विजयी होते रहे हैं। निश्चय ही धारासभा में भी वे

अपनी विद्वत्ता, बहुश्रुतता, अंकशास्त्र-पटुता और प्रत्युत्पन्न-मतिता के कारण अपना विशिष्ट स्थान और सन्मान, प्राप्त कर लेंगे।

श्री शास्त्री जी खरे देशभक्त, स्वदेशी व्रत के उपासक, स्पष्टवक्ता, विनोद-प्रिय और स्वाध्यायशील सुलेखक हैं। भूगोल और यात्रा उनके शौक के विषय (हॉबी) है। उत्तराखंड और नगाधिराज हिमालय के विभिन्न प्रसिद्ध स्थानों की यात्रा आप अनेक बार कर चुके हैं। और इन पर्वत यात्राओं के लिए वे गुरुकुल में चलते फिरते निर्देशक-ग्रंथ माने जाते हैं। इन यात्राओं के सिलसिले में आप कैलाश मानसरोवर तक की यात्रा कर आए हैं। पत्रकार-कला भी आपका प्रिय विषय है। आप अनेक हिंदी पत्रों के संपादक, नियमित लेखक, संवाददाता और प्रतिनिधि हैं और रह चुके हैं। आप बड़े सुलझे हुए, स्पष्ट और स्वस्थ शैली के विचारक और वक्ता हैं। मित्र गोष्ठियों में आपके विनोद, चुटकुले और लतीफे बहुत मार्मिक और चटपटे होते हैं। गुरुकुल पत्रिका की ओर से इस सफलता पर हम उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए आशा करते हैं कि उनके द्वारा गुरुकुलमाता, राष्ट्रमाता और सरस्वती की अधिकाधिक श्रीवृद्धि होगी।

—शकरदेव।

लेखकों का परिचय

श्री अम्बालाल पुराणी—पहुँचे हुए साधक और सूक्ष्म विचारक।

श्री वीरेन्द्र विद्यावाचस्पति—रांची कॉलेज में प्रोफेसर।

चन्द्रकान्त वेदवाचस्पति—गुरुकुल सूपा के चार्य।

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र-परिचय पहले अङ्क में।

आचार्य रघुवीर-दूसरे अङ्क में परिचय देखिये।

प्रोफेसर पी. के. गोडे—भारत के प्राचीन उत्कर्ष पर लिखने वाले प्रसिद्ध अन्वेषक। न्यू इन्डियन एण्टिक्वेरी की दसवीं जिल्द प्रोफेसर गोडे के अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित हो रही है।

श्री रामनाथ वेदालङ्कार—गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में वेद के उपाध्याय।

पण्डित भगवद्दत्त वेदालङ्कार—गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में वैदिक साहित्य पर अनुसन्धान कर रहे हैं।

गुरुकुल समाचार

ऋतु—शिशिर विदा ले चुका है और कुल उपवन में वासंतिक सुषमा अपना वैभव दिखा रही है। वन-प्रान्तर में टेसू अपनी बहार दिखा रहे हैं। गुरुकुल की अमराइयाँ आम्र मंजरियों से महक उठी हैं और फाल्गुन के उत्तरार्ध से ही आम्रकुञ्जों में कोकिल का कलकूजन गूँज उठा है। शीत देवता के शिविर के उठते ही अनेक नए प्रवासी पंखी उपवनों में दृष्टि-गोचर हो रहे हैं। आश्रम-तरुओं पर नई कोपलें आ रही हैं। वनस्पति वाटिका में इस समय अपूर्व आमोद फैल रहा है। गुरुकुल के चहुँओर गेहूं, चने और अरहर की खेतियां लहरा रही है। कुल में आनन्द, आह्लाद और आरोग्य का वातावरण है।

परीक्षाएं

महाविद्यालय विभाग की वार्षिक परीक्षाएँ ४ मार्च से प्रारंभ हो चुकी है। विद्यालय-विभाग

की परीक्षाएं २५ मार्च से प्रारंभ होंगी। अधिकारी परीक्षाएं ११ मार्च से प्रारंभ हो रही हैं। शाखा-गुरुकुलों के निरीक्षक वहां की परीक्षाओं के प्रबन्ध के लिए पहुँच चुके हैं।

भारत-कोकिला का तिरोभाव

हमारे प्रान्त की प्रधान-शासिका और भारतीय वसन्त-वाटिका की विश्वविश्रुत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू की अवसान-वार्ता सुनते ही समस्त श्रद्धानन्द-नगरी में शोक की घटा छा गई। उस रात्रि को उनके सम्मान में समस्त कुलवासी एकत्र हुए। श्री आचार्य प्रियव्रत जी तथा श्री शंकरदेव जी विद्यालङ्कार आदि वक्ताओं ने उनकी देश-सेवा, साहित्य-सेवा और समाज-सेवा आदि पर विस्तार से विवेचना करते हुए उनकी तपस्या, साधना और सेवाओं के प्रति श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की। सबने एक मिनिट के लिए खड़े होकर उनके प्रति सन्मान प्रकट किया।

गुरुकुल का महोत्सव

गुरुकुल का वार्षिक महोत्सव इस वर्ष १३-१४-१५-१६ एप्रिल के दिनों में कुलभूमि में बड़े आनन्द और समारोह के साथ मनाया जायगा। इस अवसर पर आर्यसमाज और देश के उच्च कोटि के अनेक विद्वान्, उपदेष्टा, शिक्षाशास्त्री, लोकनेता और समाजसेवक पधारेंगे, और चार दिन ज्ञान, धर्म, संस्कृति, शिक्षा, राष्ट्रोन्नति, सामाजिक उत्कर्ष आदि विषयों पर अपने अमूल्य विचारों की ज्ञानगंगा बहाकर दूर दूर से पधारे हुए ज्ञानपिपासु जनों को आप्लावित करेंगे। चार दिन तक हरिद्वार के पुण्य तीर्थ पर धर्म, राष्ट्रीयता और शिक्षा-संस्कृति की एक अपूर्व महासम्मेलन संपन्न होगा। उत्सव पर सरस्वती-सम्मेलन, संस्कृत-सम्मेलन, राष्ट्रभाषा-सम्मेलन, राष्ट्रीय-शिक्षा सम्मेलन, व्यायाम सम्मेलन, दीक्षान्त समारंभ, वेदारंभ समारंभ आदि अनेक सम्मेलनों आयोजन किया गया है।

माघ मास की स्वास्थ्य रिपोर्ट

श्रेणी	नाम ब्रह्मचारी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा	परिणाम
१५	कृष्णचन्द्र	शूल	५ दिन	ठीक
१३	गजेन्द्र	अतिसार	५ दिन	,,
१३	रणजीत	ज्वर	४ दिन	,,
११	जीवन प्रकाश	,,	३ दिन	,,
११	नरेश	,,	३ दिन	,,
११	सोमप्रकाश	आन्त्र शूल	४ दिन	,,
११	ब्रह्म स्वरूप	खारिश	४ दिन	,,
१२	ओम्प्रकाश	ज्वर	४ दिन	,,
६	कुलदीप	खुजली	४ दिन	,,
५	गुरुदेव	चोट	२७ दिन	,,
५	योगेश्वर	ज्वर	३ दिन	,,
५	सुरेशचन्द्र	चोट	११ दिन	,,
५	अनन्तदेव	चोट	१२ दिन	,,
५	अश्विनी कुमार	व्रण	१७ दिन	,,
४	वेद प्रकाश	ज्वर	२ दिन	,,
४	राम गोपाल	ज्वर	६ दिन	,,
४	जगदीश	चोट	४ दिन	,,
४	अशोक कुमार	नेत्राभिस्पन्द	४ दिन	,,
३	कैलाश	चोट	३ दिन	,,
३	ईश्वरदत्त	मोच	८ दिन	,,
३	विजय कुमार	ज्वर	२ दिन	,,
३	शिवराम	चोट	७ दिन	,,
२	नरेन्द्र	चोट	६ दिन	,,
१	महेन्द्र	व्रण	८ दिन	,,
१	चमन	अतिसार	५ दिन	,,

उपर्युक्त ब्रह्मचारी गत मास रुग्ण हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

मुद्रक श्री— हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक विनय, पहला, दूसरा, और तीसरा भाग	श्री अभय	२), समाप्त, १।।)
वैदिक ब्रह्मचर्य-गीत	"	२)
ब्राह्मण की गौ	"	।।)
वेदगीताञ्जली (वैदिक गीतियाँ)	श्री वेदव्रत	२)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द	श्री चमूपति	२), १।।)
वरुण की नौका (दो भाग)	श्री प्रियव्रत	६)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१।।)
सन्ध्या सुमन	श्री नित्यानन्द	१।)
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश (तीन भाग)	श्री लक्ष्मूराम नय्यड़	२।।)
आत्ममीमांसा	श्री नन्दलाल	२)
भारत वर्ष का इतिहास [तीन भाग]	श्री रामदेव	७)
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द, अजिल्द	श्री चन्द्रगुप्त	७, ६)
अपने देश की कथा (दूसरा संस्करण) -बच्चों के लिए	श्री सत्यकेतु	१।=)
ऋषिदयानन्द का पत्र व्यवहार	श्री श्रद्धानन्द	।।।)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव	श्री क्षितीश	।।)
बालनीति कथामाला ।।=)	रघुवंश, संशोधित (तीन सर्ग)	।)
नीतिशतक (संशोधित) ≠)	साहित्य-दर्पण संशोधित	२)
संस्कृत प्रवेशिका. प्रथम भाग. द्वितीय भाग		।।।=),।।=)
साहित्य-सुधासंग्रह. प्रथम, द्वितीय, और तृतीय बिन्दु		१।), १।), १।)
विज्ञान प्रवेशिका (दो भाग) —मिडिल स्कूलों के लिए	श्री यज्ञदत्त	२।।)
गुणात्मक विश्लेषण (बी. एस. सी. के लिए)	श्री रामशरण दास	२)
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार)	श्री ओमप्रकाश	।।।)
प्रार्थनावली (प्रेरणा देने वाली प्रार्थनाएं और गीतियां)	श्री वागीश	।)
आर्यभाषा पाठावली (आठवां संस्करण)	श्री भवानीप्रसाद	१।।)
आहार (भोजन सम्बन्धी पूर्ण जानकारी के लिए)	श्री रामरक्षपाठक	५)
जलचिकित्सा (पानी से ही रोगों को दूर करने के उपाय)	श्री देवराज	३।।)
लहसुनः प्याज (दूसरा परिवर्द्धित संस्करण)	श्री रामेश बेदी	२।।)
तुलसी (दूसरा परिवर्द्धित संस्करण)	"	२)
सोंठ (तीसरा परिवर्द्धित संस्करण)	"	१।।)
देहाती इलाज (दूसरा परिवर्द्धित संस्करण)	"	१)

मिलने का पता— प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल-पत्रिका

चैत्र २००५

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

वर्ष १ **गुरुकुल-पत्रिका** अङ्क ८

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव
विद्यावाचस्पति।

श्री रमेश बेदी
आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

भारत का पश्चिम पर प्रभाव	श्री हरिदत्त वेदालङ्कार
बालि की दैनिक पूजा विधि	आचार्य रघुवीर एम. ए., पी. एच. डी., डी. लिट्.
भारत में संस्कृत के अध्ययन की आवश्यकता	श्री यशपाल वेदालङ्कार
भारतीय साहित्य में गन्ना	प्रोफेसर पी. के. गोडे, एम. ए.
संसार सुखमय है या दुःखमय	श्री वागीश्वर विद्यालङ्कार
उपनिषत्कालीन भारतीय शिक्षा	आचार्य क्षिति मोहन सेन
मैं और पण्डित हरिश्चन्द्र जी	राजा महेन्द्र प्रताप

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

जगद्दल विद्यापीठ

शंकरदेव विद्यालङ्कार

यह बौद्ध विद्यापीठ बंगाल में ज्ञान धर्म और संस्कृति का एक अच्छा केन्द्र स्थान था। नालंदा और विक्रमशिला के साथ बौद्ध-ग्रंथों में जगद्दल का भी विवरण मिलता है। ऐतिहासिक महाकाव्य रामचरित में जगद्दल के महाविहार का उल्लेख आता है। बारहवीं शती के प्रारंभ में बंगाल और मगध के राजा रामपाल ने गंगा और करतोया नदी के संगम पर एक नवीन नगरी बसाई थी। यह नगरी वारेन्द्र प्रदेश (उत्तर बंग) में स्थित थी और राजा ने इसका नाम रामावती रखा था। इसी नगरी में राजा रामपाल ने एक विहार की स्थापना करके उसका नाम जगद्दल रखा था। यह विहार बंगाल में विद्या और संस्कृति का एक उत्तम केन्द्र था। इसकी स्थापना का काल भी १२ वीं शती का आरंभ काल ही है मगध में जो महत्वपूर्ण स्थान नालंदा विद्यापीठ का था और पेशावर में जो स्थान कनिष्क-विहार का था या कोलम्बो (श्रीलंका) में जो स्थान दीपदत्तम् विहार का था, वही स्थान बंग देश में जगद्दल महाविहार का था। सौ वर्ष पर्यन्त यह महाविहार शिक्षा और संस्कृति का केन्द्र स्थान रहा। बाद को सन् १२०३ में मुसलमान आक्रांताओं द्वारा इसका विध्वंस हो गया।

एक शती के अपने छोटे से जीवन में भी इस विद्या केन्द्र ने अनेक विद्वानों और पंडितों को उत्पन्न किया। तिब्बत के त्रिपिटिक में इस विद्यापीठ [illegible] हमें उपलब्ध होते हैं।

तिब्बती विद्वानों ने तथा रामचरित के कर्ता ने इसकी अवस्थिति वारेन्द्र प्रदेश (उत्तरीय बंगाल) में बताई है। श्रीयुत अक्षय-कुमार मैत्र महाशय इसकी स्थिति वर्तमान दीनाजपुर जिले में बताते हैं।

तिब्बती भाषा के ग्रन्थों द्वारा हमें ज्ञात होता है कि विक्रम शिला और जगद्दल में रहकर बंगाल के तथा विदेश के अनेक विद्वानों ने अगणित मूल ग्रन्थों तथा अनुवादों की रचना की थी।

मगध के अन्य विहारों की अपेक्षा जगद्दल की एक यह विशेषता थी कि संस्कृत सीखने के लिए आने वाले तिब्बती साधु अधिकतर यहीं पर आश्रय लेते थे। क्योंकि बंगाल के बौद्ध साधुओं को तिब्बती भाषामें लेखन वाचनका अच्छा अभ्यास था। जगद्दल में सहस्रों संस्कृत-ग्रन्थों [illegible] तिब्बती भाषा में अनुवाद किया गया था। [illegible] विद्यापीठ महायान संप्रदायवादी था। इस विद्यापीठ के सब से अधिक प्रसिद्ध विद्वान् विभूतिचन्द्र थे। शांतिदेव ने अपने शिक्षा समुच्चय में लिखा है "देवं धर्मीयं प्रवर महायान यायिनो जागन्यलवंदित विभूतिचन्द्रस्य्।" ये तिब्बती भाषा के निष्णात पंडित थे। इन्होंने अनेक संस्कृत-ग्रन्थों का [illegible] किया था और साथ ही बहुत से संस्कृत-ग्रन्थों का तिब्बती भाषा

अध्यापक श्री फणीन्द्रनाथ वसु के लेखानुसार विभूतिचन्द्र ने अट्ठारह संस्कृत-ग्रन्थों का तिब्बती अनुवाद किया था और छः ग्रन्थ स्वयं संस्कृत में मूल-रूप में लिखकर उनका भाषान्तर भी स्वयं ही किया था।

विभूतिचन्द्र को "महापंडित" की उपाधि दी गई थी। इनका बौद्ध-साहित्य का ज्ञान अति विस्तृत था। इनकी ग्रन्थशाला में हस्तलिखित ग्रन्थों का एक विशाल संग्रह था। इस ग्रन्थशाला की एक हस्तलिखित पुस्तक (जिसे विभूतिचन्द्र ने अपने लिए बंगला में लिखवाया था) कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ग्रन्थालय में सुरक्षित है।

विभूतिचन्द्र ने शबरीश्वर नामक विद्वान् के समीप विद्याध्ययन किया था। शबरीश्वर ने ही इनको षडङ्गयोग नामक ग्रन्थ की व्याख्या समझाई थी जिसे बाद में जाकर विभूतिचन्द्र ने तिब्बती में अनूदित किया था।

विभूतिचन्द्र, आचार्य शाक्यश्रीभद्र के समसामयिक थे। सन् १२०३ में विक्रमशिला विद्यापीठ पर मुसलमानों के आक्रमण के समय शाक्य श्रीभद्र वहां के प्रधान आचार्य थे। विक्रमशिला के विध्वंस के पश्चात् शाक्यश्रीभद्र जगद्दल महा विहार में आ गए थे। हम कह नहीं सकते कि इन दोनों विद्वानों का सम्मिलन जगद्दल में हुआ था या नहीं! परन्तु यह संभव है कि शाक्य श्रीभद्र की तिब्बत यात्रा में विभूतिचन्द्र उनके साथ रहे हों।

जगद्दल विद्यापीठ के एक दूसरे महान् विद्वान् का नाम है दानशील। उनको पंडित, महापंडित, उपाध्याय और आचार्य—इन चार उपाधियों से विभूषित किया गया था। ये भी संस्कृत और तिब्बती भाषा के प्रकांड पंडित थे। इन्होंने तिब्बत की यात्रा की थी। मध्य तिब्बत के एक विहार में रहकर इन्होंने "काक-चरित" नामक संस्कृत पुस्तक का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया था। भाषान्तर-कला में ये महानिपुण थे। इन्होंने चौवन संस्कृत-ग्रन्थों का अकेले हाथ तिब्बती अनुवाद किया था और चार ग्रन्थों का भाषान्तर जिनमित्र नामक विद्वान् के साथ मिल कर किया था। तिब्बती बौद्ध धर्म पर इन पुस्तकों का बहुत प्रभाव पड़ा है। बौद्ध धर्म में आचार्य दानशील के विशाल कार्य की तुलना आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान और अभयकर-गुप्त के कार्यों से की जा सकती हैं। संस्कृत भाषा में इनकी लिखी एक ही पुस्तक है। जिसका नाम है ध्यान सद्धर्म व्यवस्थानवृत्ति।

इस विद्यापीठ के तीसरे विख्यात विद्वान् का नाम है—शुभाकर। इनको "पंडित" की उपाधि दी गई थी। ये विक्रमशिला महाविहार के आचार्य शाक्य श्रीभद्र के आध्यात्मिक गुरू थे अतः इनका समय मगध में मुस्लिम आक्रमणों से पहले का स्थिर किया जा सकता है। जगद्दल विहार में रहते हुए इन्होंने संस्कृत में सैद्धिक-वीर-तंत्रटीका नामक पुस्तक रची थी। इसका तिब्बती अनुवाद आचार्य दानशील ने किया था।

इस महाविहार के चौथे विद्वान् थे मोक्षाकर गुप्त। ये जगद्दल महाविहार के धर्माध्यक्ष थे। इनको 'महापंडित" और "भिक्षु" की उपाधि प्रदान की गई थी। ये तर्कविद्या में निष्णात थे। मूल संस्कृत भाषा में लिखी हुई इनकी "तर्कभाषा" नामक पुस्तक का तिब्बती अनुवाद उपलब्ध होता है। यह अनुवाद भिक्षु स्थिरमति ने किया था।

इन विद्वानों की कृतियों से तिब्बत में बौद्ध धर्म और बौद्ध संस्कृति के विकास को बहुत सहायता प्राप्त हुई। इस प्रकार तिब्बत में बौद्ध संस्कृति के प्रसार का बड़ा भारी श्रेय जगद्दल के विद्वानों को है।

इस प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र के विनाश का कारण भी वही है जोकि मगध और बंगाल के अन्य विद्यापीठों का है। ज्यों २ मुसलमान आक्रान्ता आगे आये त्यों २ इन विद्याधामों और संस्कृति केन्द्रों के विद्वान् और भिक्षु लोग नैपाल, भूटान, तिब्बत, चीन आदि प्रदेशों में चले गए। फलतः बौद्ध धर्म के इन केन्द्रों के नष्ट होने से बौद्ध-धर्म और बौद्ध-संस्कृति का भी भारत से विलय हो गया।

युक्ति

जनमेजय विद्यालङ्कार

महर्षि अग्निवेश ने अपनी लोकोत्तर कृति चरक संहिता में लिखा है कि "तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्यज्ञानवतां सदा" अर्थात् जो लोग केवल मात्र पदार्थों के गुण दोष आदि को स्मरण करके चिकित्सा में प्रवृत्त हो जाते हैं वे प्रायः असफल होते हैं; किन्तु जो लोग 'उपाय" जानते हैं वह कभी असफल नहीं होते। सचमुच "ज्ञान" और "ज्ञान की प्रयोग विधि" ये दो पदार्थ भिन्न भिन्न हैं। केवल आयुर्वेद के ही नहीं किन्तु जीवन के हरेक क्षेत्र में तथा हरेक काल में और हरेक देश में यही बात पाई जाती है। महात्मा विदुर ने अपनी पुस्तक विदुर नीति में सबसे श्रेष्ठ मनुष्य किसे बतलाया है? विद्वान् को नहीं, ज्ञानी को नहीं, किन्तु उपाय जानने वाले को। वे लिखते हैं कि उपायज्ञो मनुष्याणां नरः उच्यते। अर्थात् मनुष्यों में श्रेष्ठ वह है जो युक्ति जानता हैं। भगवान् श्री कृष्ण ने योग की महिमा बहुत गाई है किन्तु योग कहते किसे हैं? उन्होंने अपनी गीता में स्वयं ही लिख दिया है योगः कर्मसु कौशलम् अर्थात् कर्मों में कुशलता, चतुरता, तरकीब, तरीका, इसी का नाम योग है।

परिक्षाओं में उत्तीर्ण होना भी एक तरकीब से ही होता है। यह कहना अशुद्ध है कि युनिवर्सिटी की परिक्षाओं में वही विद्यार्थी सर्व प्रथम रहता है जो सबसे अधिक उस विषय का ज्ञाता होता है। असल में परीक्षायें पास करने की भी युक्ति होती है और वही परीक्षार्थी सर्वप्रथम रहता है जो उस तरकीब को सबसे अधिक जानता है। बड़े लायक और सुयोग्य छात्र फ़ेल हो जाते हैं किन्तु तरकीब जानने वाला कभी फ़ेल नहीं होता। हां. यह ठीक है कि योग्यता का भी उसकी सफलता में बहुत स्थान रहता है किन्तु इन दोनों से भिन्न और इन दोनों से प्रबलतर एक वस्तु है जिसे युक्ति कहा लाता है।

कई मामलों में लोगों में बहुत गलत धारणायें फैली हुई हैं। जिससे पूछो वह यही कहता है कि व्यापार में सफलता झूठ से मिलती है, बिना झूठ के किसी की दूकान नहीं चल सकती। इसी प्रकार दूसरे लोग कहते हैं कि सचाई से ही व्यापारिक सफलता प्राप्त होती है, सच्चे व्यापारी की ओर ग्राहक स्थायी रूप से आकृष्ट रहते हैं। मैं निश्चय कह सकता हूँ कि ये दोनों धारणायें अशुद्ध हैं। झूठ तो मैं भी काफी बोल लेता हूं किन्तु व्यापार में कभी मुझे सफलता नहीं हुई। मैं अपने कई सत्यवादी मित्रों को भी जानता हूँ, जो वर्षों से अपनी दूकान पर बैठे मक्खियां मारा करते हैं किन्तु कभी ग्राहक लोग वहां पधारते तक नहीं। असल बात यह है कि व्यापार की भी एक युक्ति होती है जो व्यक्ति उस युक्ति को जानता है वही सफल होता है।

योरोपीय प्रथम महायुद्ध के समय अंग्रेजों के प्रधान मन्त्री श्रीयुत लायड जार्ज महोदय का कहा हुआ एक वाक्य मैं कभी नहीं भूलता। प्रायः सबका विश्वास है कि लड़ाई में विजय वह पाता है जिसके पास सेना अधिक हो और युद्ध सामग्री अधिक हो तथा जिसके पास सिपाही अधिक वीर हों। बहादुर जर्मन सेनापतियों ने बैलजियम में बड़े बड़े मैदान मारे थे, फ्रांस को खाक में मिला दिया था, रूस को इतना मारा कि बेचारे ज़ार ने घुटने टेक दिये थे और अपने साथियों का साथ छोड़ कर रूस ने जर्मनी से सन्धि करली थी। उन दिनों की बात है, बृटिश प्रधान मन्त्री लायड जार्ज ने जर्मनी विजेताओं को सम्बोधन करते हुए कहा था, युद्ध क्षेत्रों में तुम जीतोगे किन्तु महासमर में हम जीतेंगे। लायड जार्ज जानता था कि युद्ध संचालन एक बिलकुल स्वतन्त्र और पृथक् वस्तु है। तथा वीरता अवश्यमेव विजय प्राप्त में सहायक हो सकती है, किंतु केवल वीरता के द्वारा युद्ध नहीं जीता जा सकता है। युद्ध वही जीतता है जो युद्ध जीतने की तरकीब जानता हो।

हां, तो मैंने इस लेख को आयुर्वेद शास्त्र के एक वाक्य से प्राम्भ किया है, मै चाहता हूं कि आयुर्वेद के उपयोगी उदाहरणों से ही इस लेख को अधिक से अधिक उपयोगी बनाउं।

आयुर्वेद में भी लिखा है और सारी दुनियां जानती भी है कि चन्दन ठण्डा होता है, खाने में भी और लगाने में भी। जिन्हें केवल चन्दन के गुणों और दोषों का ही ज्ञान था किंतु जो "युक्तिज्ञ" नहीं थे अर्थात् जो तरकीब को न जानते थे, उनमें से एक ने चन्दन को पत्थर पर घिसा, पानी कम मिलाया, फिर उस गाढ़े चन्दन को माथे पर लगा लिया, लगाया इस तरह से कि कहीं बीच में थोड़ा सा भी स्थान खाली नहीं छोड़ा, और चन्दन की तह भी खूब मोटी थी। परिणाम यह हुआ कि उसके माथे में जलन पैदा हो गई। ठण्डक पैदा न करके चन्दन ने गरमी पैदा करदी। ऐसे ही लोगों के लिए, जो केवल द्रव्यज्ञान वाले हैं और युक्ति ज्ञान वाले नहीं, चरक महर्षि को लिखना पड़ा कि "श्लक्ष्ण-पिष्टो घनो लेपश्चन्दनस्यापि दाहकृत्" अर्थात् चन्दन यदि कम पानी के साथ गाढ़ा पीसा हुआ हो और (मोटी) तह में लगाया जाए तो वह दाह पैदा करता है।

परन्तु जो युक्तिज्ञ होता है वह गरम वस्तु में से भी ठण्डक प्राप्त कर सकता है। सब जानते हैं कि अगुरु (अगर तगर) बहुत गर्म होता है। उसका लेप करने से गरमी पैदा होती है, पसीना आता है और छाले भी पड़ सकते हैं। किन्तु युक्तिज्ञ मनुष्य बहुत सा पानी मिलाकर उसे पीसेगा, फिर माथे पर थोड़ी थोड़ी जगह छोड़ कर उसकी पतली तह का लेप करेगा और ऊपर से हलका पंखा करेगा। इस प्रकार वह अगर तगर भी माथे में ठण्डक पैदा करता है।

मक्खी को यदि कोई खा जाय तो उसे उलटी हो जाती है, यह बात लोक प्रसिद्ध भी है और शास्त्रानुकूल भी है। किन्तु युक्तिज्ञ जानता है कि मक्खी का प्रयोग उलटी को रोकने के लिये भी किया जा सकता है। "छर्दिघ्न मक्षिका विष्टा मक्षिकैव तु वामपेत्" यह छोटा सा उदाहरण देकर चरक संहिता ने बड़ी अच्छी तरह समझा दिया है कि तरकीब के द्वारा मक्खी का उलटी रोकने के लिए भी प्रयोग कर सकते हैं।

खाना अधिक पका हुआ खाना, कम पका हुआ खाना, बासी खाना,

"अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः" यह उपनिषद् का वचन है, अर्थात् अन्न से ही सब प्राणी

जीवित रहते हैं। हम सभी जानते हैं कि सारा संसार अन्न खाकर ही जीवित रहता है। परन्तु इतना ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। अन्न सेवन की युक्ति भी आनी चाहिये। भरे पेट होने पर खाना, अधिक खाना बिना चबाये खाना, दिन भर खाते रहना, ईर्षा द्वेष क्रोध आदि के साथ खाना, यह सब ऐसे कारण हैं कि जिनसे अन्न हमें जीवन नहीं देता किन्तु मृत्यु देता है। सच तो यह है कि अधिकाश इन्द्रियलोलुप तथा अयुक्तिज्ञ लोगों ने आजकल पूर्वोक्त उपनिषद् वाक्य को " अन्नं वै प्राणिनां मृत्युः " इस प्रकार बदल दिया है। आजकल जितने अधिक रोग और जितनी अधिक मृत्युएं अन्न के कारण होती हैं उतनी विष के कारण भी नहीं होतीं। कारण स्पष्ट ही है लोगों ने सुन रखा है कि अन्न से बल बढ़ता है, शरीर पुष्ट होता है, आयु लम्बी होती है इत्यादि। किन्तु अन्न सेवन की तरकीब न कोई सुनता है न कोई सुनाता है। यह सब कुछ देख कर ही महर्षि अग्निवेश ने चरक संहिता में लिखा कि " प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या निहन्त्यसून् " अर्थात् अन्न यद्यपि सबसे अधिक जीवन देने वाला है किन्तु बेढंगे तरीके से सेवन करने से वह प्राण-घातक हो जाता है।

युक्ति अर्थात् तरकीब का महत्व समझाते हुए ही महर्षि आगे लिखते हैं कि " विषं प्राण-हरं तच्च युक्ति युक्तं रसायनम् "। अर्थात् विष जिसे सारे शास्त्र और प्राणनाशक लिखते हैं और मानते हैं वही विष युक्ति के द्वारा आरोग्य दायक और लम्बी आयु देने वाला हो जाता है और सैंकड़ो रोगों को नाश करता है। पारा, गन्धक, मीठा तेलिया संखिया विष तिन्दुक (कुचला) इत्यादि भयंकर और हलविष भी युक्तिज्ञ लोगों के द्वारा नित्य औषधियों के रूप में खिलाये जाते हैं और अमृत बन जाते हैं ईश्वर ने तो काले सांप के दांतों में भयङ्कर विष पैदा किया था किन्तु मनुष्य ने अपनी युक्ति के द्वारा उसे भी अमृत बना लिया है।

बात यह है कि मात्रा, काल, अवयव, स्थान, जन्म, पाक, बल, लिङ्ग, संयोग, स्वभाव, इत्यादि के भेद से प्रायः सभी पदार्थों के गुण बदलते रहते हैं। इसी का नाम तो बुद्धि है और यही बुद्धि की पराकाष्ठा समझनी चाहिए कि इन सब कारणों का पूरा पूरा विचार करके और इन सबका पूरा पूरा ध्यान रख के इस संसार के पदर्थों का उपयोग किया जाय और उपभोग भी। यह तो सभी जानते हैं कि एरण्ड तेल दस्त लाने वाला होता है किन्तु " थोड़ी मात्रा में दिया हुआ वह दस्तों को रोकता भी है " यह तो वही जानेगा जो युक्तिज्ञ सद्वैद्य होगा। इन्हीं सब कारणों पर विचार करने के पश्चात् ही महर्षि अग्निवेश लिख सके थे कि " अनेन कल्पेन ना-नौषधिभूतं जगति किञ्चिदस्ति " अर्थात् इस प्रकार संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो दवा के तौर पर प्रयोग न की जा सकती हो। तत्व यह है कि सब पदार्थ युक्ति के द्वारा दवा हो सकते हैं और युक्ति के द्वारा ही उनके गुणों में और उनके दोषों में परिवर्तन भी होते रहते हैं और परिवर्तन किए भी जा सकते हैं।

महर्षि अग्निवेश ने अपनी अनुपम पुस्त में कैसा उत्तम श्लोक लिखा है।

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो यो रोगेभ्यः प्रमोचयेत् ॥

दक्षिण भारत में प्रचलित एक सामाजिक संस्कृति विचार

श्री शिव पूजन सिंह कुशवाहा

उत्तर और दक्षिण भारत में प्रचलित कई सामाजिक संस्कृतियों में बहुत भेद है। दक्षिण भारत में ममेरी और फुफेरी बहिन के साथ विवाह करना उचित समझा जाता है, परन्तु उत्तर भारत में निषिद्ध माना जाता है। यह सामाजिक संस्कृति, वेद, शास्त्रानुकूल है या नहीं? इस पर यहां ऊहापोह से विचार किया जाता है।

पांचवी सदी ई० पू० के स्मृतिकार बौधायन भारत के एक प्राचीन स्मृतिकारों में समझे जाते हैं। बौधायन अपने 'धर्मसूत्र' में दक्षिण में प्रचलित रीतियों का वर्णन करते हैं। आप लिखते हैं।

"मातुल दुहित्र गमनम्";
पितृस्वस्रिदुहित्रगमनम्"
(बौधायनधर्म सू० १. १ १६. ॥ १

अर्थात्—ममेरी बहिन के साथ विवाह करना और फुफेरी बहिन के साथ विवाह करना। इस तरह के सम्बन्ध अब भी दक्षिण भारत में प्रचलित है।

डॉकटर जी० बहलर "मातुल दुहित्र गमनम्" का अर्थ मेरी फुफेरी बहिनों के साथ विवाह करते हैं। डॉक्टर जी बहलर का समर्थन अनेक भाष्यकारों ने किया है। यथा—गोविन्दस्वामी "गमनम्" का अर्थ सम्बन्ध करते हैं। आज भी लोग विवाह के लिए 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग करते हैं।

विवाह के लिए 'सम्बन्ध' शब्द महा कवि कालीदास ने भी प्रयुक्त किया है। २

उत्तर रामचरित के छठे अङ्क में भवभूति ने विवाह के लिए 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग किया है। ३

महाकवि भास ने "सम्बन्धस्पृहणीयता प्रमुदितैर्जुष्टे वसिष्ठादिभि ...... " में इस शब्द को इसी रूप में व्यवहार किया है।

माधवाचार्य ने "पराशर धर्मसंहिता" में विस्तृत रूप से इस पर टिप्पणी की है। उन्होंने 'गमनम्' के स्थान में परिणयनम्' शब्द का व्यवहार किया है। ४

इस प्रकार के विवाह के उदारण भी अनेक ग्रन्थों में पाए जाते हैं। महाभारत काल में इस प्रकार के विवाहों का अत्यधिक वर्णन है।

श्री कृष्ण ने अपनी एक ममेरी बहिन रुक्मणी और अर्जुन ने अपनी ममेरी बहिन सुभद्रा के साथ विवाह किया था। कहा जाता है कि कृष्ण ने अवन्ती की मित्रविन्दा और केकैय की मद्रा से विवाह किया और ये दोनों राजकुमारियां कृष्ण की फुफेरी बहिनें थीं।५

राव बहादुर श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम. ए. एल. एल. बी. लिखते हैं। "मामा की बेटी आजकल विवाह के लिए वर्ज्य है, परन्तु पांडवों के समय चन्द्रवंशी क्षत्रियों में इसकी मनाही न थी। इसके अनेक उदाहरण हैं। श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का विवाह, उसके मामा रुक्मणी की बेटी के साथ हुआ था। प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का विवाह भी उसकी ममेरी बहिन के साथ हुआ। इन विवाहों के

---

१. मैसूर ओरियन्टल सीरीज़.।

२. 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' पृष्ठ ६५।

३. उत्तररामचरित पृष्ठ ६७, बम्बई संस्कृत सीरीज़, वाल्यूम १, पार्ट २।

४. 'पाराशरमाध्वभाष्य" पृष्ठ ६७ बम्बई संस्कृत सीरीज़, वाल्यूम १, पार्ट २।

५. महाभारत, १० अध्याय, ५१, ३१ और ५६ (कुम्भकोनम संस्करण)।

वर्णन से ज्ञात होता है कि मामा की बेटी ब्याह लाना चन्द्रवंशी आर्य विशेष प्रशस्त मानते थे। सुभद्रा के साथ अर्जुन का विवाह भी इसी प्रकार का था। सुभद्रा उसकी ममेरी बहन थी। भीम का विवाह शिशुपाल की बहिन के साथ हुआ था। यह सम्बन्ध भी इसी श्रेणी का था। शिशुपाल की मां और कुन्ती दोनों बहिनें थीं। ऐसे अनेक उदाहरणों से सिद्ध है कि मामा की बेटी के साथ ब्याह कर लेना उस समय साधारण सी बात थी। यहां पर यह कह देना चाहिए कि ऐसा विवाह पहिले महाराष्ट्रों में प्रशस्त माना जाता था। ब्राह्मणों और क्षत्रियों में ऐसे विवाह उस तरफ पहिले होते थे, दक्षिण में ससुर को मामा कहने की चाल अब तक है। जनेउ के अवसर पर जब लड़का काशी जाने की रस्म अदा करने लगता है तब मामा ही उसे लड़की का वादा करके रोक लेता है। लड़की देने के वादे की रीति युक्तप्रान्त की तरफ नहीं है, सिर्फ फुसला लेने की है। 'धर्मशास्त्र-निबन्ध' में लिखा है कि 'मातुल-कन्या-परिणय' महाराष्ट्रों का अनाचार है। अतएव यह मान लेने में क्षति नहीं कि महाराष्ट्र लोग चन्द्रवंशी क्षत्रियों के वंशज हैं। जो हो यह कहा जा सकता है कि महाभारत के समय चन्द्रवंशी आर्यों में मातुल-कन्या का विवाह निषिद्ध न माना जाता था। ६

श्री भगवत शरण उपाध्याय एम. ए. लिखते हैं। "आर्य व्यवस्था को अपनाने की प्रवृत्ति रखने वाले कृष्ण ने जिस रुक्मन् की भगिनी रुक्मणी से विवाह किया था उसी की कन्या से उसके पुत्र ने अपना विवाह किया। छठी शती ई० पू० में इस प्रकार के विवाह अनेक बार हुए। शाक्यों में यह साधारण पद्धति थी। गौतम बुद्ध के पिता शुद्धोदन ने जिस कुल की पुत्रियों से अपना विवाह किया उसी में स्वयं गौतम ने अपना किया। आज भी दक्षिणात्यों में 'मातुल-कन्या-विवाह' अनेकार्थ में प्रचलित है।७

डॉ० वेनी प्रसाद जी एम. ए. पी. एच. डी०, डी. एस. सी. लिखते हैं कि ब्याह "में गोत्रों के निषेध अभी इतने नहीं हुए हैं जितने कि आगे हुए। शतपथ ब्राह्मण जो इस समय के ज़रा ही पीछे रचा गया था तीसरी चौथी पीढ़ी में ब्याह की आज्ञा देता है इसके आधार पर टीकाकार हरि स्वामी कहता है कि काण्व तीसरी पीढ़ी में और सौराष्ट्र चौथी पीढ़ी में ब्याह की आज्ञा देते हैं, दक्षिणात्य मामा की लड़की से या फूफा के लड़के से भी ब्याह ठीक बताते हैं। मौसी की लड़की या चाचा के लड़के से ब्याह तो शायद कोई ठीक नहीं बताता। ८

"आयाहीन्द्र पथिभिरीळितेभिर्यज्ञमिमं
नो भागधेयं जुषस्व।
तृप्तां जुहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते
पैतृष्वसेयी वपामिव ॥
(निरुक्त परिशिष्ट १४। ३१ ॥

यह प्रमाण प्रो० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार पालीरत्न वेदोपाध्याय गुरुकुल-विश्वविद्यालय कागड़ी के द्वारा सम्पादित और अनुवादित "निरुक्तभाष्य" उत्तरार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ७६६ से लिया गया है। आप इस मंत्र के विषय में पाद-टिप्पणी में लिखते हैं कि–यह ३१ वां खण्ड कई पुस्तकों में नहीं है।

---

६. "महाभारत-मीमांसा" पृष्ठ २४४-२४५ (सन् १९२० ई० पूना संस्करण)।

७. द्वैमासिक पत्रिका "प्रतीक" इलाहबाद, शिशिर ५, १९४८ ई०, पृष्ठ २५ में "संस्कृतियों का अंतरावलंबन" शीर्षक लेख। शतपथ ब्राह्मण १। ८। ३। ६॥

८. "हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता" प्रथम संस्करण, पृष्ठ १०८।

आपने इस मन्त्र का अनुवाद नहीं किया है. इसका कारण आप पृष्ठ ७८६ में लिखते हैं कि ' इससे अगले खण्डों में निरुक्त का पूरा २ शुद्ध पाठ नहीं मिलता. अतः आगे केवल मूल निरुक्त ही दिया गया है उसकी व्याख्या नहीं की गई । ''

आप यदि इस मन्त्र की व्याख्या कर देते तो वास्तविक अर्थ का पता लग जाता । ऋग्वेद के किसी भी मण्डल में यह मन्त्र नहीं मिलता । एक विद्वान् ने इस मन्त्र का अर्थ मातुल-कन्या के विवाह के पक्ष में किया है । उनका अर्थ इस प्रकार है

' हे इन्द्र ! तू यज्ञ की बलि उसी तरह सहर्ष स्वीकार कर जिस तरह कोई मामा और बुआ की लड़की को विवाह में स्वीकार करता है । ''

यह अर्थ कहां तक ठीक है, वैदिक विद्वान् ही विचार करें ।

क्योंकि वेद शास्त्रों के अनेक स्थलों में इस प्रकार के विवाह निषिद्ध लिखे गये हैं यथा— "यदि कोई व्यक्ति अपनी ममेरी बहिन से विवाह करता है तो उसे प्रायश्चित्त के रूप में 'चान्द्रायण' व्रत करना चाहिए '' । ९

वेद की स्पष्ट आज्ञा है कि भाई, बहिन में ब्याह नहीं होना चाहिए ।

सबसे पहिले 'यमयमी सूक्त' में आए हुए बहिन भाई के सम्वाद पर ध्यान दीजिए । यह यमयमी सूक्त ऋग्वेद १०/१० और अथर्ववेद-१८/१ में आया है । यह यमयमी रात और दिन हैं । रात और दिन दोनों जड़ हैं । इन्हीं दोनों जड़ों को भाई बहिन मान कर वेद ने एक धर्म विशेष का उपदेश किया है । अलङ्कार के रूप से दोनों में बातचीत कराई गई है । यम यमी से कहता है कि आप हमारे साथ विवाह कीजिए । पर यम कहता है कि "पापमाहुर्यः स्वसारं नियच्छात्, न तत् पुरा चकमा, अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्'' अर्थात् बहन के साथ कुत्सित व्यवहार करने से पाप होता है । कभी पुराकाल में भाई बहन का विवाह न हुआ । इसलिए तू दूसरे को पति बना । मैं विवाह नहीं कर सकता । यहां स्पष्ट रूप से भाई को कह दिया कि आज तक ऐसा नहीं हुआ । इसलिए यह पाप कर्म मैं नही कर सकता । भाई के इस कथन से ज्ञात हो गया कि पूर्व काल में भाई बहिन का विवाह नहीं होता था । पुनः ।

"यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजांयस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ "

अर्थ— 'हे स्त्रि ! (यः) जो दुष्ट पुरुष, (भ्राता) भाई, या (पतिः) पालक पति के समान हो कर या (जारः भूत्वा भूत्वा) जार, व्यभिचारी पुरुष होकर पुनः (त्वा निपद्यते) तुझे भोग करता है और ऐसा करके (ते यःप्रजां) तेरी जो प्रजा, सन्तति को (जिघांसति) नाश करता है (तम) उसको (इतः) हम यहां से (नाशयामसि) मार भगावें ।१०

पौराणिक पण्डित रामगोनविद त्रिवेदी 'वेदान्त शास्त्री' तथा पं० गौरीनाथ व्याकरण तीर्थ इस मन्त्र का अर्थ करते हैं कि —"नारी" जो तुम्हारा भाई पति और उपपति (जार) बनकर तुम्हारे पास जाता है और तुम्हारी सन्तति को नष्ट करने की इच्छा करता है, उसे हम यहां से दूर करते हैं'' । ११

इसका तात्पर्य यह है कि जो भाई, अपनी बहन (फुफेरी ममेरी कोई भी) के साथ व्य-

९. [illegible] पृष्ठ ६३.

१०. देखो—पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार मीमांसातीर्थ कृत ' अथर्ववेद संहिता भाषा भाष्य'' द्वितीयवृत्ति पृष्ठ ६५७ ।

११. [illegible] हिंदी टीका संहिता अन्तिम अष्टक, प्रथम संस्करण, पृष्ठ, २४१।

भिचार करेगा. वह लोक लज्जा के कारण बहन के गर्भ का अवश्य ही नाश करेगा। इसीलिए वेद ने ऐसे भाई को प्राणदण्ड देने की आज्ञा दी है, जो प्रकट रूप से विवाह करता है गुप्त रूप से जार-कर्म करता है और बहिन की सतान को मारता है।

एवं-"यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च।
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ॥
अथर्व० काण्ड ८ सूक्त ६ मन्त्र ७ ॥

अर्थात्—तुझ को यदि सोते समय भूलकर भी तेरा भाई अथवा तेरा पिता प्राप्त हो, तो वे दोनों गुप्त पापी औषधि प्रयोग से नपुसंक करके मार डाले जांय"

कैसा कठोर दण्ड है ? जब स्वप्न में भी-धोखे में भी-इस प्रकार कुत्सित विचार आने पर भ्राता व पिता को इतना बड़ा दण्ड देने का विधान है, तब भाई बहिन का विवाह कहां तक उपयुक्त हैं।

महाभारत प्रभृति ग्रन्थों के प्रमाण जो दिए जाते हैं कि ममेरी फुफेरी बहिन से विवाह करने के वर्णन हैं तो इतिहास में तो सभी प्रकार की बातें रहती हैं, वेदानुकूल होने से ही माननीय हैं। युधिष्ठिर धर्मात्मा ने होते हुए भी द्यूत कर्म किया तो क्या यह अवेदानुकूल होते हुए माननीय हो सकता है या नहीं। अतएव दक्षिणात्यों में जो यह प्रथा है वह शास्त्रीय दृष्टि से हेय है। विद्वानों को विचार करना चाहिए।

युद्ध क्यों ?

पण्डित प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेद का स्वाध्याय करते हुए पाठक के मन में युद्ध के सम्बन्ध में जो विचार अनायास ही उत्पन्न होते हैं उनमें से एक मुख्य विचार यह है कि वेद की सम्मति में किसी दूसरे राष्ट्र की स्वतन्त्रता को नष्ट करके अपने राष्ट्र की उदरपूर्ति करने के उद्देश्य से युद्ध नहीं किया जाना चाहिये। वैदिक आज्ञाओं के अनुसार चलता हुआ कोई राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र की स्वतन्त्रता को नष्ट करने में कभी प्रवृत्त न होगा। वैदिक राष्ट्र को जैसी अपनी स्वतन्त्रता प्यारी है वैसे ही उसे अन्य राष्ट्रों की स्वतन्त्रता भी प्यारी है। वैदिक राष्ट्र अपने आर्थिक स्वार्थों और विजय-वासना की पूर्ति के लिये कभी किसी दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण न करेगा। हां, यदि कोई दूसरा राष्ट्र हमारे राष्ट्र पर आक्रमण करके हमारी स्वतन्त्रता को नष्ट करने की कुत्सित इच्छा मन में रखेगा तो हमारा राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिये उस राष्ट्र से लोहा लेने के लिये सदा उद्यत रहेगा। एक शब्द में, वेद युद्ध का उद्देश्य अपने अधिकारों की रक्षा बताते हैं, दूसरे के अधिकारों का अपहरण नहीं। इस आशय को व्यक्त करने वाले कुछ थोड़े से वेद-मन्त्र नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

मा नो विदन् वि व्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन्।
आराच्छरव्या अस्मद्विषूचीरिन्द्र पातय ॥ अथर्व १।१९।१
यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति।
रुद्रः शरव्ययैतान् ममामित्रान् विविध्यतु ॥ अथर्व १।१९।३
यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते।
युवं तं मित्रावरुणावस्मद् यावयतं परि ॥ अथर्व १।२०।२

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥ अथर्व १।२१।२
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासत. । अथर्व १।२१।३
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥अथर्व ।१।२१ ४
सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥ अथर्व २।६।३
अति निहो अति सृधोऽत्यचित्तीरतिं द्विषः । यजुः २७।६ अथर्व० २।६।५
अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥ अथर्व ३।१।३
असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्द्धमाना ।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥ अथ० ३।२।६ यजुः १७।४४
नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रान् उन्नयामि स्वानहम् ॥ अथर्व० ३।१९।३
सहस्व मन्यो अभिमाति मस्मै रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् अथ० ४।३१।३
तान् सत्यौजाः प्रदहत्वग्नि र्वैश्वानरो वृषा ।
यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् ॥ अथ० ४।३६।१
यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह ।
तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः ॥ अथर्व० ५।२१।८
यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्वधत्मना ॥ अथर्व ६।६।३
अशत्विन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभियातु मन्युः । अथर्व० ६।४० २
सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति ।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥ अथर्व० ६।५४।३
निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभियुधमायन्त्यस्मान् ।
समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः ॥ अथर्व० ६।६६।१
यो अस्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदीरते ।
इन्द्रस्य तत्रबाहू समन्तं परि दद्मः ॥ अथर्व ६।९९।२
अभी ये युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः ।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥ अथर्व० ६।१०३।३
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट । अथर्व ७।३१।३
अग्ने जातान् प्रणुदा मे सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागसस्ते वयमदितये स्याम ॥ अथर्व० ७।३४।१
अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव ।
आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायाति ॥ अथर्व० ७।७०।३
मा त्वा निक्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यम् । अथ० ७।८२।३ यजुः २७।४

अपानुदो जनममित्रायन्तम् ।। अथर्व० ७।८४।२
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु । अथ० ७।९२।१ यजुः २०।५२
द्विषश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधम् । अथर्व० १७।१।६
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवंछग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो विमृधोजहि ।। अथर्व १९।१५।१
अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासतः ।
दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा सनुतर्यवया वधम् ।। ऋग्० १०।११२।३
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ।। ऋग्० १०।१५२।३
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ।।ऋग्० १०।१५२।४ यजुः ८।४४।।१८।७०
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतोवधम् ।
वि मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ।। ऋग्० १०।१५२।५
यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद्यो अस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु ।। यजुः १३।८०
अरातीयतो हन्ता.........शत्रूयतो हन्ता । यजुः १२।५
अधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः । यजुः १५।५१
आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुःसङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ।। यजुः २०।४८
इन्द्रः सुत्रामा स्ववान्......बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु ।। यजुः २०।५१

इन मन्त्रों का शब्दार्थ क्रम से इस प्रकार है—
"हे सम्राट् (इन्द्र) दूर से फेंक कर मारे जाने वाले विशेष प्रकार के अस्त्रों से हम पर प्रहार करने वाले (वि-व्याधिनः१) और सम्मुख आकर हम पर प्रहार करने वाले शत्रु (अभि-व्याधिनः) हमें प्राप्त न कर सकें, तू शत्रुओं की बाणावलि को हम से हटा कर दूर चारों दिशाओं में बखेर दे।" "अपने देश का (स्वः) अथवा पराये देश का (अरणः), अपनी जाति का (सजातः) अथवा अपनी जाति से बाहर का (निष्ट्यः) जो शत्रु हमें अपना दास बनाना चाहता है (अभिदासति२) उन सब हमारे शत्रुओं को (अभित्रान्) हमारा सेनापति (रुद्रः) अपनी बाणावलि से बींध डाले।" "हमारे प्रति पाप करना चाहने वाले (अघायूनां) शत्रुओं का आज जो उनकी सेनाओं द्वारा होने वाला (सेन्यः) हमारा वध उठ कर आ रहा है उसे हे मित्र और वरुण राज्याधिकारियो तुम हम से परे फेंक दो।" "हे सम्राट् (इन्द्र) हमारी हिंसा करने वाले शत्रुओं को (मृधः) मार डाल, हम पर सेना लेकर चढ़ना चाहने वाले दुश्मनों को भूमि पर लिटा दे (नीचायच्छ) जो हमें अपना दास करना चाहता है अभिदासति) उसे सब से

१. विशेषेण अस्त्रादिभिस्ताडन शीलाः शत्रव इति सायणः ।

२. अभिगत्य दासान् करोतीति अभिदासति । 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलम्'' 'तत्करोति तदाचष्टे'' इति नियमाद्दासशब्दाण्णिच् । णिचो बाहुलकत्वाच्च तदभावः ।

निचले३ अन्धकार में पहुँचा दे अर्थात् मार डाल।" "हे विघ्न-बाधाओं को नष्ट कर देने वाले (वृत्रहन्) सम्राट् (इन्द्र) हमें अपना दास बनाना चाहने वाले (अभिदासतः) शत्रु के (अमित्रस्य) क्रोध या मान को (मन्युं) मार कर भङ्ग कर दे।" "हे सम्राट् (इन्द्र) हम से द्वेष करने वाले शत्रु के (द्विषतः) मन को मार दे, हमारी आयु नष्ट करना चाहने वाले (जिज्यासतः) शत्रु के शस्त्र को (वधं४) नष्ट करदे, हमें भारी कल्याण दे और शत्रुओं के शस्त्रों को हमसे दूर फेंक मार।" "हे सम्राट् (अग्ने) तू हमारे शत्रुओं को मारने वाला और अभिमानी दुश्मनों को जीतने वाला (अभिमातिजित्) बन और अपने राष्ट्ररूप घरमें (गये) प्रमाद को छोड़कर जाग।" "हे सम्राट् (अग्ने) हमारा हनन करने वालों को (निहः), हमारा शोषण करने वालों को (स्रुधः), अशोभन बुद्धियों को और हम से द्वेष करने वाले शत्रुओं को (द्विषः) तू अपने पराक्रम से तर जा।" यह मन्त्र हलके पाठ-भेद के साथ यजुर्वेद और अथर्ववेद में एक जैसा ही है।" हमारे प्रति शत्रुता का व्यवहार करने वाली (शत्रूयतीम्) दुश्मनों की सेना को (अमित्रसेनां) हे विघ्ननाशक (वृत्रहन्) सम्राट् (इन्द्र) और अग्नि तुम जला डालो।" अपने बल द्वारा हमसे संघर्ष करना चाहती हुई (स्पर्धमाना) वह जो शत्रुओं की (परेषां) सेना हम पर चढ़ाई करने आ रही है उसे हे हमारे राष्ट्र के सैनिको (मरुत) कर्म भुला देने वाले (अपव्रतेन) अन्धकार से (तमसा) बींध दो जिससे इनमें से एक दूसरे को न जान सके।"

हलके शाब्दिक भेद के साथ यह मन्त्र यजुर्वेद और अथर्ववेद में एक जैसा ही है। "जो शत्रु हमारे विद्वान् और ऐश्वर्यशाली सम्राट् पर (मघवानं) सेनाओं द्वारा चढ़ाई करना चाहते हैं (पृतन्यात्) वे नीची और अधर स्थिति को पहुँचा दिये जायें। मैं राज पुरोहित अपने ज्ञान द्वारा (ब्रह्मणा) शत्रुओं का नाश कर देता हूँ और अपने लोगों को उन्नति पर पहुँचा देता हूं।" "हे हमारे सैनिकों के क्रोध! अपने इस राष्ट्र के लिये अभिमानी शत्रु का पराभव कर दे, उसे भग्न कर दे, उसे मार डाल और बुरी तरह मार डाल।" "जो हमारे साथ दुष्टता का आचरण करना चाहे (दुरस्यात्५), जो हम से दम्भ करना चाहे (दिप्सात्६) और जो हम से शत्रुता का व्यवहार करना चाहे (अरातियात्) उन सब को राष्ट्र के सब लोगों का हितकारी (वैश्वानरः) और उन पर सुख मंगल की वर्षा करने वाला (वृषा), जिसका बल-पराक्रम कभी वृथा नहीं जाता ऐसा (सत्यौजाः) यह सम्राट् (अग्निः) जला डाले।" "साथ-साथ फिरती हुई अपनी छाया के साथ अपने जिन पद-घोषों द्वारा हमारा सम्राट् (इन्द्रः) युद्धभूमि में खेलता फिरता है उनसे हमारे वे शत्रु डरकर भाग जायें जोकि हम पर सेना की टुकड़िये लेकर चढ़ाई करते हैं (अनीकशः यन्ति)।" "हे सोम जो हमारे वंश का अथवा हमारे वंश से बाहर का शत्रु हमें दास बनाना चाहता है तू अपने वधकारी रूप से (वधत्मना) उसके बल को शीघ्र

३. अधमं पुनरुत्थानशून्यं निकृष्टं तमो मरणात्मकमिति सायणः।

४. हननसाधनमायुधमिति सायणः।

५. अस्मान् दुष्टानिवाचरेत्। दुष्टशब्दादाचारे क्यच्। दुरस्यदिति दुष्टस्य दुरस्भावः। तदन्तात् लेटि आडागमः। इतिसायण।

६. धिप्सेत् दम्भु दम्भे। सनीवन्तर्धेति इटो विकल्पनादभावः। दम्भ इच्चेतीत्त्वम्। छान्दसो भष्भावाभावः। लेटि आडागमः।

करके जैसे कि प्रकाशमान् महान् सूर्य (द्यौः) अन्धकार को क्षीण कर देता है।" "यह सम्राट् (इन्द्रः) हमारे लिये शत्रुओं से रहित (अशत्रु) और भय से रहित अवस्था कर देवे, हम पर आक्रमण करने वाले राजाओं का (राज्ञां) क्रोध और अभिमान (मन्युः) चूर होकर उनसे बाहर बाहर (अन्यत्र) निकल जावे।" "जो हमारा सबन्धु अथवा असबन्ध शत्रु हमें दास बनाना चाहता है (अभिदासति) हे सम्राट् (इन्द्र) राष्ट्र के लिये देय कर आदि तय्यार करके देने वाले (सुन्वते) व्यवहार-यज्ञों के यजमान यजमानाय) हम प्रजा जनों के लिये उसे तू रांध दे— बुरी तरह नष्ट कर डाल।" "जो शत्रु हमें दास बनाना चाहता है, जो युद्ध करने के लिये सेनाओं के साथ हम पर चढ़कर आता है, उसके हे सम्राट् (इन्द्र तू हाथ काट डाल (निर्हस्तः अस्तु), अपने महान् शस्त्रों से उसे मार डाल इन शत्रुओं में से एक-एक पापी (अघहारः) बिंध बिंधकर वापिस भाग जाये।" "शत्रु की सेनाओं द्वारा होने वाला (सैन्यः) जो शस्त्र प्रहार (वधः हमें मारने की इच्छा से (जिघांसन्) आज उठ रहा है उसमें अपनी रक्षा के लिये हम सम्राट् (इन्द्र) की दोनों भुजाओं को अपने चारों ओर (समन्तं) करते हैं।" "ये जो शत्रु झण्डे उठाकर (केतून् कृत्वा) सेनाओं की टुकड़ियों द्वारा (अनीकशः) हमसे युद्ध करने आते हैं सम्राट् (इन्द्रः) उनको पीट कर रोक दे (पर्यहाः), फिर तू हे अग्नि उनको पाशों में बांध ले (दाम्ना द्य)।" "हे सम्राट् (इन्द्र) जो हमसे द्वेष करता है वह तेरे द्वारा दबाया जाकर नीची अवस्था को पहुँच जाये।" "हे सम्राट् (अग्ने) हमारे जो शत्रु उत्पन्न हो चुके हैं उन्हें तू मार भगा जो अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं परन्तु होने वाले हैं उन्हें भी तू मार भगा अर्थात् पहले से ही तू उनका उपाय करदे, जो हम पर सेना लेकर आक्रमण करना चाहें (पृतन्यवः) उन्हें तू अपने पैर के नीचे (अधस्पदं) कर डाल, अखण्डित शक्ति वाले (अदितये) तेरे प्रति हम निष्पाप होकर रहें।" "शत्रु को मार भगाने में समर्थ और शत्रुओं पर चढ़कर चमकने वाले (अजिराधिराजौ७) इन्द्र (सम्राट्) और उसका अग्नि नामक राज्याधिकारी इस पर पड़ने वाले बाज़ पक्षियों की—(श्येनाविव) भांति उस दुश्मन पर जो कि हम पर सेना लेकर आक्रमण करना चाहता है पृतन्यतः) और हमारे प्रति पाप कर्म करना चाहता है (अभ्यघायति) गिर कर उसके आज्य अर्थात् घी और घी से उपलक्षित खाद्य सामग्री को नष्ट कर दे।"

जिस सूक्त का यह मन्त्र है वहां इन्द्र और अग्नि इन दो देवताओं का नाम निर्देश हुआ है। इस लिये "अजिराधिराजौ" इस द्विवचनान्त पद को इन्द्र और अग्नि का ही विशेषण मानना चाहिये। सायण ने मन्त्र में अजिर और अधिराज नामक मृत्यु के दो दूतों की कल्पना घुसेड़ दी है। इस कल्पना का कोई आधार नहीं है। साथ ही सायण का अर्थ मन्त्र के शेष पदों के अर्थ के साथ अच्छी तरह संगत भी नहीं होता है। हमारा अर्थ शेष पदों के अर्थ के साथ बड़ी अच्छी तरह संगत होता है। अजिर और अधिराज पदों का धात्वर्थ सायण ने भी वही किया है जो हमने किया है। इन्द्र और अग्नि का विशेषण इन पदों को मानने से मन्त्र और सूक्त के अर्थ में जो चमत्कार उत्पन्न हो जाता है वह सायण के अर्थ में नहीं आ पाता है। इन्द्र और अग्नि का

---

७. अज गतिक्षेपणयोः। अजिरेति (उ० १।५३, निपातितः। शत्रुक्षेपणसमर्थः अजिरः। अधिराजत इति अधिराजः। अजिरश्चाधिराजश्चाजिराधिराज स्तौ अजिराधिराजौ।

सामान्य अर्थ सम्राट् होता है यह पाठक देखते आ रहे हैं। जहां अग्नि इन्द्र का सहचारी होकर आता है वहाँ उसका क्या अर्थ करना चाहिये इसकी विवेचना आगे की जायेगी।

"पहले से भी मन में जिन्होंने तेरा अपमान करने की सोच रखी है ऐसे (पूर्वचित्ताः) तेरा अपमान करना चाहने वाले (निकारिणः) शत्रु लोग तुझे नीचा न दिखा सकें (निक्रन्), हे सम्राट् (अग्ने) तू अपने क्षत्रियों की सहायता से (क्षत्रेण) शत्रुओं का खूब अच्छी तरह नियमन कर।" यह मन्त्र हलके शाब्दिक परिवर्तन के साथ अथर्व और यजुः दोनों वेदों में एक सा ही है। "हे सम्राट् इन्द्र) तू हमारे साथ शत्रुता करने वाले (अमित्रयन्तम्) मनुष्य को मार भगा" "प्रजाजनों की अच्छी तरह पालना करने वाला और स्वयं अपनी शक्ति से शक्तिमान् (स्ववान्) यह सम्राट् इन्द्र) हमसे द्वेष करने वाले शत्रुओं को हम से दूर भगा कर निश्चित रूप से छिपा दे (सनुतः८ युयोतु)।" यजुः और अथर्व वेद में यह मन्त्र हलके पाठ भेद के साथ एक सा ही है। "हे सम्राट् (इन्द्र) हमसे द्वेष करने वाला शत्रु तो हम प्रजाजनों के वश में आ जावे पर हम शत्रु के वश में न आवें।" 'हे सम्राट् (इन्द्र) जहां जहां से हमें भय प्राप्त होता हो वहां वहां से तू हमें अभय करदे, हे ऐश्वर्यशाली तू शक्तिमान् बन और अपनी रक्षाओं से हम से द्वेष करने वाले (द्विषः) और हमारी हिंसा करने वाले (मृधः) शत्रुओं को मार डाल।" "हे सम्राट् (इन्द्र) जो हमारी हिंसा करना चाहता है (जिघांसतः) और हमें दास बनाना चाहता है (अभिदासतः) उप दस्यु (दासस्य) और आर्य के (आर्यस्य) वज्र को नीचे कर दे, हे ऐश्वर्यशाली उसके शस्त्रों को उससे छीनकर निश्चित रूप से छिपा दे।" "हे विघ्न–बाधाओं को मारने वाले सम्राट् (इन्द्र) हमें छिपकर मारने वाले (रक्षः), हमारी हिंसा करने वाले (मृधः), हमारे कामों में रुकावट डालने वाले (वृत्रस्य) शत्रु के जबड़े तोड़ दे, जो हमें दास बनाना चाहता है उस शत्रु के क्रोध और अभिमान को (मन्यु) चूर कर दे।" 'हे सम्राट् (इन्द्र) जो हमारी हिंसा करना चाहते हैं उन शत्रुओं को (मृधः) मार डाल, जो हम पर सेना लेकर चढ़ाई करना चाहता है (पृतन्यतः) उसे भूमि पर सुला दे (नीचायच्छ) जो हमें दास बनाना चाहता है (अभिदासतः) उसे निचले अन्धकार में पहुँचा दे।"

मन्त्र के 'निचले अन्धाकर' में पहुँचा दे इस वाक्य का सायण ने तो यह अर्थ किया है कि शत्रु को मार दे। इसका एक अर्थ यह भी हो सकता है कि भूमि के भीतर की काल कोठरियां में शत्रु को डाल दे। क्योंकि निचला अन्धकार भूमि के भीतर की कोठरियों का अन्धकार ही हो सकता है;

'हे सम्राट् (इन्द्र) हमसे द्वेष करने वाले शत्रु के मन को मार दे, हमारी आयु को क्षीण करना चाहने वाले दुश्मन के शस्त्रों को नष्ट कर दे, शत्रु के क्रोध और अभिमान से (मन्योः) हमारी रक्षा कर, हमें कल्याण प्रदान कर, शत्र के शस्त्रों को उससे छीनकर अलग कर दे।" 'हे सम्राट् अग्ने) जो व्यक्ति हमारे प्रति शत्रुता का व्यवहार करता है (अरातीयात्), जो हमसे द्वेष करता है जो हमारी निन्दा करता है, और जो हमारे साथ दम्भ करता है (धिप्सात्) उसे तू मसल डाल (मस्मसा कुरू)।"

'मस्मसा कुरू' का अर्थ हमने मसल डाल ऐसा कर दिया है। 'मस्मसा' पद मस्–मस् ऐसी होती हुई ध्वनि को प्रकट करने के लिये एक

८. सनुतः निर्णीतान्तर्हितनाम। निघं० ३/२५

अनुकरण शब्द है। उवट—सायणादि भाष्यकार किसी वस्तु को खाते हुए अथवा आग में जलाते हुए उसमें से जो मस्—मस् ध्वनि निकलती है उसे बताने वाला 'मस्मसा' शब्द है ऐसा कहते हैं। इस लिये ये लोग मन्त्र का अर्थ करते हुए 'मस्मसा कुरू' का अर्थ यह करते हैं कि हे अग्नि तू इन शत्रुओं को खा जा या जला डाल। क्योंकि जब अग्नि इन्हें खायेगा अर्थात् जलायेगा तो उसमें से मस्—मस् ऐसी ध्वनि निकलेगी। परन्तु हम देख रहे हैं कि अग्नि का अर्थ सम्राट् होता है और जिस प्रकरण का प्रस्तुत मन्त्र है वहां अग्नि का अर्थ सम्राट् ही सुसंगत भी हो सकता है। इसलिये खाना अर्थ यहां नहीं घट सकता। यहां इस शब्द का अर्थ शत्रु को मसल डालना अर्थात् उसका पराभव कर देना, उसे हरा देना या मार देना ऐसा करना चाहिये। किसी वस्तु को यदि हम मसलने लगें तो उसमें से भी मस्-मस् ध्वनि निकल सकती है। विशेष कर फोकी वस्तुओं में से तो मसलने के समय मस् मस् ध्वनि अवश्य ही निकलती है। शत्रुओं का पराभव करने के लिये 'मस्मसा' शब्द का प्रयोग करने की यह भी व्यञ्जना है कि हे सम्राट् तुम इतने शक्तिशाली हो कि तुम्हारे आगे तुम्हारे शत्रु सर्वथा फोके—निर्बल—प्रतीत होते हैं। भला उन्हें दबाने में तुम्हें क्या देर लगेगी।

"हे सम्राट् (अग्ने) तुम अराति और शत्रु का व्यवहार करने वाले व्यक्ति का वध करने वाले हो।" "यह सम्राट् (अग्निः) जो शत्रु सेना लेकर आक्रमण करना चाहते हैं (पृतन्यवः) उनको अपने पैर के नीचे कर डाले।" "हमें अभीष्ट रक्षादि देने वाला (अभिष्टिकृत्) हमारा सम्राट् (इन्द्रः) दूर से और समीप से (आरात्) आवश्यकता पड़ने पर हमारे पास पहुँचे (आ-यासत्). यह तुर्वणि अपने बलिष्ठ सैनिकों के (ओजिष्ठेभिः) वज्र हाथ में लेकर युद्ध में सेना लेकर चढ़ाई करना चाहने वाले शत्रुओं पर (पृतन्यून्) शीघ्र ही चढ़ाई कर देता है और उन्हें मार देता है (तुर्वणिः६)" 'यह सम्राट् अच्छी तरह रक्षा करने वाला है, यह स्वयं अपनी शक्ति से शक्तिमान् है (स्ववान्),' हममें द्वेष करने वाले शत्रुओं को यह रोके और हमारे लिये अभय करे"

पाठकों ने इन मन्त्रों में देखा है कि जो लोग हम से द्वेष करते हैं हमारी निन्दा करते हैं, हमारी हिंसा करना चाहते हैं, छिपे-छिपे हमें नष्ट करते हैं, हमारे कामों में विघ्न-बाधा उपस्थित करते हैं, हमें दास बनाना चाहते हैं, हम पर सेना लेकर चढ़ाई करना चाहते हैं, हमारे प्रति शत्रुता का व्यवहार रखना चाहते हैं, उन्हें ही मारने और उनके साथ ही युद्ध करने की बात इनमें कही गई है। यों ही किसी राजा और राष्ट्र पर बैठे-बिठाये आक्रमण करके उसके साथ युद्ध ठान देने की बात इन मन्त्रों में नहीं कही गई है। इन मन्त्रों में ही नहीं—ये मन्त्र तो नमूने के रूप में थोड़े से ही उद्धृत किये गये हैं—पाठक सारे वेद का स्वाध्याय कर जायें उन्हें कहीं भी यह विधान न मिलेगा कि किसी को यों ही बैठे—बिठाये मार देना चाहिये या उस पर आक्रमण करके उससे युद्ध छेड़ देना चाहिये। वेद का सम्राट् तभी किसी को मारता है या उसके साथ युद्ध करता है जबकि वह ऊपर कही गई बातों का अपराधी पाया जाता है। वेद में दुश्मन के लिये प्रायः प्रयुक्त होने वाले शब्द अराति, द्विष, अमित्र, रक्षस्, दस्यु, मृध, वृत्र, शत्रु और सपत्न हैं। इनका शब्दार्थ भी इस पर प्रकाश डालता है कि—हमें कैसे लोगों के साथ

६. तुर्वणिः तूर्णवनिः तूर्णसंभक्तति उवटः। तुर्वि हिंसायाम्, तुर्वतीति तुर्वणिः हन्तेति महीधरः।

युद्ध करना चाहिये । अराति का शब्दार्थ है जो हमें समृद्धि प्राप्त न होने दे, द्विष् का अर्थ है जो हमसे द्वेष करे, अमित्र का अर्थ है जो हमसे मित्रता त्याग कर शत्रुता करे. रक्षस् का अर्थ है जो छिपे-छिपे मारे. दस्यु का अर्थ है जो हमें क्षीण करे, मृध का अर्थ है जो हमारी हिंसा करे, वृत्र का अर्थ है जो हमारी सुख-समृद्धि में रुकावट डालो, और सपत्न का अर्थ है जो लड़ने के लिये मुकाबले में आकर खड़ा हो। शत्रु के वाचक ये नाम ही बताते हैं कि हमें युद्ध किस प्रकार के लोगों के साथ करना है। जो हमारी हानि करने वाले लोग हैं उन्हीं के साथ हमारे युद्ध होंगे। दूसरों के साथ नहीं। दूसरे शब्दों में हमारे युद्ध केवल आत्म-रक्षा के लिये होंगे, स्वार्थ-पूर्ति के लिये नहीं। और आत्म-रक्षा के लिये किये गये युद्धों में, जैसा कि पाठकों ने ऊपर उद्धृत मन्त्रों में स्पष्ट देखा होगा, यदि आवश्यकता होगी तो हम शत्रु को भयङ्कर से भयङ्कर दण्ड देंगे।

इसी प्रसंग में अथर्व वेद का निम्न मन्त्र भी देखने योग्य है !

तेषां सर्वेषामीशाना उतिष्ठत संनह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्रामं संजित्य यथा लोकं वितिष्ठध्वम् ॥
अथर्व० ११. ६. २६ ॥

जिस सूक्त का यह मन्त्र है उसमें युद्ध का ही वर्णन है। हमारे राष्ट्र के सेनापति और सैनिक इन्द्र (सम्राट्) की संरक्षा में शत्रुओं की सेनाओं को—'अमित्राणां सेनाः'—बुरी तरह पछाड़ रहे हैं। जो लोग वेद में वर्णित युद्ध-रस का चित्र देखना चाहें उन्हें और और सूक्तों के साथ वेद का यह सूक्त एक बार अवश्य पढ़ना चाहिये। इस में वर्णित युद्ध का चित्र इतना सजीव है कि इस को पढ़ने से युद्ध भूमि का वास्तविक दृश्य आंखों के सन्मुख आकर खड़ा हो जाता है उद्धृत मन्त्र इस सूक्त का अन्तिम मंत्र है। मन्त्र का शब्दार्थ इस प्रकार है।

हे हमारे मित्र सैनिको (मरुतः १) तुम विजय की इच्छा रखने वाले लोग (देवजनाः २) हो. तुम उन सब शत्रुओं के ईशान अर्थात् उन्हें जीतने में समर्थ हो, उठो तय्यार हो जाओ, इस संग्राम को जीत कर अपनी यथालोक स्थिति करो अर्थात् अपने अपने स्थान में चले जाओ।

इस मन्त्र में युद्ध के सम्बन्ध में एक विशेष बात कही गई है। वह यह कि जब हमें शत्रु की दुष्टता के कारण उससे युद्ध करना आवश्यक ही हो जाये तो भी हमें उसके राष्ट्र पर अधिकार नहीं करना चाहिये। हमें शत्रु को दण्डित करने के लिये उससे युद्ध तो करना चाहिये पर इस युद्ध का प्रयोजन शत्रु को सीधे रास्ते पर लाने से अधिक कुछ न होना चाहिये। युद्ध को जीतने के पश्चात् हमें अपनी सेनायें शत्रु के राष्ट्र में नहीं रखनी चाहियें। हमारी सेनाओं को युद्ध जीतने के पीछे "यथालोक" आ जाना चाहिये। जिन सेनाओं का जो लोक अर्थात् स्थान था उन्हें उसी स्थान पर वापिस चले आना चाहिये। दूसरे शब्दों में मन्त्र के इस कथन का भाव यह है कि संग्राम जीतने के अनन्तर हमारी सेनाओं को वापिस अपने देश स्कन्धावारों (छावनियों) में आ जाना चाहिये। उस देश की सर्व साधारण प्रजा की स्वतन्त्रता हड़पना तो हमारा उद्देश्य था ही नहीं। उसके शासकों ने हमारे राष्ट्र के साथ दुर्व्यवहार किया था। उन दुष्ट शासकों को युद्ध में परास्त करके उचित दण्ड

---

१. मरुत इति पदं पूर्वमंत्रादाकृष्यते।
२. दिवुधातोरर्थेषु विजिगीषाप्यन्यमः। दीव्यन्ति विजिगीषन्ति देवाः। देवाश्चते जनाश्च देवजनाः।

दे दिया गया और सीधे रास्ते पर ला दिया गया। अब यह हो जाने के पश्चात् हमारी सेनाओं के उस राष्ट्र में पड़े रहने का क्या प्रयोजन है? पाठक देखें वेद की युद्ध नीति भी कितनी उदार है!

राज्य की सारी चेष्टाओं का अन्तिम प्रयोजन सुख और शान्ति की स्थापना करना है। और इसी लिये राज्य द्वारा छेड़े गये युद्धों का भी अन्तिम प्रयोजन शान्ति-स्थापन ही है। युद्ध शान्ति-स्थापन के सहायक तभी हो सकते हैं जब कि युद्ध जीत लेने के पश्चात् विजेता की मनोवृत्ति वह हो जो ऊपर उद्धृत वेद मन्त्र में बताई गई है। यदि विजेता यह मनोवृत्ति नहीं रखेगा तो उसका जीता हुआ युद्ध आगामी अनेक युद्धों की भूमिका बन जायेगा। पराजित और अधिकृत राष्ट्र अपने स्वातन्त्र्य-नाश का बदला लेने के लिये समयान्तर में युद्ध की तय्यारी करेंगे और इस प्रकार युद्धों की एक परम्परा चल पड़ेगी, भले ही ये युद्ध छोटे-छोटे हों अथवा बड़े-बड़े। और इस प्रकार इन राष्ट्रों में कभी सुख शान्ति की स्थापना न हो सकेगी। युद्ध कभी-कभी करने आवश्यक तो हो जाते हैं पर उन्हें शान्ति का साधन बनाने के लिये विजेता में उपर्युक्त मनोवृत्ति रहनी चाहिये।

प्राचीन भारतवर्ष के आर्य राजा लोग वेद के इसी आदर्श के अनुसार आचरण किया करते थे। इसी लिये तो राम रावण युद्ध में हम देखते हैं कि महाराज रामचन्द्र दुष्ट रावण को युद्ध में मार देने के पश्चात् अपनी सेनाओं को लङ्का के राष्ट्र में नहीं रहने देते। उन्हें वापिस अपने साथ भारतवर्ष में ले आते हैं और लङ्का के राजसिंहासन पर वहां के अधिकारी विभीषण को बिठा आते हैं।

अधिक जीने की इच्छा

श्री लाला लब्भूराम नैयड़

मनुष्य को जान कितनी प्यारी है इस का पता एक दुःखी और रोगी व्यक्ति की इच्छा से लग सकता है। दुःसाध्य रोगी इस बात को अच्छी तरह जानता है कि अब उसका जीवन व्यर्थ है। यद्यपि किसी योग्यतम चिकित्सक की चिकित्सा से कुछ समय जीवित भी रहा तो दुनियां के किस काम का। अपने जीवन के अन्तिम दिन तक अपने सम्बन्धियों के लिये एक बोझ बनकर रहूंगा। बरसों तक बीमारी के लगातार धक्कों से निढाल हो कर भी रोगी मनुष्य इच्छा करता है कि और जीवित रहे। दिन में एक बार भूखे रहकर जीवन व्यतीत करने के बावजूद भी यही आकांक्षा रखता है कि और जिए। दुर्जनों को अपनी बरबादी पर कटिबद्ध पा कर और तरह तरह की अद्भुत रोमांचकारी घटनाएं सामने देख कर भी मनुष्य की यह प्रबल इच्छा है कि और जिए।

एक वृद्ध अपनी सन्तान से रोज झिड़कियां खाता हुआ और अपने अंगों को नकारा देखता हुआ और अपने जीवन की कोई आशा न रखता हुआ भी यह इच्छा बराबर रखता है कि और जिए। इस से हमें निश्चय होता है कि स्वभाव से भी मनुष्य के अन्दर जीवित रहने की एक प्रबल आकांक्षा भर गई है। कठोर से कठोर कष्टों में पड़ा हुआ भी वह इस इच्छा को नहीं छोड़ता। यदि कोई बार बार यह कहता है कि इस जीवन से मृत्यु अच्छी है, उसके दिल की तह पर पहुँच कर जांचने से मालूम होता है कि जीवन का मोह उसे भी कम नहीं, उसकी जीने इच्छा अटल है।

जो मनुष्य खा पी कर और मौज उड़ा कर मर गया वह वास्तव में कुछ नहीं जिया । यद्यपि जो अपने लिए बरसों तक जीवित रहा और दूसरी ओर जो व्यक्ति रोगी शय्या पर रेंग रेंग कर या बुढ़ापे के कारण दांत, आंख और शारीरिक बल खोकर सौ बरस भी अधिक जीता रहा वह सच्चे अर्थों में बहुत थोड़े बरस जिया । वेदों का उपदेश है कि सौ बरस तक जिओ । इस लिए हमारा कर्त्तव्य है कि अपने स्वास्थ्य को निरोग रखते हुए ईश्वरीय नियमों पर चलते हुए सौ बरस तक जीयें ।

आर्य पथिक

(पण्डित लेखराम जी के प्रति)

श्री वेदव्रत वेदालङ्कार

–१–

आर्य जीवन, आर्य संस्कृति, आर्य तन,
आर्य ! वैदिक धर्म पर ही धन व मन,
वारकर सर्वस्व त्यागी वीर थे
तुम अनोखे थे महा गम्भीर थे ।

–२–

वह पथिक सोया नहीं भूला नहीं,
गर्व में आकर कभी फूला नहीं,
धैर्य से पाप पथ विजय पागया
एक शुभ आदर्श सम्मुख रख गया ।

–३–

पुत्र की चिन्ता नहीं बीमार हैं
उस तरफ़ आता अचानक तार है,
'आइये, आपत्ति है कुछ धर्म पर
हो गया आघात सहसा मर्म पर ।

–४–

चल दिये तत्काल, जननी रोकती
मौन पत्नी भी रुलाई रोकती,
रह गये सब, सामने कर्त्तव्य था
धर्म अध्वर का पथिक तो हव्य था ।

–५–

याद कर होता हृदय–उद्वेग है
रुक न सकता आँसुओं का वेग है,
मार्ग निर्माता नदी का नीर था
दुःख भयों की हरता पीर था ।

—६—

ब्रह्म थे या क्षत्र शक्ति बने हुए
भक्त थे या मूर्त्त भक्ति बने हुए,
था विमल मानस, हृदय में धीर थे
तुम धुरन्धर थे, तुम्हीं थे, वीर थे!

—७—

तुम न सहते थे नशेबाज़ी कभी
मत व पन्थों से न थे राज़ी कभी,
धर्म का आसव पिये थे तुम न क्या
और मतवाले बने घूमे न क्या।

—८—

क़ादियानी मत के झण्डे फूटते,
थे मुसलमानों के छक्के छूटते।
एक बिजली थी कि सारे दङ्ग थे
आर्य जनता की भुजा थे अङ्ग थे।

—९—

था तुम्हारे देह या कि विदेह थे
झर रहे थे पुष्प सुन्दर मेह थे,
आह! दिल में थी भरी कितनी दया
मार कर हा! नीच कायर भी गया।

—१०—

उस छुरे से तुम नहीं घायल हुए,
शत्रु ही इस धैर्य पर क़ायल हुए।
क्रूरता की वृद्धि भी सीमित हुई,
मृत्यु भी पाकर तुम्हें जीवित हुई!

—११—

हव्य जल कर राख में मिलता नहीं
कर सुगन्धित फैल जाता सब कहीं।
लेख का आदेश है हृदयाभिराम
आज पण्डित जी! तुम्हें सविनय प्रणाम॥

स्वस्थ रहने के प्राकृतिक उपाय

डॉक्टर के. लक्ष्मण शर्मा

अब रोगों से दुःख भोगने की आवश्यकता नहीं है और डाक्टरों पर निर्भर रहने की भी ज़रूरत नहीं है। सब तरह के रोगों से छुटकारा पाकर हम स्वस्थ और दीर्घजीवी बन सकते हैं। हमारी संतान हमसे भी अधिक स्वस्थ बनेगी। इसके लिए केवल इतना ही करना है कि हम उस स्वास्थ्य-विद्या का अनुसरण करें। जिसे हमारे प्राचीन महर्षि सहस्रों वर्ष पूर्व आचरण में लाते थे। बीच में यह विद्या भुला दी गई थी परन्तु अब पुनरुज्जीवित हुई है।

इस विद्या का महत्व यह है कि यह न केवल रोग-मुक्ति के लिये अद्वितीय साधन है, परन्तु स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये सही तरीका भी।

यह प्राचीन विद्या आजकल बहुत प्रसिद्ध हो रही है। बहुत से ज्ञानवान् और सत्पुरुषों ने इसको स्वीकार किया है। ऐसे महा पुरुषों में हमारे पूज्य महात्मा गान्धी भी थे। उनको इस विद्या में पूर्ण विश्वास था और ग्रामवासियों को लाभ पहुँचाने के लिये इसको जनसमुदाय की चिकित्सा-प्रणाली बनाना शुरू कर दिया था।

बहुत से पाश्चात्य डाक्टर भी जो पहिले इसके विरुद्ध थे, इसकी सत्यता को मानकर इसके पक्के अनुयायी हो गये हैं।

महात्मा गान्धी ने कहा कि साध्य से साधनों का औचित्य नहीं करार दिया जाता। यह सनातन सत्य है। इसका मतलब यह है कि साध्य का स्वरूप साधन के स्वरूप पर निर्भर है। पापमय साधन द्वारा उच्च लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता। उच्च लक्ष्य प्राप्त करने के लिये उच्च साधनों की ज़रूरत होती है। इस लिये स्वास्थ्यदायक साधनों से ही सत्य स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है।

दवाएँ स्वास्थ्य-दायक नहीं हैं, वरन स्वास्थ्य नाशक हैं। इसलिये दवाइयों से जो रोगमुक्ति दिखाई देती है, वह मिथ्या है। वास्तविक नहीं। रोगमुक्ति और स्वास्थ्य ऐसी चीजें नहीं है, जोकि बोतल में बन्द की जा सकें और बाज़ार में खरीदी जा सकें। अपने २ सदाचार द्वारा ही उसकी प्राप्ति होती है। स्वास्थ्य और रोगमुक्ति के सही साधन वही हैं और जो स्वभावतः स्वास्थ्यप्रद और धर्मरूप हैं और जो शरीर शुद्धि तथा निर्माण के ईश्वर प्रदत्त साधन हैं। यह सच्चा साधन इस ज्ञान पर आश्रित है कि रोग क्या है और कैसे होता है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि रोग अपने रहन-सहन के अशुद्ध तरीकों के कारण होता है। हम प्रकृति से बहुत दूर हट गये हैं और जीवन और भोजन सम्बन्धी प्रकृति के नियमों को पालन नहीं करते हैं। इस अशुद्ध रहन सहन का परिणाम ही रोग है। तब तक रोग नहीं हटेगा जब तक हम उन अशुद्ध तरीकों को न छोड़ दें और पूर्व पापों के लिये प्रायश्चित्त न करें। यह प्रायश्चित्त अवश्य कर्तव्य है, यदि सच्चे स्वास्थ्य की इच्छा हो और यही सब रोगियों के लिये चिकित्सा है। यद्यपि इस प्रायश्चित्त को रोगी की व्यक्तिगत दशा के अनुसार व्यवस्थित करना पड़ता है।

इस प्रायश्चित्त में मुख्य स्थान उपवास का है। आपने सुना है—"लंघनं परमौषधम्।" मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यद्यपि डाक्टर लोग इस तथ्य में विश्वास नहीं रखते, तथापि यह सत्य है।

दूसरा पथ्य भोजन, जो पहले के खराब खाने के प्रभाव को दूर कर सकता है। उपवास और पथ्य भोजन, इन दोनों को पक्षी के दो पंख

मानना चाहिये और इन दोनों को एक साथ काम में लाना चाहिये। इनके साथ प्रकृति के अन्य भूतों से सही सम्बन्ध रखने के साधन भी हैं, जैसे सूर्य स्नान, प्राणायाम और जल स्नान के उपाय।

सर्व प्रथम हमें इस सत्य को मानने की आवश्यकता है कि हमारे प्राण के पीछे एक दैवी शक्ति है जो हमारे स्वास्थ्य की रक्षा और रोगों की चिकित्सा करती है। प्राकृतिक चिकित्सा में तो असल में उसी दैवी शक्ति के अस्तित्व का अनुभव किया जाता है। अतः स्वास्थ्य प्राप्ति में सब से पहला कार्य यह है कि हम इस महाशक्ति को आत्म-समर्पण करें और स्वास्थ्य के ठीक मार्ग का अनुसरण करें। यही महात्मा जी के "राम नाम" का मतलब है। यह आत्म समर्पण ही वास्तविक मानसिक भेषज भी है।

प्राकृतिक चिकित्सा का बड़ा महत्व यह है कि वह अनुभव में बहुत सरल है। जिससे हम सब लोग अपने डाक्टर स्वयं बन सकते हैं। बहुत लोगों को यह बात कुछ अविश्वसनीय मालूम पड़ेगी। इस लिये प्रमाण रूप में एक सच्ची कहानी सुनाता हूं।

मैसूर की रियासत में देव नगर नाम का एक गांव है। वहां एक बुड्ढी औरत की चिकित्सा के लिये मैं गया था। चिकित्सा का तरीका समझाकर मैं उधर से बम्बई गया और फिर दो सप्ताह के बाद लौटा। बीच में एक आश्चर्य की बात हुई। उस घर में एक भैंस का कटड़ा था जो बहुत बीमार पड़ गया था। जानवरों के डाक्टर ने कह दिया था कि वह नहीं बचेगा। घर के छोटे मालिक ने सोचा कि जब कटड़ा जरूर मरने वाला है तो उसे बांध कर क्यों रखे। ऐसा सोच कर नौकर को आदेश दिया कि इसको खोल दो। जब कटड़ा खोला गया, तब वह धीरे २ धूप की ओर जाने लगा। धूप में थोड़ी देर रहने के बाद वह छाया में आया, उसने थोड़ा सा पानी पिया, और उपवास करते हुए आराम करता रहा। ऐसा करते २ तीन चार दिन में बिलकुल अच्छा हो गया।

घर के लोग मुझे यह कहानी सुनाकर ज़ोर से हँस पड़े। उनके आश्चर्य का कारण यह था कि शर्मा जी की प्राकृतिक चिकित्सा इस कटड़े को कैसे ज्ञात हुई? परन्तु यह तो हँसने की बात नहीं थी। विचारणीय यह है कि जो सहज ज्ञान पशुओं को भी प्राप्त है, उस ज्ञान से, अपनी तथा कथित आधुनिक नागरिकता के कारण, हम वंचित हैं।

इस सहज ज्ञान का अनुशीलन करने से हम सब प्रकार के डाक्टरों से मुक्ति पा सकते हैं। कहने का अर्थ यह नहीं है कि हम औषध चिकित्सकों से छुटकारा पाकर प्राकृतिक चिकित्सकों के गुलाम बनें। सच्चा प्राकृतिक चिकित्सक वही है जो हमें प्रकृति के नियमों को सिखाता है, और उसके बाद अपने आपको भी अनावश्यक सिद्ध करता है।

सचमुच रोग मुक्त होने के लिये हमको रहन-सहन का सही ढंग तथा रोग के सम्बन्ध में सही बातें जानकर अपना चिकित्सक स्वयं बनना चाहिये मनु ने कहा है—

"सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्"

अर्थात् दूसरों पर आश्रित रहना दुःखदायी है और स्वाश्रित रहना सुखदायक है।

भगवान् हमें अपना कर्तव्य पालन करने के लिये सदिच्छा एवं तज्ज्ञान प्रदान करे और इस पुण्य भूमि के कोने-कोने में इस स्वास्थ्य सद्विद्या के पवित्र ज्ञान की ज्योति जगमगा उठे।

जीवन का उद्देश्य

श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज

प्राणीमात्र की सामन्य इच्छा

प्राणीमात्र की स्वाभाविक यह इच्छा है कि (१) आध्यात्मिक, आधि-भौतिक तथा आधि-दैविक—इन त्रिविध दुःखों में से कोई भी उसका स्पर्श न करे—

"त्रिविध दुःख अत्यन्त निवृत्ति परम पुरुषार्थः
(सांख्य १-१)

(२) उसे महान् से महान्, परम अद्वयानंद की प्राप्ति होवे। (३) उसकी यह अनुपम स्वरूप स्थिति, उपलब्धि अथवा अनुभूति नित्य, निरन्तर एक रस बनी रहे।

सांसारिक पदार्थों द्वारा इस इच्छा पूर्ति की दुराशा

प्रत्येक मनुष्य इसी इच्छा की पूर्ति के लिए रात दिन भटकता है ; परन्तु उसे सफलता नहीं होती। क्योंकि—(१) प्राकृत जन चक्षु आदि बाह्य इन्द्रियों के रूप रसादि नश्वर भोगों को ही प्रायः परम सुख का एक मात्र साधन समझता है। परन्तु परम हितैषिणी भगवती श्रुति की घोषणा है कि—

"नास्त्यकृतः कृतेन" मुण्डक १-२-१२
नह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्" (क० २-१०)। उत्पत्तिशील तथा नाशवान् पदार्थों (भोगों) से स्थिर, नित्य, शाश्वत परमानन्द की उपलब्धि नहीं हो सकती। (२) भोग तो नश्वर हैं इस पर भी यदि किसी प्रकार नित्य नये भोगों की प्राप्ति संभव हो जाए, तो उनको भोगने के साधन चक्षु आदि इन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो जाती है तथा वे शनैः २ भोग भोग-सकने में नितराम असमर्थ हो जाती हैं।

"श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।" क० १-२६)।

"हे प्राणियों के प्राणहर्ता यमराज! जिन आपात रमणीय तथा चित्ताकर्षक विषय भोगों का आप मुझे प्रलोभन दे रहे हैं ये अत्यन्त चञ्चल, क्षण-भङ्गुर तथा अस्थिर हैं। एक दिन भी स्थिर रहने वाले नहीं हैं और फिर ये भोग इन्द्रियों की शक्ति और तेज को क्षीण कर देते हैं। विषयी मनुष्य की इन्द्रियां शीघ्र ही बल रहित तथा निस्तेज हो जाती हैं। विषयासक्त मूढ़ पुरुष यह नहीं समझता कि विषय रूपी तस्कर, चतुराई और ज्ञानाभिमानी इस मनुष्य के देखते ही देखते उसे बहकाकर, फुसलाकर उसके शरीर तथा इन्द्रियों की शक्ति रूपी धन को लूट ले जाते हैं और यह इनकी लूट खसूट में ही कृतकार्यता समझता है (३) तीसरे मृत्यु की कोई औषधि नहीं है इन्द्रियों का आयतन यह शरीर भी कब तक सहयोग कर सकता है। जगत् में यह सिद्धान्त निर्विवाद है कि मृत्यु अनिवार्य है जो धन, जन, सुख, संपत्ति आदि सर्वस्व को हर लेता है, इस लिए अति भयप्रद है।

ये तीन ऊपर लिखी गयी स्पष्ट तथा सर्व विदित त्रुटियां विषय सुख में विद्यमान रहती हैं। अतः इन बाह्य विषयों के आधार पर सुख की खोज में कभी भी कोई भी मनुष्य सफल न हुआ और न हो सकता है।

आशा पूर्ति की झलक

इस एक रस, नित्य सुख की अभिलाषा की पूर्ति तो अनादि, अखण्ड, पूर्ण तत्त्व की प्राप्ति से ही हो सकती है। इस प्रकार के आनन्द के अस्तित्व में, यह आशा, इच्छा, अभिलाषा भी एक रहस्यमय प्रमाण है और यह इच्छा जब तीव्र जिज्ञासा का रूप धारण कर लेती है तो वह इस विलक्षण अनुपम तथा परम रस की झलक

में असाधारण तथा असंदिग्ध कारण बन जाती है।

ऐसा भूमा (व्यापक) अखण्ड तत्त्व ही अद्वितीय आनन्द स्वरूप हो सकता है। वही आनन्द की चरम सीमा या पराकाष्ठा है। इस सर्व व्यापी भूमानन्द से अधिक अन्य कोई सुख नहीं हो सकता।

इस परम आनन्द ज्योति स्वरूप ज्वाला की सन्निधि में त्रिविध दुःख रूपी घास-फूस कैसे रह सकता है। वह इसे जलाकर भस्मसात कर देता है और फिर पीछे वही अखण्ड, अद्वितीय आनन्द रूपी तत्त्व शेष रह जाता है।

परन्तु ऐसा अखण्ड अद्वितीय आनन्द किसी मरण धर्मी (विनाशी) के लिए परमानन्द का कारण कैसे हो सकता है। जब भोक्ता प्राणी का अन्त होगा तो इस आनन्द से भी उसका वियोग अनिवार्य हो जाएगा। अतः भोक्ता का भी अजर, अमर तथा नित्य होना आवश्यक है।

"अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।" (क० २-१८)।

भोक्ता तथा भोग्य (सुख या आनन्द) को यदि भिन्न मान भी लें तो भी भोगकाल में भोक्ता सुखी, आनन्दमय, आनन्द रूप हुए बिना अपने भोग्य (सुख-आनन्द) का उपभोग नहीं कर सकता। जब भोक्ता सुखी होता है तो उस दशा में उसका तथा आनन्द (सुख) का तादात्म्य अर्थात् साम्यता हो जाती है; ऐक्य हो जाता है। दोनों परस्पर ऐसे मिल जाते हैं कि उस काल में भेद का निरीक्षण अशक्य हो जाता है।

इस प्रकार परमानन्द की मानवीय आकांक्षा के विश्लेषण से हम इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि मनुष्य की यह आकांक्षा आगमापायी सांसारिक पदार्थों से पूर्ण नहीं हो सकती। इसकी पूर्ति भूमानन्द से ही हो सकती है। "सर्व खल्विदं ब्रह्म" (छान्दोग्य ३-१४)। आनन्द के भूमा, नित्य होने पर भोक्ता का भी स्वरूप से अजर, अमर होना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में भोक्ता परम रसपानार्थ रस रूप हो हो जाएगा। अथवा यूँ कहें कि ऐसा अखण्ड अद्वितीय अनन्त आनन्द ही भोक्ता तथा भोग्य को अपनी अनन्तता में लीन कर लेगा।

मनुष्य की प्रधान तथा एक मात्र यही इच्छा होती है कि उसे सर्वोत्कृष्ट आनन्द की प्राप्ति हो और वह सुख निरन्तर बना रहे। ऐसी इच्छा की पूर्ति की आशा नित्य, अद्वितीय, आनन्द रूप तत्त्व की प्राप्ति द्वारा ही हो सकती है। किसी भी विचारवान् को इस निर्णीत तथ्य में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

परन्तु किसी आकांक्षा की पूर्ति की आशा मात्र के आधार पर किसी पदार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती। "लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः न तु प्रतिज्ञा मात्रेण"—इत्यादि न्याय के अनुसार किसी प्रतिज्ञात वस्तु की सिद्धि के लिए पहिले तो उसका लक्षण करना होगा। फिर प्रमाणों द्वारा उसकी पुष्टि करनी होगी। यदि किसी वस्तु की केवल प्रतिज्ञा से ही सिद्धि हो सकती; तब कौन सी ऐसी कपोल कल्पना है जिसे यथार्थ सिद्ध न किया जा सके। इसलिए मानवीय परमानन्द प्राप्ति की आकांक्षा पूर्ति की सम्भावना और उस की सिद्धि के लिए प्रमाणों की आवश्यकता है; जैसे सुवर्ण की परीक्षा के लिए कसौटी की आवश्यकता होती है।

प्रमाण संख्या

प्रमाण संख्या के विषय में सब दर्शन कारों का एक सर्व सम्मत सिद्धान्त नहीं है। विशेष उपयोगिता के विचार से हम यहां पर केवल प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द इन तीनों प्रमाणों का ही विचार करेंगे।

शब्द (श्रुति) प्रमाण-विवेचन

उपर्युक्त भूमानन्द स्वरूप तत्त्व के विषय में श्रुतियों में अनेक प्रमाण मिलते हैं। उन में से कतिपय उद्धृत किये जाते हैं।

" यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुख मस्ति "

छान्दोग्योपनिषद् (७. २३. १.)

जो भूमा (महान्) है वह निरतिशय तत्त्व ही सुख स्वरूप है। उसके अतिरिक्त जो सांसारिक पदार्थ हैं, वे अल्प हैं, इस लिए सुख स्वरूप नहीं हो सकते। वे सब पदार्थ परिच्छिन्न हैं, इस लिए उनके सुख भी अल्प (सातिशय) हैं। न्यूनता, अल्पता तथा सातिशयता ही कालान्तर में तृष्णा का हेतु बनती है। तृष्णा ही दुःख का बीज है। दुःख के बीज ज्वरादि में संसार में कभी सुख होता नहीं दीखता। यही कारण है कि तृष्णा के बीज भूत देश, काल तथा वस्तु से परिच्छिन्न अल्प पदार्थों से वास्तविक सुख नहीं हो सकता। परन्तु देश, काल तथा वस्तु परिच्छेद से रहित उस अनन्त महान् तथा परम तत्त्व भूमा की प्राप्ति हो जाने पर फिर उस में तृष्णादि दुःख का बीज ही संभव नहीं रहता इस लिए श्रुति, स्मृति, युक्ति तथा अनुभूति से भूमा ही सतत सुख का कारण निश्चित होता है। इस प्रकार के भूमा तत्त्व की ही जिज्ञासा करनी चाहिए।

" ओ३म् ब्रह्मविदाप्नोति परम। तदेषाभ्युक्ता सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मयो वेद निहितं गुहायां परमेव्यामेन। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सहा ब्रह्मणा विपश्चितेति " ॥

(तैत्तिरीय० २. १. १.)

ब्रह्मज्ञानी सच्चिदानन्द स्वरूप निरतिशय परम ब्रह्म को ही प्राप्त होता है जो मुमुक्षु बुद्धिरूप गुहा में (जिस में भोगापवर्ग पुरुषार्थ संचित है) के अन्याकृत माया) रूपी आकाश में स्थित इस प्रकार के ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है। वह परम भाग्यवान् औपाधिक जनिमृति संसृति चक्र से मुक्त हो जाता है। सर्वज्ञ ब्रह्म स्वरूप (शुद्ध चेतना) से एकी भाव को प्राप्त हुआ २ वह सर्व कामनाओं का उपभोग करता है; अर्थात् सर्व काम्य पदार्थ शब्द स्पर्शादि को चैतन्य रूप से व्याप्त करता है। ऐसी स्थिति में वह नित्य शुद्ध बुद्ध स्वरूप परम चैतन्य के अतिरिक्त कुछ भी अनुभव नहीं करता। वह चिन्मात्र ही हो जाता है।

यथा नद्यः स्यन्द माना समुद्रे ऽ स्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाया तथा विद्वान् नाम रूपाद्वि मुक्ता परात्परं पुरुषमुपैति दि यम्। स यो हवै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति नाह्यब्रह्मवित्कुले भवति। तरति शोकं तरति पापमानं गुहा ग्रन्थिभ्यो विमुक्तो ऽ मृतो भवति।

मुण्डक (३. २. ८. ९.)

जैसे बहती हुई गंगादि नदियां समुद्र को प्राप्त होकर अपने नाम और आकार को त्याग कर उस में लीन हो जाती हैं। और इस प्रकार तद्रूप हो जाने के पश्चात् यह विवेक नहीं हो सकता कि यह अमुक नदी का जल है अथवा अमुक का। क्योंकि नाम रूप ही भेद तथा पार्थक्य प्रतीति का कारण होता है। वैसे ही ब्रह्मवित् ज्ञानी अविद्याकृत औपाधिक नाम रूप से छूटा हुआ शुद्ध, चैतन्य मय, प्रकाश स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होकर उसके साथ एक रूप हो जाता है। जो मुमुक्षु इस परब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है। वह तद्रूप परब्रह्म ही हो जाता है। ऐसे ब्रह्मवेत्ता की शिष्य परम्परा में कोई भी ब्रह्मज्ञान हीन मूढ़ या तत्त्वज्ञान रहित नहीं रहता। जन्म मरण रूपी संसार चक्र के अनन्त दुःख सागर से वह पार हो जाता है। धर्मा धर्म का पाप समूह उसे स्पर्श नहीं कर सकता।

हृदयस्थ अहंता ममता रूप माया की ग्रन्थियों से छूटकर वह सदा के लिए अपने शुद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, निर्विकार निर्विशेष, स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

इस विषय में विशेष जिज्ञासा रखने वाले को निम्नाङ्कित श्रुति स्थल देखने चाहिएं। ऋग्वेद २. ३. २३. ४६. ॥ ३. ७. १४५. ३. ६. १५. १. ॥ ३. ६. १६१; ॥ ऐतरेयोपनिषद् २. ५. ॥ ४. ७. ॥ ३३. १८. ॥ बृहदारण्यक उप० २. ५. १६. ॥ ३. ८. ११. ३. ॥ इत्यादि।

वर्तमान काल का श्रुति में अविश्वास

आज कल की पाश्चात्य सभ्यता से हमारे हृदय तथा मस्तिष्क इतने प्रभावित हो गये हैं कि हम परम प्रमाण, अनादि, अनन्त, अपौरुषेय तथा अबाध्य स्वतः प्रमाणभूत श्रुति का भी यत्किञ्चित् सम्मान तथा आदर करने को तैयार नहीं हैं। पाश्चात्य शिक्षापद्धति तथा शिक्षा ने हम पर पर्याप्त अकथनीय प्रभाव डाला है। हम पाश्चात्य शिक्षा दीक्षा में दीक्षित उन पाश्चात्यों का अनुकरण करते हुए बुद्धिस्वातन्त्र्य तथा उच्च शिक्षा के अभिमानी बनते हैं और कहते हैं कि हम प्राक्तन रस्मो रिवाज, वेश भूषा तथा व्यवहार की लकीर के फकीर नहीं बनना चाहते। ईश्वरीय ज्ञान वेद तथा महर्षियों के परम पुनीत हितभरे उपदेशों को भी बाबा वाक्यं प्रमाण का नाम देकर झट उसका बोझा अपने सिर से उतार कर अपने आप को बुद्धिमान् समझने लगते हैं। और कहते हैं कि अन्धे की तरह नेत्र मूंदकर किसी के पीछे चलने को तैयार नहीं; परन्तु हम यह नहीं सोचते कि हम ने अपनी इस भय प्रद मानसिक दासता का नाम ही स्वतंत्रता रख लिया है। क्योंकि श्रुति को मानने से इन्कार करते समय हम प्रायः यही युक्ति तथा तर्क उपस्थित करते हैं कि अर्वाचीन भौतिक विज्ञान वादी पण्डित ऐसी गप्पों को नहीं मानते। ईश्वर, जीव, परलोक, स्वर्ग, नरक पुनर्जन्म इत्यादि बातें केवल मूर्खों को ठगने के लिए ही बुद्धिमान् मनुष्यों ने गढ़ी हैं। इन में सभ्यता का नामो निशान नहीं है। इस युक्ति क्रम में हमें भौतिक विज्ञान वादी पण्डितों के प्रति अपनी मानसिक दासता का अनुभव नहीं होता।

श्रुति में अविश्वास का कारण

प्राचीन काल में भी उपर्युक्त विचार के अनुयायी चार्वाक आदि थे। परन्तु आजकल की हमारी ईश्वर तथा वेद विषयक नास्तिकता का कारण वे नहीं हैं। हमारी राजनैतिक पराधीनता से उत्पन्न मानसिक दासता ही इस में हेतु है। इस में कोई सन्देह नहीं कि हमारी दासता का हेतु अवश्य हमारी ही किसी प्रकार की भूलें तथा त्रुटियां हैं। पाश्चात्य देशों की राजनैतिक स्वतंत्रता तथा स्वर्ग सदृश भोगैश्वर्य प्राप्ति में किसी प्रकार का कुछ गुण मान लेने में हमें कुछ झिझक नहीं होनी चाहिये। परन्तु इस का यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि पाश्चात्य देशों की प्रत्येक बात हमारे लिए अनुकरणीय तथा स्वीकरणीय है। उनके आध्यात्मिक विचार वेशभूषा, रस्मो रिवाज, खान पान, तथा पारस्परिक व्यवहार आदि हमारे लिये सर्वथा प्रमाण नहीं हो सकते। क्योंकि उन देशों की केवल ऐहिक भोगवाद में ही आस्था है।

जिस मानसिक स्वतंत्रता का हमें इतना अभिमान है वह अति शोचनीय परतंत्रता है। हम ईश्वर, परलोक-विश्वास तथा प्राक्तन वर्णाश्रम व्यवस्था आदि को ही देश के पतन का कारण मानने लगे हैं। इस में सन्देह नहीं कि भिन्न २ मतों के अन्ध विश्वास (कट्टरपन) ने अखण्ड भारत को खण्ड २ में विभक्त कर

रखा है। और जन्म मात्र से वर्ण मानने के दुराग्रह ने वैयक्तिक तथा सामूहिक योग्यता, उन्नति और विकास का मार्ग बंद कर दिया है। यही कारण है कि हम ऐसा समझने लगे हैं कि रूस आदि पाश्चात्य देशों का अनुकरण करते हुए हमें ईश्वर, मंदिर, वेद, स्मृति तथा प्राचीन दर्शनों की शिक्षा तथा महत्व को शीघ्रतम तथा सर्वथा उन्मूलन कर देना चाहिए। यूरोप हमारे लिए ब्रह्म लोक बन गया है। वहां के आधुनिक संस्कृति के निर्माण कर्त्ता विज्ञानवेत्ता, ईश्वर तथा प्राचीन ऋषि मुनियों की अपेक्षा अधिक हमारे मस्तिष्कों पर शासन कर रहे हैं। इस सबका मूल कारण हमारी अज्ञता, बहिर्मुखता तथा ऐहिक भोग प्रियता है।

शब्द प्रमाण की आवश्यकता तथा व्यापकता

गृह, परिवार, जातीयता आदि का आधार—इस में सन्देह नहीं कि प्रत्यक्ष प्रमाण साधारणतया बहुत प्रबल प्रमाण है। परन्तु शब्द प्रमाण का कार्य क्षेत्र अति विस्तृत है। जिसके अभाव में जीवन अत्यन्त सारहीन सौन्दर्य रहित तथा दुःखमय हो जाता है। मनुष्य के अपने माता पिता का ज्ञान केवल शब्द प्रमाण से ही हो जाता है, इस में प्रत्यक्ष प्रमाण की गति नहीं है। इस ज्ञान पर संपूर्ण, सामाजिक तथा राजनैतिक व्यवहार अवलम्बित है। यदि आज ही इस ज्ञान को सन्दिग्ध मान लिया जाए तो घर घर नहीं रहेगा, प्राणियों को स्वभाविक रूप से बांधने वाले तन्तु का विच्छेद हो जायगा और उस पर अवलम्बित देश जाति आदि के अन्य व्यवहार अस्त व्यस्त हो जावेगा। क्योंकि किसी व्यक्ति के देश जाति का निर्णय करने के लिए भी उसके माता पिता का ज्ञान होना आवश्यक होता है। रूस के समान केवल देश तथा जाति की आधार शिला पर निर्मित संस्कृति उतनी बलवती तथा संघटित नहीं हो सकती।

वैदिक सूक्तियां

श्री रामनाथ वेदालङ्कार

किसी भी भाषा के साहित्य में उस में आने वाली सूक्तियों का बहुत महत्व पूर्ण स्थान होता है। संस्कृत में बाल्मीक, कालीदास आदि और हिन्दी में सूर, तुलसी आदि महाकवियों की सूक्तियां कितनी लोक प्रिय हुई हैं। वेदों में भी भिन्न २ विषयों पर बहुत ही उच्च, शिक्षाप्रद और मनोरम सूक्तियां मिलती हैं। किन्तु उनका अधिक प्रचार न होने से उन्होंने जनता में अपना उपयुक्त स्थान नहीं पाया है नीचे कुछ विषयों पर छोटी २ वैदिक सूक्तियां दी जाती हैं।

१. तेजस्विता

अग्ने वर्चस्विनं कुरू

हे अग्ने! मुझे तेजस्वी बना।

वर्चसाऽभिषिञ्चामि मामहम्

मैं अपने आप को तेज से सिंचित करता हूँ।

उद् वयं तमसस्परि

हम निस्तेजता से ऊपर उठ जायें।

तेजोऽसि तेजो मयि धेही

हे प्रभो! तू तेजस्वी है, मुझे भी तेजस्वी कर।

अहं भूयासं सवितेव चारु।

मैं सूर्य की तरह कान्तिमान् बनूं।

संधाता सृजतु वर्चसा

विधाता हमें तेज से सींच दे।

स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम्

हे प्रभो! जैसे तू तेज से भासमान है वैसे ही मैं भी हो जाऊं।

वर्चसा मा समनक्त्वग्निः

अग्नि मुझे तेज से चमका दे।
वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु संचरेम
हम तेजस्वी होकर पृथ्वी पर विचरें।

२. यश

यशसः सृजतु वर्चसा
हम यशस्वी बनें।
यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु
इन्द्र मुझे यशस्वी करे।
मयि वर्चो अथो यशः
मुझ में तेज हो, मुझे यश मिले।
यशसं मा देवः सविता कृणोतु
सविता प्रभु मुझे यशस्वी बनाये।
वयं सर्वेसु यशसः स्याम
हम सबमें यशस्वी बनें।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थे
मैं यशस्वी होकर पृथ्वी माता की गोद में बैठूं।
यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु संचरेम
हम यशस्वी होकर पृथ्वी पर विचरें।
अस्मे धेहि श्रवो बृहत्
प्रभो! हमें महान् यश प्राप्त करा।

जन्तु शास्त्र के पारिभाषिक शब्द

श्री चम्पत स्वरूप

Daughter cells पुत्री कोष्ठ
Daughter nuclei पुत्री केन्द्रक
Decussate व्यत्यस्त
Decomposition विबन्धन
Degenerated अवनत
Deltoid डेल्टाकार
Dendron दन्द्र
Dentary दन्तिका
Dentine दन्ताइन
Deoxygenated निरोषजनित
Depression अवसाद
Derivation व्युत्पति
Dermal अन्तस्त्वचिक
Dermis अन्तस्त्वक्
Descent अवरोहरण
Desmid निगडाभ
Development क्रम वर्धन
Dialyser पारपृथक्कारक
Dialysis पारपृथक्करण
Diaphragm महा प्राचीर
Diastema अन्तराल
Diastole विस्फार
Diatom संच्छित्ति
Diencephalon कन्दगोर्द
Differentiation विभेदीकरण
Diffusible व्याप्य
Diffusion व्यापन
Digestion पाचन
Digestive glands पाचन ग्रन्थियां
Digestive system पाचन संस्थान
Digits अँगुलियां
Dimorphism द्विरूपता
Diphycercal द्विकलौम
Diploblastic द्विकोरकीय
Dipnoi द्विश्वासी
Diptera द्विगरुत्
Disc पट्टिका
Discharge उद्वमन
Dispersal प्रसार
Dissection अंगविच्छेद
Distal दूरस्थ

Distomum hepaticum द्विमुख याकृत
Diverge अपसृत होना
Divergence अपसरण
Divergent अपसृत
Diverticulum उपपथ
Division विभाजन
Division, binary द्वयि विभाजन
,, direct या simple सरल विभाजन
,, equal सम विभाजन
,, indirect असरल विभाजन
,, multiple बहु विभाजन
,, unequal असम विभाजन
Division of labour श्रम विभाजन
Division of physiological labour शरीर क्रिया श्रम विभाजन
Dogfish कुत्ता मछली
Dorsal पृष्ठीय
Dracunculus medinensis व्यालोपम मदनी
Dragon fly भंभीरी
Ductless glands प्रणाली रहित ग्रन्थियां
Duct प्रणाली
Duodenum ग्रहणी
Dura mater वराशिका

पुस्तक परिचय

भार्गव पुस्तकालय, गायघाट बनारस, के चार प्रकाशन

घरेलू चिकित्सा—पृष्ठ संख्या ८६ । मूल्य १) जिन रोगों की चिकित्सा के लिये गरीब व अमीर सभी ही डाक्टरों के द्वार खट खटाते फिरते हैं और भरसक पैसा बहाया करते हैं उन ही की कुछ सामान्य सी चिकित्सायें पुस्तक में संग्रहीत की गई हैं । पुस्तक में बालरोगों, स्त्री रोगों एवं अन्य विविध रोगों के लिये अनेक ऐसी सामान्य औषधियां वर्णित हैं जिनकी उपयोगिता अनेक प्रसिद्ध डाक्टरों एवं वैद्यों द्वारा भी स्वीकार की गई हैं । पुस्तक उपयोगी है ।

हनुमत् विनोद – लेखक–श्री पं० चन्द्रशेखर जी । पृ० संख्या ५६ । मूल्य ।||)

बच्चों के मनोरञ्जन के लिये हास्यरस की उत्तम पुस्तक है । उसमें हनुमान जी को हास्य का विषय बनाकर विभिन्न कहानियां लिखी गयी हैं । हास्य के विषय होने पर भी हनुमान जी के प्रति लोगों की श्रद्धा को कोई ठेस नहीं पहुँचती अपितु उनकी श्रद्धा बढ़ती ही है । पुस्तक की भाषा व शैली भी बच्चों की रुचि के अनुरूप ही है । हास्य की विभिन्न कहानियों में 'हनुमान जी की चुटकी' तथा 'हनुमान जी को सिंदूर क्यों लगता है' सर्व श्रेष्ठ हैं । पुस्तक बच्चों के लिये संग्रहणीय है ।

हज़ार पहेलियां—आजकल हमारे साहित्य में पहेलियों का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है कई सरकारें भी जनता की रुचि को राजनैतिक प्रान्तों में बढ़ाने के लिये पहेलियों का ही आश्रय लेने लगी हैं । हमारे देश में अनादि काल से बृद्ध मातायें बच्चों से पहेलियां पूछती एवं उन्हें कहानियां सुनाती आयी हैं । पहेलियां आबाल, वृद्ध सभी के लिये मनोरञ्जन का साधन हैं । परन्तु इनका कोई उत्तम संग्रह हिन्दी साहित्य में नहीं था । लेखक ने परिश्रम करके एक हज़ार पहेलियों का संग्रह किया है और अन्त में उनका उत्तर भी क्रमशः लिख दिया है । पहेलियां रोचक, विचारणीय एवं अन्यों से पूछने योग्य हैं ।

४००० वर्ष का विचित्र स्थायी कैलेन्डर—रचियता--श्री कैलाशनाथ भार्गव 'अमर' । कैलेन्डर १५ अगस्त १९४७ से प्रारम्भ होता है और ४००० वर्ष के पंचाङ्ग का द्योतक है ।

वैदिक ऋषि–

मेध्यातिथि

पं० भगवद्दत्त वेदालंकार

मेध्यातिथि कण्व ऋषि का पुत्र है ! इसे मेधातिथि भी कहते हैं। वेद व ब्राह्मण-ग्रन्थों के प्रकरणों को देखने से यह स्पष्ट पता चलता है कि इन दोनों मेध्यातिथि व मेधातिथि में कोई भेद नहीं है। यह हम फिर कभी आपके सामने रक्खेंगे मेध्यातिथि की निम्न व्युत्पत्ति के आधार पर तत्सम्बन्धी एक दो कथानकों पर आध्यात्मिक क्षेत्र की दृष्टि से विचार करते हैं।

"मेध्यातिथि–मेध्यैरतिथिभिर्युक्तः"

ऋ. १।३६।१० (सायणाचार्य)

मेध्यातिथि वह व्यक्ति हो सकता है जिसकी मेधाबुद्धि में अतिथि आया करते हैं। अथवा "मेध्याः संगमनीयाः पवित्रा अतिथयो यस्य सः" मेल के योग्य पवित्र अतिथि जिसके पास आते हों।

ये अतिथि दो स्थानों पर आकर मेध्यातिथि का यज्ञ सम्पन्न करते हैं। एक तो मेधा बुद्धि में और दूसरे हृदय स्थली में।

ये अतिथि प्रकृति के क्षेत्र में अनुसन्धान करने वाले तथा अध्यात्म में विचरने वाले व्यक्तियों की मेधा बुद्धि व हृदय स्थली में आते हैं। साधारण मनुष्य भी जब कभी किसी विषय के प्रति रात दिन चिन्तन करता है तो उसे भी अचानक कई ऐसी बातें सूझ जाती हैं, जिनकी उसे आशा न थी। इस लिये साधारण मनुष्यों में ये अतिथि सूझ के रूप में आते हैं। परन्तु योगी व आध्यात्मिक पुरुषों में आने वाले इन अतिथियों को प्रकाश किरण, शक्ति तथा देवता इत्यादि कई नामों से कहा जा सकता है। इनको अतिथि इस लिये कहा कि इनके आने की तिथि निश्चित नहीं होती। अभीप्सा व परिश्रम करते रहना चाहिये न जाने कब ये आ पहुँचे। मेध्यातिथि का आध्यात्मिक स्वरूप वह है जिसके हृदय मन में आध्यात्मिक तत्व, विज्ञान व शक्तियां प्रादुर्भूत होती हैं। वेद के पारिभाषिक शब्दों में कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि देवता अतिथि रूप में उसके यहां आते हैं और यज्ञ करते हैं। इस लिये मेध्यातिथि के मन्त्रों में हम यह देखते हैं कि वह देवताओं को बार २ आह्वान करता है और अग्नि से बार २ प्रार्थना करता है कि, जा तू उन देवताओं को यहां ले आ। (अग्ने देवां इहावह) अब हम मेध्यातिथि सम्बन्धी एक दो कथानक यहां दिखाते हैं।

ऋ० ८ मं० १म सूक्त के ३० से लेकर ३३ तक के ४ मन्त्र मेध्यातिथि तथा 'प्लायोग आसङ्ग' के सम्बन्ध में आते हैं। पूर्वाचार्यों ने इन मन्त्रों से आसङ्ग प्लायोगि और मेध्यातिथि सम्बन्धी जो कथानक बनाया है उसका संक्षिप्त भाव इस प्रकार है—

आसंग नाम का एक राजर्षि हुआ है जिसके पिता का नाम प्लयोग था। इसलिये मन्त्रों में इसे आसङ्ग प्लायोगि करके कहा गया है। कण्व-पुत्र मेध्यातिथि इसका पुरोहित था। और वह इस आसङ्ग की स्तुति में मन्त्रों की रचना किया करता था, जिससे प्रसन्न होकर यह आसङ्ग मे[ध्या]तिथि को खूब ऐश्वर्य दिया करता था।

अब हम इस कथानक को स्पष्ट कर[ते] और फिर मन्त्रों की भी व्याख्या करते हैं।

आसङ्गः प्लायोगिः को मैत्रायणी संहिता (३।१।६) में सङ्गः प्रयोगिः कहा है। और सायणाचार्य ने ऋ० ८।१।३' मन्त्र की व्याख्या करते हुए 'प्लायोगि' को 'प्रायोगि' लिखा है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रायोगि व प्लायोगि में कोई भेद नहीं है। अब जो इस कथानक के पात्र हैं उनको हम इस प्रकार समझ सकते हैं।

मेध्यातिथि जिसकी मेधा बुद्धि व हृदयस्थली

में दिव्य शक्ति व दिव्य-ज्ञान अतिथि रूप में आते हैं।

प्रयोग-(प्र+योग) प्रकृष्ट रूप में अपने आपको किसी विषय के प्रति लगाना।

आसङ्ग-जिस विषय आदि के प्रति अपने आपको प्रकृष्ट रूप से लगाया जाता है, वहां उस विषय के प्रति आसङ्ग या सङ्ग पैदा हो जाता है। आसङ्ग या सङ्ग को हम आसक्ति, लगाव, तन्मयता, तल्लीनता आदि कई एक शब्दों में प्रकट कर सकते हैं।

इसका भाव यह हुआ कि जब कोई मनुष्य किसी विषय या वस्तु के प्रति योग करता है, अर्थात् लगाता है तो उस विषय के प्रति उसके अन्दर लगाव पैदा हो जाता है। इस विषय के चिन्तन में वह तन्मय हो जाता है। क्योंकि प्रयोग (प्रकृष्ट योग) से आसङ्ग, (तन्मयता आसक्ति) पैदा होता है। इस लिये वैदिक भाषा में 'आसङ्ग' को 'प्रयोग' का पुत्र कह दिया गया है। इसी भाव को श्रीमद्भगवद्गीता के निम्न श्लोक में इस प्रकार रख दिया गया है—

"ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते"

अर्थात् विषयों का ध्यान करने से मनुष्य में उनके प्रति संग अर्थात् लगाव पैदा हो जाता है। इस प्रकार वैदिक परिभाषाओं की गीता के शब्दों में तुलना करें तो इस प्रकार कर सकते हैं—

ध्यान=प्रयोग सङ्ग=आसङ्ग

मनुष्य में इसको हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि मेध्यातिथि और आसङ्ग मनुष्य के ये दो रूप हैं। मेधा बुद्धि की विशेषता वाला एक रूप है और आसङ्ग अर्थात् तन्मयता व तल्लीनता वाला दूसरा रूप है। जब किसी मनुष्य में किसी विषय के प्रति अपने आपको प्रकृष्ट रूप से लगाने से उसके प्रति आसङ्ग पैदा हो जाता है तब मनुष्य के दूसरे रूप मेध्यातिथि में

नए २ अतिथि आने लगते हैं। जब कोई योगी व वैज्ञानिक पुरुष अपने विषयों का चिन्तन करते हैं तो उन्हें नयी २ बातें सूझती हैं, उनकी बुद्धि में दिव्य प्रकाश अवतरित होता है। वे अतिथि हैं। ये दिव्य प्रकाश रूपी अतिथि आसङ्ग अर्थात् तल्लीनता व तन्मयता का परिणाम है। इसलिये हम इन्हें मेध्यातिथि को दिये गये आसङ्ग के धन व ऐश्वर्य कह सकते हैं। इस दृष्टि से यदि हम प्रथम मन्त्र को देखें तो मन्त्र का अर्थ इस प्रकार होगा।

स्तुहि स्तुहीदेते घा ते मंहिष्ठासो मघोनाम्।
निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे।
ऋ० ८। १। ३०॥

(मेध्यातिथे) हे मेध्यातिथि ! (स्तुहि स्तुहि) तू मेरी बार २ स्तुति कर (एते ते) ये तेरे स्तोत्र (घ) निश्चय से (मघोनाम मंहिष्ठासः) ऐश्वर्यों के देने वाले हैं। मैं आसङ्ग कैसा हूँ ? (निन्दिताश्वः) तेरे घोड़ों को मैंने निन्दित कर दिया है। और मैं (प्रपथी) श्रेष्ठ मार्ग का यात्री हूं (मघस्य) ऐश्वर्य को बांधने के लिये (परमज्यः) श्रेष्ठज्या [धनुष की डोरी] वाला हूँ।

मन्त्र के पूर्वार्ध में आसङ्ग मेध्यातिथि से यह कहता है कि, हे मेध्यातिथि ! तू मेरी बार २ स्तुति कर। ये तेरे स्तोत्र तुझे ऐश्वर्यों को दिलाने वाले होंगे

यह स्वाभाविक बात है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी स्तुति व प्रशंसा से प्रसन्न होता है। और स्तुति करने वाले को जो कुछ वह दे सकता है, देता है। परन्तु यहां पर मेध्यातिथि की आसङ्ग के प्रति स्तुति मनुष्य के अपने अन्दर एक रूप की दूसरे रूप के प्रति है। मनुष्य का एक रूप मेध्यातिथि का है, अर्थात् उसकी मेधाबुद्धि में अतिथि आ रहे हैं। और दूसरा रूप आसङ्ग अर्थात् लगाव, तन्मयता आदि का है। किसी

की मेधाबुद्धि अपने आप में चाहे कितनी ही उत्कृष्ट क्यों न हो..परन्तु जब तक वह ध्येय वस्तु के प्रति प्रयोग द्वारा आसङ्ग भाव न पैदा कर लेगा, तब तक उसकी मेधाबुद्धि कुछ भी नहीं पैदा कर सकती।

परन्तु प्रश्न यह है कि यह आसङ्ग भाव कैसे पैदा करें ? इसका उपाय वेद मन्त्र में यह बताया कि इस आसङ्ग भाव की बार २ स्तुति करो उठते, बैठते, खाते, पीते हर समय ध्येय वस्तु का ही चिन्तन हो और आसङ्ग भाव की खूब प्रशंसा हो तो आसङ्ग भाव खूब वृद्धि को प्राप्त करेगा। हम संसार में भी देखते हैं कि जब मनुष्य में किसी सांसारिक विषय के प्रति आसक्ति पैदा हो जाती है, और उसमें आनन्द व रस आने लगता है तब वह उस आसक्ति की बड़ी प्रशंसा करता है। इससे आसक्ति और भी बढ़ती है। इसी प्रकार बार २ स्तुति करने से अच्छे विषयों के प्रति भी आसङ्ग भाव खूब बढ़ाया जा सकता है। तब उस समय मनुष्य को उस विषय में नयी २ बातें सूझेंगीं। उसकी मेधाबुद्धि में नये २ दिव्य प्रकाश पैदा होंगे। ये नये २ प्रकाश ही अतिथि हैं और ये ही आसङ्ग के धन हैं जो कि आसङ्ग के द्वारा मेध्यातिथि को दिये जाते हैं।

मन्त्र के उत्तरार्ध में आसङ्ग अपने रूप को इस प्रकार दिखाता है "निन्दिताश्वः" अर्थात् हे मेध्यातिथि! मैंने तेरे अश्वों को निन्दित कर दिया है। कहने का भाव यह है कि आसङ्ग, भाव इतना तीव्र है कि बुद्धि के घोड़े जो कि पदार्थ व ध्येय विषय के प्रति दौड़ रहे हैं, वे तो थक जाते हैं, परन्तु आसङ्ग भाव अर्थात् तन्मयता की अवस्था अक्षुण्ण बनी रहती है। हम संसार में ऐसे बहुत से मनुष्य देखते हैं कि जिनकी बुद्धि तो बहुत उत्कृष्ट है, परन्तु उनमें आसङ्ग भाव, तन्मयता व स्थिरता आदि नहीं है। इसलिये वे किसी भी विषय में संसार को अपनी नयी देन नहीं दे पाते। अगला विशेषण है।

प्रपथी—आसङ्ग कहता है कि मैं तो श्रेष्ठ राह का राही हूँ। अर्थात् अच्छे विषयों के प्रति ही आसङ्ग भाव पैदा होना चाहिये। सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति होना अच्छा मार्ग नहीं है। अगला विशेषण है— मघस्य परमज्यः।

अर्थात् ऐश्वर्यों को बींधने के लिये इस आसङ्ग के पास धनुष की श्रेष्ठज्या (डोरी) भी है। यहां लक्ष्य बांधने में बुद्धि के घोड़ों को बाण रूप में दिखा दिया है। ध्येय वस्तु के 'मघ' अर्थात् ऐश्वर्य को बांधने के लिये बुद्धि के जो बाण हैं, वे सतत चिन्तन द्वारा उस पदार्थ पर पड़ते हैं, जिससे कि उस पदार्थ में निहित ऐश्वर्य बिंध जाता है। बुद्धि के वे बाण आसङ्ग अर्थात् तन्मयता के धनुष पर रख कर छोड़े जाते हैं। इसमें यह अवश्य याद रखना चाहिये कि धनुष की डोरी जितनी अच्छी हो[illegible] उतना ही लक्ष्य ठीक बिंधेगा। ऐसी ही ल[illegible] बींधने की कल्पना उपनिषद् में भी आती है।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेधव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

गुरुकुल समाचार

ऋतु— ऋतुराज वसन्त की अनूठी सुषमा से समस्त श्रद्धानंद-नगरी का वातावरण मधुर मनोहर हो उठा है। शिशिर समाप्त होते ही कुल उपवन की तरु-राजियां और कुञ्ज-लताएं नए नए पल्लव-प्रसूनों से लहलहा उठी है। कुल की आम्र वाटिकाएँ मौर से झुकी २ जा रही हैं। इतना अधिक मौर पिछले कई सालों मे नहीं देखा गया। कुल की प्रधान पथवीथियों पर लगाए हुए शहतूत रंग ला रहे हैं और बटु-मंडलियाँ उन पर चढ़ चढ़ कर अपूर्व मोद मना

रही हैं; मौसमी फलों में लुकाट और बेरों की बहार प्रारम्भ हो चुकी है; फलवारियों में यूथिका कुञ्ज, गुलाब और कुन्द-कलियाँ महक रही हैं। खेतों में गेहूं की फसल बहुत संतोष-प्रद है। ब्रह्मचारी स्वस्थ और प्रमुदित हैं।

परीक्षाएं

महाविद्यालय-विभाग की परीक्षाएँ २१ मार्च को समाप्त हो गईं। विद्यालय विभाग की परीक्षाएँ आजकल चल रही हैं। वे एप्रिल के प्रारंभ में समाप्त हो जायेंगी। शाखा गुरुकुलों की परीक्षाएँ भी प्रथम एप्रिल तक समाप्त हो जायेंगी। इसके बाद ब्रह्मचारीगण उत्सव की तैयारियों में लग जायेंगे।

गुरुकुलोत्सव

१३-१४-१५-१६ एप्रिल को उत्साह और आनन्द के साथ मनाए जाने वाले वार्षिक महोत्सव की तैयारियां द्रुतगति से हो रही हैं। उत्सव पर विभिन्न सम्मेलनों का आयोजन किया जा रहा है। राष्ट्रिय शिक्षा सम्मेलन के लिए राष्ट्रपति श्री पट्टाभी सीतारामैया महोदय ने सभापतित्व स्वीकार कर लिया है। नवस्नातकों को दीक्षान्त-उपदेश देने के लिए माननीय श्री नरहरि विष्णु गाडगील महोदय (भारत सरकार के विद्युतशक्ति व खान विभाग के मंत्री) ने कृपा पूर्वक अपनी स्वीकृति प्रदान की है। सरस्वती सम्मेलन, राष्ट्रभाषा सम्मेलन, संस्कृत-सम्मेलन आदि के लिए भी उच्चकोटि के विद्वान् और शिक्षातत्व प्रवीण महानुभाव पधार रहे हैं।

गुरुकुल जन्मोत्सव १२ एप्रिल को कुलभूमि में मनाया जायगा। इसके लिए गुरुकुल के नए पुराने स्नातक बन्धु सप्रेम निमंत्रित हैं।

भवन-निर्माण

विद्यालय के छात्रावास में छात्रों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती रहने से उनके लिए निवास स्थान की बड़ी तंगी अनुभव की जा रही थी। परन्तु ईंटों के अभाव के कारण भवन-निर्माण का काम नहीं हो पाया था। अब उसी छात्रावास के तल्ले पर नए आश्रम-भवन बनाने का कार्य प्रारंभ हो चुका है।

इसी प्रकार चिकित्सालय के चारों ओर सुन्दर जंगला (वेष्टनी) भी बनकर तैयार हो गया है। प्रवेश द्वार भी नए सिरे से पक्का और सुन्दर बना दिया गया है।

फाल्गुन मास की स्वास्थ्य रिपोर्ट

श्रेणी	नाम ब्रह्मचारी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा	परिणाम
१४	यशपाल	ज्वर कास	३ दिन	स्वस्थ
१३	सत्यव्रत	ज्वर	५ दिन	,,
१२	सुरेन्द्रपाल	मोच	६ दिन	,,
११	श्रुतिकुमार	टौन्सिलाईटिस	४ दिन	,,
६	सुखवीर	चोट	३ दिन	,,
५	कैलाश	ज्वर	७ दिन	,,
५	गुरुदेव	अतिसार	६ दिन	,,
५	योगेश्वर	ज्वर	४ दिन	,,
५	विक्रमसिंह	चोट	१५ दिन	,,
५	मधुसूदन	ज्वर	२ दिन	,,
४	विन्देश्वर	अस्थिभंग	अभी रोगी है।	

४	ओम्प्रकाश	अतिसार	२ दिन	,,
४	नरेन्द्र	चोट	८ दिन	,,
४	धर्म दिवाकर	खुजली	१० दिन	,,
४	ब्रह्मदेव	चोट	१४ दिन	,,
४	कैलाश	अतिसार	२ दिन	,,
३	ओम्प्रकाश	ज्वरकास	४ दिन	,,
३	आनन्द प्रकाश	चोट	६ दिन	,,
३	धनपति	व्रण	अभी रोगी है।	
३	राम गोपाल	ज्वर	४ दिन	,,
३	विनोद	ज्वर	४ दिन	,,
३	बद्रीनारायण	ज्वरकास	३ दिन	,,
३	सुरेश कुमार	एग्ज़िमा	अभी रोगी है !	
२	विनोद	अतिसार	३ दिन	,,
२	ओम्प्रकाश	चोट	३ दिन	,,
१	प्रेमनाथ	खुजली	५ दिन	,,
१	दिनेश कुमार	,,	६ दिन	,,

उपर्युक्त ब्रह्मचारी गत मास रुग्ण हुए थे, अब सब स्वस्थ हैं।

मुद्रक श्री—हरिवंश वेदालंकार, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल-पत्रिका

वैशाख २००६

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

वर्ष १ — गुरुकुल-पत्रिका — अङ्क ९

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति।
श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

मालाकार	श्री प्रभुदयाल अग्निहोत्री
चन्द्रमा के प्रकाश पर वैदिक विचार	श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा
शिक्षा का वैदिक आदर्श	पं० चन्द्रकान्त वेदवाचस्पति
श्रुति की आवश्यकता	स्वामी कृष्णानन्द जी
राष्ट्र भाषा का प्रश्न	श्री सत्यकाम आयुर्वेदालङ्कार
जौनसार बावर की समस्याएं	पं० धर्मदेव जी शास्त्री
भारतीय संस्कृति का केन्द्र	श्री फतेहचन्द्र शर्मा आराधक।

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक — एक प्रति
विदेश में ६) वार्षिक — छः आने

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का मासिक पत्रिका]

संसार सुखमय है या दुःखमय

श्री वागीश्वर जी विद्यालंकार

एक विश्वात्मा

पुरातत्त्व के जानने वाले इस पृथिवी के विषय में भी अनेक अटकलें लगाया करते हैं। वे कहते हैं कि दक्षिणी अफ्रीका, एशिया के कुछ भाग तथा दक्षिण अमेरिका कभी एक ही थे। तब इतना उलट-फेर कब और कैसे हो गया? मनुष्य मननशील प्राणी है। मनन में ही उसकी मनुष्यता की चरितार्थता है। जिस दिन वह सोचना छोड़ देगा, मनुष्य ही न रहेगा। किन्तु उसमें और पशु में कुछ अन्तर न होगा। इसी प्रकार, एक मानव मस्तिष्क की कल्पना है कि पृथिवी के इन विभक्त महाद्वीपों की तरह आत्मा भी कभी एक ही थी। पर, उस बैठी टालों को, एक दिन, न जाने क्या सूझा? वह बोल उठी—'मैं[1] एक से अनेक हो जाऊँ।' बस, तभी से विश्व में अनन्त आत्माएं अपना पृथक् अस्तित्व लिये घूम रही हैं। सब ने अपने चारों तरफ इच्छा से या अनिच्छा से एक अभेद्य दुर्ग का निर्माण कर लिया है। न कोई दूसरा उसके भीतर प्रवेश पाता है, न वह स्वयं उसमे बाहर निकल सकती है। इस चलते फिरते दुर्ग में आमरण कारावास भोगती वह अकेली ही कभी रोती है, कभी हँसती। एक अन्य कवि के शब्दों का आशय कुछ इस प्रकार का है कि "सब प्राणी परस्पर विच्छिन्न द्वीपों के समान हैं, उनके बीच में अश्रुओं का असीम क्षीर-सागर लहरा रहा है। एक दूसरे को देखकर कभी कभी हमारे मन में आता है कि क्या हम भी कभी उस एक ही महाद्वीप के रूप में थे और आज किसी देवता के शाप से अलग अलग हो गये हैं?" जिसे हम प्यार करते हैं उसके भी हृदय में पैठ नहीं सकते। ऐसा कोई जलयान या वायुयान अभी तक नहीं बना जिसमें बैठकर हम अपने प्रिय के लोक में—हृदय में पहुँच सकें। वैज्ञानिक-वर्ग चन्द्रलोक में पहुँच जाने के पश्चात् क्या इस दिशा में भी कुछ प्रयत्न करने की कृपा करेंगे।

एक से अनेक

हम परस्पर मिलते जुलते हैं, बातचीत करते हैं, हँसते खेलते हैं, लड़ते झगड़ते भी हैं पर एक दूसरे के मन को नहीं जानते। नहीं जानते कि हमारा मित्र हमारे विषय में क्या सोचता है, तब शत्रु की तो बात ही क्या? पहले सब एक थे आज अनेक हो गये। इतना ही नहीं अब तो उस लोक में दूसरे के हृदय में झांक लेने का भी हमें अधिकार नहीं। अनन्तकाल के लिये हम वहां से निर्वासित कर दिये गये। अब तो हमें, एक ही विशाल नक्षत्र से किसी समय पृथक् होकर आकाश में निरन्तर परिभ्रमण करते हुए उसके ग्रहों की भाँति, इस जलन को हृदय में

१—एकोऽहं बहुस्याम्।

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

श्री सुखदेव
विद्यावाचस्पति।

श्री रामेश बेदी
आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

मालाकार	श्री प्रभुदयाल अग्निहोत्री
चन्द्रमा के प्रकाश पर वैदिक विचार	श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा
शिक्षा का वैदिक आदर्श	पं० चन्द्रकान्त वेदवाचस्पति
श्रुति की आवश्यकता	स्वामी कृष्णानन्द जी
राष्ट्र भाषा का प्रश्न	श्री सत्यकाम आयुर्वेदालङ्कार
जौनसार बावर की समस्याएं	पं० धर्मदेव जी शास्त्री
भारतीय संस्कृति का केन्द्र	श्री फतेहचन्द्र शर्मा आराधक।

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक
एक प्रति
 ः आने

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

संसार सुखमय है या दुःखमय

श्री वागीश्वर जी विद्यालंकार

एक विश्वात्मा

पुरातत्त्व के जानने वाले इस पृथिवी के विषय में भी अनेक अटकलें लगाया करते हैं। वे कहते हैं कि दक्षिणी अफ्रीका, एशिया के कुछ भाग तथा दक्षिण अमेरिका कभी एक ही थे। तब इतना उलट-फेर कब और कैसे हो गया? मनुष्य मननशील प्राणी है। मनन में ही उसकी मनुष्यता की चरितार्थता है। जिस दिन वह सोचना छोड़ देगा, मनुष्य ही न रहेगा। किन्तु उसमें और पशु में कुछ अन्तर न होगा। इसी प्रकार, एक मानव मस्तिष्क की कल्पना है कि पृथिवी के इन विभक्त महाद्वीपों की तरह आत्मा भी कभी एक ही थी। पर, उस बैठी ठालीं को, एक दिन, न जाने क्या सूझा? वह बोल उठी—'मैं[1] एक से अनेक हो जाऊँ।' बस, तभी से विश्व में अनन्त आत्माएं अपना पृथक् अस्तित्व लिये घूम रही हैं। सब ने अपने चारों तरफ इच्छा से या अनिच्छा से एक अभेद्य दुर्ग का निर्माण कर लिया है। न कोई दूसरा उसके भीतर प्रवेश पाता है, न वह स्वयं उसमे बाहर निकल सकती है। इस चलते फिरते दुर्ग में आमरण कारावास भोगती वह अकेली ही कभी रोती है, कभी हँसती। एक अन्य कवि के शब्दों का आशय कुछ इस प्रकार का है कि "सब प्राणी परस्पर विच्छिन्न द्वीपों के समान हैं, उनके बीच में अश्रुओं का असीम क्षीर-सागर लहरा रहा है। एक दूसरे को देखकर कभी कभी हमारे मन में आता है कि क्या हम भी कभी उस एक ही महाद्वीप के रूप में थे और आज किसी देवता के शाप से अलग अलग हो गये हैं?" जिसे हम प्यार करते हैं उसके भी हृदय में पैठ नहीं सकते। ऐसा कोई जलयान या वायुयान अभी तक नहीं बना जिसमें बैठकर हम अपने प्रिय के लोक में—हृदय में पहुँच सकें। वैज्ञानिक-वर्ग चन्द्रलोक में पहुँच जाने के पश्चात् क्या इस दिशा में भी कुछ प्रयत्न करने की कृपा करेंगे।

एक से अनेक

हम परस्पर मिलते जुलते हैं, बातचीत करते हैं, हँसते खेलते हैं, लड़ते झगड़ते भी हैं पर एक दूसरे के मन को नहीं जानते। नहीं जानते कि हमारा मित्र हमारे विषय में क्या सोचता है, तब शत्रु की तो बात ही क्या? पहले सब एक थे आज अनेक हो गये। इतना ही नहीं अब तो उस लोक में दूसरे के हृदय में झांक लेने का भी हमें अधिकार नहीं। अनन्तकाल के लिये हम वहां से निर्वासित कर दिये गये। अब तो हमें, एक ही विशाल नक्षत्र से किसी समय पृथक् होकर आकाश में निरन्तर परिक्रमा करते हुए उसके ग्रहों की भाँति, इस जलन को हृदय में

[1] एकोऽहं बहुस्याम्।

उठाए हुए दिन रात भटकना है नित्य निकट रहकर इस अनन्त वियोग की वह्नि में दग्ध होना है। इस वियोग व्यथा से व्याकुल एक नारी हृदय कहता है२—पहले तुम और हम एक तन एक प्राण थे। फिर पृथक् होकर, तुम प्रियतम और हम प्रियतमा हुईं। आज तुम स्वामी और हम तुम्हारी पत्नी हैं। कुलिश के समान कठिन, इन हताश प्राणों के कारण हमें यह यातना भी भोगनी पड़ रही है। बृहदारण्यक उपनिषद् तथा बाइबिल आदि कई अन्य धार्मिक ग्रन्थों में भी यह विषय कुछ कुछ परिवर्तित रूपों में पाया जाता है। 'कभी पुरुष ही अकेला था। उसे संसार सूना सूना लगता था। उसे किसी साथी की कामना हुई। उसका शरीर संयुक्त नरनारी के समान था। वह शरीर दो भागों में बंट गया, वे ही पति पत्नी हुए। पुरुष आधा ही है, स्त्री उसे पूर्ण करती है, इत्यादि।"३

किन्तु भारत की आदर्श नारी भगवती पार्वती हतोत्साह न हुईं। उन्होंने गंगा को फिर से उल्टी बहा दी। तपस्या और कठोर साधनाओं द्वारा पुनः अपने पतिदेव शंकर के शरीर में स्थान प्राप्त कर लिया। भगवान् शंकर तभी से अर्धनारीश्वर हैं। पति पत्नी पुनः एक हो गये। दुर्गा ने वह अभेद्य दुर्ग तोड़ दिया। आत्मा का आत्मा से मिलन संपन्न हुवा। उनके लिये विरह की बाधा न रही। हिन्दू-विवाह इस एकी-भवन के प्रय का अवशिष्ट प्रतीक है।

अनन्त विरह की उत्पत्ति

महाकवि बाण ने संसार की असारता और दुःखमयता प्रकट करते हुए कादम्बरी में लिखा है४—"अपनी इच्छा से तो, यहां कोई श्वास भी नहीं ले सकता। निष्ठुर दुर्दैव की करतूतें बड़ी खोटी हैं। निश्छल निःस्वार्थ स्नेह दीर्घकाल तक नहीं टिक सकता। सुख स्वभाव से ही क्षण भंगुर और दुःख लम्बे चलने वाले होते हैं। देखो—किसी प्रकार एक जन्म में, कुछ क्षणों के लिये मिलन होता है और फिर सहस्रा जन्मजन्मान्तरों के लिये वियोग आ घेरता है।" विश्व के रंगमंच पर किस किस भूमिका में अवतीर्ण होकर हमने क्या क्या अभिनय किया है? पटाक्षेप होते ही, किसके वे किसके हम? सब सूत्र टूट गये। सोचो तो सही— जन्मजन्मान्तरों के कितने अभिन्न हृदय प्रियजनों का दारुण वियोग बड़वानल भीतर ही भीतर हमें दग्ध कर रहा है? हमारे रक्त के कण कण में सहस्रों हृदय और प्रत्येक हृदय में सहस्रों व्रणों की वेदना अकुला रही है।

अनन्त विरह की अनुभूति

यह भी उस महा मायावी की असीम करुणा है कि अतीत जन्मों की ये वियोग-व्यथाएं, सदा, हमारी साक्षात् अनुभूति का विषय नहीं बनतीं। उनकी अप्रत्यक्ष टीस ही समय समय पर हमारे हृदय में हूक उठाया करती है। जीवन के किन्हीं

२—पुराऽभूदस्माकं प्रथममविभिन्नातनुरियं
ततो नु त्वं प्रेयान् वयमपि हताशाः प्रियतमाः।
इदानीं नाथस्त्वं वयमपि कलत्रं किमपरं,
हतानां प्राणानां कुलिश कठिनानां फलमिदम्॥

३—आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुष विधः······सवै नैव रेमे···सद्वितीयमैच्छत्। स ह एतावानास यथा स्त्री पुमांसौ संपरिष्वक्तौ, स इममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत् ततः पतिश्च पत्नीचाभवताम्। बृहदा. १।४।३···४॥

४—आत्मेच्छया न शक्यमुच्छ्वसितमपि। अति पिशुनानि च अस्यैकाऽन्त निष्ठुरस्य दैवहतकस्य विलसितानि। न क्षमते दीर्घकालमव्याज-रमणीयं प्रेम। प्रायेण च निसर्गत एव अना-यतस्वभाव भङ्गुराणि सुखानि, आयत स्व-भावानि च दुःखानि। तथाहि-कथमप्येकस्मिन् जन्मनि समागमः, जन्मान्तर सहस्राणि च विरहः प्रमिणाम। कादम्बरी।

सुखी क्षणों में, जब हम सर्वथा असावधान होते हैं, वृश्चिक-दंश के समान तीव्रतर, किन्तु अलक्ष्य कोई संकेत हमारी प्रसुप्त पीड़ाओं को जगा जाते हैं इन संकेतों के उद्घाटक प्रायः कोई मीठी तान, शारदी चन्द्रिका कुसुम, मेघों की रिमझिम वासन्तिक वात, कोकिल की कूक या ऐसी ही कोई अन्य सुन्दर सुकुमार सामग्री होती है जो हमारे अन्तजगत् के किसी ऐसे तार को छू देती है जिससे हम विह्वल हो उठते हैं। यह क्या और कैसे हो गया ? वह बादल कहां है जिससे यह वज्रपात हुवा--समझ में नहीं आता। तो भी हम देखते हैं कि हमारा हृदय शीशे की तरह चकना चूर होगया है और उसके प्रत्येक खण्ड में वही पीड़ा सहस्र मूर्ति हो व्याप्त हो रही है।

पूर्व जन्म के संस्कार

महाराजा दुष्यन्त अपने अन्तरंग मित्र के साथ हास्य-विनोद में मग्न हैं। उधर अन्तःपुर में मधुर संगीत चल रहा है। नारी कण्ठ की सुकुमार स्वर-लहरी मन्द समीर पर नृत्य कर रही है राजा के कानों में पहुँचकर वह मृदुध्वनि उन्हें बेचैन कर देती है, वे सोचते हैं[५]—मेरे सभी स्वजन सम्बन्धी मेरे पास हैं, फिर इस गीत को सुनकर मैं ऐसा अनमना क्यों हो रहा हूं ? अथवा रमणीय दृश्यों को देखकर और मधुर ध्वनियों को सुनकर जब सुखीजन भी सहसा उदास हो जाते हैं तब अवश्य ही उनका मन किन्हीं अतीत प्रियजनों को याद कर रहा होता है; क्योंकि जन्मान्तरों के स्नेह सम्बन्ध भी हमारे संस्कारों में स्थिर हो जाते हैं।'

शेक्सपीयर कहता है—मधुर संगीत को सुनते ही मेरे हृदय का तरल उल्लास जाता रहता है।'[६]

आषाढ़[७] के प्रथम दिन, सामने के गिरि शिखर पर, मस्त गजराज की तरह झूमते हुए अभिनव जलधर को देखकर रामगिरि का प्रवासी यक्ष कान्ता वियोग से विकल हो जाता है। श्रीमती महादेवी वर्मा भी इस तथ्य की पुष्टि कर रही हैं—

घिर कर अविरल मेघों से
जब नभमण्डल झुक जाता
अज्ञात वेदनाओं से-
मेरा मानस भर आता ॥

तथा— किस सुधि-वसन्त का सुमन तीर
कर गया मुग्ध-मानस-अधीर ?
वेदना-गगन से रजत ओस
चू चू भरती मन-कुञ्ज-कोष,
अलि सी मँडराती विरह-पीर ॥
मंजरित नवल मृदु देह डाल
खिल खिल उठता नव पुलक जाल
मधुकन सा छलका नयन नीर ॥
रश्मि पृ० ६६ ॥

अपने एक गीत में रवि बाबू भी इसी प्रकार की अनुभूति का वर्णन कर रहे हैं[८]— पूर्णिमा

---

(५) दुष्यन्तः—किं न खलु स्वजन विरहादृतेऽपि
बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि ? अथवा—
रम्याणि वीक्ष्यमधुराँश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकी भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नून मबोध पूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि ॥
शाकुन्तल। अंक ५।

६—'I am never werry when I hear sweet music.'
मरचैण्ट ऑफ वेनिस अंक ५ दृश्य १।

७—आषाढस्य प्रथम दिवसे मेघमश्लिष्टमानु
वप्रक्रीडा परिणतगज प्रेक्षणीयं ददर्श ॥
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथां वृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेष प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥

८—पूर्णिमा निशीथे जब दशदिके परिपूर्ण हासि,
दूरस्मृति कोथा होते बाजाय व्याकुल करा बाँसि,
झरे अश्रु राशि ॥

की मध्यनिशा में जब दशों दिशाएं हँस रही होती हैं तभी अतीत की स्मृति कहीं से आकर व्याकुल कारिणी वंशी बजा देती हैं जिसे सुनकर मेरे नेत्रों से अश्रु राशि झरने लगती हैं।

अनन्त विरह की अनुभूति सुख के क्षणों में अधिक होती है

ऐसा होता क्यों है? सुनिये हमने कुछ खो दिया है। क्या? यह हम नहीं जानते। तो भी उस अभाव की टीस हमें रह रह कर सताती है। सुख की सुन्दर घड़ियों में तो वह अदबद कर किसी न किसी झरोखे से झांक ही लेती है और हमारी नवोन्मिषित मुसुकान के अधरों पर विषाद की गहरी छाया डाल जाती है। विश्वकवि रवि बाबू के मार्मिक हृदय ने संसार की प्रत्येक वस्तु के अन्तरतम में इसी अनन्त वियोग की व्यथा को स्पन्दित होते देखा था—"यह वियोग की ही पीड़ा है जो सारे भुवन में फैल रही है और अनन्त आकाश मण्डल में अगणित रूपों को उत्पन्न कर रही है। यह वियोग का ही शोक है कि तारागण एक दूसरे की ओर रात भर टक-टकी लगाये रहते हैं और सावन के बरसाती अन्धकार में लड़खड़ाती पत्तियों से वीणा की ध्वनि निकलती है। यह वियोग की ही सर्व व्या-पिनी वेदना है जो मानव गृहों में प्रेम और वासना, शोक और आनन्द में घनीभूत होती है, और जो मुग्ध कवि के हृदय से झर झर कर गीतों के रूप में प्रवाहित होती है।"

सुन्दर परिस्थितियों में किसी के अज्ञात अभाव की अनुभूति

पतझड़ के उल्लास पूर्ण प्रदेशों को निहार तथा किन्हीं अतीत दिनों की याद कर महाकवि टैनिसन९ के हृदय में से उमड़ते हुए इसी पार-लौकिक विरह के अश्रु अनायास उनके नेत्रों में छल छला आये। कवि ने उनका अर्थ समझने का प्रयास व्यर्थ ही किया। महाकवि शैले१० ने भी, एक दिन, स्वप्न में, अपने बिछुड़े हुए प्रेमी की उपस्थिति अनुभव कर उसके लिये सुन्दर कुसुमों का स्तबक तय्यार किया किन्तु उसे लेकर वे ज्यों ही अपने प्रिय को भेंट करने चले—वह उन्हें वहाँ न मिला। यमुना के कानन-कुञ्जों में गोपियों के साथ वृन्दावन-विहारी की ऐसी ही आँख-मिचौनी सूर-सागर में स्नान करने वालों से छिपी नहीं।

९-Tears, iddle tears,
I know not what they mean.
Tears from the depth
of some divine despair.
Rise in the heart
and gather to the eyes
In looking on
the happy Autumn fields.
And thinking of the days
that are no more.

१०-Methought that of these
visionary flowers.
I made a mosegay,
bowed in such a way
That the same hues,
which in tneir natural bowers
Were naugled or opposed,
the like array
Kept these imprisoned
children of the hcuas
Within my hand
and then elate and gay.
I hastened to the spot
whence I had come.
That I might there present it
O! to Whom?

इस युग में भारत का पश्चिम पर प्रभाव

श्री हरिदत्त वेदालङ्कार

नवयुग का आरम्भ

पांचवी शती ई० में पश्चिमी रोमन साम्राज्य के पतन के बाद १५ वीं शती ई० तक भारत और योरोप में कोई प्रत्यक्ष संपर्क नहीं रहा। १४६८ ई० में वास्कोडिगामा के जहाजों के मलाबार तट पर लगने के साथ इस युग में योरोप और भारत का प्रत्यक्ष संबन्ध स्थापित हुआ। १६ वीं शती स विश्व का नेतृत्व योरोप के हाथ में आ गया। योरोपियन जातियां ने ज्ञान-विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में अश्रुतपूर्व और अभूतपूर्व उन्नति का भौतिक क्षेत्र में वैज्ञानिक आविष्कारां द्वारा प्रकृति पर विस्मयावह विजय पायी। पहले मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों का खिलौना मात्र था, आज वह उनका स्वामी है उसने उन्हें दास बना कर उनकी असीम शक्ति से अचिन्तित, अकल्पित और स्वप्न समझी जाने वाली बातें सत्य सिद्ध करदी, देश और काल के व्यवधान को मिटा दिया। इस से मानव-इतिहास में एक नवयुग का श्री गणेश हुआ है।

उन्नति के नवयुग में भारत पिछड़ा और पराधीन रहने के कारण वह पश्चिम पर बहुत कम प्रभाव डाल सका है! इस प्रभाव को परोक्ष, प्रत्यक्ष दो भागों में बांटा जा सकता है। पहले भाग में तो वे प्रभाव आते हैं जो योरोप ने अरबों के माध्यम द्वारा भारत से ग्रहण किए। इस में गणित और ज्योतिष का पहले उल्लेख हो चुका है। आयुर्वेद तथा चिकित्सा शास्त्र की कुछ बातें भी अरबों के माध्यम से योरोप पहुँची प्रसिद्ध अरब तबीब-अल्-राज़ी ने चरक सुश्रुत ९३२ ई०) के अनुवादों को प्रामाणिक ग्रन्थ माना था। योरोप में मध्ययुग में चिकित्सा की उन्नति करने वाले और प्रधान प्रचारक अरब थे, इन्होंने वहां पहला आयुर्वेद महाविद्यालय स्थापित किया। अब्नसीना, इब्न सराफियून आदि मध्यकालीन योरोपियन अरब लेखक चरक की बड़ी प्रशंसा करते हैं (मैं० सं० लि० ४२७ ई०) अतः यह असंभव नहीं कि पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति के आरांम्भक विकास पर चरक सुश्रुत का प्रभाव पड़ा हो। पथरी तथा गर्भाशय चीर कर बच्चा निकालने के आधुनिक-शल्य कर्म सुश्रुत द्वारा प्रतिपादित ढंगो से गहरी समानता रखते हैं। योरोप में इनके स्वतन्त्र विकास की भी कल्पना की जा सकती है किन्तु दो क्षेत्रों में भारत का ऋण निर्विवाद है। योरोपियन शल्य-चिकित्सकों ने नकली नाक लगाने की विद्या भारत से सिखी है (मैं० स० लि० ४०६) और चिकित्सा के क्षेत्र में उन्हें जो भारतीय औषधियां उपयुक्त पड़ी हैं वे उन्होंने स्वोकार करली हैं। इसके मुख्य उदाहरण हैं कुटज (इन्द्रायव)

प्रत्यक्ष संपर्क जनित प्रभाव

(योरोप में संस्कृत का अध्ययन व नवीन)

(विज्ञानों का जन्म)

योरोप और भारत में प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित होने के बाद, भारत ने योरोपपर मुख्य रूप से सांस्कृतिक क्षेत्र में ही कुछ प्रभाव डाले हैं। इनका श्री गणेश योरोपियन विद्वानों द्वारा संस्कृत के अध्ययन से आरम्भ हुआ। इसका

इतिहास बड़ा मनोरञ्जक है। १८ वीं शती के उत्तरार्ध में भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के साथ शासकों को शासन प्रबन्ध के लिए शासितों की भाषा का ज्ञान पाने की आवश्यकता अनुभव हुई। हिन्दुओं और मुसलमानों के जमीन जायदाद और दायभाग आदि के दीवानी कानून संस्कृत और अरबी में थे। इन विषयों से सम्बन्ध रखने वाले झगड़ों के निपटारे के लिए अंग्रेज जज पण्डितों और मौलवियों की सहायता लेते थे। वारन हैस्टिंग्ज ने १७७४ ई० हिन्दु कानून का एक ग्रन्थ 'विवादार्णवसेतु' तैय्यार कराया किन्तु उस समय कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो संस्कृत और अंग्रेजी दोनों भाषाएं जानता हो अतः इसका पहले संस्कृत से फारसी में अनुवाद हुआ और फिर फारसी से अंग्रेजी में (१७७६ ई०)। इस शोचनीय अवस्था को दूर करने के लिए हेस्टिंग ने अंग्रेजों को संस्कृत पढ़ने को प्रोत्साहित किया। बनारस का संस्कृत कोलेज़ तथा कलकत्ता का अरबी मदरसा कायम किया गया। संस्कृत पढ़ने वाला पहला अंग्रेज चार्ल्स विल्किन्स था। इसने भगवद्गीता (१७८५ ई० ई० तथा हितोपदेश के अंग्रेजी, अनुवाद किए। किन्तु पश्चिम में संस्कृत को विद्वन्मण्डली में लोकप्रिय बनाने वाला और उसके अध्ययन की ओर सर्वप्रथम ध्यान खींचने वाला सर विलियम जोन्स (१७४६—१७९४) था। यह १७८३ ई० में कलकत्ता में सुप्रीम कोर्ट का जज बन कर आया था। १७८४ ई० में इसने पौरस्त्य वाङ्मय तथा ज्ञान-विज्ञान की शोध लिये एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की। की। शीघ्र ही संस्कृत का उत्तम अभ्यास कर कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल का अंग्रेजी किया। योरोप का काव्यरस प्रेमी समाज इसे पढ़ कर मुग्ध हो गया और उसका ध्यान संस्कृत की ओर आकृष्ट हुआ। किन्तु १८०२ तक भारत वासी अंग्रेजों ने ही संस्कृत का अध्ययन किया था। इस वर्ष विधि के विचित्र संयोग से योरोप में इस का पठन-पाठन आरम्भ हुआ। इसका श्रेय नैपोलियन के युद्धों को है। हैमिल्टन नामक एक अंग्रेज ने भारत में संस्कृत सीखी थी, वह १८०२ ई० योरोप होता हुआ इंगलैण्ड जा रहा था। उस समय फ्रांस का अंग्रेजों के साथ युद्ध छिड़ गया। नैपोलियन ने फ्रांस में विद्यमान सब अंग्रेजों को पेरिस में बन्दी बनाने की आज्ञा प्रचारित की। हैमिल्टन को पेरिस में पर्याप्त देर तक कैद में रहना पड़ा। यह उसके लिए अवश्य बुरा था, किन्तु संस्कृत के प्रचार के लिए यह बन्धन बड़ा शुभ हुआ। इस समय उस से कुछ फ्रैंच विद्वानों तथा जर्मन-कवि श्लीगल ने संस्कृत सीखी। श्लीगल ने १८०८ ई० में भारतीयों की भाषा और बुद्धिमत्ता पर एक पुस्तक छापी। इस से योरोप के भाषा-विज्ञान में क्रान्ति मच गयी। जर्मनी में संस्कृत-भाषा के अध्ययन के लिए इतना अधिक उत्साह पैदा हो गया कि वह इस क्षेत्र में सारे योरोप का नेता बना, जर्मन विद्वानों ने इस दिशा में सबसे अधिक कार्य किया। अन्य देशों के बड़े बड़े विश्वविद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन अध्यापन प्रारम्भ हो गया।

योरोप में संस्कृत के अध्ययन ने तुलनात्मक भाषा-विज्ञान और तुलनात्मक धर्म-विज्ञान नामक दो महत्वपूर्ण विज्ञानों को जन्म दिया। सबसे पहले जोन्स को संस्कृत का अध्ययन करते हुए यह बात सूझी थी कि संस्कृत, लैटिन, यूनानी, फारसी, इंगलिश, फ्रैंच, जर्मन भाषाओं में समानता है। इस का कारण इन का एक मूल से प्रादुर्भूत होना है। अतः ये सब

एक वंश से संबन्ध रखने वाली हैं। अब विद्वानों ने सब भाषाओं की तुलना कर उन्हें पृथक् वंशों में बांटना शुरु किया तथा उन के परिवर्तन तथा रूपान्तर के नियमों पर अधिक ध्यान दिया। १८१६ ई० में फ्रांज बाप ने संस्कृत के रूपों को यूनानी, लैटिन, फारसी तथा जर्मन से विस्तृत तुलना कर तुलनात्मक भाषा शास्त्र को जन्म दिया। दूसरा विज्ञान तुलनात्मक धर्मशास्त्र था। संस्कृत के अध्ययन के साथ योरोपियन विद्वानों को भारतीय धर्म और दर्शन का परिचय मिला। अब तक वे यूनानी साहित्य से ही परिचित थे किन्तु अब उस से पुराने तथा बहुत ऊंचे धार्मिक विचारों का ज्ञान हुआ। मैक्समूलर आदि विद्वानों ने विविध आर्य-जातियों के धर्मग्रन्थों तथा देवताओं के स्वरूपों का अध्ययन कर तुलनात्मक धर्मशास्त्र की नींव रक्खी।

योरोप में संस्कृत ग्रन्थों के पहुँचने का एक प्रभाव यह भी हुआ कि उस ने १६ वीं शती के जमन साहित्य पर अपनी स्पष्ट छाप छोड़ी। प्रसिद्ध जर्मन-कवि गेटे कालिदास की अभिज्ञान शाकुन्तल को पढ़ कर बड़ा प्रभावित हुआ था! उसने इस की प्रशंसा में एक जर्मन कविता भी लिखी थी। उसके प्रसिद्धतम नाटक फाउट के प्रारम्भिक भाग पर कालिदास के नाटक का स्पष्ट प्रभाव है। संस्कृत नाटकों के प्रारम्भ में नान्दी के बाद सूत्रधार अभिनीत किए जाने वाले नाटक का परिचय देता है तथा इस सम्बन्ध में अपने साथियों से परामर्श करता है। फाउट में गेटे ने इसी पद्धति का अनुसरण किया गया है यह योरोप के लिए बिल्कुल नयी वस्तु थी। शाकुन्तल का जर्मन अनुवाद १७६१ ई० में प्रकाशित हुआ और फास्ट १६७७ ई० में लिखा गया। १८३० ई तक गेटे का यह विचार था कि वह शाकुन्तल को जर्मन रंगमञ्च के अनुरूप बना कर प्रस्तुत करे (मै. स. लि. पृ. ४१६–१७)। जर्मन कवि हीन की कविताओं पर संस्कृत साहित्य का गहरा असर है। अंग्रेज कवि एडविन अर्नोल्ड ने बुद्ध के जीवन पर बड़ा सुन्दर काव्य लिखा।

चौथा प्रभाव भारतीय दर्शन और धर्म का है। पिछली शती के मध्य में शोपनहार तथा फानहार्ट मान पर उपनिषदों का गहरा प्रभाव पड़ा। शोपनहार ने लिखा था कि उपनिषदें उसे जीवन में शान्ति सन्तोष देने वाली हैं तथा मृत्यु के समय भी उसे इन से सान्त्वना मिलेगी। भौतिकवाद में आपाद-मस्तक निमज्जित पश्चिम को बौद्धधर्म, वेदान्त, और महात्मा गान्धी के अहिंसा वादी दर्शन ने यत्किंचित् प्रभावित किया है। बौद्धधर्म, पश्चिम को कई कारणों से अधिक आकर्षक प्रतीत हुआ है। इस में आत्मा परमात्मा का कोई पचड़ा नहीं, नैतिक आचरण की शुद्धता पर बल दिया गया है। बौद्धधर्म के प्रभाव का एक सुन्दर उदाहरण ब्रिटिश कवि सर एडविन अर्नोल्ड (१८३२–१६४०) की प्रसिद्ध रचना एशिया का प्रकाश (दी लाइट औफ एशिया) या महाभिनिष्क्रमण (१८७६) है। इस में बड़ी सरस कविता में भगवान् बुद्ध के जीवन की कथा वर्णित है। कट्टर ईसाई इस बात से बढे रुष्ट हुए कि अर्नोल्ड ने ईसाई होते हुए भगवान् बुद्ध पर इतनी सुन्दर रचना क्यों लिखी। संभवतः इन्हें संतुष्ट करने के लिए उसने ईसा मसीह की पद्यात्मक जीवनी 'विश्व के प्रकाश (दी लाइट औफ दी वर्ल्ड) के नाम से लिखी (१८६१ ई०) किन्तु इसमें उसे एशिया के प्रकाश वाली सफलता नहीं मिली।

वेदान्त को पश्चिम में लोकप्रिय बनाने तथा प्रसारित करने का सब से बड़ा श्रेय स्वामी विवेकानन्द और उनके शिष्यों को हैं। १८९३ ई० में शिकागो की सर्वधर्म परिषद् में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करते हुए उन्होंने एक प्रभावशाली वक्तृता दी थी। इस से अमरीका में वेदान्त की धूम मच गयी। उसके बाद उनके अनेक शिष्यों तथा स्वामी रामतीर्थ आदि ने जड़वादी पश्चिम को आध्यात्मिक वेदान्त का संदेश सुनाया। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं और व्याख्यानों ने भी इस दिशा में पर्याप्त प्रभाव डाला है।

किन्तु इस समय सब से बड़ा प्रभाव महात्मा गांधी की अहिंसावादी विचार धारा का है. जिस में मनुष्यता, आत्मशक्ति का उत्कृष्टता आत्म विजय त्याग और सेवा के तत्वों पर बल दिया गया है। विज्ञान ने मनुष्यों को देवताओं की सी अलौकिक शक्ति प्रदान की है, वह चाहे तो भूतल को स्वर्ग बना सकता है किन्तु संकीर्ण और उग्र राष्ट्रवाद तथा साम्राज्य लिप्सा के कारण पश्चिम विज्ञान प्रदत्त देवताओं की शक्तियों का दानवों की भांति प्रयोग कर रहा है। दुनियां युद्धजर्जरित होकर नरक बन रही है। इस समय महात्मा गांधी ने भारत तथा समूचे विश्व को अहिंसा का मार्ग दिखाया है अभी तक महात्मा गांधी की अमर वाणी, स्वार्थान्ध, साम्राज्यलोलुप राजनीतिज्ञों के बहरे कानों पर ही पड़ी हैं किन्तु रक्तरंजित जगत् अणुबम का आविष्कार करने के बाद देर तक इस की उपेक्षा नहीं कर सकता। पश्चिम इस समय आत्मघात के मार्ग पर तेजी से दौड़ रहा है किन्तु अब वहां होम्ज़, हक्सले, जोड़े आदि अनेक विचारक यह अनुभव करने लगे हैं कि विश्व के परित्राण का और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। आज भले ही पश्चिम उसे एक दम स्वीकार न करे किन्तु शीघ्र ही उसे आत्मरक्षा के लिए महात्मा गांधी द्वारा बताए अहिंसावाद की शरण में आना पड़ेगा।

इस समय योरोपियन राष्ट्रों की साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा से तृतीय विश्वयुद्ध के काले बादलों की घटा छा रही है चारों तरफ घना अन्धकार फैल रहा है. मानव जाति अपने सर्वनाश की आशंका से भयभीत और संत्रस्त है। किंतु इस घोर तिमिर में बापू की अमर वाणी ही प्रकाश की एक मात्र किरण है घने बादलों में आशा की चमकीली रेखा है। अभी पिछले महायुद्ध की ज्वालायें पूरी तरह शान्त नहीं हुई कि नये महाभारत की आग सुलगायी जा रही है। भले ही कांटे से कांटा निकलता हो किन्तु आग से आग नहीं बुझती। वह जल से ही शान्त होती है। विश्व को भस्मसात् कर देने वाले महायुद्धों के प्रचण्ड दावानल को बुझाने का सामर्थ्य योरोपियन राष्ट्रों या संयुक्तराष्ट्रसघ के पास नहीं है, वह अन्तर्राष्ट्रीय परिषदों संधियों से शांत नहीं हो सकता। बापू के अहिंसासम्बन्धी उपदेशामृत पर आचरण ही उसे बुझा सकता है। उस समय भारत फिर संसार का गुरु बनेगा और विश्व की शन्ति में सहायक सिद्ध होगा।

बालि की दैनिक पूजाविधि

आचार्य रघुवीर

बाली में पूजाविधि को "पूजा परिक्रम" कहा जाता है। कपड़े पहिनते हुए "ॐ त महादेवाय नमः" मंत्रोच्चारण से वह आरम्भ की जाती है। उसके पश्चात् "ॐ अं शिवस्थितिकाय नमः" का उच्चारण करते हुये मेखला धारण करते हैं। तदनंतर "ॐ उं विष्णुरुद्राशिवाय नमः" का उच्चारण करते हुये उत्तरीय वस्त्र पहना जाता है और "ॐ मं ईश्वरपरमशिवाय नमः" का पाठ करते हुये वक्षस्थल पर वस्त्र डालते हैं। वस्त्र धारण और क्षालन समाप्त होने के उपरांत "ॐ ॐ पद्मासनाय नमः" मंत्र का जप करते हुये उपासक पद्मासन लगाता है। इसके पश्चात् शरीर शुद्धि का मंत्र आता है जिसे बाली-भाषा में "मंत्राणि शरीर" कहा जाता है:—

"ॐ प्रसादस्थितिशरीरशिवशुचिनिर्मलाय नमः"

उपासक के सामने ढकी हुई पूजा की थाली रखी रहती है। उसे अनावृत करने के लिये ईश्वर को "ॐ इं ईश्वरप्रतिष्ठांजनलीलाय नमः स्वाहा" से नमस्कार किया जाता है। कुछ बीजों का भी उच्चारण किया जाता है:-"स ब त इ न म शि व य अं ऊं मं" आदि आदि।

पूजा की थाली में से उपासक "ॐ उं ब्रह्मा अमृतदीपाय नमः" का उच्चारण कर "अमृतदीप" उठाता है। इसके पश्चात् "ॐ उं रः फट् अस्त्राय नमः। आत्मत्वाय नमः........." मंत्रोच्चारण से हाथ में पुष्पों को लिया जाता है। जहां कहीं भारतीय सभ्यता पहुँची वहां पूजा विधि में पुष्पों के प्रयोग को बहुत महत्व दिया गया है। पुष्प शुद्धता और प्रसन्नता के प्रतीक हैं।

बाली द्वीप में असंख्य हस्त मुद्रायें हैं। प्रत्येक मुद्रा का विशिष्ट अर्थ होता है। इनकी भाषा दार्शनिक और आध्यात्मिक है। परन्तु बाली निवासी उनका तात्पर्य भूल गये हैं।

पूजा का दूसरा क्रम तर्जनी को शुद्ध करने से आरम्भ होता है। इसे बाली भाषा में "करशुद्धि चतुरंगुल" कहते हैं। इसका मंत्र ॐ शोधाय मां .... ॐ अग्निरुद्राय नमः" है। अंग-प्रत्यंग-न्यास विशिष्ट मंत्रों के साथ किया जाता है अर्घपात्र के ऊपर कमल रखना त्रिपाद को उठाना, हाथ जोड़ना, त्रिपाद नीरे रखना, गंध अक्षत डालना, प्रदीप की ओर मुख करना, धूमपात्र के साथ अर्घ्य से सात बार आरती करना, धूप के धूम्र को ग्रहण करना, पूजा के पात्रों को ढांकना, ढक्कन खोलना, पात्र में जल भरना, अंगुली से जल पर लिखना, तीन बार परिसिंचन करना, गंध तथा अक्षत प्रदान करना और फिर ॐ अं नमः कुम्भक। ॐ अं नमः पूरक। ॐ मं नमः रेचक। मंत्रोच्चारण कर कुम्भक, पूरक और रेचक किया जाता है। प्राणायाम ठीक विधि के अनुसार किया जाता है इसके पश्चात् आत्मा को शिवद्वार तक लाया जाता है। तदनन्तर ॐ शरीर कुंडमित्युक्तम अन्तःकरणम् इन्धनम् ।......"मन्त्रोच्चारण कर दग्धिकरण किया जाता है। इसके पीछे कुछ श्लोक आते हैं जिन्हें "अमृत करणी" कहते हैं। नवशक्तियों की भी पूजा होती है। उनकी पूजा के अनेक क्रमों और मंत्रों का यहां पर पूर्ण विवरण देना असंभव है। उपरिलिखित तो उदाहरण मात्र हैं।

बाली का उपासक सरस्वती भी जानता है:—

[शेष पृष्ठ १० पर]

उपनिषत्कालीन भारतीय शिक्षा-दीक्षा

श्री आचार्य क्षिति मोहन सेन

भारतीय सभ्यता का निर्माण अनेक संस्कृतियों के सम्मिश्रण से हुआ है। समय-समय पर विविध जातियां यहां आकर बसती रही हैं। आर्यों से पहले यहां द्रविड़ रहते थे उनकी अपनी एक विस्तृत संस्कृति थी। उनसे भी पहले यहां अर्द्ध सभ्य व्यक्ति रहते थे परन्तु इन पहले और पीछे आने वालों में से किसी ने भी एक दूसरे के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक किसी भी दृष्टि से समूलनाश का प्रयत्न नहीं किया। इसके विपरीत वे आपस में इतने घुल मिल गये कि एक नयी निराली सभ्यता का जन्म हुआ। सभ्यता का यह स्वरूप-विश्लेषण प्रकृति के आलोचक को भी परेशानी में डाल देता है। परन्तु गहरी सूक्ष्म दृष्टि वाला व्यक्ति, भारतीय सभ्यता के घटक अवयवों में ओत-प्रोत सहिष्णुता व सहयोग की भावना को शीघ्र ही ढूंढ निकाल लेगा, समय समय पर होने वाले उतार-चढ़ावों और आकस्मिक स्खलनों के होते हुए भी यह भावना भारतीय मस्तिष्क में घर कर गयी है।

प्राचीन भारत की शिक्षा पर विचार करते हुए हमें सदा पूर्वजों की संस्कृति और शिक्षा के विविध क्षेत्रों में प्रेरित करने वाली इस राष्ट्रीय-भावना का ध्यान रखना चाहिये। उपनिषद्काल में भी हम आर्य और आर्येतर व्यक्तियों की विचार धारा का सम्मिश्रण पाते हैं। इस काल में भी शिक्षा के क्षेत्र में एक दूसरे को समाप्त कर अपना पृथक् स्थान बनाने का प्रश्न उपस्थित नहीं हुआ। इसके विपरीत इस विकासक्रम में एक दूसरे को अपनाने के प्रयत्न स्पष्ट दिखाई देते हैं। संगठित सैन्य-शक्ति द्वारा दूसरे को अपनी विचार धारायें मानने के लिये बाधित नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय-सभ्यता के जन्मदाता

[पृ० ६ का शेष]

ॐ अं गंगायै नमः। ॐ अं सरस्वत्यै नमः।
ॐ अं सिन्धवे नमः। ॐ अं विपाशायैनमः।
ॐ अं कौशिक्ये नमः। ॐ अं यमुनाये नमः।
ॐ अं शरयवे नमः।

गंगा, सिंधु अन्य नदियों और समुद्र के लिये भी इनके दस बारह स्तोत्र हैं। शरीर के प्रत्येक अंग पर भस्म लगाया जाता है।

जब भारतीय अपनी और बाली निवासियों की सांस्कृतिक एकात्मता को हृदयंगम करेंगे तब प्रत्येक सुसंस्कृत भारतीय के लिये बाली द्वीप तीर्थ स्थान बन जायगा। आजकल तो यह अमेरिकन और यूरोपीय यात्रियों के लिये केवल रम्य स्थान है। बाली निवासी हृदय से हमारा स्वागत करेंगे पर हमें उनकी आशा के योग्य बनने के लिये प्रयत्न करना होगा और उनके आध्यात्मिक ज्ञान की लालसा की तृप्ति करनी होगी।

उनकी पूजा की गरिमा अद्वितीय है। रोमन कैथोलिक पादरियों ने भी माना है कि पूजा में व्यस्त पेदंडा को देखने से बढ़कर कोई गंभीर दृश्य नहीं है। बाली में हम अपनी आत्मा का ही प्रतिबिंब पाते हैं। बाली निवासी संस्कृत मंत्रों का अर्थ जाने बिना ही उनका प्रतिदिन श्रद्धा से पाठ करते हैं।

गत छः शताब्दियों से अपनी उपेक्षा और अधःपतन के कारण बाली से हमारा सम्बन्ध टूट गया था। हमें पुनः मिलना चाहिये। बाली हमारी आत्माओं को नवबल प्रदान करेगा।

यह जानते थे कि एकता की पराकाष्ठा समरूपता में नहीं अपितु सामञ्जस्य और सन्तुलित एकरसता में है।

संस्कृतियों और परम्पराओं की इसी एकरसता से ही शिक्षा के क्षेत्र में आर्य और उनसे पूर्ववर्ती लोगों के पारस्परिक सहयोग की विशेषता विदित होती है। उस समय की शिक्षा पद्धति पर विचार करने से पूर्व हमें आर्य और उनके पूर्ववर्तियों के जीवन दर्शन या जीवन के प्रति दृष्टिकोण को समझ लेना चाहिये। इस दृष्टिकोण ने शिक्षा पद्धति को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया है। पारमार्थिक और ऐहिक सिद्धान्त--चर्चाओं, संगठन और विचार प्रणाली के निर्माण में भारतीय सभ्यता को बनाने वाले व्यक्तियों की मानस प्रवृत्तियां रीति रिवाजों और धार्मिक विश्वासों का बहुत हाथ रहा है।

सामान्यतया यह कथन रुचिकर प्रतीत नहीं होता कि हमारी कुछ बहुमूल्य विरासतें आर्यों से पूर्ववर्ती निवासियों से हमें मिली हैं। जीवन की ये तपस्या के लिये अभिरुचि और सांसारिक सुखोपभोगों से विरक्ति आदि सात्विक प्रवृत्तियां आर्यों से पहले की हैं। इसी प्रकार जैन और बौद्ध धर्मों का मुख्य ध्येय निर्वाण को विचार धारा भी आर्यों से पहले ही विद्यमान थी। तीर्थ स्थानों में इकट्ठा होना भी आर्यों से पहले की ही परिपाटी है। इस तीर्थ यात्रा की प्रवृत्ति के कारण इस विशाल प्रदेश के एक दूसरे से अत्यन्त दूरस्थ प्रदेशों में रहने वाले आपस में एक दूसरे से सीधा परिचय प्राप्त करते थे। इन्हीं तीर्थ स्थानों पर ही विद्वत्तापूर्ण विवादों के लिये बड़ी बड़ी सभायें आयोजित की जाती थीं। इन तीर्थों में दीक्षित होने के कारण जैन और बौद्धों को तर्थिक कहते हैं। इस प्रकार ये तीर्थ स्नानादि के पर्व जहां सम्पूर्ण भारत के लोग एकत्र होते थे, एक प्रकार से विचार विनिमय के लिये सांस्कृतिक केन्द्र बन गये थे।

आर्यों से पहले बसने वालों की यह भी विशेषता थी कि वे मनुष्य आत्मा का विशेष सम्मान और प्रकृति की विशेष पूजा करते थे। मनुष्य के लिये विशेष श्रद्धा का भाव और प्रकृति पूजा की चर्चा का वेद में न होना हरेक को खटकता है। तपस्या और वैराग्य का विचार आर्यों के लिये नया था। यद्यपि उन्होंने पारिवारिक जीवन के सुखों को महत्त्व दिया था तथापि उनके अधिकांश प्रयत्न इहलोक के लिये न होकर परलोक के लिये ही थे। उनकी दृष्टि में मनुष्यों की अपेक्षा पौराणिक देवताओं का महत्त्व अधिक था उनके लिये सांसारिक सुखों की अपेक्षा पारलौकिक सुख अधिक आकर्षक थे। पारलौकिक विषयों के प्रति यह विशेष श्रद्धा तात्कालिक यज्ञ-वेदियों में प्रतिबिम्बित हो गयी। यज्ञ स्थलों में सम्पन्न किये जाने वाले यज्ञ-यागों में आर्य बड़ी २ संख्याओं में इकट्ठे होते और स्वर्ग-निवासी देवों की सन्तुष्टि के लिये यज्ञहवि अर्पित करते थे। यह यज्ञस्थली आर्यों के लिये वही कार्य करती जो उनके पूर्ववर्ती लोगों के लिये तीर्थ स्नानादि के पर्व। इस वेदि के चारों ओर ही नृत्य, गान, प्रवचन आदि द्वारा वे अपनी भावनाओं को प्रकट किया करते थे।

यज्ञस्थल विषयक एक अत्यन्त रोचक कथा मिलती है। इसके द्वारा आर्यों और अनार्यों के जीवन सम्बन्धी विचारों के विरोध और भेद स्पष्ट हो जाते हैं। एक वैदिक ऋषि की ब्राह्मण और शूद्र दो पत्नियां थीं। विद्यार्थियों को यज्ञ में दीक्षा देने के समय ऋषि ने ब्राह्मणी के पुत्र को शिष्य रूप से स्वीकार किया। दूसरा लड़का अत्यन्त दुःखित हो अपनी मां के पास गया और पिता द्वारा तिरस्कृत होने की बात कही। माता उसे किसी भी प्रकार सान्त्वना न दे पाई। इस प्रकार

निराश होकर वह कहने लगा कि जब मेरे अपने पिता ही मुझे शिक्षा नहीं दे रहे तो और कौन देगा। माता कहने लगी कि मैं पृथ्वी की पुत्री, माता पृथ्वी के सिवाय किसके आगे प्रार्थना कर सकती हूँ। माता द्वारा प्रार्थित पृथ्वी (मही) उसके सम्मुख उपस्थित हुई और कहने लगी कि मेरे में ही सब ज्ञान विज्ञान निहित है। लाओ, इस बालक को मुझे दे दो; मैं इसे सब विद्याओं में दीक्षित कर दूंगी। यह कहा जाता है कि शूद्र लड़का बारह वर्ष बाद पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके अपनी मां के पास आया। उसने गम्भीर मौलिक और नित्य तत्त्वों पर आश्रित ज्ञान प्राप्त किया था। तब से वह अपने को महीदास—पृथ्वी का सेवक कहने लगा और नीच कुलोत्पन्न होने के कारण ऐतरेय भी कहलाने लगा। ऐतरेय जन्माभिमानी ब्राह्मणों से बदला लेने के लिये कटिबद्ध हुआ और उसने अति प्रसिद्ध 'ऐतरेय ब्राह्मण' ग्रन्थ की रचना की। इसी ब्राह्मण में जनता को ऋग्वेद के गूढ़ अर्थ समझाये गये हैं।

इस दृष्टान्त का भाव यह है कि मही से बढ़कर कोई शिक्षक नहीं है। असली शिक्षा हमें प्रकृति से ही मिल सकती है। प्रकृति से प्राप्त किया जाने वाला ज्ञान मौलिक, सत्य और गम्भीर होता है। पृथ्वी को दिया जाने वाला यह विशेष महत्त्व बौद्धों में प्रचलित ग्रन्थ 'भूस्पर्शमुद्रा' में भी स्पष्ट है। किसी बात की सत्यता सिद्ध करने के लिये ये लोग जीवन देने वाली पृथ्वी को छूकर सौगन्ध खाते हैं। पृथ्वी माता के प्रति यह भक्ति अथर्ववेद के पृथ्वी-सूक्त में हमें अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में मिलती है। जिस प्रकार वेदों में आर्यों की स्वर्ग की स्तुति मिलती है उसी प्रकार प्राचीन कवियों को हम पृथ्वी की स्तुति करते हुए देखते हैं—

'विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा
जगतो निवेशनी.......... ''

'बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं
पृथ्वीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्॥
"माता भूमि पुत्रो अहं पृथिव्याः।"

अथर्ववेद में पृथ्वी पूजा के साथ साथ मनुष्य स्तुति भी अनुपम रूप में मिलती है। इस वेद में आर्यों की विचार चर्चाओं में स्वर्ग और देवता सम्बन्धी विश्वास नहीं पाये जाते। परन्तु आर्य और आर्येतर विचारों का यह सम्मिश्रण सुगम था। इसलिये आज भी हम देखते हैं कि वैदिक कर्मकाण्डी वेदत्रयी ही मानते हैं और अथर्ववेद के मानने में संकोच करते हैं. परन्तु यह स्पष्ट है कि ये लोग धीरे धीरे एक दूसरे के मन्तव्यों की उपयोगिता स्वीकार करने लगे थे।

वैदिक आश्रम पद्धति में, दोनों के रहन सहन तथा जीवन यापन की परिपाटियां का सम्मिश्रण है। पारिवारिक सुखोपभोग का वैदिक आदर्श ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ में मिलता है। ब्रह्मचर्य उच्च पारिवारिक जीवन के लिये आवश्यक है। वानप्रस्थ और सन्यास में आर्यों के पूर्ववर्तियों की त्याग और वैराग्य की भावनायें प्रतिबिम्बित दीखती हैं।

विचार धाराओं का यह सम्मिश्रण अथर्ववेद और वैदिक आश्रम पद्धति में अपने शैशव में ही है। उपनिषदों में यह अधिक विकसित हुआ है। इस लिये ये उपनिषदें भी कर्मकाण्डियों के लिये ग्राह्य नहीं थीं। इन कर्मकाण्डियों की प्रतिद्वन्द्विता के कारण उपनिषत्कारों को अरण्यों में जाकर रहना पड़ा। इस कारण इनके द्वारा, इन अरण्यों में दिये गये उपदेशों को आरण्यक कहा गया है और यही अरण्यस्थलियां उस समय शिक्षा का केन्द्र बनीं। ये शिक्षणालय गुरुओं में केन्द्रित होते थे इसलिये इन्हें गुरुकुल भी कह देते थे। उनकी शिक्षा में प्रकृति का भी अपना विशेष स्थान होता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीयों में ज्ञान के लिये सदा ही प्रबल उत्कण्ठा और जिज्ञासा विद्यमान रही है। उपनिषदों तथा अन्य अनेक प्राचीन ग्रन्थों में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं कि उस समय विद्यादान और विद्या-ग्रहण कितनी उत्सुकता से हुआ करता था। तपोवन में रहती हुई भिन्न भिन्न दर्शनों की अनुयायिनी अनेक गुरु परम्पराओं का भी परिचय मिलता है। भावी विश्वविद्यालयों के लिये उपयुक्त स्थानों (काशी, विदेह, पांचाल और अन्य अनेक स्थानों) की भी सांस्कृतिक केन्द्रों के रूप में हम झलक पाते हैं। वस्तुतः आश्रम प्रणाली पर आश्रित जैन और बौद्ध विश्वविद्यालयों ने प्राचीन अरण्य-आश्रमों का ही स्थान ग्रहण किया था। आर्यों और बौद्धों की शिक्षण-पद्धतियां समान ही थीं; दोनों ही गुरु-शिष्य के पारस्परिक आध्यात्मिक सम्बन्ध पर आधारित थीं। शिक्षा तो सामान्य प्रयत्नलभ्य वस्तु समझी जाती थी; मुख्य वस्तु तो जीवनयापन की ही शिक्षा थी।

कविवर रवीन्द्रनाथ जी ने "भारतीय संस्कृति का केन्द्र" नामक अपने प्रबन्ध में बहुत ठीक लिखा है—"हमारे तपोवन हमारे स्वाभाविक शिक्षातीर्थ थे। वे जीवन से पृथक्ता को लिये हुए नहीं थे। उनमें गुरु और शिष्य मिलकर समग्र जीवन (परिपूर्ण जीवन) व्यतीत करते थे। वे अपने लिये फलफूल और समिधाएं एकत्र करते थे और अपने गुरुओं की गौओं को चराते थे। वहां पर उन छात्रों को जो आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होता वह उनके समस्त जीवन में ओतप्रोत रहने वाले अध्यात्मिक जीवन का एक अंश था।

यह बात ध्यान रखने की है कि आर्यों और उनके पूर्ववर्तियों की परिपाटियों के समिश्रण से बनी हुई ये उपनिषत्कालीन परम्पराएं बरसों तक अनेक विरोधि विचार धाराओं और विविध जातियों के साथ जीवित रहीं। नालन्दा और तक्षशिला के नष्ट होने के बाद भी यह शिक्षा प्रणाली स्मृति से ओझल नहीं हुई। और इस युग में राष्ट्रकवि ठाकुर के मन में सर्व प्रथम इसे पुनरुज्जीवित करने का विचार आया।[१]

यह बहुत ही शुभ लक्षण है कि हमारे शिक्षण शास्त्री जीवन द्वारा शिक्षण के महत्त्व को अधिकाधिक समझते जा रहे हैं। यदि यह दृष्टिकोण प्रोत्साहन प्राप्त करता है तो हमें इन प्राचीन परिपाटियों की शरण में जाना पड़ेगा। यह तपोवन का आदर्श हमारी राष्ट्रीय भावना से पूरी तरह मेल खाता है। इसलिये प्रत्येक शिक्षा योजना को अपनी सफलता के लिये इसे अवश्य ही स्वीकार करना चाहिये। यद्यपि परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार इसमें परिवर्तन कर लेने चाहियें परन्तु मूलतः आदर्श प्राचीन रहना चाहिये।

अनुवादक—श्री रामपाल।

१—उत्तरीय भारत में शिक्षागुरु स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अरण्य विद्यागृह के अपने इस स्वप्न को पहले-पहल हिमाचल की उपत्यका में कांगड़ी तपोवन के रूप में चरितार्थ किया। दैवी सयोग है कि शांति निकेतन और गुरुकुल का श्रीगणेश एक वर्ष (सन् १९०२) में हुआ।

—संपादक।

आचार्य और अन्तेवासी

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्राचीन काल में भारत की शिक्षा प्रणाली की एक बड़ी विशेषता यह थी कि गुरु और शिष्य का सम्बन्ध केवल भौतिक नहीं था, आधात्मिक, आधिमानस और आधिभौतिक तीनों प्रकार का था। गुरु को आचार्य इसलिए कहते थे कि वह बालकों के आचार का निर्माण करता था, छात्र को अन्तेवासी कहने का कारण यह था कि वह आचार्य के अत्यन्त समीप रहता था। वह समीपता इतनी अधिक थी कि उसकी वेद में बच्चे के गर्भ में निवास के साथ उपमा दी है। जैसे माता अपने पेट में बच्चे का नौ मास तक पालन करती है इसी प्रकार आचार्य अन्तेवासी का आश्रम में पालन करता था। जब बच्चा गर्भ में हो तब माता को रहन-सहन और भोजन के विशेष नियम पालन करने होते हैं, उसे बहुत संयम से रहना पड़ता है। बच्चा हो जाने के पश्चात् भी जब तक वह दूध पीता रहे तब तक माता को नियत आहार-विहार के बन्धनों में बंधे रहना पड़ता है। आचार्य को जब तक आचार्य, रहेगा तब तक उसके आश्रम रूपी गर्भ में अन्तेवासी विद्यमान रहते थे। अन्तेवासियों के उचित पालन पोषण के लिए आचार्य को जिन नियमों का पालन करना पड़ता था उन्हें 'ब्रह्मचर्य' इस एक शब्द के अन्तर्गत ला सकते हैं। अन्तेवासी ब्रह्मचारी बनें इस निमित्त से आचार्य का ब्रह्मचारी बनकर रहना आवश्यक था!

अथर्ववेद के निम्न लिखित मन्त्र आचार्य और ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में आवश्यक नियमों का प्रतिपादन करते हैं—

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः। तं रात्रिस्तिस्रः उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुं अभिसंयन्ति देवाः।

यज्ञोपवीत देते हुए आचार्य ब्रह्मचारी को अपने (आश्रम रूपी) गर्भ में धारण करता है ब्रह्मचारी तीन रात तक वहां रहता है। उसके पश्चात् जब वह द्वितीय जन्म लेकर बाहर आता है तब विद्वान् लोग उसे देखने के लिए एकत्र होते हैं।

आचार्यो ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी प्रजापतिः।

आचार्य ब्रह्मचारी होना चाहिए क्योंकि ब्रह्मचारी ही सन्तान का ठीक पालन कर सकता है।

आर्षकाल में हमारे देश में जो शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी, आचार्य और ब्रह्मचारी का अत्यन्त निकट सम्बन्ध उसका सबसे प्रमुख गुण था। आजकल की शिक्षा प्रणाली में शिक्षा-पण्डितों के बहुत यत्न करने पर भी ठीक तरह का गुरु शिष्य भाव उत्पन्न नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि आचार्य और गुरु का स्थान अब अध्यापकों ने ले लिया है। अध्यापक का काम यह समझा जाता है कि वह विद्यालय के घंटों में पुस्तकें पढ़ाए, विद्यार्थी के आचार व्यवहार और पूर्ण जीवन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं समझा जाता। शिक्षा एक व्यापारिक वस्तु बन गई है। विद्यार्थी समझते हैं कि हमारी फीस से मास्टर जी को वेतन मिलता है इस लिए वे हमारे पढ़ाने के नौकर हैं और मास्टर जी यह समझते हैं कि मुझे वेतन मिलता है इस लिए मुझे पढ़ाना पड़ता है। इस व्यापार भावना में

[शेष पन्द्रह पृष्ठ पर]

उदन्तपुरी विद्यापीठ

श्री शंकरदेव विद्यालंकार

नालन्दा और विक्रम शिला की तरह मगध देश के विद्यापीठों और संस्कृति केन्द्रों में उदन्तपुरी महाविहार की भी प्राचीनकाल में बड़ी प्रतिष्ठा और ख्याति रही है। यह विद्या केन्द्र पाटलीपुत्र के समीप ही अवस्थित था। उदन्तपुरी विहार नालन्दा विद्यापीठ से कोई छः मील की दूरी पर स्थित था। मुसलमान इतिहासकार मिन्हाज ने इसका उल्लेख "अडवन्ड विहार" इस नाम से किया है। मगध में पालवंश के बौद्ध मतावलम्बी राजाओं की सत्ता स्थापित होने से पूर्व ही उदन्तपुरी विहार की स्थापना हो चुकी थी। इतिहासज्ञ तारानाथ का कथन है कि राजा गोपाल और देवपाल के समय में उदन्तपुर के विहार का निर्माण हुआ था। राजा गोपाल का समय आठवीं शती माना गया है।

ईसा की पाँचवीं शती से लेकर ग्यारहवीं शती तक नालन्दा बौद्ध संस्कृति का महत्वपूर्ण केन्द्र था। नालन्दा के प्रारम्भकाल में गुप्त सम्राटों

[पृ० १४ का शेष]

गुरु शिष्य भाव की कोई गुञ्जाइश ही नहीं।

प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली और वर्तमान शिक्षा प्रणाली की मूलभूत भावनाओं का अन्तर बहुत स्पष्ट हो जाता है जब हम उन प्रतिज्ञाओं की तुलना करें जो प्राचीन दीक्षान्त संस्कार और वर्तमान कन्वोकेशन के समय स्नातकों से ली जाती हैं। वर्तमान कन्वोकेशन के समय नव स्नातकों से चान्सलर जो प्रतिज्ञा लेता है उसका रूप लगभग यह है—"कानून द्वारा चान्सलर की हैसियत से जो अधिकार मुझे प्राप्त हैं उनके अनुसार मैं तुम्हें यह डिग्री प्रदान करता हूँ। आशा है तुम ऐसा कोई कार्य नहीं करोगे जिससे डिग्री का अपमान हो।"

ये उस शपथ का आशय है जो आजकल कन्वोकेशन में ली जाती है। नव स्नातक उत्तर में सिर झुका देते हैं।

अब आप उन उपदेशों को भी देखिये जो प्राचीन आर्य नव स्नातकों को देते थे और जिनके अनुसार चलने की स्वीकृति नव स्नातकों को देनी पड़ती थी। वे उपदेश तैत्तिरीय उपनिषद् की शिक्षोपनिषद् में मिलते हैं।

वेदमनुच्य आचार्यो अन्तेवासिनमनुशासति, सत्यंवद, धर्मचर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः, इत्यादि।

आचार्य के ये उपदेश प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली की विशेषताओं को सूचित करने वाले हैं। आचार्य केवल अध्यापक नहीं था। वह जीवन का निर्माता था। वह राष्ट्र के विचारकों, शासकों और प्रजाजनों का जन्मदाता था। आचार्य इतनी बड़ी उत्तरदायिता को इसी लिए उठा सकता था कि वह स्वयं ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करता था और अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य अन्तेवासियों को ब्रह्मचारी बनाना ही समझता था।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की मुख्य विशेषता यह है कि वह 'अध्यापक प्रथा को समाप्त करके आचार्य प्रथा को फिर से जीवित करना चाहती है।' गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी केवल विद्यार्थी नहीं रहते अन्तेवासी बन जाते हैं।

ने इस विद्या केन्द्र को अच्छा आश्रय दिया था। सातवीं शती के पूर्वार्ध में सम्राट् हर्षवर्धन ने भी इसकी बहुत सहायता की थी। सम्राट् हर्ष के पश्चात् उत्तरीय भारत में महाराजाधिराजपने की प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखने वाला कोई भी राजा नहीं रहा था। हर्ष के अवसान के बाद देश में राजनीतिक परिवर्तन होने लगे। देश के विविध धर्मों और संप्रदायों में भी तीव्र मतभेद और कलह प्रारंभ हो गए थे। ऐसी अवस्था के समय आठवीं शती में गोपाल के हाथ में राजकीय शक्ति आई और उसने मगध में भी अपना शासन स्थापित किया। हर्ष वर्धन के पश्चात् पाल वंशीय राजाओं ने ही नालंदा महा विहार की संरक्षा अपने हाथ में ली थी। परन्तु विस्मय का विषय है कि गोपाल, देवपाल, महीपाल, नवपाल और रामपाल के सुप्रयत्नों के रहते हुए भी नालंदा का गौरव निर्भर सूखता ही चला गया।

पालवंशीय राजा सुरपाल देव के शिलालेख में उदन्तपुर की समुन्नत स्थिति का उल्लेख है। सुखपाल और नारायणपाल की मूर्तियाँ उदन्तपुर विहार को अर्पण करने का भी निर्देश मिलता है। पालवंशीय राजाओं ने इस महाविहार को एक भव्य पुस्तकालय भेंट में अर्पण किया था जिसमें ब्राह्मण धर्म और बौद्धधर्म की मूल्यवान् पुस्तकें विद्यमान थीं। इस विहार में भारतभूमि के दूर दूर के प्रान्तों के विद्यार्थी अच्छी संख्या में विद्याध्ययन के लिए एकत्र हुआ करते थे। जिन दिनों पंडित अभयकर गुप्त (ग्यारहवीं शती के अन्त में) मगध देश के भिक्षुसंघ के प्रधानाचार्य पद पर अधिष्ठित थे उस समय उदन्तपुरी विद्यापीठ में एक हजार साधु निवास करते थे। जबकि विक्रमशिला में तीन सहस्र भिक्षु तथा वज्रासन्न अर्थात् बुद्ध गया में पाँच सहस्र भिक्षु विद्यमान थे।

राजा महीपाल के समय उदन्तपुरी में हीनयान पंथ के एक सहस्र और महायानपंथ के पाँच सौ भिक्षु रहते थे। उदन्तपुरी विहार का चैत्य बुद्ध गया और नालंदा के चैत्य से भी ऊँचा था। उदन्तपुरी विहार के भवन अतिशय भव्य थे। तिब्बत के प्रसिद्ध राजा खिसरोनज्ञ्यूसान ने सन् ७४९० में तिब्बत में अपने भारतीय गुरु रक्षित की आज्ञा से जो विहार बनवाया था वह उदन्तपुरी के नमूने पर ही था। ये वही आचार्य शांत रक्षित है जिन्होंने विक्रमशिला विद्यापीठ के आचार्य अतिश को उनकी उन्नीस वर्ष की आयु में दीक्षा देकर दीपंकर श्रीसान का उपनाम प्रदान किया था।

उदन्तपुरी के एक दूसरे आचार्य रत्नाकर शांति थे, जिन्हें तिब्बती लोग आचार्य शांति कहा करते थे। ये इस महाविहार के 'सर्वास्सवाद' संप्रदाय के भिक्षु थे। वे विक्रमशीला में आचार्य जेहारि और रत्नकीर्ति के समीप सूत्र और तंत्र सीखे थे और वहां पर 'द्वार पंडित' नियुक्त हुए हुए थे। सिंहलद्वीप के राजा के निमंत्रण पर वे नवमी शती में बौद्ध सिद्धान्तों के प्रचारार्थ वहाँ पर गए थे। यहाँ पर एक और विद्वान् रहते थे जिनका नाम प्रभाकर था। वे छत्रपुर (बंगाल) के निवासी थे। इन्होंने 'सामुद्रिक व्यंजनानुवर्णन' नामक ग्रन्थ का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया था।

सन् ११९९ में बख्तियार के पुत्र मुहम्मद ने मगध देश पर आक्रमण किया था। उसी आक्रमण में विक्रमशिला और उदन्तपुरी के विद्या केन्द्र भी विनष्ट कर दिए गए। अनेक विद्वानों और भिक्षुओं का निर्दयता पूर्वक संहार किया गया। कुछ विद्वान् भागकर तिब्बत की ओर चले गए, कुछ दक्षिण देश में भाग गए। कुछ ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। इस आक्रमण के पश्चात् मगध और बंगदेश से बौद्ध धर्म और बौद्ध संस्कृति ने सदा के लिए विदा ले ली।

भारत में संस्कृत के अध्ययन की आवश्यकता

यशपाल वेदालङ्कार

भारत के शरीर पर से हथकड़ी बेड़ियां खुले हुए आज १८ महीनों से अधिक समय बीत चुका है। जहां उसके सदियों से भाराक्रान्त शरीर ने कुछ करवटें बदलीं, कुछ अंगड़ाइयां लीं, वहां उसकी आत्मा अभी तक सोई हुई है। अब उसको मादक मदिरा पिलाकर भीनी भीनी बेहोशी में लोरियां देने वाला तो चला गया, लेकिन उसकी आत्मा को जगाने के लिये हमें आवश्यकता पड़ेगा उसके कानों के पास ही तुमुल घोष से नगाड़ा बजाने की।

प्रत्येक देश की संस्कृति ही उसकी आत्मा है। अग्नि, अथर्व, आदित्य और अंगिरा आदि पुरुषों के मुख से निकलकर युग युगान्तरों में गूँजती हुई जिस देववाणी ने कालिदास और भवभूति की लेखनी और वाणी को पवित्र किया। आदि कवि बाल्मीकि की जो कल्पना, कवित्व और भक्ति क्रम क्रमान्तर से तुलसी और सूर में आकर परिनिष्ठित हुई-वह है भारत की आत्मा।

भारत की इस संस्कृति की न केवल भारत को ही आवश्यकता है, अपितु पश्चिम के उन लोगों को भी इसकी जरूरत है, जो सवेरे से भटक रहे हैं और शाम होने पर सोचते हैं कि अब तो कोई राह मिलनी ही चाहिये। जो पश्चिम दो-दो महायुद्धों की ज्वाला से झुलस चुका है वह अब इस आशा में है कि कोई उसकी मरहम पट्टी कर दे। इसके लिये वह भारत का मुंह देखता है। वह भारत से यह नहीं सीखना चाहता कि शासन कैसे किया जाता है या बड़े बड़े वैज्ञानिक आविष्कार कैसे किये जाते हैं, अपितु वह उस संस्कृति को अपनाना चाहता है, जिससे धर्मराज अशोक का ज़माना इस दुनिया में फिर लौट आये। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि जो संस्कृति, महात्मा गांधी, स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, सूर और तुलसी जैसे सैंकड़ों महा पुरुषों को जन्म दे सकती है और जो ऐसी सामाजिक अवस्थायें पैदा कर सकती है कि एक राजा यह चुनौती दे कि—

"न स्तेनो मे जनपदे न कन्दर्मों न मद्यपः।
न नाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

उसकी सदा सबको आवश्यकता है और रहेगी। अब सवाल यह है कि जब हम स्वयं खाली हाथ हैं, तो दूसरे के पात्र को कैसे भर सकते हैं? भारतीयों की आंखों के सामने से जो संस्कृति लगातार ओझल होती जा रही है, उसे फिर सामने कैसे लाया जाये? भारतीय संस्कृति का परिधान है—संस्कृत भाषा। अगर संस्कृति का पुनरुत्थान करना है तो पहली शर्त है—संस्कृत में प्राण फूँकना।

जितनी ऊँची भावनायें मानव समाज के सम्मुख संस्कृत साहित्य ने प्रस्तुत की हैं उतनी दुनिया के किसी अन्य साहित्य ने नहीं। इसे पश्चिम के आलोचक विद्वान् भी स्वीकार करते हैं। गीता और उपनिषदों को पढ़ता हुआ मनुष्य अपने आपको कुछ ऊंचे स्तर पर अनुभव करता है। गांधी को गांधी बनाया गीता ने। स्वामी दयानन्द को आदर्श महा पुरुष बनाया तो उपनिषदों और वेदों ने। स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, रामतीर्थ, योगी अरविन्द, सूर और तुलसी गीता, रामायण, महाभारत, उपनिषद् और वेदों का सहारा लेकर ही तो महामहिमा

के उत्तुङ्ग शिखर पर चढ़ सके।

स्वतन्त्र होने के बाद हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या सदियों से गिरते हुए राष्ट्र के चरित्र का पुनर्निमाण है। चरित्र का सीधा सम्बन्ध भावों से है। अगर हम अपने देश से चोर बाज़ारी. रिश्वत. झूठ. फ़रेब, धोखा, व्यभिचार आदि दुराचारों का उन्मूलन करना चाहते हैं तो हमें प्रत्येक व्यक्ति का सन्तत रूप से उच्च धार्मिक व नतिक विचारों का आभ्यञ्जन करना पड़ेगा। संस्कृत भाषा हो उन उच्च विचारों और धार्मिक भावनाओं का सिञ्चन करती है। अगर आप संस्कृत को रोक देते हैं तो उन भावों की जड़ पर ही कुठाराघात करते हैं।

अनेक लोग तर्क करते हैं कि हमें भावों और विचारों से ही तो मतलब है, शब्दों से हमें क्या लेना—क्यों न हम संस्कृत के उच्च विचारों को जनभाषा में ही अपनायें! तर्क कुछ वज़नदार मालूम होता है, लेकिन ऐसे तार्किक यह भूल जाते हैं, कि अनुवाद हमें कुछ हद तक सहायता तो दे सकता है—मूल का काम नहीं कर सकता। अगर मूल से उसका सम्बन्ध कट जाये, तो खतरा पड़ जाता है। ५ वीं ६ ठी ई० शताब्दी के बाद संस्कृत का पठन-पाठन भारत में कम हो गया- यही हमारे चारित्रिक पतन का सबसे बड़ा कारण था। वाममार्गियों ने संस्कृत के सन्दर्भों और वेदमन्त्रों के अर्थों का जो अनर्थ कर दिया—उसे लोग आंख मूंदकर क्यों मानने लगे— क्योंकि उन्होंने संस्कृत पढ़ना बन्द कर दिया था— वे उन्हीं को वेद शास्त्रों का पण्डित समझते थे। यह स्पष्ट है कि हम संस्कृत से जितनी दूर चलते चले गये उतनी ही सामाजिक कुरीतियां और अन्ध विश्वास हिन्दू समाज में पैदा हो गये। इसका कारण यह है कि अधिकांश लोग संस्कृत से अनभिज्ञ होने के कारण धर्म शास्त्रों के यज्ञ-याग, पूजा पाठ आदि की नैतिकता और ठीक विधि को समझ ही नहीं सकते थे। इसीलिये तो पण्डे पुजारियों की बन आई, और उन्होंने सर्वसाधारण को भरपूर लूटा।

इस लिये अब समय है कि संस्कृत का इतिहास क्या था? वेदों में क्या लिखा है? गीता और उपनिषदें किस अमृत से छलछलाती हैं? हमारे दर्शनों में सृष्टि के शाश्वत तत्व किस प्रकार लिखे गये हैं-यह हम दूसरों की आंखों से देखना छोड़ दें। हुगली पर रहने वाला व्यक्ति बिना हरद्वार आये यह जान नहीं सकता कि हरद्वार में गंगा जी का पानी कितना सुनील और शुभ्र है।

लोग कहते हैं कि आज अन्तर्राष्ट्रीयता का समय है. तंग ख़याली का नहीं। हमें गाड़ी के आगे घोड़ा जोतना है, घोड़े के आगे गाड़ी नहीं। भला ऐसी बेवकूफी करेगा ही कौन? व्यास, बाल्मीकि कालिदास और भवभूति से प्रेम करना अन्तर्राष्ट्रीयता का विरोधी नहीं, उसे बढ़ावा देने वाला है। हम उन विदेशी विद्वानों के कृतज्ञ तो हैं जिन्होंने भूले भटके हुए भारतीयों के सामने संस्कृत के गौरव को फिर प्रतिष्ठित किया है। दक्षिण पूर्वी एशिया, मध्य एशिया तथा मध्य पूर्व की ऐतिहासिक खोजों तथा उनके सामाजिक और धार्मिक अध्ययन में पश्चिमी विद्वानों को संस्कृत भाषा से ही सब से अधिक सहायता मिली है। हज़ारों साल पहले इन विस्तृत प्रदेशों में संस्कृत भाषा द्वारा ही भारत की संस्कृति फैली थी जिसके पर्याप्त चिन्ह आज तक भी मिलते हैं। स्याम, मलाया, कम्बोडिया, हिन्देशिया और ब्रह्मा आदि पर संस्कृत का काफी प्रभाव पड़ा हैं। जो पहले

बृहत्तर भारत में शामिल थे। वहां के व्यक्तियों के नाम, प्राचीन शहरों के नाम, भाषा का प्रवाह, व्याकरण और बहुधा शब्द साम्य एक व्यक्ति को चकित कर देता है कि ये सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के कितने निकट हैं। इन देशों का धर्म और आचार भारतीय संस्कृति का ही एक रूपान्तर है। जावा और भारत का चौथी शताब्दी से घनिष्ट सम्पर्क रहा है। वहां की 'कावी' भाषा को हम संस्कृत का ही दूसरा पहलू कह सकते हैं जिसके ५० प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। उनकी तिथियां, मास और नक्षत्रों के नाम, अनेक वाक्य तथा मुहाविरे संस्कृत मूलक हैं। यहां हमें वेद मिलते हैं रामायण मिलती है-महाभारत मिलता है। उपनिषदों के समान अध्यात्मवाद और दर्शन पर पुस्तकें मिलती हैं। चीन के ताओ और कन्फूशियस धर्मों पर भारत के अध्यात्मवाद की कितनी प्रतिच्छाया पड़ी है। तिब्बत में आज भी अनेकों संस्कृत की ऐसी दुर्लभ पुस्तकें मिलती हैं, कि आश्चर्य होता है। अग्निपूजक पारसियों के आचार-विचार, रहन-सहन और रीति-रिवाजों की सभ्यता का तो कुछ कहना ही नहीं। उनकी धार्मिक पुस्तक ज़िन्दावस्ता और भाषा का संस्कृत के साथ साथ निर्विवाद सम्बन्ध है। अफगानिस्तान की पश्तो के ५० प्रतिशत शब्द सस्कृत से मिलते जुलते हैं। इससे भी आगे बढ़कर हम देखें, तो हमें ज्ञात होगा कि कोरिया, मंगोलिया और जापान में बौद्धधर्म भी इसी संस्कृत के द्वारा फैला। अगर हम वहां के साहित्य और संस्कृति का अनुशीलन करना चाहें तो संस्कृत जाने बिना हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। इसलिये अगर हम तुर्की और फारिस से लेकर जापान और फिलिपाइन तक के लोगों को समझना चाहते हैं और अपने आप को खोल कर रखना चाहते हैं; अगर यह चाहते हैं कि तुर्क, अरब, अफगान, चीनी, भारतीय तथा जावानी अपने आप को एक ही विश्व-परिवार का सदस्य समझें तो हमें संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन देना ही होगा।

सामयिक आवश्यकता की दृष्टि से भी संस्कृत का पठन पाठन अत्यधिक महत्वपूर्ण है। भारत सरकार ने पञ्जाब और बंगाल को बलि देने के बाद जो पाठ सीखा उससे वह अब तक राजनैतिक क्षेत्र में उच्छृंखल, विशृंखल, और विध्वंसक तत्वों पर काबू पाने में सफल हो सका है। लेकिन सांस्कृतिक क्षेत्र में अब भी वही केन्द्रापकर्षण की प्रवृत्ति ज़ारी है। कोई पश्चिम की ओर भागता है, तो कोई पूर्व की ओर, तीसरा उत्तर की ओर जाता है तो चौथा दक्षिण की ओर, अपनी अपनी ढफली है अपना अपना राग है। प्रान्तीयता की प्रवृत्ति इतना जोर पकड़ रही है, राष्ट्रभाषा और संस्कृति के विषय में इतना गुलगपाड़ा मचा हुआ है कि यद्यपि लोह पुरुष सरदार पटेल ने राजनैतिक और भौगोलिक दृष्टि से भारत के ६००-७०० टुकड़ों को परस्पर जकड़ दिया है, तो भी प्रतिक्षण उनके अलग होने पर उनमें सिर फुटौवल होने का खतरा बना ही रहता है। इसलिये श्रद्धेय टण्डन जी ने सारे भारत के लिये एक संस्कृति की आवाज़ उठाई है। जिससे मौजूदा लूले लंगड़े भारत का अस्तित्व तो रह जाये। देश को एक और मजबूत बनानेके लिए संस्कृति और भाषा का एक होना बहुत आवश्यक है। अंग्रेजों के आने तक और उनके २०० वर्षों के शासनकाल में भी संस्कृत ही हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और कन्धार से लेकर कामरूप तक भारत की एकता को कायम रख सकी है। अब भी राष्ट्रभाषा का प्रश्न जिसको लेकर इतना

बखेड़ा उठ खड़ा हुआ है आसानी से हल हो जाये अगर संस्कृत के अध्ययन पर जोर दिया जाये। कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दी राष्ट्रभाषा होनी चाहिए कुछ कहते हैं कि हिन्दुस्तानी के मस्तक पर यह टीका लगना चाहिए और अभी हाल में दिल्ली में जो अ० भा० बंगीय साहित्य सम्मेलन हुआ था उसने मांग की है कि उत्तर भारत की राज भाषा अलग हो और दक्षिण की अलग। सवाल यह है कि हम उनका मुख बन्द कैसे कर सकते हैं।

हिन्दी बंगला, गुजराती और मराठी भाषायें संस्कृत की ही पुत्री हैं, स्वरूप से थोड़ा बहुत भेद होते हुए भी उनकी रगों में एक ही खून दौड़ता है और एक ही माता का दूध पीकर वे फली फूली हैं। जहां तक व्याकरण, क्रिया पद वाक्य रचना और वर्णमाला का सम्बन्ध है, वहां तक इन भाषाओं में बहुत अधिक तादात्म्य है। सब में संस्कृत शब्दों की भरमार है। पारिभाषिक शब्दों का अभिव्यक्ति के लिए भी ये सभी भाषायें संस्कृत का सहारा लेती हैं। दक्षिण की तामिल तेलगू मलयालम और कनारी भाषाओं में भी हजारों सालों के सम्पार्क के कारण ५०—६० प्रतिशत शब्द बिल्कुल संस्कृत के ही घुस आये हैं। इसलिए स्पष्ट है कि अगर कोई व्यक्ति संस्कृत अच्छी तरह जानता हो तो भारत के किसी कोने में चला जाये वहां की भाषा और साहित्य काम चलाऊ रूप से समझ ही लेगा। संस्कृत भाषा का पठन-पाठन जितना बढ़ाया जायेगा उतना ही भिन्न भिन्न प्रान्तों के लोग एक दूसरे के अधिक पास आते चले जायेंगे। एक दूसरे को अधिक समझेंगे और उनमें ढाई चावल पकाने की प्रवृत्ति भी कम होती चली जायेगी। तब कोई इस बात की परवाह नहीं करेगा कि राष्ट्रभाषा हिन्दी बनती है, बंगला बनती है वा तामिल बनती है। देश की राष्ट्रभाषा कोई भी बने, संस्कृतिक भाषा संस्कृत ही रहेगी।

यह कितने दुःख की बात है कि जहां प्रोफेसर रेणू आदि पाश्चात्य विद्वान् संस्कृत की प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते उसे एक पूर्ण भाषा कहते हैं और यह स्वप्न लेते हैं कि कभी वह एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बने तथा हमारे पड़ौसी अफगानिस्तान ने साहित्य पढ़ने वाले बच्चों के लिये संस्कृत अनिवार्य करदी है वहां व्यास और बाल्मीकि की सन्तान उसका गला घोंटने पर उतारु है। आज जब हमारे हाथ खुले हुए हैं तो हमें अपनी संस्कृति को पुनरुज्जीवित कर अपने पूर्वजों के अक्षय पुण्य से उऋण होने और भावी सन्तति को योग्य वसीयत प्रदान करने में उनका पूरा उपयोग उठाना चाहिये। अवसर आया है कि हम जी जान से मानव समाज की सेवा करें। भारत की संस्कृति को अपना कर ही विश्व कल्याण हो सकता है और भारत का अहोभाग्य संस्कृत के प्रचार में ही निहित है।

प्रकाशकों और लेखकों से

गुरुकुल पत्रिका में प्रतिमास विविध विषयों की पुस्तकों की समालोचनाएं अधिकारी विद्वानों द्वारा करवाने का हमने समुचित प्रबन्ध किया है। समालोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक की दो-दो प्रतियां नीचे लिखे पते पर भेजने की कृपा करें।

सम्पादक,
गुरुकुल-पत्रिका, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

भारतीय साहित्य में गन्ना

प्रो० पी० के० गोंडे

श्रीयुत वाट के मतानुसार गन्ने का उत्पत्तिस्थान पूर्वी भारतवर्ष है। १ हौबसन-जौबसन का कथन है कि अभी तक गन्ने का आदि जन्मस्थान ज्ञात नहीं हो २ सका। श्रीयुत डी. कैन्डोल के मत में गन्ने का सर्वप्रथम उत्पादन कोचीन चीन से लेकर बंगाल तक के विस्तृत प्रदेश में प्रारम्भ हुआ। चीनी ३ सम्राट् तेतसुंग (६२७–६५० ईसवी सन्) के शासन काल में खाण्ड बनाने की कला सीखने के लिए चीनियों द्वारा एक आदमी भारत भेजा गया। मर्को पोलो (१२६८ ई. सन्) का कथन है कि खाण्ड के शुद्ध करने की कला का प्रारम्भ मिश्र से हुआ है ४ गन्ने तथा खाण्ड का सब से प्राचीन निम्न लिखित वर्णन ६५ ई. सन् का उपलब्ध होता है–"एक प्रकार का मधु, जो भारतवर्ष तथा अरब में ठोस रुप में बनाया जाता है, और बांस के ऊपर पाया जाता है, नमक सदृश एक पदार्थ है और नमक की तरह दांतो से चूसा जाता है। पानी में मिला कर पीने से यह उदर, मूत्राशय तथा गुर्दे की बीमारियों में लाभप्रद है" ५

१- इकनौमिक डिक्शनरी. खण्ड ६ भाग, १ पृष्ठ-३१ (देखो हौबसन जौबसन, पृष्ठ ८६२ लन्दन १६२८।)

२- देखो H. Yule and A. C. Ipowell, 1928. 1. 862–63.

३-Origine des Plantes Cultivees Paris, 1883.

४-देखो Egyption Wall Painting of xviii and xix Dynasties (1600-to 1200 B.C) न्यूयार्क १६३० के संस्करण का पृष्ठ १४। रेखमी-रे की समाधि के चित्रों में से एक चित्र सं० ३१) है, जिसमें शहद इकट्ठा करने का दृश्य दिखाया गया है। श्री ऐम्ब्रूज़ लानसिंग उसका निम्न वर्णन किया है मिश्रवासियों के यहां खाण्ड नहीं होती थी। इस लिए उनके खेती के काम में मधुमक्षिका पालन एक मुख्य कार्य था। इस चित्र से प्रतीत होता है कि शहद निकालने का तरीका लगभग आजकल के समान ही था। चित्रमें एक आदमी खड़ा हुआ शहद के छत्ते में धूँआ दे रहा है, जिस से मखियां हड़बड़ा जावें। जब कि उसका एक साथी छत्ते में से शहद निकाल कर एक थाली में इकट्ठा कर रहा है। उक्त समाधि की तारीख लगभग १४५०ई. पू. दी गई है।

हौबसन-जौबसन पृष्ठ ८६३-"खाण्ड के अभाव या कमी के समय शहद से मिठास का काम लिया जाता था। इस लिए कुछ प्राचीन काल के लेखों में खाण्ड को शहद नाम दिया गया है" "ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में चीन में शहद का प्रयोग नहीं होता था। प्राचीन चीनी ग्रन्थों में 'शी-मी' अर्थात् पत्थर वाली शहद को फ़ारस तथा भारत की उत्पत्ति बताया गया है।

५—हौबसन-जौबसन के पृष्ठ ८६३ में निम्न वर्षों में खाण्ड के सम्बन्ध में वर्णन प्राप्त होने का उल्लेख किया गया है—६०, ६५, ७०, १७०

भारतीय साहित्य में गन्ने तथा खाण्ड का उल्लेख अनेक स्थानों में मिलता है। इन सब उद्धारणों का काल क्रम से संग्रह करना अत्यन्त उपयोगी होगा। इस लेख में मैं संस्कृत काव्यग्रन्थों के तीन उल्लेखों को प्रस्तुत करना चहता हूं। इनमें से दो तो ५०० ई० सन् से पूर्व के प्रतीत होते हैं। और तीसरा उल्लेख १३ वीं सदी का है। ६

डा० जोहनस्टन के मतानुसार सौरनन्दन के रचयिता अश्वकोष कवि दूसरी शताब्दी में उत्पन्न हुए। ५ इस ग्रन्थ के नवम सर्ग के ३१ वें श्लोक में गन्ने से रस निकालने की युक्तियों का उल्लेख मिलता है। ७

"यथेक्षुर त्यन्तरसप्रपीडितो भुवि प्रविद्धो नायदह शुष्पते। तथा जरायन्त्र निपीडिता तनु निपीतसारा मरणाय तिष्ठति।" मृत्यु की घड़ी की प्रतीक्षा करते हुए एक जराजीर्ण पुरुष का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। जरा (बुढ़ापा) ने उस के जीवन के सम्पूर्ण रस को चूस लिया है, फलत: उस का जीवन निःसार हो गया है। इसलिए उसका शरीर जीवन का आनन्द लेने की अपेक्षा श्मशान घाट के अधिक उपयुक्त है। उस वृद्ध पुरुष की दशा एक ऐसे गन्ने के सदृश है जिसे चरखी में से निकाल कर सुखाने के लिए इस कारण धूप में डाल दिया गया है कि वह गन्ने के रस को पकाने वाले कड़ाहे के नीचे ईन्धन का काम दे सके।

डा० जोस्नस्टन का कथन है कि उक्त श्लोक के पूर्वार्ध में वर्णित गन्ने के छिलकों की धूप में सुखाने की परिपाटी उत्तरीय भारतवर्ष में अब भी प्रचलित है।

परन्तु हम जानते हैं कि दक्षिण भारत में भी, जहां गन्ना बोया जाता है यह परिपाटी पाई जाती है। क्योंकि यह सुखाये हुए गन्ने का छिलका रस को गर्म करने या पकाने के लिए बहुत सस्ता पड़ता है।

अश्वघोष की उक्त उपमा के विपरीत एक और उद्धरण यहां हम उपस्थित करना चाहते हैं, जिस में कवि ने चरखी से निकाले हुए रस द्वारा तय्यार गुड़ से जीवन की निःसारता तथा विरक्ति का उपदेश दिया है। ८

६३६, १२२०, १२६८, १३४३, १५१६, १६३०, १८०७, १८१० ॥

५-पंजाब विश्वविद्यालय, प्राच्य प्रकाशन, आॉक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, १६२८ की भूमिका, पृ० ४६।

७--देखो वाग्भट्ट कृत अष्टांग योग का २ य अध्याय, 'ईक्षु वर्ग' (सम्पादक—हरिशास्त्री पराडकर, निर्णय सागर प्रैस बम्बई १६३६,) ॥ पञ्चमाध्याय के सूत्रस्थान पृष्ठ ७४में दो प्रकार का गन्ने का रस (इक्षुरस) वर्णित है :—(i) दन्त पीडित अर्थात दांतो से चूसा हुआ। (ii) यान्त्रिक अर्थात चरखी से निकाला हुआ। हेयादि (जन्म लगभग १२६० सन्) ने इक्षुरस के गुणों के विषय में खारणादि (६५० ई० सन् से पूर्व) को उद्धृत करते हुए लिखते हैं—

मध्यकाण्डे सुमाधुर्यमिक्षोर्मूलाग्रपर्वसु।
माधुर्यं साम्ललवणं विदाही तेन यान्त्रिकः ॥

इसी सम्बन्ध में देखो सुश्रुत सू० अ. ४५। १५६ ॥ यान्त्रिक रस के विषय में वाग्भट्ट का मत है कि वह कुछ समय बाद बिगड़ जाता है। "किंचित्कालं विशत्या च विकृतिं याति यान्त्रिकः ॥"

८—सातवाहन हाल कृत गाथा सप्तशती (काव्यमाला २१) बम्बई १६३३। इस छायानुवाद का मूलपाठ निम्न है—

जन्तिअ गुडं विमागासि ण अ मे इच्छाइ वाहस जन्तम्। अणरसिअ किं ण आणसि रसेण विणा गुडो होइ ॥ ५४ ॥

यान्त्रिकगुड विमार्गसि न वाहयसि यन्त्र-मिच्छया च मम । अरसिक जानासि न किं न रसेन विना गुडो भवति ।

उपर्युक्त श्लोक में कवि ने गन्ने के रस तथा गुड़ के रूपक द्वारा अनुराग एवं रसिकत के हेतु पर प्रकाश डाला है, जैसा कि भट्ट मथुरा नाथ कृत संस्कृत टीका से स्पष्ट है । ६

इस रूपक में यन्त्र (चरखी), रस (गन्ने का रस) तथा उस से तय्यार किये हुए गुड़ शब्द का प्रयोग हमारे लिए विशेष उपयोगी है ।

इस गाथा सप्तशती के बाद हम दृष्टान्त पाठ नामक १२ वीं सदी के एक मराठी ग्रन्थ का उद्धाहरण प्रस्तुत करना चाहते हैं, जिसमें चक्रधर ने दृष्टान्तों द्वारा कुछ धार्मिक सचाइयों की व्याख्या की है । १० यहां हम केवल उस आदमी के दृष्टान्त को उद्धत करेंगे जो गन्ने के रस को शुद्ध करके उससे गुड़ बनाता है ।

इस ग्रन्थ का "६७ वां गुडहारिया चा दृष्टान्त" निम्न लिखित हैः ११

सूत्र—मडकमँ निव्रर्ललेयावीण जीवु कृपेसी पात्र नएहे । दृष्टान्त—कव्हणी एकु गुड हारी असेः तो गुडकटीः उसां चा रसु काढ़ीः काहाली ए घालीः तर्डों अग्नि जाड़ी रस कढ़ेः चाढसी ए करूनि मडी वेगडी करीः मग आणिकी भां डाचां आणीकी भांडा घालीः द्रव असे तो बद्ध होएः मग हातीं वेउनीः आणिका ढायां ने नेया वेयायोग्य होय ।।

६—देखो काव्यमाला २१ (१६३१) का पृष्ठ २८१ : श्लेष चातुर्येणानुरागं सूचयन्ती काचित् कृतगुडवेलनमिच्छयन्त्रवाहकमाह—

यान्त्रिक यन्त्रकर्मकारक ! वेलनत्वेन नियमितं गुडं विमार्गसि अन्विष्यसि वाञ्छसीति यावत् । इक्षुपीडनार्थं कृतं यन्त्रं (चरखी) ममेच्छानुसारं न चालयसि । पक्षान्तरे—सुरत साधनं यन्त्रम् । रसः इक्षुद्रवः अनुरागश्च । तथा च हे अरसिक इक्षुद्रवविद्याभज्ञ ! किं न जानासि यत् रसेन इक्षुद्रवेण विना गुडो न भवति नोत्प द्यते । पक्षान्तरे च हे अरसिक । अनुरागेण विना गुडो न भवति, न प्राप्यते इत्यर्थः । मय्यनुरक्तो यावत् ममेच्छानुसारं रतनिरतो न भविष्यसि तावन्न ते गुड वेतनं दीतेति भावः ।।

१०—यह दृष्टांतपाठ श्री एन० वी० भानलकर तथा एच० एन० नेने साहब द्वारा सम्पादित है । इस में ११४ धार्मिक दृष्टान्तों का संग्रह है । प्रत्येक दृष्टान्त के तीन अंश है— (i) सूत्र (ii) दृष्टान्त (iii) दर्ष्टान्तिक । इस के सूत्र तथा दृष्टान्त अंश के रचयिता महानुभाव सम्प्रदाय के संस्थापक (१२६१-७२ ईसवी सन्) श्री चक्रधर बताये जाते हैं । दार्ष्टान्तिक, जिस में उक्त दो की व्याख्या है केशिराज द्वारा १२८६ सन् से पूर्व लिखी गए है । केशिराज की मृत्यु सन् १३३६ में हुई । (देखो दृष्टान्त पाठ की भूमिका पृष्ठ २१)

११—खाण्ड के दृष्टान्त के लिए देखो पृष्ठ ५६

११४ साकरेचा दृष्टान्त

सूत्र साधनापसी साध्य उत्तम ।। १ ।।

दृष्टान्त—साकर हो इजे तें नीकें कीं साकर अनुभवीजे ते नाकें ।

दार्ष्टान्तिक—तेसें ब्रह्म होइजे तें नीकें कीं ब्रह्म अनुभवीजे तें नीकें ।।

अर्थात्– खाण्ड के मिठास चखने की अपेक्षा खाण्ड के साथ तादात्म्य करना अधिक उत्तम है । उसी प्रकार परमार्थता तो ब्रह्मानुभव में है ।

दार्ष्टान्तिक – तैसें परमेश्वरु जीवाची मङ कर्मं फेडौनि योग्य करीति ।।

उक्त दृष्टान्त अत्युत्तम तरीके से आत्मशुद्धि की उस प्रक्रिया को प्रकट करता है, जिससे जीव प्रभु की कृपा प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। जिस प्रकार गन्ने का रस (उसा चा रसु) एक कड़ाहे (काहाली) में डालकर आग में रख दिया जाता है, और उबाला जाता है जिस से सतह पर एकत्र होता हुआ मल निकाल कर गुड़ बनाया जा सके, ठीक उसी प्रकार सम्पूर्ण पापपूर्ण आसक्तियों से विरहित प्रभु कृपा का अधिकारी बनने से पूर्व यह जीवात्मा इस जीवन की आपत्तियों और कष्टों द्वारा आत्म शुद्धि की प्रक्रिया में से गुजरता है।

गन्ने के रस को परिशुद्ध करने तथा गाढ़ा करके गुड़ बनाने की प्रक्रिया, जैसा कि १३ वीं शताब्दी के उन महाराष्ट्रीय ग्रन्थ में विस्तार से वर्णित है, न केवल दक्षिण में परन्तु भारत के अन्य गन्ना-उत्पादन क्षेत्रों में भी अब तक सर्वथा उसी प्रकार पाई जाती है। ठीक यही प्रक्रिया अश्वघोष के समय–दूसरी शताब्दी में– अवश्य होगी। अधिक नहीं तो ईसवी सदी के प्रारम्भिक वर्षों में तो इस प्रक्रिया का प्रचलन अवश्य स्वीकार करना होगा, जैसा कि अश्वघोष कृत सौर नन्दन के उक्त उद्धरण से अथवा तथा-कथित मातवाहन हाल विच्छिन्न गाथा सप्तशती से सिद्ध होता है। सामान्यतः भारत वर्ष में भौतिक दृष्टि से कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करने से इस बात की पुष्टि हो सकती है और हमें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो सकता है कि भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों में विदेशियों के सम्पर्क से भारतीय संस्कृति में क्या २ वृद्धि हुई। पूर्व इसके कि भारतीय सभ्यता का कोई विश्वकोष तय्यार किया जावे, स्वयं भारतीय विद्वानों को जो इस भारतीय सभ्यता के ही अंग हैं–भारत का एक क्रमबद्ध विस्तृत इतिहास लिखना चाहिये।

कालिदास ने भी अपने प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल के छठे अङ्क में गन्ने का वर्णन किया है–

"एष मा कोऽपि प्रत्यवनत शिरोधरमिक्षुमिव त्रिभङ्गं करोति।"

इन्द्र के सारथि मातली द्वारा दबोचा जाने पर विदूषक कहता है–अरे! कोई पीछे से मेरी गर्दन दबाकर गन्ने की तरह मेरे तीन टुकड़े कर रहा है।

परन्तु इस काव्य में हमें गन्ने के रस तथा गुड़ आदि बनाने की कोई सूचना नहीं मिलती।

महाराष्ट्रिय ज्ञान कोष[१२] के अनुसार इक्षु शब्द अथर्ववेद तथा परवर्ती संहिताओं में पाया जाता है। महाभारत काल में भारतवासियों को शर्करा का ज्ञान था और भोज्य पदार्थों में उसका व्यवहार भी किया जाता था। पुराण भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

वात्स्यायन ने अपने काम सूत्र के १३ भार्याधिकारिका अधिकरण में गृहपत्नियों

१२–लेखक एस० बी० केतकर, खण्ड ६, पृष्ठ (ऊ–१०)। इस खण्ड में गन्ने का इतिहास वर्णित है। उसी सम्बन्ध में एक अनुच्छेद में १० वें पृष्ठ में कुछ लेख पत्र संगृहीत हैं।

१३—देखो श्री पं० केदारनाथ जी द्वारा सम्पादित काम सूत्र, बम्बई १६०० का पृष्ठ २३४

के कर्तव्य रूप में कुछ नियमों का उल्लेख किया है। वह निम्न सूत्र में गृहपत्नियों की देखभाल में कुछ वनस्पतियों व सब्ज़ियों के बोने की सिफारिश करता हुआ लिखता है—

परिपूतेषु ... ...

परिपूतेषु च हरितशाक वप्रान् इक्षु स्तम्बान् जीरकसर्षपाजमोदशतपुष्पातमालगुल्मांश्चकारयेत्।

यशोधर कृत जयमंगल टीका में 'इक्षुस्तम्बान्' का अर्थ 'इक्षुविटपान्' किया है। जिसका तात्पर्य स्पष्टतः तय्यार की हुई क्यारियों में बोए जाने वाली गन्ने की पोरियों से है। गन्ना बोने के आधुनिक तरीकों में भी गन्ने की पोरियों को जमीन में तिरछा करके बोने का विधान है। १४ इसके अतिरिक्त कामसूत्र में गुड़ तथा शर्करा का भी उल्लेख है। १५

मैं उन विद्वान् महानुभावों का अत्यन्त कृतज्ञ होऊंगा, जो किसी नवीन या प्राचीन काव्य ग्रन्थों या अन्य किसी भारतीय साहित्य के एतद्विषयक उद्धरणों का संग्रह करने की कृपा करेंगे।

तथा श्री पं० वी० एम० खुपरकर कृत मराठी अनुवाद समेत संस्करण का पृष्ठ ३७८।

१४— ज्ञानकोष (भाग ९ पृष्ठ ऊ १४) में लिखा है कि गन्ने का ऊपर का हिस्सा बोने के लिए अधिक उपयोगी है। संभवतः वात्स्यायन का 'इक्षु स्तम्ब' से इसी हिस्से का तात्पर्य है। सूरत में तो आजकल सारे गन्ने भी बोने का रिवाज प्रचलित है।

१५—देखो केदारनाथ कृत संस्करण पृष्ठ २३८। गृहिणी का गुड़ बनाना (तैलगुडयो········ करणम्) भी कर्त्तव्य है। इस पर टीकाकार लिखते हैं "तैलगुडयोः करणं सर्षप-इक्षुकाण्ड-पीडनात्"। पृष्ठ ३६७ में शर्करा का उल्लेख है—सशर्करेण पयसा तथा 'शर्करामधुसर्पिर्भ्याम् गोधूमचूर्णेन्न पोलिकां कृत्वा इत्यादि।"

२० वें खण्ड के पृष्ठ स—१३५ में गन्ने पर एक लेख तथा उसके इतिहास पर एक छोटे से अनुच्छेद में जो अपना मन्तव्य दिया है, उसकी पुष्टि में लेखक ने कोई प्रमाण पेश नहीं किया।

इस खण्ड में गन्ने का जो इतिहास बताया गया है, तदनुसार अत्यन्त प्राचीन काल से भारतवर्ष में खाण्ड बनती थी और यहां से तथा अरब से विदेशों में भेजी जाती थी। चीनियों ने खाण्ड बनाने की विधि भारतवर्ष से सीखी थी।

वात्स्यायन	यशोधर	मराटी शब्द
मूलक	··· ···	मुला
आलुक	··· ···	आलू
पालंकी	··· ···	पालंकी
दमनक	······	दवना
आम्रातक	··· ···	अंबाडी
एर्वारुक	कर्कटीका	वाबूक
भपुस	······	कांटे काकरी
वार्ताक	······	वांगें
कूष्माण्ड	··· ···	कोहाला

वात्स्यायन	यशोधर	मराठीशब्द
अलाबु	तुम्बी	भोपडा
सूरण	कन्दः	सुरण
शुकनासा	सर्वतोभद्रा	निंब
स्वयं गुप्ता	कपिकच्छूः	कुयली
तिलपर्णिका	काश्मरी	रक्तचन्दन
अग्निमंथ	अग्निमंथ	सर्जवृक्ष
लशुन	··· ···	लसूण
पलाण्डु	लशुनाकारः लोहितः	कांदा
··· ···	··· ···	··· ···

उक्त मराठी शब्द श्री पं० खुपरकर ने वात्स्यायन के स्वकृत अनुवाद में दिये हैं।

स्वर्गीय श्री पण्डित विश्वम्भर नाथ जी

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

गत प्रथम अप्रेल की रात्रि को पूज्य पण्डित विश्वम्भरनाथ जी का हृदय गति रुक जाने के कारण अकस्मात् देहावसान हो गया। पण्डित जी के आकस्मिक देहावसान का यह समाचार गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी और पंजाब के आर्यसामाजिक जगत् में बड़े दुःख के साथ सुना गया। आप गुरुकुल कांगड़ी के भूतपूर्व मुख्यअधिष्ठाता और गुरुकुल की स्वामिनी सभा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के भूतपूर्व प्रधान और वर्तमान उप-प्रधान एवं कार्यकर्ता प्रधान थे। पण्डित जी उन व्यक्तियों में से थे जो प्रसिद्धि से परे भागा करते हैं और पीछे रहकर मौन रूप से जनता की निःस्वार्थ सेवा किया करते हैं। इसलिए गुरुकुल कांगड़ी और आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब से बाहर के क्षेत्र में पण्डित जी बहुत कम ज्ञात रहे हैं। आप प्लेट फार्म और प्रेस से सदा परे रहते थे इसलिए उनके परिचय का क्षेत्र उतना बड़ा नहीं था जितना प्रसिद्धि के उन दोनों साधनों का आश्रय लेने वाले नेताओं का हुआ करता है। परन्तु जो लोग उनके निकट सम्पर्क में रहे हैं वे जानते हैं कि पण्डित जी कितने श्रेष्ठ और महान् व्यक्ति थे। उनमें जो उच्चता और श्रेष्ठता थी वह बहुत कम लोगों में पाई जाती है और बहुत बार तो प्रसिद्धि प्राप्त बड़े समझे जाने वाले लोगों में भी नहीं पाई जाती। जो जितना ही उनके निकट सम्पर्क में रहता था वह उतना ही उनके गुणों की महत्ता से प्रभावित होता था। अपने इन गुणों के कारण ही वे पिछले लगभग ३०-३५ वर्षों से पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के वास्तविक संचालक और सूत्रधार रहे हैं। पिछले २०-२५ वर्षों से तो उनको पंजाब प्रतिनिधि सभा में जो स्थिति थी उसे देखते हुए बिना किसी प्रतिवाद के भय से कहा जाता है कि पण्डित जी और प्रतिनिधि सभा परस्पर पर्यायवाची हो गए हैं।

पण्डित जी को आर्यसमाज के अतिरिक्त और किसी भी सभा से तनिक भी लगाव न था। आर्यसमाज से बाहिर के किसी भी क्षेत्र को अपना क्रियाक्षेत्र बनाना वे सोच भी नहीं सकते थे। अपने बाल्यकाल में उनको स्वामी श्रद्धानन्द जी (उस समय महात्मा मुन्शीराम जी) और पं० गुरुदत्त जी आदि महापुरुषों की संगति मिली थी। इन महापुरुषों के संगत से आप ने आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द के लिए अगाध प्रेम उत्पन्न हो गया। और उन्होंने जीवनभर आर्यसमाज की यथाशक्ति सेवा करने का निश्चय कर लिया। जब वे अपने यौवनकाल में गुरुदासपुर नगर में आपने अपने मन में सोचा कि गुरुकुल जैसी ब्राह्मण संस्था का सर्वप्रमुख अधिकारी रहने के बाद अब फिर नये सिरे से कमाने और दुनियादारी के झंझट में पड़ना शोभा नहीं देता है। अपने इस विचार के अनुसार उन्होंने फिर कमाने का कोई कार्य नहीं किया। गुरुकुल में आने से पहले वकालत के समय जो थोड़ी सी पूंजी एकत्र कर ली थी उसी से अपना निर्वाह करते रहे। इस प्रकार निर्वाह करते हुए

वकालत किया करते थे तब भी आर्यसमाज के लिए अधिक से अधिक समय देने का प्रयत्न किया करते थे और आर्यप्रतिनिधि सभा के बहुत से कामों को संभाले हुए थे। महात्मा मुन्शीराम जी के संन्यास लेकर गुरुकुल कांगड़ी का आचार्यत्व और मुख्य-अधिष्ठातृत्व परित्याग कर चले जाने के कुछ साल पश्चात् जब प्रतिनिधि सभा ने आपको गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता बना कर भेजा तो आपने गुरुकुल की सेवा करते हुए गुरुकुल या प्रतिनिधि सभा से कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया और सर्वत्र अवैतनिक रूप में गुरुकुल की सेवा करते रहे। गुरुकुल की पच्चीस वर्षीय रजत जयन्ती आपके मुख्याधिष्ठातृत्व में हुई थी।

जब ६–७ साल गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता रहने के बाद आपने उस पद को छोड़ने का निश्चय किया तो एक दिन चुपचाप गुरुकुल से चले गये। गुरुकुल में किसी को अपने इस निश्चय का पता भी नहीं दिया कि कहीं ब्रह्मचारी और दूसरे कार्यकर्त्ता अभिनन्दन पत्र आदि देने का झंझट न करने लग जायें।

गुरुकुल से आने के बाद आपने वकालत का कार्य फिर प्रारम्भ नहीं किया और न ही कोई और कार्य आजीविका के लिये शुरु किया। बागडोर सौंपकर प्रतिनिधि सभा निश्चिन्त थी।

पण्डित जी आर्य प्रतिनिधि सभा के मान्य बुज़ुर्ग थे। सभा के सब दलों को मिलाकर रखने का कार्य पण्डित जी को ही आता था और वह इस में सफल होते थे क्योंकि उनके गुणों के कारण सब उनका अत्यधिक आदर करते थे।

पण्डित जी का शरीर ब्रह्मचर्य, व्यायाम और तपस्या से सधा हुआ था। ... उनका जीवन एक आदर्श ब्राह्मण का, पूर्ण गरीबी का—स्वेच्छापूर्वक स्वीकार की हुई गरीबी का—जीवन रहा है। अब उन्होंने लाहौर में रहना प्रारम्भ कर दिया लाहौर में ही प्रतिनिधि सभा का प्रधान कार्यालय था। अब आप चौबीसों घण्टे आर्यसमाज और प्रतिनिधि सभा का ही कार्य करने लगे। इसके बाद सभा में कोई प्रधान बनता रहा हो और सभा में कोई मंत्रीमंडल आता रहा हो—आप सदा कार्यकर्त्ता उपप्रधान बनते रहे हैं। और सभा का सारा संचालन आप के ही कन्धों पर रहा है। सभा और गुरुकुल आदि संस्थाओं का कार्य करते हुए (आप गुरुकुल के अतिरिक्त कन्या गुरुकुल के भी मुख्याधिष्ठाता रहे थे और सभा के अधीनस्थ स्कूल और कालेजों के काम का निरीक्षण तो आप ही करते थे) आप में और और गुणों के साथ जो एक बड़ी विशेषता थी वह यह थी कि आप हरेक बात की तह में जाया करते थे और आप को इसी लिये प्रत्येक प्रश्न की सालों पुरानी पृष्ठभूमि का पता रहता था। अंग्रेजी में जिसे "मास्टर ऑफ् डिटेल" कहते हैं उस प्रकार के व्यक्ति आप थे। इसी लिये आपकी सम्मति की बड़ी कीमत होती थी और सभा में प्रायः आपकी मानी जाती थी। पण्डित विश्वम्भरनाथ जी के हाथ में अपनी ड्यौढ़े दर्जे से ऊपर दर्जे में कभी चलते ही नहीं थे। सामान इतना कम रखते थे कि कुली करने की आवश्यकता न पड़े। तांगा भी यथ सम्भव बहुत कम करते थे। पैदल ही चलने का प्रयत्न करते थे।

प्लेटफार्म और प्रेस में आप कभी जाते ही न थे। वार्तालाप द्वारा अपने विचारों का अपने परिचित वर्ग में प्रसार किया करते थे। आप

आयु में भी वे पूर्ण स्वस्थ और शक्तिमान् थे। और जवानों जैसी उनमें काम करने की शक्ति थी। ख्याल भी नहीं होता था कि वे १०० साल से पहले मर भी सकते हैं आप पक्के इमानदार और सत्य प्रिय थे। किसी प्रकार की धोखा धड़ी आपके पास नहीं फटक सकती थी। आप वकालत के समय भी कभी झूठे मुक़दमे नहीं लेते थे। सदा खरा बात करते थे। अपने विचारों के पक्के थे। अपने विचारों को प्रकट करने में कभी झिझकते नहीं थे। परन्तु अपने विचार और निश्चय बहुत सोच समझ कर बनाते थे। जल्दबाजी में अपने विचार नहीं बनाते थे। बड़े मिलनसार थे। सबके साथ स्नेह और प्रेम का बर्ताव करते थे। जो कोई उनके सम्पर्क में आता था वह यही समझता था कि शायद पण्डित जी उससे ही सबसे अधिक स्नेह करते हैं। गुरुकुल के स्नातकों से तो उनका बड़ा प्रेम था। किसी नगर में जांय और वहां कोई स्नातक हो तो यह हो नहीं सकता था की पण्डित जी उससे मिलकर न आयें। समाज और सभा के रुपये को बड़ी किफायतदारी से खर्च करते थे। तीसरे दर्जे में सफ़र करने की कोशिश करते थे। के विचार बड़े बारीक और सुलझे हुए हुआ करते थे। हरेक समस्या पर आपके विचार दार्शनिकों को और गहराई तक पहुँचाने वाले होते थे। अपने ढंग पर उनका स्वाध्याय भी बहुत गहरा था। पण्डित जी आदर्श ब्राह्मण थे। शास्त्रों में निष्कारण वेद का स्वाध्याय करना ब्राह्मण का एक लक्षण लिखा है। पण्डित जी ३-४ घंटे प्रतिदिन वेद का स्वाध्याय किया करते थे। कभी २ आग्रह करने पर लाहौर समाज के साप्ताहिक सत्संग में आप उपदेश किया करते थे। आप के उपदेश वेद मन्त्रों के आधार पर होते थे। उनके उपदेश सुनने से पता लगता था कि वे मन्त्र को हृदय में कितना गहरा ले जाते हैं। जैसा उनका आत्मा सुन्दर था वैसा ही सुन्दर उनका शरीर भी था। वे हमारी सभा में पूर्ण निष्काम कर्मयोगी थे।

उनके दिवंगत होने से गुरुकुलीय जगत् और पंजाब के आर्यसामाजिक जगत् में जो स्थान खाली हुआ है उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। भगवान् उन्हें वह गति प्रदान करें जो ऐसे पवित्र, धर्मपरायण, निष्काम, कर्मठ और तपस्वी पुरुषों को प्राप्त हुआ करती है।

गुरुकुल समाच

श्री गाडगिल का दीक्षान्त भाषण

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के वार्षिक उत्सव पर दीक्षान्त भाषण देते हुए विद्युत एवं खनिज विभाग के मंत्री श्री गाडगिल ने कहा — "भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति विश्व में फैली हुई थी। उसकी प्रतिष्ठा इसलिए थी कि हम उसे अपनी संस्कृति समझते थे। लेकिन आज हम संस्कार एवं प्रथा के पीछे पड़े हुए हैं। अतः यही हमारी दासता का कारण था। अतः यदि आज पुनः हम संस्कृति को समझने लगें तो हमारी प्रतिष्ठा सारे संसार में पुनः फैल सकती है।

स्वतन्त्रता की रक्षा

नवयुवक हमारे देश के उज्ज्वल भविष्य हैं। आज स्वाधीनता का सुअवसर उनके सामने है। हमने अपने स्वप्नों को साकार कर दिया, जिसकी रक्षा करने का उत्तरदायित्व नवयुवकों पर है। यदि आज नवयुवक सामने आकर उसे नही समझेंगे तो देश समृद्ध होते हुए भी गरीब रहेगा।

अनुशासन आवश्यक है

इस नवीन स्वाधीनता की रक्षा का उत्तरदायित्व पूर्ण करने के लिए आवश्यक है कि नवयुवक पूर्ण अनुशासन एवं नम्रता से रहें।

पराधीनता के समय हमारा दृष्टिकोण और था। आज निर्माण का अवसर है। प्रत्येक कार्य के लिए कठोर प्रयत्न की आवश्यकता है। इसके लिए कठोर अनुशासन, रखने के लिए सतत प्रयत्न करना पड़ेगा।

सादा जीवन व समृद्धि

सादा जीवन व समृद्धि में कोई विरोध नहीं है। लौकिक विकास करके देश को समृद्ध किया जाता है। लेकिन प्राचीन आध्यात्मिकता की उपेक्षा करना हानिकारक हो सकता है। इस समृद्धि के लिए करोड़ों व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता है।

अन्त में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का उल्लेख करते हुए आपने कहा कि हमने संस्कृति को भूलकर संस्कार को पकड़ रखा है। उससे हमारी प्रतिष्ठा को धक्का लगा है। इसलिए हमें संस्कार के स्थान पर संस्कृति व सभ्यता का अनुसरण करना चाहिए। युवक अपनी जिज्ञासा की वृत्ति को सदा जागरूक रखें।

कुलपति का भाषण

विश्वविद्यालय के कुलपति महाशय कृष्ण जी ने नव स्नातकों को सम्बोधित करते हुए कहा — स्नातक स्वामी दयानन्द की विरासत के रक्षक हैं। उनके मार्गों पर चलने से ही देश का कल्याण हो सकता है। आप उस आचार्य के शिष्य हैं, जिसने सर्व प्रथम आजादी का झंडा लहराया था। अतः आज आप उसी की विरासत के रक्षक हैं। अतः आप इस उत्तरदायित्व को स्वीकार करेंगे।

डा० पट्टाभि का भाषण

गुरुकुल विश्वविद्यालय के वार्षिकोत्सव पर आयोजित राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में सभापति पद से भाषण देते हुए राष्ट्रपति डा० पट्टाभि सीतारामैया ने कहा—अंग्रेजों ने हमारी सभ्यता व संस्कृति का बहिष्कार कर हमें गुलाम बनाया। इस समय इस देश की रक्षा करने का एकमात्र उपाय यह है कि सर्व प्रथम भाषा, सभ्यता व

संस्कृति की रक्षा की जाय। आजादी मिलने से अनेक प्रकार की समस्याओं में अत्यधिक वृद्धि हो गई है। इन सबों को हल करने के लिए आवश्यक है कि इन सबों को हम भारतीय ढंग पर हल करें।

हमारे आज के मन्त्री भी उन्हीं विश्वविद्यालयों के हैं, जिनकी स्थापना अंग्रेजी शासन को ठीक से चलाने के लिए की गई थी। इस लिए आज हमारे देश की वास्तविक स्थिति की उपेक्षा कर अंग्रेजों के मार्ग पर चल रहे हैं।

उपाधियों का अनुचित महत्व

सरकार इस प्रकार की राष्ट्रीय संस्थाओं की उपेक्षा कर देश को हानि पहुँचा रही है। सरकारी कार्यालयों में उपाधियों को अनुचित महत्व दिया जा रहा है। इसलिए योग्य व्यक्ति इन उपाधियों के अभाव में सरकार को नहीं मिल पाते।

आयुर्वेद की उन्नति हो

आयुर्वेद का उल्लेख करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—देश का स्वास्थ्य उन्नत करने के लिए देशी चिकित्सा को पुनः महत्व दिया जाय। पाश्चात्य चिकित्सा देश के जलवायु के प्रतिकूल है। अतः इसको अनुचित महत्व देना आर्थिक एव स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है। इसके लिए केन्द्रीय अनुसंधान विभाग स्थापित किया जाय।

पण्डित नेहरू का सन्देश

भारत के प्रधान मंत्री प० नेहरू ने गुरुकुल उप कुलपति के नाम एक संदेश में कहा—"काश! मैं बच्चा होता और गुरुकुल में पढ़ता और वहां के मधुर आनन्द लेता।

श्रद्धानन्द सेवाश्रम और आयुर्वेद महाविद्यालय

गुरुकुल कांगड़ी के आयुर्वेद महाविद्यालय के साथ एक श्रद्धानन्द सेवाश्रम संलग्न है जो गत लगभग २० वर्ष से जनता की सेवा कर रहा है। इस सेवाश्रम से आस पास के गांवों की जनता निःशुल्क चिकित्सा का लाभ उठा रही है। इस सेवाश्रम के चिकित्सालय तथा आतुरालय दो विभाग हैं। आतुरालय में गरीब रोगियों को प्रविष्ट करके योग्य तथा विशेषज्ञ चिकित्सकों के तत्वावधान में उनकी चिकित्सा की जाती है। उनको भोजन, वस्त्र तथा परिचर्या गुरुकुल की ओर से निःशुल्क दी जाती है। सेवाश्रम के शल्य चिकित्सा विभाग में श्री डा० चमनलाल जी एम. बी. बी. एस. कार्य कर रहे हैं। आप एक अत्यन्त अनुभवी तथा कुशल सर्जन हैं। आप सेवाश्रम में अत्यन्त परिश्रम से सब प्रकार की सर्जरी का काम कर रहे हैं। इसी प्रकार हमारे चिकित्सा विभाग में भी योग्य से योग्य चिकित्सकों के द्वारा रोगियों की चिकित्सा की जाती है। इस विभाग में श्री कविराज हरिदास जी शास्त्री तथा कविराज दिवाकर जी अत्यन्त योग्य एवं कुशल चिकित्सक हैं। इन्हीं के साथ साथ श्री डा० महादेव प्रसाद जी त्रिपाठी एम. डी. भी अत्यन्त कुशलता पूर्वक अपना कार्य कर रहे हैं।

आतुरालय में हमारे पास यद्यपि अभी ४० रोगियों के रखने का स्थान है परन्तु अर्थाभाव के कारण हम इतने रोगियों को रखने में अपने को असमर्थ पाते हैं। बहुत से रोगी स्वयं अपना व्यय करके भी यहां आतुरालय में रहते हैं तथा चिकित्सा से लाभ उठाते हैं। कुछ दानियों के द्वारा भी सेवाश्रम को आर्थिक सहायता मिल रही है। हम इस प्रयत्न में भी हैं कि हमारी

राष्ट्रीय सरकार द्वारा भी हमें इस कार्य में कुछ सहायता प्राप्त हो सके। आशा है इसमें हमें सफलता मिल जायेगी।

इस वर्ष श्रद्धानन्द सेवाश्रम के चिकित्सालय (outdour) से १५८८६ तथा आतुरालय से ४०६ रोगियों ने लाभ उठाया।

इसके अतिरिक्त श्रद्धानन्द सेवाश्रम में निम्न विभाग कार्य कर रहे हैं—

शल्यक्रिया भवन (ऑपरेशन थियेटर)

इस ऑपरेशन थियेटर को बने करीब २० वर्ष हो चुके हैं। तब से प्रतिवर्ष इसमें सब तरह के ऑपरेशन होते आरहे हैं। बाहर से विशेषज्ञ डाक्टरों को बुलाकर भी समय २ पर यहां बड़े २ औपरेशन कराये जाते रहे हैं। इस समय श्री डा० चमनलाल जी M. B. B. S. इस विभाग के अध्यक्ष हैं। आप यहां सब तरह के छोटे तथा बड़े औपरेशन बड़ी सावधानी तथा दक्षता पूर्वक कर रहे हैं। हर्निया, पथरी, बवासीर, रसौली तथा हड्डी का टूटना आदि के औपरेशन के साथ २ आंखों के सब तरह के औपरेशन विशेष रूप से किये जाते हैं। मोतिया; पड़वाल. नखूना आदि के औपरेशन आजकल खूब हो रहे हैं। आसपास की देहाती जनता आप से पूरा लाभ उठा रही है। आप आंखों की बीमारियों के विशेषज्ञ (Eye Specialist) हैं। इस वर्ष श्रद्धानन्द सेवाश्रम में हुये औपरेशनों की संख्या लगभग ३०० है।

एक्स रे

इस विभाग को गुरुकुल में कार्य करते हुये करीब ३ वर्ष हो गये हैं। यह कार्य श्री सेठ लक्ष्मीपति सिंहानिया के दान से चल रहा है। एक्स रे के कार्य से सेवाश्रम के कार्य में बहुत सहायता मिलती है। आसपास एक्सरे के उपकरण और कोई नहीं है जिससे इस प्रदेश की सारी जनता यहीं से लाभ उठाती है।

इस विभाग के अध्यक्ष श्री डा० अनन्तानन्द जी आयुर्वेदालङ्कार हैं। आप गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक हैं। इस वर्ष इस विभाग में करीब २७६ फोटो लिये गये हैं।

क्लिनिकल लेबोरेटरी

इन विभागों के अतिरिक्त यहां एक लेबोरेटरी भी है जहां सब तरह के रक्त, मल, मूत्र, थूक, पस आदि की जांच की जाती है जिससे रोगों के निदान में अत्यन्त सहायता मिलती है।

आयुर्वेद महाविद्यालय

उपर्युक्त विभागों के साथ २ यहां एक विशाल आयुर्वेद महाविद्यालय भी है जहां दूर २ से विद्यार्थी आकर आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करते हैं तथा चिकित्सा में प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करके देश के कोने २ में दीन दुःखियों की निःस्वार्थ सेवा कर रहे हैं। यहां ५ वर्ष का कोर्स है जिसमें विद्यार्थी को प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों चिकित्सा पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन कराया जाता है। यहां की डिग्री को यू० पी० सरकार के इण्डियन मैडिसन बोर्ड ने प्रथम श्रेणी में रजिस्टर्ड किया हुआ है।

इस आयुर्वेद महाविद्यालय तथा श्रद्धानन्द सेवाश्रम के निरीक्षण के लिये समय २ पर सरकारी तथा गैरसरकारी व्यक्ति आते रहे हैं। उन्होंने इसके कार्य तथा शिक्षा प्रणाली की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। अभी गत वर्ष यू० पी० सरकार के स्वास्थ्य मंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त तथा बम्बई के प्रधान मंत्री श्री बी. जी. खेर भी गुरुकुल पधारे थे। उन्होंने इस विभाग

को देखकर पूर्ण सन्तोष का अनुभव किया तथा इसके कार्य से पूर्ण सहानुभूति प्रकट की। आशा है इस सेवाश्रम तथा आयुर्वेद महाविद्यालय से भविष्य में भी जनता पूरा २ लाभ उठायेगी तथा इसकी यथाशक्ति आर्थिक सहायता करेगी।

गुरुकुल कांगड़ी की स्वर्ण जयन्ती

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का बीजारोप सन् १६०० में गुजरानवाले में हुआ था। सन् १६०२ में उसे हरिद्वार में गंगातट पर आरोपित किया गया। इस प्रकार सन् १६५० में वह पचासवें वर्ष में आजायेगा। गुरुकुल की विद्यासभा ने निश्चय किया है कि आगामी वर्ष गुरुकुल कांगड़ी की स्वर्ण जयन्ती मनायी जाये। इस अवसर पर जहां गुरुकुल के अब तक के कार्य के विवरण, इतिहास आदि प्रकाशित किये जायेंगे, वहां गुरुकुल शिक्षा को अधिक विस्तृत और समुन्नत करने के लिये क्रियात्मक पग उठाये जायेंगे। शिल्प शिक्षा के लिये शिल्प महाविद्यालय की योजना कार्यान्वित की जायेगी। वैदिक अनुसन्धान के कार्य को स्थिर और विशालरूप में चलाने के लिये वैदिक अनुसंधान निधि एकत्र की जायेगी। भारतीय इतिहास तथा अन्य भारतीय संस्कृति सम्बन्धी मौलिक साहित्य का निर्माण करने के निमित्त से श्री श्रद्धानन्द प्रतिष्ठान नाम की एक स्थिर संस्था की स्थापना की जायेगी। जयंती के अवसर पर जो उत्सव होगा, उसे हर प्रकार से स्वर्णीय बनाने का यत्न किया जायेगा। स्वर्ण जयंती की विस्तृत योजना शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

मुद्रक श्री— हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक विनय, पहला, दूसरा, और तीसरा भाग	श्री अभय	२), समाप्त, १॥)
वैदिक ब्रह्मचर्य-गीत	"	२)
ब्राह्मण की गौ	"	॥)
वेदगीताञ्जली (वैदिक गीतियाँ)	श्री वेदव्रत	२)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द	श्री चमूपति	२), १॥)
वरुण की नौका (दो भाग)	श्री प्रियव्रत	६)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१॥)
सन्ध्या सुमन	श्री नित्यानन्द	१।)
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश (तीन भाग)	श्री लब्भूराम नय्यड़	२।)
आत्ममीमांसा	श्री नन्दलाल	२)
भारत वर्ष का इतिहास [तीन भाग]	श्री रामदेव	७)
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द, अजिल्द	श्री चन्द्रगुप्त	७), ६)
अपने देश की कथा (दूसरा संस्करण) -बच्चों के लिए	श्री सत्यकेतु	१।=)
ऋषिदयानन्द का पत्र व्यवहार	श्री श्रद्धानन्द	॥)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव	श्री क्षितीश	।)
बालनीति कथामाला ॥=)	रघुवंश, संशोधित (तीन सर्ग)	।)
नीतिशतक (संशोधित) ≈)	साहित्य-दर्पण, संशोधित	२)
संस्कृत प्रवेशिका. प्रथम भाग. द्वितीय भाग		॥=), ॥=)
साहित्य-सुधासंग्रह. प्रथम, द्वितीय, और तृतीय बिन्दु		१।), १॥), १।)
विज्ञान प्रवेशिका (दो भाग) —मिडिल स्कूलों के लिए	श्री यज्ञदत्त	२।)
गुणात्मक विश्लेषण (बी. एस. सी. के लिए)	श्री रामशरण दास	२)
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार)	श्री ओम्प्रकाश	॥)
प्रार्थनावली (प्रेरणा देने वाली प्रार्थनाएं और गीतियां)	श्री वागीश	।)
आर्यभाषा पाठावली (आठवां संस्करण)	श्री भवानीप्रसाद	१॥)
आहार (भोजन सम्बन्धी पूर्ण जानकारी के लिए)	श्री रामरक्षपाठक	५)
जलचिकित्सा (पानी से ही रोगों को दूर करने के उपाय)	श्री देवराज	३॥)
लहसुनः प्याज (दूसरा परिवर्द्धित संस्करण)	श्री रामेश बेदी	२॥)
तुलसी (दूसरा परिवर्द्धित संस्करण)	"	२)
सोंठ (तीसरा परिवर्द्धित संस्करण)	"	१॥)
देहाती इलाज (दूसरा परिवर्द्धित संस्करण)	"	१)

मिलने का पता— प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल-पत्रिका

ज्येष्ठ २००६

तमसो मा ज्योतिर्गमय ।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

वर्ष १ | अङ्क १०

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति।
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

मस्तिष्क के विकास में भाषा का महत्व	आचार्य रघुवीर एम. ए., पी. एच. डी.
श्रुति	स्वामी कृष्णानन्द
भक्त का हठ और रूठना	श्री विष्णु मित्र
वसुन्धरा गो माता और उसका दूध	डाक्टर राम स्वरूप
उपवास का नैतिक मूल्य	प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.
गुरु-शिष्य	मुनि देवराज विद्यावाचस्पति

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

संसार सुखमय है या दुःखमय

श्री वागीश्वर जी विद्यालङ्कार

बचपन में अतीत जन्म की स्मृति

प्रकृति१ का कवि वर्ड्स वर्थ भी 'एक दिन उद्यान के किसी कुञ्ज में बैठकर, तन्मय हो वहां सहस्रों प्रकार की ध्वनियों को सुन रहा था। उस मधुर मानसिक दशा में—जिसमें सुखद भाव भी हृदय में वेदना उत्पन्न करने लगते हैं—प्रकृति ने उसकी मानव आत्मा को अपनी मनोहर रचनाओं के साथ जोड़ लिया और तब वह यह अनुभव करके कि मानव ने अपने आपको क्या से क्या बना डाला है, वह शोकाकुल हो गया।' कवि 'शैशव की स्मृतियों में अमर जीवन का आभास' नामक अपनी सुप्रसिद्ध कविता में अधिक विस्तार के साथ इस विषय को फिर लेता है२ – 'एक

१.—I heard a thousand blended notes
While in a grove I sat reclined,
In that sweet mood when pleasent thoughts
Bring sad thoughts to the mind.
To her fair works did nature link
The human soul that through me ran;
And much it grieved my heart to think
What man has made of man.

२.—There was a time when meadow, grove and stream,
The earth and every common sight,
To me did seam
Apparell'd in celestial light,
The glory and the freshness of a dream.
It is not now as it hath been of yore;

युग था जब मैदान, कुञ्ज, नदियां, पृथिवी—प्रत्येक, साधारण से साधारण दृश्य भी एक स्वर्गीय-सौन्दर्य, एक आभा, एक स्वप्नमयी अपूर्वता से आवृत था। पर आज वह बात नहीं। वह अतीत की वस्तु हो गया। अब मैं, कहीं भी चला जाऊं, दिन में या रात में वह, जो मैं देख चुका हूँ, फिर कभी न देख पाऊँगा। इन्द्र धनुष आज भी निकलता है और चला जाता है, गुलाब आज

Turn whereso-ever I may,
By night or day.
The things which I have seen I now can see no more.
The rainbow comes and goes,
And lovely is the rose;
The moon doth with delight
Look round her when the heavens are bare;
Waters on a starry night
Are beautiful and fair;
The sunshine is a glorious birth;
But yet I know, where ever I go,
That there hath passed away a glory from the earth.
Now, while the birds thus sing a joyous song,
And while the young lambs bowed
As to the tabor's sound,
To me alone there came a thought of grief;
A timely utterance gave that thought relief,
And I again am strong.
... ...
And all the earth is gay;
Land and sea
Give themselves up to jollity,
And with the heart of May
Doth every beast keep holiday:–
Thou child of joy,
Shout round me, let me hear thy shouts,
thou happy shepherd-boy !
Ye blessed creatures, I have heard the call
Ye to each other make; I see
The heavens laugh with you in your jubilee;

भी सुन्दर है, निर्मल नील नभ में निशानाथ आज भी उन्हीं उल्लासमय लोचनों से अपने चारों ओर निहारता है, तारकित निशा में प्रसन्न सलिलों की अब भी वही शोभा है तो भी प्रतीत होता है कि विश्व किसी विभूति से वंचित हो गया है। पक्षी मधुर राग गा रहे हैं; मेंमना, मानों तबले की ताल पर, नाच रहा है, ... मई मास है, समस्त प्रकृति प्रहर्ष पुलकित हो

My heart is at your festival
My head hath its coronal
The fulness of your bliss, I feel-I feel it all.
O evil day ! if I were sullen
While earth herself is adorning
This sweet May-morning;
And the children are culling
On every side
In a thousand valleys far and wide
Fresh flowers; while the sun shines, warm
And the babe leaps on his mother's arm:—
I hear I hear, with joy I hear !
—But there's a tree of many, one,
A single field which I have looked upon,
Both of then speak of something that is gone
The pansy at my feet
Doth the same tale repeat;
Whither is glad the visionary gleam ?
Where is it now, the glory and the dream ?
Our birth is but a sleep and a forgetting;
The Soul that rises with us, our life's star.
Hath had its setting
And cometh from afar:
Not in entire forgetfulness
And not in utter nakedness,
But trailling clouds of glory do we come
from God, who is our home:

... ...

Earth fills her lap with pleasures of her own;

रही है। उसमें आनन्द की तरंगे उठ रही हैं। गडरिये का लड़का किलकारी मार रहा है। उसे देख कर कवि कहता है 'हे भाग्यशाली जीवो! मैं तुम्हारी प्रसन्नता में स्वर्ग को तुम्हारे साथ हंसता देखता हूं, मेरा हृदय इस आनन्दोत्सव में तुम्हारे साथ है, तुम्हारे उल्लास की पूर्णता को मैं अनुभव कर रहा हूँ। इस सुखद ग्रीष्म-सुषमा के नव प्रभात में जब समस्त वसुधा अपना शृङ्गार कर रही है, घाटियों में बच्चे सर्वत्र नव-विकसित कुसुमों के संग्रह में मग्न हैं, सूर्य अपनी कोमल उष्ण-रश्मियों को फैला रहा है, बच्चा अपनी माता की गोद में उछल रहा है—ऐसे आनन्दमय समय में कौन अभागा उदास रह सकता है! परन्तु तो भी एक वृक्ष, एक क्षेत्र– जिन पर मेरी दृष्टि पड़ चुकी है—कह रहे हैं कि कुछ खो गया है। मेरे पैरों के पास खड़ा यह फूल भी उसी कथा को दोहरा रहा है। वह कल्पना-कोमल-कान्ति, वह स्वप्न-सुषुमा कहां गई?

स्मृति विलुप्त होने लगती है

इस लोक में हमारा जन्म एक निद्रा है, एक विस्मृति है। हमारी आत्मा का—जो हमारे जीवन का ध्रुवतारा है—उद्गम कहीं अन्यत्र है। वह बहुत दूर से चली आ रही है, न सर्वथा विस्मृति में, न सर्वथा प्रकाश में। अपने शाश्वतनीड ब्रह्म में से हम एक आभामय पुच्छल मेघ की तरह आ रहे हैं.......... स्नेहमयी धात्री की तरह प्रकृति, नवजात शिशु के समान हमें बड़े लाड़चाव दुलार मलार से पालती है। वह चाहती है कि हम अपने पुराने सम्बन्धों को बिलकुल भुला दें और एक मात्र उसी के हो जावें। वह तरह तरह के खिलौनों से हमें बहलाती है, और इस प्रयत्न में उसे पर्याप्त सफलता भी मिल जाती है। हम ज्यों ज्यों बड़े होते हैं इस संसार को ही अपना सर्वस्व समझने लगते हैं।

[असमाप्त

Yearungs she hath in her own natural kind,
And even with something of a mother's mind
And no unwothy aim,
The homely nurse doth all she can
To make her foster-child, her inmate, Man,
Forget the glories he hath known,
And that imperial palace whence he came.

... ...

Hence in a season of calm weather
Though inland for we be,
Our souls have sight of that immortal sea
Which brought us hither.

श्रुति प्रमाण का महत्त्व

श्री स्वामी कृष्णानन्द जी

शब्द के बिना समाज की कोई व्यवस्था नहीं बन सकती। और यदि शब्द का अभाव होता तो इस भूमण्डल पर मनुष्य भी नहीं दीखता। शब्द-प्रयोग के बिना किसी प्रकार की शिक्षा उन्नति, विकास, भौतिक तथा आध्यात्मिक विज्ञान का सूत्रपात ही न हुआ होता। मनुष्य तथा पशु में कोई अन्तर न रहता। मनुष्यों का परस्पर व्यवहार वाणी पर ही विशेषतया आश्रित है। यदि बहुत से गूंगे एकत्रित होजावें तो उनके परस्पर व्यवहार की मात्रा कितनी न्यून हो जाती है इसकी कल्पना की जा सकती है। संकेत मात्र से वे कहां तक अपने मनोभावों को एक दूसरे पर व्यक्त कर सकते हैं।

सम्पूर्ण मानवीय कार्यक्षेत्र में शब्द की आवश्यकता

समाचार पत्र आजकल के जीवन का अनिवार्य अंग हैं। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक, किसी भी कार्य क्षेत्र में मनुष्य अपने ध्येय को हानि पहुँचाए बिना समाचार पत्र अध्ययन से उदासीन नहीं रह सकता। मानव जाति इस समय परस्पर इस प्रकार संघटित हो चुकी है कि एक भाग की हलचल दूसरे भाग पर अवश्य प्रभाव डालती है। समाचार पत्र, रेडियो आदि जो कि इस युग की महती शक्ति हैं, शब्द प्रमाण के असाधारण उदाहरण हैं।

बड़े से बड़े बुद्धिमान् शिक्षित मनुष्य को शारीरिक रोगों की चिकित्सा के समय चिकित्सक के निर्देशानुसार नेत्र मूंद कर व्यवहार करना पड़ता है। साधारण मनुष्य विज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों या अन्तिम विशेष परिणामों को सिद्ध नहीं कर सकता, परन्तु उनको यथार्थ मानता हुआ यथावसर उनका प्रयोग करता है।

वर्तमान काल के उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा शब्द-प्रमाण का उपयोग

एक-एक विषय के प्रौढ़ प्रसिद्ध विद्वान् अन्य संबंधित विषयों के सिद्धान्तों को सिद्ध नहीं कर सकते परन्तु उनका उपयोग अपने कार्य क्षेत्र में किया ही करते हैं। जैसे गणित के अनेक बीज (गुर), फार्मूला, रसायन तथा भौतिकी शास्त्रों (Chemistry तथा Physics) में प्रयुक्त होते हैं। कारीगर (Mechanic) अपने २ कामों के आधारभूत सिद्धान्तों के रहस्य को न समझते हुए भी उनका उपयोग करता है। डार्विन के विकासवाद (Evolution Theory) को कितने व्यक्ति सिद्ध कर सकते हैं? परन्तु बहुत से फिर भी उसको तथ्य मानते हुए अपने विचार की पुष्टि में प्रमाण रूपेण उपस्थि[त] करते हैं।

कुछ वर्षों से Four dimention[al] Theory का आविष्कार हुआ है जिसमें लबाई चौड़ाई तथा ऊँचाई के अतिरिक्त एक अन्य dimension (दिशा) भी मानी जाती है। इसको भली भांति समझने वाले गणितज्ञ संसार

में बहुत थोड़े हैं, इतने थोड़े कि उनकी उङ्गलियों पर गिनती हो सकती है। सुप्रसिद्ध विद्यालयों के गणितज्ञ, उच्च शिक्षा के विशेष विख्यात तथा प्रवीण अध्यापकों की बुद्धि भी इस गम्भीर रहस्य को ग्रहण नहीं कर सकी परन्तु इस सिद्धान्त के जानकारों की बुद्धि पर विश्वास करते, हुए मानते ही हैं। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि आप्त पुरुषों के वचन में श्रद्धा तथा विश्वास किये बिना हमारा एक क्षण भी निर्वाह नहीं हो सकता। क्योंकि पुरुष का स्वरूप श्रद्धामय है:—

सत्त्वानुरूपस्य सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत
श्रद्धामयोऽयं पुरुषः योयच्छ्रद्धा स एव स।

"सब प्राणियों की स्व स्व बुद्धि अनुरूपा ही श्रद्धा होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है। जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा उसका स्वरूप है। हे अर्जुन ! सब प्राणियों की श्रद्धा विशिष्ट संस्कार युक्त अन्तःकरण के अनुरूप (समान) ही होती है। यह संसारी जीव श्रद्धा प्रधान ही होता है। जैसी जिसकी श्रद्धा है अर्थात् जैसे पदार्थों में, कार्यों, उद्देश्यों तथा पुरुषों में उसकी श्रद्धा होती है उस पुरुष को ऐसा ही समझो। अंग्रेजी में भी एक लोकोक्ति है—"Man is known by the company he keeps" मनुष्य अपने संग पहिचाना जाता है।

भौतिक विज्ञान-वादियों का आक्षेप

भेद केवल इसमें होता है कि सब का प्रमाण भूत पुरुष एक नहीं होता। इस पर भौतिक विज्ञान वादियों का कहना है कि भौतिक विज्ञान-वाद के सिद्धान्तों का आधार प्रयोग-सिद्ध प्रत्यक्ष है। क्योंकि प्रायः इसकी सिद्ध के बाह्य साधन हरेक को प्राप्त नहीं होते। एवं हरेक का मस्तिष्क भी इतनी योग्यता नहीं रखता कि वह स्वयं इन सिद्धान्तों के गूढ़ रहस्य को ग्रहण कर सके। तथापि भौतिक विज्ञानवाद में प्रवीण मनुष्यों ने प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा इन सिद्धान्तों को निर्धारित किया है। यदि किसी की इच्छा तथा योग्यता हो तो वह उपयुक्त प्रयोगों द्वारा अपने सिद्धान्तों को उसे भली भांति हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष दिखा सकते हैं।

आक्षेप का समाधान

श्रुति, उपनिषद् आदि प्रमाण भी सर्व साधारण जनता के लिए शब्द प्रमाणान्तर्गत है। जैसे वैज्ञानिक सिद्धान्त रूपी शब्द प्रमाण की आधार शिला प्रसिद्ध वैज्ञानिकों का प्रत्यक्ष है वैसे ही श्रुति भी ईश्वरीय प्रत्यक्ष ज्ञान है।

वेद और श्रुति शब्द की व्युत्पत्ति तथा निरुक्ति

वेद शब्द विद् ज्ञाने सत्तायां विचारणे, चेतनाख्याननिवासेषु तथा विद् लृ लाभे इत्यादि पांच धातुओं से व्युत्पन्न होता है। अर्थात् जिससे या जिसके द्वारा सर्व मनुष्य सम्पूर्ण सत्य विद्या को जानते हैं, जो मानवीय जीवन का आधार है जिसके द्वारा परम लाभ होता है, विवेक पुरस्सर जिसके द्वारा आत्मानात्म विवेचन किया जाता है, जो भगवान् के ज्ञान का सुप्रसिद्ध भण्डार, सत्य मार्ग का दर्शक तथा सर्व विध मानवीय व्यवहार का द्योतक आदि-स्रोत है, उसे वेद कहते हैं। ऐसे ही श्रुति शब्द भी 'श्रु' श्रवणे धातु से क्तिन् प्रत्यय द्वारा व्युत्पन्न होता है। श्रूयते सर्वे अनया स्व स्वानुरूपा शिक्षादय इति श्रुतिः। अर्थात् जिसका निर्माणकर्ता कोई

मनुष्य नहीं है। आदि सृष्टि से लेकर आज तक ब्रह्मादिक महर्षि तथा अन्य सब व्यक्ति जिसके द्वारा स्व स्वानुरूप शिक्षा तथा आदेश आदि सुनते हैं। जो सब मनुष्यों के हित को सुनाती है या जिसके द्वारा सुना जाता है, उसे श्रुति कहते हैं। यह भगवान् का ज्ञान ही हो सकता है।

श्रुति निरुक्ति तात्पर्य

ईश्वरीय प्रत्यक्ष ज्ञान का नाम वेद है। आभ्यन्तर दिव्य श्रोत्र सम्पन्न ऋषि मुनियों ने अपने स्वच्छ, स्थिर और सूक्ष्म अन्तःकरण रूपी आकाश में इस परम पुनीत ईश्वरीय वाणी रूप वेद को श्रवण किया है, इस लिए इसको श्रुति कहते हैं। उन्होंने इसका श्रवण इसी प्रकार किया है जिस प्रकार हम अपनी बाह्य श्रवणेन्द्रिय से साधारण शब्द तथा शिक्षा का श्रवण करते हैं। दिव्य श्रोत्र तथा आकाश-वाणी पर साधारण जनता तथा कुतर्कियों का आक्षेप सर्वथा ऐसे निराधार हैं, जिस प्रकार श्रवण शक्ति रहित वधिर का साधारण शब्द तथा श्रोत्र पर आक्षेप व्यर्थ होता है। दिव्य श्रोत्र तथा आकाश-वाणी पर अविश्वास तथा अश्रद्धा करना अपनी मूढता, अनभिज्ञता तथा अहंकृति का द्योतक है। मानवीय शक्ति की मर्यादा तथा अवधिका साधारण जन की सामर्थ्य, अनुभूति तथा विभूति द्वारा, निर्णय करना, मानवीय ऐश्वर्य, बल, बुद्धि आदि की हीनता तथा शोचनीय अवस्था को ही प्रमाणित करता है। क्योंकि मानवीय उन्नत बल बुद्धि तथा विकास आदि का अनुमान तो जगत् की सुप्रसिद्ध विशेष २ व्यक्तियों के निर्मल, उच्च तथा आदर्श भूत जीवनों द्वारा ही किया जा सकता है। जिस प्रकार शारीरिक बल, शौर्य तथा वीरता में भीम, अर्जुन, रुस्तम, राममूर्ति आदि से उज्ज्वल, सूक्ष्म तथा स्थिर बुद्धि सम्पन्नता में सुक्रात, न्यूटन, काण्ट तथा शंकर आदि से और दया धर्म, त्याग, योग, अहिंसा राजनीति आदि के आदर्शभूत राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, गांधी आदि से अनुमान करना उचित होगा, ये श्रेष्ठ व्युत्पन्न व्यक्ति ही हमारे लिए आदर्श हो सकते हैं। हम अपनी बुद्धि, शक्ति तथा अनुभव के आधार पर उनके शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास तथा उन्नत स्थिति को यत्किञ्चित भी नहीं समझ सकते। उनके उज्ज्वल दिव्य मुख देखने के लिए, उनके परम पावन चरण कमलों में बैठने के लिए और उनके पद चिन्हों पर चलने के लिए हमारे पास श्रद्धा ही केवल एक सहारा है। इस श्रद्धा रूपी अलौकिक चक्षु से ही हम उनकी दिव्य झलक निहार सकते हैं। तथा शक्ति, बुद्धि, धर्म, न्याय, मर्यादा और जिज्ञासा हीन अपने जीवनों को हम उन्नति के शिखर पर पहुँचाने की आशा कर सकते हैं। सर्व साधारण जन की सामान्य स्थिति तो इतनी दुःखमयी नरक-रूपा है कि ऐसी दशा में जीवित रहने से मृत्यु ही अच्छी प्रतीत होने लगती है। इन महान् तथा आदर्श पुरुषों का आदर्श ही जीवन में ज्योति तथा प्रकाश स्तंभ तथा आशा का संचार कर सकता है।

वेद निरुक्ति तात्पर्य

ऐसे दिव्य चक्षु सम्पन्न ऋषियों ने वेद मंत्रों को प्रत्यक्ष देखा। तत्त्वज्ञ तथा साक्षात्कार सम्पन्न ही ऋषि कहलाते हैं। जिस प्रकार हम इन भौतिक चर्म चक्षुओं से पुस्तक रूपी वेद को देखते तथा पढ़ते हैं, उसी प्रकार उस परम पूज्य महर्षियों ने परलोक तथा पुनर्जन्म आदि को अपने दिव्य नेत्रों से प्रत्यक्ष देखा। इस लिए इस ज्ञान का नाम वेद (प्रत्यक्ष) ज्ञान पड़ा। उन

महा पुरुषों के ऐसे प्रत्यक्ष ज्ञान को समझने के लिए आचार्य कुल में रहकर अध्ययन तथा साधन करने के पश्चात् योग्यता उत्पन्न होती है। परन्तु ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान वेद नित्य सिद्ध है। वही उपर्युक्त शिक्षा परम्परा का मूल है। प्रातः स्मरणीय, योग के आचार्य महर्षि पतञ्जलि निजानुभूत योग शास्त्र में कहते हैं—

"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"

योग १–२६

"ईश्वर प्रति सर्ग के आरम्भ में उत्पन्न होने वाले ब्रह्मादिक का भी गुरु है (ज्ञान चक्षु प्रदातापिता है)। क्योंकि ब्रह्मादि देश काल तथा वस्तु के परिच्छेद से परिच्छिन्न तथा मर्यादित हैं। और षड्भाव विकार युक्त होने के कारण सादि तथा सान्त हैं। परन्तु ईश्वर देश, काल तथा वस्तु के परिच्छेद से अनवच्छिन्न, अमर्यादित अनादि, अनन्त सर्वज्ञ तथा निरतिशय ज्ञानघन हैं। क्योंकि उत्पद्यमान पुरुष शिक्षित उत्पन्न नहीं होता उसे किसी न किसी शिक्षक की आवश्यकता होती है। सर्गारंभ में उत्पन्न होने वाले ब्रह्मादि का कोई न कोई शिक्षा प्रदान करने वाला गुरु होना चाहिए। अतः नित्य शुद्ध बुद्ध, सदा मुक्त स्वभाव, सर्वज्ञ, सर्व व्यापक निर्विकार, स्वतः सिद्ध दया-निधि, आदि-शिक्षक ईश्वर को ही सब का गुरु मानना पड़ता है। क्योंकि उसके अतिरिक्त उसके समान और दूसरा कोई नहीं है। श्रुति यह घोषणा कर रही है कि—

"यो ब्रह्मणो विद्धाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै (श्वेताश्वतर उप॰ ६–१८) जो सर्ववित् ईश्वर सर्ग के आदि में ब्रह्मा को उत्पन्न करके उसके लिए वेद प्रदान करता है। मुमुक्षु को उसी की शरण लेनी चाहिए।

वेद की अपौरुषेयता

सत्य विद्याओं का मूल वेद, ईश्वर का नित्य स्वतः सिद्ध, स्वाभाविक ज्ञान है। वे इसे मनुष्य मात्र के लिए कल्याणार्थ ब्रह्मादि को प्रदान करते हैं। इनको किसी उत्पत्ति विनाश शील कवि या विद्वान् ने अपने चक्षु आदि इन्द्रियों या मनोबुद्धि द्वारा उपलब्ध ज्ञान के प्रचारार्थ निर्माण नहीं किया। परम दयालु करुणा निधान, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान्, व देश कालादि अनवच्छिन्न ईश्वर के इस स्वतः सिद्ध स्वाभाविक ज्ञान में वेद, उपनिषद्, शास्त्र, स्मृति, इतिहास, पुराणादि के शतशः प्रमाण हैं। जैसे "शास्त्र योनित्वात्" ब्रह्मसूत्र १.१.३ (वेद का कारण ईश्वर है)। 'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् (वैशेषिक १-१३–'धर्म का कर्तव्य रूप से ईश्वर द्वारा प्रतिपादित होने से वेद की प्रामाण्यता है।

न्याय २–१–६७–यजुर्वेद ४०–८ इत्यादि।

"God's mind is the natural order of the Universe" Plato.

'बुद्धि पूर्वक तथा यौक्तिक संसार का रचना-क्रम ही ईश्वरीय ज्ञान का द्योतक है। अतएव सर्वत्र व्यापी तथा निरन्तर नियत क्रम आदि ईश्वरीय ज्ञान की ही संसार पर एक मात्र छाप है।" "बुद्धि पूर्वा वाक्य कृतिर्वेदे" वैशेषिक (१. १.१) "एवं वेद के वाक्यों की रचना भी अलौकिक ज्ञान पूर्वक ही है।" वह ज्ञान भगवान् से अतिरिक्त अन्य किसी का नहीं हो सकता। अतः इससे यही सिद्ध होता है कि वेद किसी पुरुष की कृति नहीं है प्रत्युत भगवान् का ज्ञान है तभी यह अपौरुषेय कहलाता है।

राष्ट्रभाषा का प्रश्न

श्री सत्यकाम

राष्ट्र भाषा का प्रश्न धीरे २ महत्व पकड़ता जा रहा है ! यद्यपि इस विषय में विधान-परिषद् ने निर्णय अगली निर्वाचित सरकार पर छोड़ा है, पर तो भी देश के उच्चतम नेताओं ने इस विषय में अपनी २ सम्मति स्थिर करनी प्रारम्भ की है ! इसी बीच समय २ पर राष्ट्र को इस विषय पर राजेन्द्र बाबू, पंडित नेहरू, मशरूवाला एवं अन्यान्य विद्वानों के मतों को जानने का अवसर मिला है ! उन सब युक्तियों को न दोहराने का मौका है और न उन्हें दोहराना उपयुक्त है !

राष्ट्रभाषा का नाम और रूप 'हिन्दी' ही हो, इस विषय में अब दो सम्मतियां नहीं प्रतीत होतीं ! हां, अब भी कुछ २ विरोध दक्षिणी हिन्द से नज़र आता है। पर राष्ट्र की बढ़ती हुई विचारधारा उस संकीर्णता से कलुषित न होगी– ऐसे आभास मिल रहे हैं ! पर राष्ट्रभाषा के स्थान पर हिन्दी' का अधिकार स्वीकार करते हुवे भी प्रायः नेता लोग उसकी 'उदार व्यापकता' की शर्त रख रहे हैं ! निश्चय ही आज प्रत्येक भाषा अपने को अधिक से अधिक विस्तृत व उदार बना कर ही रह सकती है। हिन्दी भी अपवाद नहीं होगी ! आज भी हिन्दी में बहुत ज्यादा ऐसे शब्द प्रचलित हैं, जिन्हें 'अहिन्दी' कहा जा सकता है, परन्तु हम उन्हें निकालने नहीं जा रहे और न ऐसा किया ही जा सकता है। परन्तु उन शब्दों के साहित्य व विज्ञान में समाविष्ट होने की एक ही कसौटी है, कि वे व्याकरण के अनुसार ढल सकें ! क्योंकि किसी भी भाषा की स्थापिता व वैज्ञानिकता उसके व्याकरण पर ही आधारित होती है ! और स्वभावतः हिन्दी का व्याकरण, अन्य भारतीय भाषाओं की भांति रचनात्मक क्षेत्र में, 'संस्कृत' पर ही आधारित है ! लिहाज़ा, शब्दावली जैसे विशुद्ध व्याकरणात्मक विषय में संस्कृत' व उसके व्याकरण के सिवाय अन्य 'दो तीन' भाषाओं को स्थान देकर, उसकी वैज्ञानिकता को नष्ट करना ही होगा ! और सम्पूर्ण राष्ट्र के ज्ञान–विज्ञान की एकता एवं उसकी अभिवृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण राष्ट्र की 'शब्दावली' एक ही हो, ताकि उपयोगिता 'स्थान परिवर्तन' से प्रभावित न हो ! इसके बिना राष्ट्रीय प्रगति असम्भव है ! और जब शब्दावली एवं राष्ट्रभाषा के विषय में सब एकमत हो जाते हैं, तब एक अन्य प्रश्न उठता है "राष्ट्रभाषा का स्थान क्या हो ?"

आज बहुत से प्रादेशिक भाषाओं के समर्थक 'राष्ट्रभाषा' की सत्ता से भयभीत से प्रतीत होते हैं। पर उनका यह भय अनावश्यक है। और राष्ट्रभाषा के प्रेमी जो आज पाठ्य-क्रम में अंग्रेजी की जगह 'राष्ट्रभाषा' को देना चाहते हैं, वे भी भूल में हैं; क्योंकि यह अनावश्यक है। राष्ट्रभाषा के महत्व से प्रादेशिक भाषाओं का महत्व किसी कदर कम नहीं। उनका स्वतन्त्र विकास होने देना चाहिए ! किन्तु प्रश्न है कि

क्या इस प्रकार राष्ट्र में विभाग अधिक से अधिक न हो जाएंगे ? पर इन सब समस्याओं का समाधान बहुत आसानी से हो सकता है। जब हमने 'राष्ट्रभाषा' हिन्दी के साथ 'नागरी' लिपि को वैज्ञानिक, सर्वाङ्गपूर्ण एवं सर्व सुलभ समझ लिया और उसे 'राष्ट्रीय' लिपि के पद पर आसीन किया तो अन्य प्रादेशिक भाषाओं के लिए उनकी पृथक् लिपि के अस्तित्व की आवश्यकता नहीं रहती। यदि समस्त प्रादेशिक भाषाओं को परस्पर सहानुभूति एवं सम्पर्क से आगे बढ़ना है और 'देववाणी' संस्कृत से परिपुष्ट होना है तो लिपियों में सर्व श्रेष्ठ लिपि 'देव नागरी' को ही सब की माध्यम रूप एक मात्र 'राष्ट्रीय लिपि' स्वीकार करना होगा। यदि ऐसा हो जाय तो आवश्यक न रहेगा कि राष्ट्र का प्रत्येक बालक राष्ट्रभाषा जानता हो ! सारे राष्ट्र की लिपि एक होगी, सारे राष्ट्र की शब्दावली एक होगी—उन्हें आपसी आदान-प्रदान की जो बाधा होगी, वह काफी अंश तक इसी प्रकार पूरी हो जायगी।

किन्तु राष्ट्र की सेवा में रत मनुष्यों को शासन, विज्ञान, नीति व व्यापार आदि में जो आपसी सम्बन्ध व सम्पर्क बढ़ाने के लिए माध्यम की जरूरत होगी, वह हाई स्कूल व कॉलिज के पाठ्य-क्रमों में राष्ट्र भाषा को एक 'साहित्य-विषय' के तौर पर अनिवार्य रख कर पूरी की जा सकेगी। प्रान्तीय और केन्द्रीय विभागों में आने वाले उम्मीदवारों को इस विषय में विशेष परीक्षा के भी प्रबन्ध किए जा सकते हैं। मतलब यह कि 'राष्ट्रभाषा' किसी भय का कारण न बनेगी और राष्ट्र की एकता का कार्य भी पूरा हो जायेगा !

पर हां, एक और आवश्यक प्रश्न है, जिस तरफ अभी उचित ध्यान नहीं दिया जा रहा। 'संस्कृत' की महत्ता आज सर्व विदित है और भारतीय भाषाओं, ज्ञान-विज्ञान एवं भारतीय संस्कृति के प्रसार-प्रचार के लिए भारत की प्रत्येक सन्तति को इस देववाणी का पढ़ना अनिवार्य होना चाहिए ! आज भारतीय केन्द्रीय सरकार भी इस दिशा में महत्व पूर्ण विचार कर रही है और यूनिवर्सिटी कमीशन को इस बात की ओर भी अपना ध्यान केन्द्रित करने के लिए कहा गया है। पर यदि इस भाषा की महत्ता को स्वीकार कर वस्तुतः समुचित स्थान देना है तो उसे आज अंग्रेज़ी द्वारा अधिकृत जगह पाठ्यक्रम में देनी पड़ेगी। इस प्रकार हम अपनी संस्कृति की सुरक्षा को स्थाई कर सकेंगे !

अतः मोटे शब्दों में;

यदि हम सचमुच अपने ज्ञान-विज्ञान में, अपनी संस्कृति और 'अभारतीय' खतरे का सही उपाय और निरोध करना चाहते हैं तो उसका प्रतिरोध वर्तमान पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण द्वारा न हो सकेगा। उसके लिए देश के आबाल वृद्ध को भारतीय संस्कृति का चिर-नवीन-सत्य सन्देश पहुँचाना होगा ! और वह तभी सम्भव है यदि इस उपेक्षित समस्या का समुचित हल किया जाय !

[१] प्रादेशिक भाषा, [२] राष्ट्रभाषा, [३] राष्ट्रलिपि, और [४] संस्कृत, इन चारों के पृथक् २ महत्व को अच्छी प्रकार विचार कर यदि इन्हें राष्ट्र निर्माण में उपयुक्त स्थान दिया गया, तो निश्चय ही वह दिन दूर नहीं जब भारत फिर विश्व के लिए 'प्रकाश केन्द्र' बनेगा।

चन्द्रमा के प्रकाश पर वैदिक विचार

श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा

सूर्य के पश्चात् चन्द्रमा समस्त ग्रह, उपग्रहों में सब से बड़ा दृष्टिगोचर होता है। चन्द्रमा घटता बढ़ता रहता है।१ चन्द्रमा अन्तरिक्ष में पक्षी के सदृश दौड़ता हुआ ज्ञात होता है।२ चन्द्रमा अपने कक्षावृत्त का चक्र अत्यन्त शीघ्र लगा लेता है अतएव चन्द्रमा को 'गोतम' भी कहते हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिक इस सिद्धान्त को मानते हैं कि चन्द्रमा में अपना प्रकाश नहीं है, वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। यह सिद्धान्त पाश्चात्यों ने वेदों से लिया है। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने भी अपने ग्रन्थों में यही बात लिखी है।३

यहां वेदों से कतिपय मन्त्र इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं—

"अत्राह गोरमन्वत नामत्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे" (ऋग्वेद मण्डल १. सूक्त ८४ मंत्र १५)

इस मंत्र पर श्री यास्काचार्य जी लिखते हैं –

"अत्राह गोः सममंसतादित्यरश्मयः। स्वं नामापीच्यमपचितम्, अपगतं, अपहितं. अन्तर्हितं वाऽमुत्र चन्द्रमसो गृहे॥" (निरुक्त, नैगम काण्ड ४।२५)

मंत्र का देवता इन्द्र है। (अत्र चन्द्रमसो गृहे) इस चन्द्र मण्डल में (ह) निश्चय पूर्वक (इत्था त्वष्टुः अपीच्यम्) उस आदित्य से निकल कर गए हुए (गोः नाम) सुषुम्णा नामक सूर्य रश्मि के अवस्थान को (अमंसत) आदित्य रश्मियें अपना अवस्थान मानती हैं।

इस मंत्र से दो वैज्ञानिक सिद्धान्तों की पुष्टि भली प्रकार होती है (१) चन्द्रमा स्वयं प्रकाशमान नहीं, प्रत्युत सूर्य से प्रकाश लेता है। (२) 'अत्र' से समीप का निर्देश होता है, और 'इत्था' से दूर का।४

उपर्युक्त ऋग्वेद के मंत्र पर श्री सायणाचार्य जी लिखते हैं—"उदकमये स्वच्छे चन्द्रबिम्बे सूर्यकिरणाः प्रतिफलन्ति।"

अर्थात् जलमय स्वच्छ चन्द्रमा के मण्डल में सूर्य की किरणें प्रतिफलित होती हैं।

ऋग्वेद के अपने आंग्ल भाषा के अनुवाद में इस मंत्र की व्याख्या करते हुए प्रो० एच. एच. विल्सन एम. ए., एफ. आर. एस. टिप्पणी में लिखते हैं—

"इस मंत्र में अस्पष्ट रूप से ज्योतिष की एक घटना का वर्णन किया गया प्रतीत होता है वह

१.–देखो यजुर्वेद अ० २३. मंत्र १०, ४६–'चन्द्रमाजयते पुनः'–चन्द्रमा अपने आकार को पुनः प्राप्त होता है।

२.–यजु० अ० २३. मंत्र ६०

३.–देखो-'सत्यार्थ प्रकाश' अष्टम समुल्लास तथा 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' प्रकाश्य प्रकाशक विषयः।"

४.–देखो—पं० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार, पालीरत्न कृत 'निरुक्त भाष्य' पूर्वार्ध, प्रथमावृत्ति पृष्ठ २६०।

यह कि केवल सूर्य के प्रकाश के द्वारा चन्द्रमा प्रकाशित है। यह घटना वेदों के ऋषियों को ज्ञात थी।"

इस मंत्र की व्याख्या करते हुए चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसा तीर्थ लिखते हैं—

"(अत्र) इस संसार में विद्वान् जन (त्वष्टुः) सूर्य के (गोः) किरणों जैसे (अपीच्यम्) उत्तम, प्रकट, उज्ज्वल (नाम) स्वरूप को (अमन्वत) जानते हैं (इत्था) इसी प्रकार के स्वरूप को वे (चन्द्रमसः गृहे) चन्द्रमा के लोक के भीतर भी जानें, अर्थात् वहां भी वही सूर्य-रश्मिगों का प्रकाश है।"५

पं० श्री राम गोविन्द त्रिवेदी वेदान्त शास्त्री और पं० गौरीनाथ झा व्याकरण तीर्थ लिखते हैं—

"इस गमनशील चन्द्र मण्डल में अन्तर्हित जो त्वष्टु-तेज या सूर्य तेज है, वह आदित्य रश्मि ही है, ऐसा जाना।"६

निरुक्त में पृथ्वी नामों की व्याख्या के प्रसङ्ग में गौ शब्द की व्याख्या यास्काचार्य ने विशेष रूप से की है इस प्रसङ्ग में यास्काचार्य लिखते हैं—"अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते, तदेतेनोपोक्षितव्यम। आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवतीति" (निरुक्त, नघैण्टुक काण्ड २।६)।

अर्थात्—"सूर्य की रश्मियों का एक पुञ्ज चन्द्रमा को चमका रहा है—यह बात वेदज्ञों को ध्यान में रखनी चाहिये। इस चन्द्रमा की दीप्ति अर्थात् प्रकाश आदित्य के कारण है।"

यास्काचार्य के इस लेख पर डॉ० लक्ष्मण स्वरूप जी एम. ए., डी फिल्., निरुक्त के आंग्ल भाषा के अनुवाद की टिप्पणी में लिखते हैं—

'This shows that Yaska was aquainted with the nonself-luminous character of the moon."

अर्थात् यह लेख दर्शाता है कि यास्काचार्य चन्द्रमा के स्वतः प्रकाशित न होने की घटना से परिचित था।

"दिवि सोमो अधिश्रितः" (अथर्ववेद, काण्ड १४ सूक्त १, मंत्र १)

इस मंत्र का अर्थ करते हुए वेद क्रान्त-दर्शी महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं—

"(दिवि सोमो०) इसी प्रकार दिवि अर्थात् सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशित होता है। उसमें जितना प्रकाश है सो सूर्य आदि लोक का है। और ईश्वर का प्रकाश तो सब में है। परन्तु चन्द्र आदि लोकों में अपना प्रकाश नहीं है किन्तु सूर्य आदि लोकों से ही चन्द्र और पृथिव्यादि लोक प्रकाशित हो रहे हैं।"७

पुनः इस मंत्र पर महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—"जैसे यह चन्द्रलोक सूर्य से प्रकाशित होता है वैसे ही पृथिव्यादि लोक भी सूर्य के प्रकाश ही से प्रकाशित होते हैं।"८

इस मंत्र पर पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार

५.–देखो–"ऋग्वेद संहिता भाषा भाष्य" प्रथम खण्ड, द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ ४८६।

६.–देखो–'ऋग्वेद संहिता' प्रथम अष्टक, प्रथम संस्करण, पृष्ठ १२५।

७.–देखो–ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रकाश्य प्रकाशक विषयः।

८.–'सत्यार्थ-प्रकाश' अष्टम समुल्लासः पृष्ठ १४३ (अट्ठाईसवां अजमेर संस्करण वि० २००२)

मीमांसा तीर्थ लिखते हैं—

"(दिवि) प्रकाशमान सूर्य के आश्रय पर (सोम) सोम चन्द्र (आश्रितः आश्रित है। और (दिवि सोमः अधिश्रितः) प्रकाशमान सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष में सोम वीर्य आश्रित हैं।"६

"सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य
नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम।"
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्
ताभ्यः स्वाहा। यजु० अ० १८, मन्त्र ४०)

अर्थ—"उत्तम सुख देने हारी 'सुषुम्णा' नामक सूर्य रश्मि है, चन्द्रमा उस रश्मि का धारण करने वाला 'गन्धर्व' है। उस चन्द्रमा से सम्बन्ध रखने वाले नक्षत्र अन्तरिक्ष में घूमने के कारण 'अप्सरस्' हैं, जो प्रकाश-कर्त्ता होने से 'भेकुरी'* नामक हैं। वह चन्द्रमा हमारे इस ब्रह्म तेज, तथा क्षत्र, तेज की रक्षा करे। (वाट्) अपने कार्यों को चलाने के लिए (तस्मै स्वाहा) हम उस चन्द्रमा का यथार्थ-ज्ञान उपलब्ध करें। (ताभ्यः स्वाहा) और उन 'अप्सरा' नक्षत्रों का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें।"

उपर्युक्त मंत्र से स्पष्ट है कि चन्द्रमा सूर्य की 'सुषुम्ण' रश्मि के द्वारा प्रकाशित होता, स्वयं प्रकाशमान नहीं। साथ ही चन्द्रमा को जो 'गन्धर्व' कहा गया, उससे यह भी पूर्णतया ज्ञात हो गया कि सूर्य की सुषुम्ण रश्मि का नाम 'गो' है, उसको धारण करने से चन्द्रमा 'गन्धर्व' हुआ।

ठाकुर लक्ष्मी नारायण सिंह 'सुधांशु' हिन्दू-विश्व विद्यालय, काशी अपने "वैदिक काल का विवाह विधान" शीर्षक लेख में लिखते हैं१०—

'विज्ञान ने यह प्रतिपादित किया है कि सूर्य की किरणों से ही चन्द्रमा प्रकाशमान रहता है।"

इस लेख पर 'गङ्गा' के सम्पादक श्री राम गोविन्द त्रिवेदी वेदान्त शास्त्री, पं० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ, श्री शिव पूजन सहाय जी अपनी पाद-टिप्पणी में लिखते हैं११—

"ऋग्वेद (१।८४।१५) और निरुक्त (२।६) में सूर्य-किरणों से चन्द्र के प्रकाशित होने का स्पष्ट उल्लेख है।"

अतएव महर्षि दयानन्द जी महाराज ने जो सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होता है, अक्षरशः ठीक है।

६.—'अथर्व वेद संहिता' भाषा भाष्य, तृतीय खंड, द्वितीयावृत्ति. पृष्ठ ४६६—५००

* "नक्षत्राणि भाकुरयोह नाम एते भा ह्य हि नक्षत्राणि कुर्वन्ति" (शतपथ ब्रा० ६।४।१।६)

१०.—मासिक पत्रिका 'गङ्गा', भागलपुर, का 'वेदाङ्क' प्रवाह २, जनवरी सन् १६३२ ई० तरङ्ग १, पृष्ठ २२७।

११.—वही।

निर्भयता

श्री रामनाथ वेदालङ्कार

मे प्राण मा बिभेः
ऐ मेरे प्राण! भयभीत मत हो।
अभय सोमः सविता नः कृणोतु
चांद, सूर्य हमें निर्भयता दें।
अशत्रु इन्द्रो अभयं नः कृणोतु
इन्द्र हमें अशत्रु और निर्भय करे।

स्वस्ति नो अभयं च नः
हम सुखी हों, हम निर्भय हों।
यतो भयमभयं तन्नो अस्तु
जिससे बड़े-बड़ों को भय लगता है, वह भी हमें भयभीत न कर सके।

जौनसार बावर की समस्याएं

श्री धर्मदेव शास्त्री

जौनसार बावर देहरादून के जिले के अन्तर्गत एक अर्धबहिष्कृत प्रदेश है, जिसकी आबादी करीब ६० हजार और क्षेत्रफल करीब ५०० वर्ग मील है यह प्रदेश अर्धबहिष्कृत होने के कारण सीधा गवर्नर के शासनादेश में है, अब भारत स्वतंत्र हो गया है, सब देशवासियों के समान जौनसार बावर के निवासी भी राजनीतक दृष्टि से स्वतंत्र हो गये हैं, ऐसा कहा जाय तो ठीक है, परन्तु इस प्रदेश के निवासी आज भी अपने आपको पराधीन ही मानते हैं।

अपेक्षाकृत छोटा होने पर भी यह प्रदेश महत्वपूर्ण है, इस प्रदेश के निवासी आज भी हजारों वर्ष पुराने रिवाजों को मान और पाल रहे हैं, पाण्डवों के समय से प्रचलित बहुपति प्रथा अथवा सब भाइयों की एक ही पत्नी होने का रिवाज आज भी यहां चलता है, पृथक शादियां होने पर सब भाई बंट जायेंगे और उस दशा में खेती नहीं चलेगी यह तर्क प्राय यहां के लोग देते हैं. वस्तुतः बहुपति प्रथा का कारण सांस्कृतिक अधिक है आर्थिक कम है, पुराने समय का यह रिवाज आज भी यहां इस लिये चालू है कि इस प्रदेश में शिक्षा का प्रवेश नहीं हुआ है और नई रोशनी नई विचार धारा का अन्य प्रदेशों के समान इधर प्रवेश नहीं हुआ, अब यहां शिक्षा का कुछ प्रचार होने लगा है, इस लिये आशा है यहां के निवासी भी शेष देश के समान उन्नत होंगे।

जौनसार बावर की सबसे प्रमुख समस्या शिक्षा है, हर्ष की बात है कि प्रान्तीय सरकार ने इस प्रदेश में १०५ प्राइमरी स्कूल खोलने की योजना बनाई है, हमारा सरकार से अनुरोध है कि यहां केवल साक्षरता का प्रचार उपयोगी नहीं है, इस प्रदेश का आर्थिक जीवन नष्ट न हो इस लिये आवश्यक है कि इस प्रदेश में ऊन की कताई बुनाई को आधार बनाकर बेसिक शिक्षा दी जाय यदि ऐसा न किया गया तो यहां शिक्षा का प्रसार नहीं होगा, आज माता पिता अपने बच्चों से भेड़—बकरी का पालन कराना उन्हें पढ़ाने से अधिक उपयोगी मानते हैं, यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि इस प्रदेश का मुख्य व्यवसाय खेती और पशु पालन है, प्राय यहां के निवासी सारा साल ऊनी वस्त्र धारण करते हैं, बावर के निवासी तो मुख्यतः भेड़ बकरी ही पालते हैं, इनका देवता सिलगुरु है जो भेड़ का देवता माना गया है। भेड़ का पालन बालों के लिये तथा बकरी का पालन मांस के लिये होता है। ऊपर पहाड़ी भाग में बकरों से माल इधर उधर ले जाने का भी कार्य लिया जाता है, इस लिये यहां शिक्षा के साथ ही ऊन का उत्पादन अर्थात् भेड़ बकरी की वंश बृद्धि तथा कताई बुनाई का भी उत्पादन हो तभी इस प्रदेश के निवासियों की उन्नति होगी, केवल साक्षरता यहां जन प्रिय नहीं होगी तथा यह भी भय है कि इससे यहां की आर्थिक दशा कहीं खराब सी न

हो जाय।

अब इस प्रदेश के निवासी जाग रहे हैं, मेरा यह दृढ़ मत है कि जौनसार बावर का अर्धबहिष्कृत न रखा जाय, यह भी शेष प्रान्त और देश के समान ही राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र हो तथा जो कानून यू. पी. एसेम्बली और केन्द्रिय सरकार द्वारा बनें उनसे यहां की जनता को भी लाभ उठाने का अवसर मिले इस प्रकार यह प्रदेश शेष भारत के साथ मिल जायगा और धीरे २ यहां की जनता समान स्तर पर उठ जायेगी।

करीब पौन सदी से इस प्रदेश में भूमि का बन्दोबस्त नहीं हुआ, इसलिये यहां भूमि का रेकार्ड ठीक नहीं रहा, इसका परिणाम यह है कि इस प्रदेश की जनता और विशेष कर यहां के आदि वासी हरिजन कोल्टे बाजगी आदि असवर्ण लोग गुलामी की अवस्था में रह रहे हैं. प्रान्तीय सरकार इस बारे में कुछ करने जा रही है, हम चाहते हैं, यहां की भूमि का बन्दोबस्त इस प्रकार से हो कि सभी यहां के निवासियों को उचित मार्ग मिले जिससे यहां स्थायी शान्ति हो।

जंगल यहां के बहुमूल्य हैं साथ ही जगलात विभाग के व्यवहार के प्रति यहां की जनता में असंतोष भी है, इस लिये हमारी इच्छा है कि भूमि के बन्दोबस्त के समय यहां जंगलात का भी नये सिरे से बन्दोबस्त हो। जो भूमि खेती के योग्य न हो तथा अन्य उपयोग में न आवे उसे जंगल उपजाने में उपयुक्त किया जाय, ऐसे जंगलों पर प्रदेश निवासियों का अधिकार रहे। ऐसा करने से जंगलात में भी वृद्धि होगी तथा जनता भी संतुष्ट होगी।

अंग्रेजी राज्य में इस प्रदेश का शासन चलाने की सुविधा के लिये प्रत्येक खत में एक सदर सयाना बनाया गया था, सयाने को कर वसूल करने का ही नहीं, परन्तु फसल कर लगाने का, घटाने और बढ़ाने का भी अधिकार है, अब यहां की जनता इस सयानाचारी को समाप्त करना चाहती है हमारा प्रस्ताव है कि जौनसार बावर में युक्त प्रान्त के अन्य भागों के समान पंचायती राज कानून लागू कर दिया जाय सयानाचारी प्रथा को सर्वथा समाप्त करके कर वसूल करने का कार्य पंचायतों को दे दिया जाय ऐसा करने से यहां की जनता को बहुत सन्तोष होगा, जिस प्रकार १५ अगस्त १९४७ को सारे देश ने स्वतन्त्रता दिवस मनाया है इसी प्रकार जौनसार बावर की जनता उस दिन स्वतंत्रता दिवस मनायेगी जिस दिन यहां सयानाचारी प्रथा समाप्त की जायगी।

इस प्रदेश की जनता का हित इसी में है कि यहां के योग्य विद्यार्थी पढ़ने के लिये तथा उद्योग सीखने के लिये अपने प्रदेश से निकलें, हमारा सुझाव है कि युक्त-प्रान्त की सरकार कालेज में पढ़ने वाले इस प्रदेश के प्रत्येक विद्यार्थी को कुछ वर्षों तक छात्रवृत्ति दें, जिससे शिक्षा की ओर रुचि बढ़े, साथ ही मैट्रिक तक पढ़ने वाले कुछ योग्य युवकों को कानूनगो आदि कार्यों के लिये सरकार कुछ वर्षों तक मनोनीत करने का रिवाज चलावे, यहां इतना कह देना ठीक होगा कि इस प्रदेश में मैट्रिक पास युवक आज से दो वर्ष पूर्व केवल चार थे, अब दस से अधिक हैं।

मैं चाहता हूँ जौनसार बावर की उन्नति हो, हमारे प्रान्त में यह प्रदेश अपना स्थान प्राप्त करे, मुझे जौनसार बावर के उज्वल भविष्य में पूरा विश्वास है। गत सात वर्षों से इस प्रदेश की समीप से सेवा करने के कारण मैंने जो कुछ लिखा है उसके पीछे अनुभव हैं, इतना समझने से पाठकों को यह लेख उपयोगी प्रतीत होगा।

मालाकार

श्री प्रभुदयाल अग्निहोत्री

वह कुम्भकार न बन,

जो छोटे बड़े मिट्टी के लोदों को चाक पर चढ़ा कर उन्हें चारों ओर चक्कर खिलाया करता है, पीट-पीट कर किसी को छोटा और किसी को बड़ा बनाने की धुन में तब तक पीटता जाता है जब तक उनकी सहन-शक्ति बिलकुल जवाब नहीं दे जाती, तब वह उनका नाम धरता है पात्र। और ज़रा पात्रता तो देखो, दिखने में बाहर से जितना बड़ा भीतर से उतना खाली।

वह स्वर्णकार न बन,

जो सवेरे से शाम तक प्राणों को भट्टी में झोंक झोंक जलाता है, उनकी ज्वाला में अपने धातुओं को गला गला कर उनका कालुष्य निकालता है, फूंक फूँक कर उनमें आभा भरता है। फिर अपने सांचे में ढालता है, गढ़ता है, चमकाता है और चमका कर दूकान के दरवाजे पर लटका देता है जिससे फुटपाथ पर चलती हुई कोई ताम्रवर्णी कृषकबाला देखे, ललचाये और कलेजा मसोस कर चली जाय।

वह विश्वकार न बन,

जो अपने लीला विलास में मस्त बायें हाथ से जमीन और दायें से आसमान बनाता चले। जमीन से गर्दन उठाये आशा भरी नज़र से आकाश को ताका करे और आकाश करोड़ी दाता की तरह मुसकरा कर एक सांस से उसके घर में दिये जला दे और दूसरी से फूँक कर ठठा कर चला जाय। चाहे स्नेहाश्रुओं से उसका आंचल तर कर दे और चाहे तो झुलसा झुलसा कर प्राण खींच ले। जिसकी भौहों की सिकुड़न और तारों की मुरकन इस गरीबनी के घर प्रलय रच दे। फिर भी दूर से देखो तो कितना मधुर, कितना नम्र, कितना झुका जैसे गाढ़ा। निमीलितनयन और चलते जाओ, चलते जाओ। प्रवञ्चना, मृगतृष्णा !!

तू वह मालाकार बन,

जो एक रूपता के आकर्षण में उगते अंकुरों को कुतर कुतर कर कुंठित नहीं कर देता किन्तु पास पड़ोस पनपती पौद का जीवन चूस कर पले; आसमान से टकराने की लालसा रखने वाले विटपी को, जो लम्बी लम्बी भीमाकार भुजायें फैलाकर जगत को शीतल रखने का ढोंग रचता है, तोड़ने मोड़ने में ममता से पीड़ित नहीं होता सर्दी, गर्मी और वर्षा से जूझ जूझ कर मिट्टी को रूप; रस, गन्ध प्रदान करता है और जब उसके परिश्रम सी पवित्र, जूही स्वभाव सी सुरभित बेला उमंगों सा अनेक रूपी गेंदा और अनुराग सा अरुण गुलाब खिलकर तैयार होता है तो उनका रूप तितली को, रस भ्रमर को, गन्ध पवन को और सर्वस्व सावित्री को समर्पित कर सन्तोष से कह उठता है —

मेरा मुझ में क्या रहा जो कुछ है सो तुज्झ ?
तेरा तुझ को सौंपता क्या लागैगा मुज्झ।

शिक्षा का वैदिक आदर्श

आचार्य पं० चन्द्रकान्त वेदवाचस्पति

लार्ड मेकाले और लार्ड वेन्टिंग द्वारा प्रस्तुत की गई पाश्चात्य शिक्षण प्रणाली का क्रान्तिकारी विरोध गत शताब्दी में दो महान् पुरुषों ने किया है। एक महर्षि दयानन्द सरस्वती और दूसरे महात्मा गांधी। महात्मा जी ने आर्थिक एवं राजनतिक दृष्टि-बिन्दु को ध्यान में रख कर शिक्षण में उद्योग के तत्त्व को महत्त्व दिया है और महर्षि दयानन्द ने सांस्कृतिक स्वराज्य को ध्यान में रख कर वैदिक दृष्टि से शिक्षा-प्रणाली में उस संस्कृति के तत्त्व का उपदेश दिया है जो कि मनुष्य की सम्पूर्ण शक्तियों का समन्वयात्मक स्वतन्त्र विकास करे, मानव के अन्दर विद्यमान सम्पूर्ण गुह्य-शक्तियों को स्वभावतः प्रकाशित कर सके। शिक्षा शब्द ही शक्ति वाचक 'शक्ल धातु' से बना है। जो मानव में निहित शक्तियों को आविर्भूत कर सके—वह साधन शिक्षा है। शिक्षा, अध्ययन, व्रतबन्ध, गुरुकुलवास, वृद्धजनोपसेवा (कौटिल्य अर्थ शास्त्र) ये सब समानार्थक हैं। अंग्रेजी के ऐजुकेशन शब्द का अर्थ है कि जो बालक की अन्तर्निहित शक्तियों को बाहिर लाये। अथवा बालक को घर से ले जा कर गुरु गृह में ले जाना भी ऐजुकेशन तथा 'उपनयन' शब्द का अर्थ है। शिक्षा व ज्ञान ही शक्ति प्रदान के साधन हैं। अंग्रेजी के Can, cunnning, knowing, knowledge शब्दों में क्रमिक सम्बन्ध-सूत्र को देखकर कह सकते हैं कि शक्ति वाचक can शब्द ही ज्ञान वाचक knowledge शब्द में बदल गया है। यही भाव प्लेटो के 'knowledge is power' के रूप में भरे हुए हैं। मनुष्य के देवांश को आविष्कृत करना (अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या अथर्व वेद)। मनुष्य बना कर शक्ति का पुञ्ज बनाना ही शिक्षा का अर्थ है। पुस्तकों के ढेर को ठूँस ठूँस कर मस्तिष्क में भरने से शक्ति विकास व स्वयं स्फूर्ति पैदा नहीं होती प्रत्युत मानव निर्बल एवं निर्जीव सा हो जाता है। लॉर्ड एवरवरी ने लिखा है—शिक्षण का आदर्श ध्येय मनुष्य बनाना है। ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने भी यही लिखा है।

आदर्श शिक्षा, आदर्श गुरु एवं आचार्य के सान्निध्य में गुरु घर में शिष्य प्राप्त किया करता है।

'आचार्यः प्रतिजानाति ब्रह्मौपत्वा नयाम्यहम्
अन्योन्यं व्रतबन्धो यस्तं त्वेवोपनयं विदुः"
अगाधृतं कृणुते केवलं आचार्यो भूत्वा वरुणो-
यद्यद्यै च्छतः ॥

ये गुरु गृह अथवा गुरुकुल एकान्त में नदियों के किनारे बनाये जाते हैं। "उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां धिया विप्रोऽजायत" एकान्त में प्रकृति की गोद में विहरते बालक की इन्द्रियां, मन, तथा आत्मा, पञ्च महाभूत तथा इनके कारण भूत, चैतन्य तत्त्व के सीधे सम्पर्क में आया करते हैं। अपरा प्रकृति तथा पराप्रकृति दोनों के रहस्यों को समझ कर ही आत्मा का पूर्ण विकास हो सकता है। ब्रह्मचारी तथा

स्नातक को यही उपदेश दिया गया है कि वह "भूत्यै न प्रमदितव्यम्" भूति अर्थात् ऐश्वर्य तथा अभ्युदय की उपेक्षा न करे और साथ ही 'विद्ययामृतमश्नुते' 'विद्यया विन्दतेऽमृतम्,' 'सा विद्या या विमुक्तये' विद्या द्वारा आत्म ज्ञान अर्थात् निःश्रेयस को भी प्राप्त करे। अथर्व वेद (१. १. ३.) में एक मन्त्र आता है—

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वारूपाणि बिभ्रतः
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वोऽद्य दधातु मे"

भावार्थ—जो सत्वरज तम स्वरूप सूक्ष्म पञ्च तन्मात्रायें महत् और अहङ्कार नामक त्रि+षप्त पदार्थ समस्त रूपों को धारते हुए सर्वत्र गतिमान् हैं, उनके बलों को वाचस्पति आचार्य आज इस उपनयन के काल में मुझ में रक्खें। इहैवाभि वितनूमे आर्त्नी इव ज्यया" आचार्य अपनी जिह्वा (ज्या भवति) से प्रणव धनुष (प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा) के परा अध्यात्म विद्या) तथा अपरा (प्रकृति विद्या) नामक दोनों अन्तों को मुझ में फैलावें।

मन्त्र से स्पष्ट है कि वैदिक दृष्टि में सच्ची शिक्षा का आदर्श–'परा एवं अपरा' विद्या, श्रेय तथा प्रेय, पुरुष तथा प्रकृति, धर्म–अर्थ–काम-मोक्ष प्रभृति द्वन्द्वों का समन्वय है।

इस सिद्धान्त को लक्ष्य में रख कर गुरुकुल प्रकृति की गोद में बनाये जाते थे। जिस प्रकार वनस्पतियों का विकास बाह्य प्रकृति के साथ स्वतन्त्र सम्बन्ध होने पर अन्दर से हुआ करता है, इसी प्रकार बालक के मानस में विकास तथा स्वयं स्फूर्ति, प्रकृति के सीधे सम्बन्ध से हुआ करते थे। उपनिषदों में आने वाले सत्यकाम, जाबाल श्वेतकेतु आदि कथानकों में प्राकृतिक शिक्षण पर ही बल दिया गया है। एक 'द' शब्द के उपदेश से देव, असुर एवं मनुष्यों को दमन, दया तथा दान का उपदेश दिया गया है। यह 'द' मेघ की गर्जना में से सुनाई देने वाली दैवी वाक् है। आजकल के यूनिवर्सिटी के व्याख्यानों की अपेक्षा इस व्याख्यान-प्रणाली में कितना अधिक स्वास्थ्य है?

वेद ने आदेश दिया है 'उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां धिया विप्रोऽजायत।"

ऋषि संघ के साथ घूमते हुए महर्षि अङ्गिरा एक बार भृगु के आश्रम में पधारे, सत्कार विधि के अनन्तर अङ्गिरा ने भृगु को सम्बोधन करके जो क्षेम के प्रश्न किये उनमें भी यही सत्य प्रतिध्वनित हो रहा है।

वैदिक दृष्टि में गुरु शिष्य का सम्बन्ध पति-पत्नी के समान हृदय एवं मन के सामञ्जस्य का है। माता के गर्भ में जैसे बालक सुरक्षित होता है वैसे ही गुरुकुल में ब्रह्मचारी सुरक्षित हुआ करता है। शरीर, मन एवं आत्मा के विविध अज्ञान की रात्रियों में गुरु ही बालक का पथ प्रदीप होता है। "तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति।"

गुरुकुल की वैदिक प्रणाली की दूसरी विशेषता गुरु शिष्य के नित्य निष्काम सम्बन्ध की है। परन्तु गुरु गृह निवास बालक में तब तक दिव्य गुणों का आधान नहीं कर सकता है जब तक बालक का संस्कार निर्माण माता और पिता ने न किया हो। मनु ने लिखा है—'उपध्यायान् दशाचार्यः, आचार्याणां शतं पिता, सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते' इस लिए प्राचीन तत्वज्ञ कहा करते थे, "मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान् पुरुषो वेद" अच्छे एव बुरे जैसे संस्कारों को लेकर पति एवं पत्नी गर्भाधान करते हैं उनका प्रभाव शुक्रकीट एवं रजोडिम्ब के

मेल से पैदा होने वाले शिशु पर पड़ा करता है। गर्भाधान से ही सच्ची शिक्षा शुरू हो जाती है।

पहिले पांच वर्ष तक बालक का आदर्श गुरु उसकी माता होती है। यथा—लालयेत् पञ्च वर्षाणि। माता की एक एक क्रिया का प्रतिबिम्ब बाल-मानस में हुआ करता है। इसी लिए "मातृ देवो भव' का उपदेश किया गया है। आज स्त्री शिक्षा के अभाव से, या विकृत शिक्षा होने से सच्ची मातायें बहुत कम हैं। इसके अतिरिक्त संसार का संघर्ष भी इतना विषमय हो गया है कि स्त्रियें बाल सगोपन तथा शिशु शिक्षण के पुनीत कार्य के पराङ्मुख रहती हैं।

पांच वर्ष के बाद कम से कम ८ वर्ष तक शुद्धि, व्रत तथा नियमन के प्रतिनिधि-रूप संस्कारी पिता के नीचे बालक की शिक्षा होनी चाहिये। यह 'पितृमान्' प्रशस्तः धार्मिक धर्ममतिः पिता विद्यते यस्य सः शब्द से ध्वनित होता है।

आज संस्कारी पिताओं का अभाव है और वर्तमान संघर्ष के काल में पिता को बच्चों के शिक्षण का समय भी उपलब्ध नहीं हो सकता है। फलतः आदर्श मां तथा बाप की अध्यक्षता में शिक्षा न मिल सकने से ही 'मोन्टिसरी डॉल्टन प्रोजेक्ट तथा कोमलेक्स प्रभृति योजनायें निकाली जा रही हैं। माता तथा पिता के बाद ही गुरु और आचार्य का क्रम बताया गया है। इस तत्त्व को न समझने से ही आज शिक्षकों की एक ऐसी श्रेणी भी बन गई है जिस पर जाति निर्माण का उत्तरदायित्व तो रक्खा गया है परन्तु उनकी असफलताओं के हेतुभूत मां बाप की संस्कारिता की उपेक्षा करके उन्हें लादू बैल के समान समझा जाता है। प्राचीन काल में विद्यार्थी को 'ब्रह्मचारी' कहा जाता था। इसके 'ब्रह्म' शब्द में शिक्षा के तत्त्व का सम्पूर्ण निचोड़ आ जाता है। ब्रह्म' का अर्थ है पूर्णता आचार एवं विचार, ज्ञान एवं कर्म, शरीर एवं आत्मा, हरेक युगल का समन्वित विकास ही भूमा या पूर्णता है। इस ब्रह्म या पूर्णता की ओर ही अग्रेसर होना ब्राह्मण का लक्षण है। ब्राह्मण अर्थात् Educated man बृहदारण्यक उपनिषद् में ब्राह्मण से विपरीत कृपा (दया) के योग्य व्यक्तियों को कृपण कहा गया है। बुद्ध भगवान् ने एक 'सुत्त' में ब्राह्मण के निम्न गुण बताये हैं। १. जिसका शरीर सुन्दर हो, २. जो सच्चरित्र मां बाप के यहां पैदा हुआ हो। ३. जो बहुश्रुत विद्वान् हो, ४. प्रज्ञा अर्थात् परिपक्व मति वाला हो। ५. जो सुशील हो। आगे चलकर बुद्धदेव ने कहा है। १. शरीर, २. कुल, ३. विद्या (श्रुत) न होवे तो चल सकता है परन्तु प्रज्ञा तथा शील के बिना नहीं चल सकता है। प्रज्ञा एवं शील के परस्पर घर्षण के बिना कोई भी व्यक्ति सच्चा ब्राह्मण या शिक्षित नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार का ब्राह्मण अर्थात् ज्ञानी पुरुष तब तयार हो सकता है जब आदर्श माता तथा पिता से सुसंस्कृत बने हुए बालक ही आचार्य के कुल में आवें। प्राचीन काल में संस्कारी ब्रह्मचारी २५, ३६ तथा शक्ति अनुसार ४८ वर्ष की आयु तक आचार्य के चित्त के अनुकूल अपना चित्त बना कर [मम व्रते ते हृदयं दधामि, मम चित्तमनुचित्तं तेऽस्तु, मम वाचमेकमना जुषस्व] अपने व्यक्तित्व की रक्षा करते हुए भी गुरु की आज्ञा में रहकर "सूर्यस्यावृतमन्वावर्तस्व" आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक द्यु, पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष सम्बन्धी ज्ञानों का उपार्जन किया करता था। मातृमान् और पितृमान् के बाद रक्खे हुए आचार्यवान् शब्द का यही महत्त्व है।

वैदिक दृष्टि में इसी गुरुकुल प्रणाली की महत्ता है। इसी के लिए ही महाभारत में लिखा गया है—

कच्चित् गुरुकुले वासं ब्रह्मन् स्मरसि नौ यतः
द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते।

गुरुकुल वास में घर तथा विद्यालय दोनों ही एक होते हैं। विद्यालय में जो विचार लिये हैं आश्रम एवं घर में उनको आचार में रक्खा जाता है। दोनों का सूत्रधार विचार तथा आचार का धनी आचार्य ही होता है। आचार्यः कस्मात् 'आचिनोत्यर्थान्' आचारं ग्राहयति वा।

गुरुकुल आश्रमिक प्रणाली के शिक्षणालय हैं। गुरुओं के जीवन के केन्द्र चारों ओर विद्यार्थी फिरा करते हैं और जीवन कला सीखते हैं। इसमें समय विभाग, घण्टा नाद, मेज कुर्सी की आवाज, तथा परीक्षाओं का कृत्रिम वातावरण नहीं होता है। शिक्षणालय तथा घर में भेद न रहने से, समिदाहरण गो सेवा करते हुए बालकों में सहयोग तथा सेवा का आदर्श डाला जा सकता है। कृष्ण एवं सुदामा की भांति अमीर एवं गरीब दोनों ही गुरुकुल में समानता से रहते हैं। क्या यह साम्यवाद की सच्ची बुनियाद नहीं है? उपनयन के समय में भिक्षा मांगता हुआ ब्रह्मचारी जब अपनी माता को छोड़कर अन्य स्त्रियों में मातृ बुद्धि करके 'भिक्षां देहि मातः' का उच्चारण करता है, तब साम्यवाद की अनुपम झलक दृष्टि-गोचर होती है। "समाहृत्य नु तद् भैक्ष्यं यावदर्थमभाषया, निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचाम्य प्राङ्मुखः शुचिः।" शिक्षण-शिक्षण के लिए नहीं अपितु जीवन के लिए है यह तथ्य इस पद्धति का रहस्य है। आजकल के समान ब्रह्मचारी केवल वाचस्पति ही नहीं होते अपितु 'वसोष्पति' क्रियात्मक भी हुआ करते हैं। इसी लिए मेधाजनन सूक्त में आचार्य को वाचस्पति के अतिरिक्त वसोष्पति भी कहा है। 'वसोष्पते निरमय, मय्येवास्तु मयि श्रुतम्। अथर्व. १।१।२ में

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते निरमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम॥

आचार्य को 'वाचस्पति' अर्थात् ज्ञानी और 'वसुपति' अर्थात् सूर्य चन्द्रादि वस्तुओं के विज्ञान का क्रियात्मक वेत्ता भी बताया गया है। वाचस्पति आचार्य वसुपति अर्थात् परीक्षणों की क्रियात्मक रमणपद्धति से ही वसुपति बनकर ब्रह्मचारी के मन को आवर्जित किया करता है। वेद शब्द का अर्थ विज्ञान एवं कला हुआ करता है। इस लिए भी सच्चे आचार्य में दोनों प्रकार की शक्तियां हुआ करती हैं। मनु महाराज लिखते हैं—

आचिनोति शास्त्रार्थान्, धर्म्मानाचरत्यपि
शिष्यान्, स्वयं चाचरति तस्मादाचार्य उच्यते॥

दार्शनिक प्लेटोने संगीत तथा व्यायाम को शिक्षा का आवश्यक अङ्ग बताया है। गुरुकुल में भी सामगान के साथ साथ व्यायाम, प्राणायाम, गोपालन, शुक्र रक्षा आदि व्रतों पर पूरा बल दिया जाता है। प्राचीन समय में विद्यास्नातक, व्रत स्नातक तथा विद्याव्रत स्नातक में तीसरे प्रकार के स्नातक को ही श्रेष्ठ कहा गया है। आचार्य को भी ब्रह्मचारी 'आचार्यो ब्रह्मचारी' अर्थात् ज्ञान तथा कर्म, विद्या तथा अविद्या में विचरने वाला ही कहा है। शिक्षा का वैदिक आदर्श 'आचार्य' तथा ब्रह्मचारी शब्दों से ही जाना जा सकता है। तथापि अथर्व का ब्रह्मचर्य सूक्त विस्तार से वैदिक शिक्षा का स्वरूप प्रकाशित कर रहा है।

वैदिक दृष्टि में विद्यार्थी अर्थात् ब्रह्मचारी में तप, श्रम. एवं आत्म समर्पण की मूल भावना होनी चाहिये। यथा–"स आचार्य तपसा पिपर्ति, ब्रह्मचारी समिधा. मेखलया श्रमेण लोकान् तपसा पिपर्ति।" स्वाध्याय तथा प्रवचन में अप्रमादी होकर ब्रह्मचारी [सत्यं वद, धर्मं चर] सत्य तथा धर्म का आचरण करता हुआ ही यशस्वी हुआ करता है। यथा–"स स्नातो बभ्रुः पृथिव्यां बहु रोचते।"

इस प्रकार हमने देखा कि वैदिक संस्कृति की दृष्टि में शिक्षा का आदर्श ब्रह्म-प्राप्ति है। इस आदर्श को पाने के लिए वैदिक शिक्षणालय १. प्रकृति के दामन में बनाने चाहियें। २. इन में गुरु शिष्य का निष्काम प्रेममय सम्पर्क सतत होना चाहिये, ३. इनमें ऊँच नीच के भेद को मिटा कर सब शिष्यों को साम्य दृष्टि से देखा जाना चाहिये। ४. आदर्श मां बाप के द्वारा सुसंस्कृत बालकों को ही वैदिक आश्रम में लेना चाहिये, राजसत्ता से सहायता लेते हुए भी आदर्श गुरुकुलों में राजसत्ता का हस्ताक्षेप न होना चाहिये। ५. इनमें मातृभाषा के माध्यम द्वारा शिक्षण भाषण से विद्यार्थी ज्ञान को हृदयङ्गम कर सकते हैं।

शिक्षा के उपर्युक्त मौलिक तत्त्वों पर महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज, श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा पूज्य महात्मा गांधी जी ने बल दिया है। आज हमें दोनों ही महापुरुषों के विचारों के आधार पर शिक्षण में संस्कृति को प्रधान स्थान देते हुए उद्योग को भी महत्त्व देना चाहिये। तभी भारतवर्ष सच्चा सुशिक्षित होगा; तथा शक्ति सम्पन्न हो सकेगा। केवल उद्योग पर बल देने से हमारी स्थिति जापान और जर्मनी जैसी होगी जहां समृद्धि होते हुए संस्कृति न होने से अशान्ति छाई हुई है। इसी प्रकार केवल संस्कृति पर ही बल देने से हमारी स्थिति सदा ऐसी ही बनी रहेगी और दुनियां के सभ्य देशों के सम्मुख हम अपना सिर ऊँचा नहीं कर सकेंगे। आओ हम अपने देश की संस्कृति तथा प्राचीन परम्परा के आधार पर महर्षि दयानन्द तथा महात्मा गांधी द्वारा प्रस्तुत शिक्षा पद्धति की शरण लेकर संसार को संस्कृति का सन्देश दे सकें।

भारतीय संस्कृति का केन्द्र

श्री फतहचन्द शर्मा 'आराधक'

जब अंग्रेज भारत आये तब उनका चाहे कोई उद्देश्य रहा हो पर शासन भार अंग्रेजों के हाथ में आते ही अंग्रेज अधिकारी अपने साम्राज्य को छल-कपट से भी बनाये रखने के लिए यत्न शील रहे। उनकी यह कूटनीति हर क्षेत्र में चलती रही। शासन तंत्र के सूत्रधारों ने तो उसे अपने अनुकूल बनाने में अपना हाथ बढ़ाया ही पर इससे भी अधिक कुछ अनुदार व्यक्ति थे, जो धर्म, संस्कृति और शिक्षा के क्षेत्रों में भी ऐसी चाल चल रहे थे, जिसमें उन्हें आशा थी कि अंग्रेज साम्राज्य उनके इन छल छद्मों से अवश्य स्थिर रह जायगा। इस प्रसंग में लार्ड मैकाले का नाम भारतीय इतिहास में सदा याद रहेगा। वे जिस शिक्षा पद्धति को संचालित कर गये और उन्होंने जो विचार धारा दी थी वह किसी हद तक सही निकली। लार्ड मैकाले की इच्छा थी कि उनकी शिक्षा योजना भारतीय संस्कृति में एक ऐसी नई पीढ़ी पैदा करदे जो अपने सांस्कृतिक दृष्टिकोण से दूर रहकर ईसाइयत के आधार पर अवलम्बित रहे। वे कहते थे कि हमें ऐसी नस्ल पैदा करनी चाहिए जो हमारे बीच बाबू गिरी और दुभाषिए का काम कर सके और जिनकी नस्लों में भारतीय जीवन तो हो परन्तु उनके मनोभाव सर्वथा नीति-रीति में अंग्रेजी परम्परा के हों।

लार्ड मैकाले का जवाब

लार्ड मैकाले का यह स्वप्न ऐसी पीढ़ी पैदा करने में पूर्ण सफल रहा। उन्हें अपनी इस सफलता पर स्वयं अभिमान भी था लार्ड मैकाले ने १८३६ में अपने पिता को पत्र लिखा था हमारी चलाई शिक्षा का प्रभाव हिन्दुओं पर आश्चर्यजनक है; जिस हिन्दू ने यह शिक्षा ग्रहण की वह हृदय से अपने धर्म का उपासक नहीं रहा यहां तक कि कुछ तो अपना धर्म छोड़ कर ईसाई बन गये। मुझे आशा है कि यह प्रयत्न कुछ वर्षों में भारी लाभ देने वाला सिद्ध होगा।"

मैकाले की इस घातक शिक्षा पद्धति को मिटाने का एक मात्र श्रेय गुरुकुल जैसी आदर्श संस्थाओं को दिया जा सकता है। स्वय ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री स्व० रैम्जे मकडानल्ड ने गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी को देखकर प्रशंसा करते हुए लिखा था कि लार्ड मैकाले की प्रचलित शिक्षा पद्धति का जवाब एक मात्र गुरुकुल ही है। यह बात इतनी पर्याप्त नहीं है वरन इसके साथ देश में अनेक शिक्षण संस्थायें मैकाले के कार्य का जवाब देने के लिए खुल गई थीं। पर श्री गणेश इसी संस्था ने किया था।

गुरुकुल का विकास

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का विकास ऋषि दयानन्द की गुरुकुल पद्धति के आधार पर वैदिक सिद्धान्तों के समन्वय पर प्रचलित हुआ था। आरम्भ में कुछ स्थानों पर डी. ए. वी. स्कूल तथा कालिज स्थापित किये गये और इनका

उद्देश्य भी आर्य साहित्य का विकास करना और वैदिक साहित्य का अध्यापन करना ही था। पर ये संस्थायें इस दिशा में पूर्ण कार्य नहीं कर सकीं और १८९७ में गुरुकुल की स्थापना के लिए स्वामी श्रद्धानन्द जी ने प्रयास किया और उनके सद्प्रयत्नों से गुरुकुल की स्थापना का विचार आर्य प्रतिनिधि सभा के १८९२ वाले अधिवेशन में तय हो गया। गुरुकुल के अवतरण के समय उसके उद्देश्य आठ थे और इस अष्ट सूत्री नियमावली में वैदिक, संस्कृत एवं अन्य आर्य साहित्य की समृद्धि एवं इतिहास प्रणनयन की ओर विशेष बल दिया गया था। गुरुकुल का मुख्य उद्देश्य था प्राचीन परम्परा के साथ नवीनतम संस्कृति का पोषण करना और उसके लिये गुरुकुल की स्थापना की गई। पर यह कहां खोला जाय इस विषय पर भी निर्णय होना था। स्वामी जी की यह इच्छा थी कि गुरुकुल यजुर्वेद के—'उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम् धिया विप्रोअजायत" के आधार पर गंगा तट पर खुलना चाहिए और इसी आशा को मूर्तरूप देने में नजीबाबाद (बिजनौर) निवासी श्री अमरसिंह जी ने सहयोग दिया। उन्होंने अपनी गंगा तट पर हिमालय की उपत्यका में स्थित कांगड़ी नामक ग्राम की २४००० एकड़ भूमि स्वामी जी को गुरुकुल की स्थापना के लिए दी।

कांगड़ी गुरुकुल

कांगड़ी गुरुकुल से पूर्व १६ मई १९०० में गुजरानवाला में वैदिक पाठशाला की स्थापना हो चुकी थी और वहां कुछ श्रेणियों की शिक्षा आरम्भ भी हो गई थी। वही गुरुकुल १९०२ में कांगड़ी लाया गया। इस स्थान पर पहले कच्चे झोंपड़े थे और बाद में पक्के भवन बनाये गये। गुरुकुल में आदर्श शिक्षा पद्धति के लिए बराबर कार्य होता रहा। गुरुकुल का पहला दीक्षान्त समारोह १९१२ में स्वामी श्रद्धानन्द जी के दो योग्य पुत्रों के स्नातक होने के रूप में सम्पन्न हुआ। पं० हरिश्चन्द्र और पं० इन्द्र नाम के इन दो स्नातकों ने अपने लिए जो मार्ग चुना वह देश सेवा के इतिहास में अमर है। श्री हरिश्चन्द्र जी विद्यालङ्कार का तो पेरिस कांड की घटना के बाद पता ही नहीं चलता कि वे जीवित हैं या नहीं और श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति तो अपना जीवन देश, समाज और विभिन्न संस्थाओं को जीवन दान देने में बिता रहे हैं। गुरुकुल भी उनमें से एक मुख्य संस्था है।

नया गुरुकुल

गंगा की १९२४ की बाढ़ से गुरुकुल को बड़ी आर्थिक क्षति उठानी पड़ी और बाद में चार लाख की भूमि लेकर गुरुकुल कांगड़ी गंगा नहर के तट पर बनाया गया।

गुरुकुल में तीन विद्यालय इस समय तक चल रहे हैं। गुरुकुल में वेद विद्यालय, आयुर्वेद विद्यालय और आर्ट्स विद्यालय इस समय हैं।

आरम्भ से ही शिल्प विद्यालय और इतिहास विद्यालय खोलने की इच्छा गुरुकुल के संचालकों की रही है। शिल्प विद्यालय की योजना केन्द्रीय सरकार के पास है और इस विद्यालय का श्री गणेश आगामी वर्ष स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर शुरू हो जायगा। इतिहास विद्यालय प्रसिद्ध श्री जयचन्द्र जी विद्यालङ्कार की अध्यक्षता में इसी वर्ष से आरम्भ हो जायगा।

नेताओं का प्रिय

विदेश के साहित्यकारों और पर्यटकों ने

गुरुकुल और उसकी शिक्षा-प्रणाली की बड़ी श्रद्धा के साथ प्रशंसा की है। कुछ विदेशियों ने प्रसिद्ध पत्रों और ऐतिहासिक पुस्तकों में विशेष वर्णन किया है। बापू जब अफ्रीका से भारत वापस लौटे तब उनके अहमदाबाद में आश्रम न खुलने तक बापू के आश्रम विद्यार्थी गुरुकुल ही में रहे बापू के शब्दों में गुरुकुल एक आदर्श संस्था है और राष्ट्र-नायक नेहरू की तो यह इच्छा रही कि वे बालक बन कर गुरुकुल में शिक्षा पाने आये. और भी देश के सारे नेता गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली से अत्यन्त प्रभावित रहे हैं।

गुरुकुल सदा से साम्प्रदायिकता से अछूता रहा है। अनेक बार ऐसे प्रसंग आये जब जामिया मिलिया के विद्यार्थियों और गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने एक साथ बैठ कर भोजन किया है। जिस तरह कांग्रेस हिन्दू-मुस्लिम का भेद नहीं रखती थी उसी प्रकार इस संस्था में सभी जाति के नेता आते रहे और सदा एक सा स्वागत होता रहा।

गुरुकुल में प्रतिष्ठित व्यक्ति

गुरुकुल के जीवन में अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति आये हैं। गुरुकुल के आचार्य स्व० रामदेव, देव शर्मा और चमूपति एम. ए. आदि जैसी विभूतियां रही हैं जिनका कार्य सदैव उनके यज्ञ रूप में आज तक गाया जा रहा है। इसी प्रकार मुख्याधिष्ठाता पद पर भी कई प्रतिष्ठित व्यक्ति कार्य कर चुके हैं। और आजकल विगत ६ वर्ष से प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति जो सर्व प्रथम गुरुकुल के स्नातक हैं मुख्याधिष्ठाता हैं। गुरुकुल को श्री गंगादत्त जी, श्री काशीनाथ जी, श्री भीमसेन जी श्री पद्मसिंह जी शर्मा आदि विद्वानों का भी सहयोग मिला।

गुरुकुल हिन्दी पत्रकार कला की उन्नति में भी विशेष कार्य करता रहा है। स्वामी जी ने तो कई पत्र निकाले ही थे, पर इससे भी आगे गुरुकुल के स्नातकों ने पत्रकार कला की और विशेष वृद्धि की है। इस क्षेत्र में प्रो० इन्द्र, सत्यदेव विद्यालंकार, श्री रामगोपाल विद्यालंकार और श्री पं० अनीन्द्र कुमार विद्यालंकार एवं साप्ताहिक अर्जुन के सम्पादक श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार आदि प्रमुख हैं।

साहित्य क्षेत्र में भी ऊपर के स्नातकों के साथ साथ सर्व श्री प्राणनाथ विद्यालंकार, सत्यकेतु विद्यालंकार, जयचन्द्र विद्यालंकार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आयुर्वेद में भी श्री अजिदेव और रामेश वेदी विख्यात हैं।

गुरुकुल अब तक ६०० से अधिक स्नातक देश सेवा, साहित्य सेवा और पत्रकार कला आदि के लिए प्रदान कर चुका है गुरुकुल की राष्ट्रीय सेवाएं अनन्त हैं। हर आन्दोलन में इस संस्था के स्नातकों, विद्यार्थियों तथा कार्यकर्ताओं ने भाग लिया है। हरद्वार की पंचपुरी में इस संस्था की हर क्षेत्र में धूम है। गुरुकुल के स्नातकों के कार्यों का यदि उचित रूप से सिंहावलोकन किया जाय तो यह कहना अनुचित न होगा कि यह एक ऐसी संस्था है जिसे केन्द्रीय सरकार को हर कीमत पर जीवित रखना चाहिए और भारतीय संस्कृति के उत्थान में इस संस्था से पूरा सहयोग लेना चाहिए।

हमें आशा है भारत सरकार इस दिशा में उदारता से विचार करेगी।

जन्तु शास्त्र के पारिभाषिक शब्द

प्रोफेसर चम्पत स्वरूप

Ear कान, कर्ण
Ear wigs कर्णकटि
Earth worm केंचुआ
Ecaudata अपुच्छी
Ecdysis पर्णपतन
Echinococcus शल्यकगुली
Echinodermata शल्यक चर्मा
Ectoderm बाह्यकोरक
Ectoparasite बाह्यपरोपजीवी
Ectoplasm बाह्यसार
Eel बाममच्छी, ग्राहि
Effector कार्य साधक
Efferent अपगामी
Egestion अपादान
Egg अंडा
Egglaying अंड सवन
Ejaculatory duct शुक्रप्रसेक प्रणाली
Elasmobranchii पट्टगलफड़िल
Elastic स्थिति स्थापक
Elasticity स्थिति स्थापकता
Elastin स्थिति स्थापिन
Element तत्व
Elliptical दीर्घवृत्ताकार
Elytra पक्षपट
Embryo भ्रूण
Embryology भ्रूणविज्ञान
Emu ईम्यू

Emulsification पायसीकरण
Emulsion पायस
Enamel दन्तवल्क
Encystment अवगुंठन
Endocrine system अन्तर्ग्रन्थि संस्थान
Endoderm अन्तःकोरक
Endoderm lamella अन्तःकोरकी स्तरांशी
Endodermis अन्तस्त्वक्
Endolymph अन्तर्लसीका
Endomixis अन्तर्मिश्रण
Endoparasite अन्तःपरोपजीवी
Endoplasm अन्तःसार
Endopodite अन्तःपादांग
Endoskeleton अन्तःकंकाल
Endothelium अन्तःकला
Energy शक्ति
Entamoeba अन्त्र विपरिणामी
Entamoeba coli अन्त्रविपरिणामी वृहदन्त्री
Entamoeba dysenteriae अन्त्रविपरिणामी प्रवाहिका
Entamoeba histolytica अन्त्रविपरिणामी धातुत्नायक
Enteric आन्त्रिक
Enteronephric अन्त्रवृक्कीय
Enteron आद्यन्त्र
Enteropneusta अन्त्रश्वासी
Enterozoa अन्त्रजन्तु
Entomology कीटशास्त्र

पुस्तक परिचय

समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं। एक प्रति आने पर केवल प्राप्ति स्वीकार देना सम्भव होगा।

भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग के प्रकाशन।

मनुष्य जाति की प्रगति—लेखक भगवान दास केला। आकार २०×३०।१६, पृष्ठ ३७२, मूल्य ३॥)।

मनुष्य स्वभाव से ही प्रगतिशील है। पिछले अनुभव का लाभ उठाता हुआ अपनी कमियों को दूर करके वह भविष्य को अपने लिए अधिकाधिक सुखप्रद करते जाने की निरन्तर चेष्टा करता है। मात्स्य न्याय की अवस्था स मनुष्य जाति ने किस तरह अपने को ऊँचा उठाया और अब जीवन के हर क्षेत्र में उसने अविश्वसनीय प्रगति कर ली है। लेखक ने बहुत परिश्रम से इस पुस्तक के दो भागों और उनचास अध्यायों में इस प्रगति का सिंहावलोकन किया है। पुस्तक रोचक और पठनीय है।

देशी राज्य शासन—लेखक भगवान दास केला। आकार २०×३०।१६, पृष्ठ २५०, दूसरा

[पृष्ठ २५ का शेष]

Enzymes फेनोत्पादी
Epiblast बाह्यकोरक
Epicoracoid अध्यंसतुण्ड
Epicranium अपिसम्पुट
Epicranial plates अपिसाम्पुटिक थालियां
Epidermis बहिस्त्वक्
Epigastric पूर्वोदरीय
Epiglottis अग्निजिह्विका
Epihyal अधिकण्ठिका
Epiphysis प्रान्तास्थि
Epiphytic अपिवानस्पतिक
Episternum अध्युरफलक
Epistylis अपिस्तंभ
Epithelium आवरण
Epizoic अपिजान्तव
Equus तुरंग
Ethmoid bone झर्झरास्थि
Ethmoturbinal झर्झरशुक्तिका
Euglena viridis सुतारका हरित
Eustachian valve यूस्टेशियन कपाटिका
Evolution विकास
Exconjugant पूर्व समागमी
Excretion मलोत्सर्ग, मल
Excretory मलोत्सर्गिक
Ex-occipital पार्श्वीय पश्चादिका
Exopodite बाह्य पादांग
Exoskeleton बाह्य कंकाल
Expiration उच्छ्वास
External बाह्य
Extra cellular बहिःकोष्ठीय
Ex-umbrella अधिछत्र
Eye आंख, नेत्र
Eye-ball नेत्र गोलक
Eye-brow भ्रुकुटि
Eye bulb नेत्रगोलक कन्द
Eye-lid पलक
Eye spot नेत्राबिन्दु

संस्करण, मूल्य ३।।) ।

श्री भगवान दास जी केला राष्ट्रीय जाग्रति के उन मूक सेवकों में से हैं, जिन्हें लोक सेवा की लगन होती है । लोगों की, विशेष कर धनिकों और रईसों की गन्दी रुचियों को सन्तुष्ट कर साहित्य के गन्दे होने की परवाह न करके, अपना स्वार्थ सिद्ध करने की प्रवृत्ति उनके स्वभाव में नहीं है । केला जी ने ऐसे विषयों पर साहित्य पैदा करके देश का बहुत हित किया है जिन पर प्रायः कोई भी पुस्तक हिन्दी में नहीं मिलती थी। देशी राज्यों के नाम और आंकड़े जानना चाहने वाले पाटक को हिन्दी में साहित्य प्राप्त करना कठिन था । इसमें केला जी ने भारत के प्रत्येक देशी राज्य की शासन शैली और नये सुधार आदि के बारे में बहुमूल्य सामग्री एकत्रित कर दी है जिससे देशी राज्यों में अभिरुचि रखने वालों के लिए यह बड़े काम की पुस्तक बन गई है ।

हमारी राष्ट्रीय समस्याएं-लेखक भगवान दास केला । आकार २०×३०।१६, पृष्ठ १८३, नवां संस्करण, १६४८, मूल्य २) ।

राष्ट्रीयता, राष्ट्र बल, स्वास्थ्य रक्षा, सदाचार, समाज सुधार की आवश्यकता. संगठन, प्रान्तीयता, भाषा और लिपि का प्रश्न, पाकिस्तान और उस से उत्पन्न होने वाले प्रश्न, भारतीय संघ का उत्तरदायित्व, देश रक्षा. अखंड भारत, राष्ट्रीय भावों का प्रचार आदि विषयों पर लेखक ने सोलह परिच्छेदों में, सरल भाषा में विचार किया है । हमारे राष्ट्र में उठने वाली प्रतिदिन की पेचीदा समस्याओं पर केला जी के बुद्धि संगत विचारों का प्रचार होना चाहिए ।

हिन्दी में अर्थ शास्त्र और राजनीति साहित्य— लेखक दया शङ्कर दुबे और भगवान दास केला । पृष्ठ संख्या २०८, दूसरा संस्करण, सन् १६४६. मूल्य २) ।

अर्थ शास्त्र और राजनीति पर हिन्दी में जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनकी ब्योरेवार सूची इस पुस्तक में है । प्रत्येक पुस्तक के सम्बन्ध में केला जी ने जो परिचयात्मक संक्षिप्त टिप्पणियां दी हैं उससे प्रस्तुत पुस्तक का महत्त्व बढ़ जाता है । इस संस्करण में अर्थ शास्त्र की २६१, राजनीति की ३२८ और दोनों विषयों की मिली जुली १३५ पुस्तकों का परिचय है । पुस्तकालयों को इन विषयों की पुस्तकें चुनने में इस पुस्तक से बहुत सहायता मिलेगी ।

राजनीति शब्दावली—लेखक गदाधर प्रसाद और भगवान दास केला, पृष्ठ संख्या २०८ तीसरा संस्करण, १६४७, मूल्य २।।) ।

अर्थ शास्त्र शब्दावली—लेखक दयाशंकर दुबे, गदाधर प्रसाद और भगवान दास केला । पृष्ठ संख्या १६३, तीसरा संस्करण, १६४६, मूल्य १।।।) ।

राजनीति और अर्थ शास्त्र पर हिन्दी में लिखने वाले विद्वान् भिन्न २ शब्दों का प्रयोग करते हैं जिससे पाठकों को उनकी रचनाएं समझने में अनेक बार कुछ कठिनाई पैदा हो जाती हैं । लेखकों को पर्याप्त शब्द भण्डार मिलने से यह कठिनाई दूर हो सकेगी इस आशा से केला जी ने उपर्युक्त दोनों पुस्तकों का प्रकाशन किया है । अब हिन्दी को राजभाषा का सन्मान प्राप्त हो रहा है, इस लिए इन पुस्तकों का विशेष महत्व है ।

कारागार—लेखक देवीदास शर्मा 'निर्भय'। प्रकाशक-अतीत महल, हाथरस, यू० पी०। पृष्ठ संख्या ६४, मूल्य १)।

पूज्य महात्मा गांधी की हत्या के सन्देह में राष्ट्रीय स्वयं सेवक सघ के जिन सदस्यों को जेल जाना पड़ा था उनमें लेखक भी था। यह कविता संग्रह उन्हीं दिनों का है। पुस्तक न्यूज़ प्रिन्ट पर छपी है। दाम अधिक हैं।

बबूल—लेखक वैद्यराज विश्वेश्वर दयालु। प्रकाशक ओमेन्द्रनाथ द्विवेदी, बरालोकपुर, इटावा पृष्ठ सख्या २३, मूल्य।=)।

इसमें बबूल के गुणों, शास्त्रीय योगों और चिकित्सा में विभिन्न उपयोगों को बताया गया है। प्राचीन शास्त्रों से लेखक ने जो श्लोक उद्धृत किये हैं उनके साथ ग्रन्थ का अध्याय, श्लोक संख्या आदि कुछ नहीं दिया गया, यह बड़ी भारी कमी है।

श्याम सुन्दर रसायन शाला, काशी के तीन प्रकाशन। लेखक केदारनाथ पाठक।

टोटका विज्ञान—मूल्य।=)। पुस्तक में लिखे टोटकों के कुछ नमूने हम पाठकों के सामने रखते हैं—'मंगलवार के दिन छिपकली की पूँछ काटकर काले कपड़े में लपेट रोगी की बांह में बांधे तो मलेरिया बुखार की बारी रुक जाय।' 'तय्या बुखार वाले रोगी की कमर में सांप की केंचुली बांध दें तो उसकी बारी रुक जाय।' हमारी सम्मति में देश को अब इन टोटकों की आवश्यकता नहीं। चौदहवें पृष्ठ पर नारियल की जड़ को लेखक ने लांगली मूल लिखा है। यह गलत है।

ग्राम्य चिकित्सा—मूल्य॥=)। घर में और गांव में उपलब्ध वस्तुओं से रोगों को शान्त करने के कुछ नुस्खे इसमें हैं।

अनुभूत योग—(दूसरा भाग) मूल्य १)। पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय नाम से ही स्पष्ट है।

न्यूज़ प्रिन्ट पर छपी इन छोटी २ पुस्तकों के दाम बहुत अधिक हैं। लेखक और प्रकाशक से हमारा निवेदन है कि इस प्रकार का साहित्य सृजन करने की अब आवश्यकता नहीं। खोजपूर्ण विज्ञान सम्मत साहित्यका प्रकाशन करके वे देश की बड़ी सेवा कर सकते हैं। आयुर्वेद के कितने ही ग्रन्थ अप्रकाशित पड़े हैं और अनेकों के नये संस्करण अप्राप्य हैं। उनके प्रकाशन में अपनी शक्तियों का सदुपयोग करने से जनता तथा आयुर्वेद का वास्तविक लाभ हो सकेगा।

प्राणायाम (अंग्रेजी में)—लेखक डॉक्टर के. लक्ष्मण शर्मा। प्रकाशक-दि नेचर क्योर पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड, पुद्दुकोटई, दक्षिण भारत। पृष्ठ संख्या २४, मूल्य।=)।

प्राणायाम द्वारा अच्छा स्वास्थ्य बनाने की विधि का प्रतिपादन करते हुए लेखक महोदय ने बताया है कि ठीक २ प्राणायाम में न केवल फेफड़े अपितु प्रायः सम्पूर्ण शरीर क्रियाशील हो जाता है। स्वास्थ्य के लिए यह क्रियाशीलता आवश्यक है। पुस्तिका उपयोगी है।

—रामेश बेदी।

गुरुकुल समाचार

ऋतु—ग्रीष्म ऋतु अपने यौवन पर है। इस ऋतु के विविध आकर्षण कुलभूमि में नयन-गोचर हो रहे हैं। इन दिनों का प्रभात और रात्रियां सुहावनी हो रही हैं। आश्रम-वृक्ष और वनकुञ्ज नए नए पत्तों से शोभित हो उठे हैं। जामुन, शिरीष, नीम, अमलतास, गुलमोर, कुटज और अतिमुक्तक आदि के कुसुमों से कुल-तपोवन महक उठा है। गुरुकुल के आम्रकुञ्ज इस वर्ष फलों से लद कर झुके झुके जा रहे हैं। कोयल और चातक आदि प्रवासी पंखियों के कल-कूँजन से वन उपवन गूँज उठे हैं। मध्याह्न और संध्या वेला में नहर स्नान और तैरने की बड़ी रौनक, उत्साह और आनन्द रहता है। शिवालक की उपत्यकाओं में प्याल और बिल्व-फल पक रहे हैं। फलतः समीपस्थ वन-पर्वतों की आनन्द-यात्राएं ब्रह्मचारियों ने प्रारम्भ कर दी हैं। लीचियों की बहार भी प्रारम्भ हो चुकी है। अभी पिछले दिनों ही महाविद्यालय-विभाग के ब्रह्मचारी एक ग्यारह फीट दो इञ्च लम्बा अजगर सांप पकड़ लाए हैं। छात्रों का स्वास्थ्य आनन्द-प्रद है।

दीर्घावकाश

दो मई से महाविद्यालय विभाग का दो मास का ग्रीष्म-कालीन दीर्घावकाश प्रारम्भ हो चुका है। कुछ छात्र अवकाश पर घर गए हैं और शेष यहीं पर रहकर वन-पर्वतों की यात्राएं कर रहे हैं तथा नहर में तैरी का आनन्द ले रहे हैं। विद्यालय-विभाग की डेढ़ मास की छुट्टियां १८ मई से प्रारम्भ हो चुकी हैं।

नवीन सत्र तीन जुलाई से प्रारम्भ हो जायगा। उपसत्र परीक्षाएँ ८ जुलाई से प्रारम्भ होंगी।

मान्य अतिथि

गुरुकुल दर्शनार्थ आने वाले सज्जनों का आवागमन आजकल विशेष है। बदरी-केदार की तीर्थ-यात्राएं प्रारम्भ होने से भारत भर के यात्री आजकल हरिद्वार में बड़ी संख्या में पधार रहे हैं। अतः गुरुकुल में भी यात्रियों का तांता लगा रहता है।

अभी उस दिन गुरुकुल के पुराने सन्मित्र और आयुर्वेद-जगत् के मूर्धन्य-मनीषी व कार्य-कर्ता श्रीयुत यादव जी त्रिकम जी आचार्य अपने आत्मीय-जनों सहित गुरुकुल पधारे। आपने देर तक गुरुकुल के विभागों का अवलोकन किया तथा आयुर्वेद-शिक्षा तथा औषध-निर्माण आदि विषयों पर बड़ी गंभीरता और प्रीति के साथ गुरुकुल के कार्य-वाहकों के साथ चर्चाएं करते रहे तथा अपने मूल्यवान् सुझाव देते रहे। गुरुकुल के आयुर्वेद-विभाग के विकास को निहार कर आपने बड़ी प्रसन्नता व परितोष प्रकट किया तथा बदरीनाथ की यात्रा से लौटते हुए पुनः गुरुकुल में पधारने की इच्छा प्रकट की है।

दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा के प्रधान मन्त्री तथा विधान-परिषद् के सदस्य श्री सत्य-नारायण जी सपरिवार गुरुकुल पधारे। आप गुरुकुल संस्था की समस्त कार्य-विधियों को देख कर बहुत हर्षित हुए। इस नवीन कुल भूमि के

निर्माण में दिवंगत आचार्य प्रवर रामदेव जी ने अपने स्वास्थ्य तक को निछावर कर दिया था—यह बात जानकर आप गद्गद् हो गए और मूकभाव से उनको श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक वैद्य नारायण दत्त जी (दिल्ली के बिरला-आयुर्वेद औषधालय के संचालक) अवकाश पर आजकल कुलभूमि में पधारे हुए हैं। गुरुकुल के श्रद्धानन्द सेवाश्रम औषधालय को बड़े प्रेम के साथ अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं।

गुरुकुल महोत्सव

जिस महोत्सव की गुरुकुल प्रेमीजन महीनों से प्रतीक्षा कर रहे थे वह कुल का वार्षिक महोत्सव गत १ वैशाख से ४ वैशाख तक कुलभूमि में बड़े आनन्द, उत्साह, स्नेह और समारोह पूर्वक मनाया गया। गुरुकुल के महोत्सव ने पिछले कुछ वर्षों से एक बड़े सांस्कृतिक मेले का रूप धारण कर लिया है। शीतकाल प्रारम्भ होते ही प्रति वर्ष गुरुकुल के महोत्सव के विषय में गुरुकुल प्रेमीजन दिलचस्पी दिखाने लग जाते हैं। इस साल का महोत्सव सभी दृष्टियों से बहुत शानदार, जानदार, रौनकदार और सफल रहा। पूरे चार दिन तक महोत्सव पर अनेक सांस्कृतिक, धार्मिक राष्ट्रीय, शैक्षणिक तथा लोकमांगल्य के विविध विषयों पर देश नेताओं, आर्य विद्वानों, मनीषियों, महात्माओं और शिक्षण शास्त्रियों के अमूल्य विचारों को सुनने का सुयोग जनता को प्राप्त हुआ। उत्सव पर अनेक सम्मेलनों का आयोजन किया था। सभी सम्मेलन बड़ी सफलता से संपन्न हुए।

वेदाचार्य प्रो० विश्वनाथ जी विद्यालंकार के सभापतित्व में वेद सम्मेलन हुआ। गुरुकुल में वैदिक अनुसंधान करने वाले स्नातक श्री भगवद्दत्त जी वेदालंकार तथा श्री प्रोफेसर रामनाथ जी वेदालंकार ने विद्वत्ता-पूर्ण निबन्धों का पाठ किया।

सरस्वती-सम्मेलन में गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग के विद्यार्थियों ने "समाजवाद भारतीय प्रकृति और परम्परा के प्रतिकूल है"—इस विषय पर मनोहर वाद-विवाद किया। सभापति का पद कुल के अधिनायक श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने अलंकृत किया। ब्र० नारायण दत्त, ब्र० श्रुतिकांत और ब्र० धर्मपाल उत्तम वक्ताओं के रूप में पुरस्कृत हुए।

उत्सव के सम्मेलनों में राष्ट्रीय-शिक्षा-सम्मेलन एक महत्वपूर्ण सम्मेलन था। इसके सभापति का आसन राष्ट्रपति श्री डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया ने सुशोभित किया। सम्मेलन के प्रधान प्रवक्ता के रूप में भारतीय-इतिहास के प्रकाण्ड पंडित श्री जयचन्द्र विद्यालंकर ने भारत में राष्ट्रीय-शिक्षा के विकास के इतिहास पर जो महत्वपूर्ण भाषण दिया था वह गहरी छानबीन और तथ्यों से भरा पूरा था। आपने अपने भाषण पर इस विषय पर अधिक बल दिया कि देश के इतिहास को राष्ट्रिय दृष्टि से लिखे और पढ़ाए बिना राष्ट्रीय-शिक्षा का निर्धारण शक्य नहीं है। और इसके लिए एक 'राष्ट्रीय-इतिहास-प्रतिष्ठान' की परम आवश्यकता है।

इस बार का दीक्षान्त समारोह अनूठी शान से संपन्न हुआ। नौ छात्रों को स्नातक-दीक्षा दी गई। दीक्षान्त-उपदेश के लिए माननीय श्री गाडगील महोदय पधारे थे। आपका भाषण भारतीय-संस्कृति की गौरव गाथा और व्यावहारिक सुझावों से भरा हुआ था। सुन्दर और सुसंबद्ध हिन्दीभाषा में और गंभीर भाव से

आपने मौखिक रूप में ही अपने सुन्दर विचार प्रस्तुत किए, संस्कृत शास्त्रों के सुवचनों और श्लोकों से भाषण अतिशय हृदयंगम और भाववाही बन पड़ा था। श्रोतागण माननीय महोदय की प्राचीन साहित्यानुरागिता और स्वाध्यायशीलता निहार कर मन ही मन "धन्य धन्य" कह उठते थे।

उत्सव के प्रधान उपदेष्टाओं और व्याख्यानदाता मनीषियों में श्री स्वामी वेदानन्द जी, श्री स्वामी केवलानन्द जी, श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक, श्री प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार, श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, श्री प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री, श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय और श्री पं० यशपाल जी सिद्धान्तालंकार के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रो० सत्यव्रत जी ने "विश्व की शिक्षा विषयक प्रवृत्तियां और गुरुकुल शिक्षा का हार्द" इस विषय पर मौलिक दृष्टिकोण से विचार करते हुए बहुत से मननीय तत्वों की ओर निर्देश किया था। श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने वैदिक-शिक्षा की केन्द्र-भूमि गुरुकुल ही है इस बात की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करते हुए धन-संग्रह की जो मार्मिक अपील की उसके परिणाम स्वरूप एक लाख दो हजार रुपये दान में प्राप्त हुए हैं।

उत्सव के चौथे दिन श्री आचार्य जी ने नवप्रविष्ट होने वाले नब्बे छात्रों का उपनयन और वेदारम्भ करते हुए उन्हें ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा दी।

संयुक्त-प्रान्त के सभा-सचिव श्रीयुत गोविंद सहाय जी ने उत्सव के चौथे दिन सायंकाल को भारत राष्ट्र की विविध समस्याओं पर सिंहावलोकन करते हुए एक मननीय व्याख्यान दिया था।

अगले दिन प्रातःकाल गुरुकुलीय स्नातक-मण्डल की ओर से श्री गोविन्दसहाय जी के अभिनंदन में एक जलपान का आयोजन किया गया। उस में बोलते हुए श्री गोविन्द सहाय जी ने कहा कि छुटपन से ही गुरुकुल संस्था के प्रति मेरी दिलचस्पी रही है। यहां के छात्रों की वाद विवाद सभाओं को मैं अपने किशोर काल में गहरी रुचि से देखता रहा हूं। यहां की शिक्षाविधि से छात्रों के मन में बौद्धिक संतुलन और स्वाधीन चिंतन की जो दृष्टि और शक्ति उत्पन्न होती है उसका मैं सदा से बड़ा प्रशंसक रहा हूं। फलतः इस संस्था को मैं बड़ी आत्मीयता से निहारता हूं।

व्यायाम-सम्मेलन का कार्यक्रम सदा की तरह इस बार भी बड़ा आकर्षक और दर्शनीय रहा। गुरुकुल कांगड़ी के छोटे और बड़े ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त शाखा गुरुकुल कुरुक्षेत्र के छात्रों ने भी उसमें उत्साह से भाग लिया।

गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने इस उत्सव पर विशेष व्याख्यान न देकर गुरुकुल की स्थापना के प्रथम दिन से लेकर आजतक की गुरुकुल के विकास की कहानी सुनाकर अगले वर्ष गुरुकुल की सुवर्ण-जयन्ती को सफल बनाने की योजना का स्वरूप आर्यजनता को बताया।

भवन-निर्माण

विद्यालय विभाग का आश्रम बढ़ती हुई ब्रह्मचारियों की संख्या और श्रेणियों के लिए अपर्याप्त है। इसलिए वर्तमान आश्रम-भवन के ऊपर के तल्ले पर नये छात्रावास का निर्माण प्रारम्भ हो चुका है। उसके लिए गुरुकुल भूमि में ही ईंट बनाने का भट्टा भी शुरू हो गया है।

विविध भवनों की आवश्यकता को देखते हुए सोलह लाख ईंटें तैयार करने का विचार है। ईंट-निर्माण का कार्य वेग से चल रहा है।

आयुर्वेद-विभाग में प्रवेश

गुरुकुल के आयुर्वेद कालेज में प्रविष्ट होने वाले बाहर के छात्रों को प्रवेश के लिए अभी से पत्र-व्यवहार प्रारम्भ कर देना चाहिए। संस्कृत में प्राज्ञ तक की तथा अंग्रेजी में मैट्रिक तक की योग्यता वाले छात्र प्रविष्ट किए जाते हैं। प्रवेश प्रथम जुलाई से प्रारम्भ होगा। इस बीच में प्रवेशार्थी छात्रों को अपना स्थान सुरक्षित करवा लेना चाहिये। इस विषय में निम्न पते पर लिखें—

आचार्य, मेडिको-आयुर्वेदिक कॉलेज, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

सभाएं

नवीन वर्ष के प्रारंभ होते ही महाविद्यालय-आश्रम की सभाओं के नवीन निर्वाचन हो गए हैं। नवीन पदाधिकारी इस प्रकार हैं—

कुलमन्त्री	ब्र० विपिन चन्द्र
कुलोपमंत्री	ब्र० भारत भूषण
साहित्य परिषद, मन्त्री	ब्र० रामपाल १४श
उपमन्त्री	ब्र० वीरेन्द्र १३श
वाग्वर्धिनी सभा, मंत्री	ब्र० भारत भूषण
उपमन्त्री	ब्र० नारायण दत्त
साहित्य गोष्ठी, मन्त्री	ब्र० धुरेन्द्रदेव
उपमंत्री	ब्र० महावीर
संस्कृतोत्साहिनी, मन्त्री	ब्र० वीरेन्द्र
उपमंत्री	ब्र० महेन्द्र प्रताप
आयुर्वेद परिषद्, मंत्री	ब्र० धर्मेन्द्रनाथ
उपमन्त्री	ब्र० भूमित्र
कॉलेज यूनियन, मन्त्री	ब्र० भगवद्दत्त
उपमन्त्री	ब्र० भक्तप्रिय
क्रीड़ा-मन्त्री	ब्र० शिवकुमार
उप क्रीड़ा मन्त्री	ब्र० महावीर

स्नातक-परिचय-ग्रन्थ

स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर गुरुकुल के समस्त स्नातकों का एक परिचयात्मक-ग्रन्थ प्रकाशित करने की योजना है जिसमें प्रत्येक स्नातक का फोटो सहित परिचय रहेगा। इस कार्य में हमें स्नातकों का सहयोग वांछित है। नीचे लिखी बातों पर प्रकाश डालते हुए प्रत्येक स्नातक भाई अपना परिचय अपनी नवीनतम फोटो के साथ शीघ्र ही आचार्य गुरुकुल कांगड़ी के पते पर भेजने की कृपा करें। ब्लॉक बनाये जाने के उद्देश्य से चिकने, चमकीले कागज़ पर फोटो का होना आवश्यक है। ये फोटो गुरुकुल संग्रहालय (म्यूज़ियम) में स्थिर रूप से रख दिये जायंगे, इस लिए १२×१० इञ्च कागज़ पर ८×६ इञ्च एन्लार्जमेण्ट कराये जांय तो अच्छा होगा।

नाम।

पिता का नाम।

जन्म तिथि।

स्नातक होने का वर्ष।

उपाधियां—(गुरुकुल से या बाहिर से प्राप्त)।

पर्याय तथा विशेष विषय।

प्रकाशित या अप्रकाशित रचनायें।

आपने विशेष उपाधियों के लिए निबन्ध आदि लिखें हों तो सन् सहित उनका विशेष विवरण दीजिये।

सामाजिक राजनैतिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में अपनी सार्वजनिक सेवाओं का विवरण।

स्नातक होने के बाद आपने जो कार्य किये सन् सहित उनका व्यौरा । अब आप क्या कर रहे हैं । वर्तमान पूरा पता ।

आर्य समाजों के नाम

स्वर्ण जयन्ती के सम्बन्ध में आर्य समाजों को आवश्यक सूचनाएं भेजने के लिए हमें देश-विदेश की समस्त आर्य समाजों (गुरुकुल विभाग) की सूची की आवश्यकता है । आर्य-समाज के मन्त्रियों से प्रार्थना है कि वे अपनी समाज का पूरा पता मन्त्री, स्वर्ण-जयन्ती, गुरुकुल कांगड़ी के पते पर भेजने की कृपा करें ।

गुरुकुल पत्रिका का विशेषांक

अक्टूबर मास में गुरुकुल पत्रिका का एक विशेषांक प्रकाशित होगा । इस विशेषांक में गुरुकुल कांगड़ी के इतिहास से लेकर अब तक के विकास तथा उसकी विविध कार्य प्रवृत्तियों, आकर्षणों, विशेषताओं और सिद्धियों का निरूपण किया जायगा । गुरुकुल के पुराने स्नातकों द्वारा लिखित विविध स्मृतियां भी इसमें अंकित की जायगी, अंक गुरुकुल जगत् के लिए अत्यन्त उपयोगी और आकर्षण की वस्तु होगी । पुराने स्नातक बन्धु शीघ्र ही अपने गुरुकुल जीवन का महत्वपूर्ण और चरित्र निर्माण में सहायकभूत घटनाओं और स्मृतियों का आलोकन करने वाले लेख भेजने की कृपा करें ।

मुद्रक श्री— हरिवंश वेदालङ्कार । गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार ।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार ।

गुरुकुल मुद्रणालय।

गुरुकुल-पत्रिका

आषाढ़ २००६

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

वर्ष १ | अङ्क ११

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति।
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

सिंहली भाषा	डॉक्टर रघुवीर एम. ए., पी. एच. डी.
संसार सुखमय है या दुःखमय	श्री वागीश्वर विद्यालङ्कार
भक्त का हठ और रूठना	श्री विष्णु मित्र
गुरु-शिष्य	मुनि देवराज विद्यावाचस्पति

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक | एक प्रति
विदेश में ६) वार्षिक | छः आने

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

मस्तिष्क के विकास में भाषा का महत्व

डाक्टर रघुवीर, एम. ए., पी. एच. डी., डी. लिट् एट फिल, (हालैंड)

सब भाषाओं का महत्व एक सा नहीं होता। भिन्न भिन्न भाषाओं में, मूल भावों की अभिव्यंजना में शुद्धता की मात्रा घट बढ़ हुआ करती है। संसार की किसी अन्य भाषा से चीनी भाषा का काल विस्तार और सामग्री बिल्कुल ही भिन्न है। साधारणतः चीनी भाषा में काल, क्रिया, प्रकार, वचन और लिंग व्यक्त नहीं किये जा सकते। चीनी वाक्य में कुछ ऐसी अस्पष्टता रहती है, जिसका हम ठीक ठीक अनुमान नहीं लगा सकते। उदाहरण के लिये उनके वाक्य 'जा नगर' को ही लीजिये इससे कई भिन्न अर्थ के वाक्यों का बोध हो सकता है जैसे, "मैं नगर को जाता हूं, मैं नगर को जाऊंगा, मैं नगर को गया था, संभव है कि मैं नगर को चला जाऊं"। चीनी में वाक्य का अर्थ बहुत कुछ प्रकरण पर निर्भर रहता है। सामान्यतः साहित्यिक चीनी में एक वाक्य में चार से अधिक शब्द नहीं रहते।

जर्मन भाषा में समस्त क्रियाओं को दो भागों में बांट देते हैं जिनमें से एक भाग वाक्य के अन्त में आता है। जर्मन समास बनाने वाली भाषा है। समास से भाषा सुसंगठित हो जाती है और एक वाक्य में कई भाव रखे जा सकते हैं जो अन्यथा संभव न होता।

हमारे ज्ञान के विस्तार के साथ-साथ ही हमें अधिक शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। शब्दों के बिना ज्ञान की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। जो कुछ हम समझते हैं, जो कुछ हम देखते हैं उसका हम नामकरण करते हैं। मनुष्यों की दैनिक शारीरिक आवश्यकताएं एक सहस्र शब्दों में पूरी हो सकती हैं। ये एक सहस्र शब्द बालक आठ वर्ष की आयु तक सीख जाता है। पन्द्रह वर्ष की आयु में विद्यार्थी की शब्दावली ५ सहस्र शब्दों से अधिक नहीं होती। भारत जैसे देशों में उसी अवस्था में बालक ३ सहस्र से अधिक शब्द नहीं जान पाता। बालक केवल साहचर्य के कारण ही भाषा के प्राथमिक तत्व सीख लेता है। चाहे ये शब्द बहुत तत्सम्बन्धी भले ही न हों। उदाहरणार्थ 'दौड़ना, जाने से' और 'पीना, खाने से' भिन्न है। हम 'दौड़ने' के स्थान में 'वेग से जाना' और 'पीने' के स्थान पर 'पानी खाना' कह सकते हैं। बंगाली वास्तव में 'पानी खाना' (जल खावार) कहते हैं। भाषा के कई शब्द कई भावों की अभिव्यक्ति करते हैं।

वस्तुओं में पारस्परिक भेद करने की शक्ति को ही तो ज्ञान कहते हैं। इसी कारण हम भिन्न २ नाम (संज्ञायें) देते हैं। आरोप लांछन, दंड प्रमाणन भिन्न २ शब्द हैं। अंग्रेजी में (Strain, Pressure, Cumpression) स्ट्रेन, प्रेशर कंप्रेशन अलग २ भाव व्यक्त करते हैं। इन सब भावों को एक शब्द से व्यक्त करना असंभव होगा।

किसी भाषा के तुलनात्मक मूल्य का निश्चय उसके शब्दों के पारस्परिक सम्बन्ध पर निर्भर है। एक शब्द से कितने व्युत्पन्न हो सकते हैं। संभवतः दो, तीन, चार अथवा दस स्वाभाविक रूप से समास सरलता पूर्वक समझा जा सकता है। अन्यथा समास का उद्देश्य ही नहीं सधता। भाषा के मूल्यांकन में उसके विशिष्ट उपसर्गों और प्रत्ययों की संख्या और भाषा के विकारों का भी ध्यान रखना पड़ता है। प्रत्येक भाषा में कुछ न कुछ विकार होते हैं पर यदि विकार इस मात्रा तक पहुँच जाय कि समान बातों का परस्पर सम्बन्ध जोड़ने में कठिनाई होने लगे तो ये विकार भाषा का बोझ बन जाते हैं। भाषा, उन्नति की साधक हो सकती है और उसी तरह उन्नति पथ की बाधक भी हो सकती है।

भाषायें दो वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं—

१. अनुकरण करने वाली भाषायें,

२. मूल भाषायें।

यूरोप में सर्व प्रमुख मूल भाषा यूनानी है परन्तु प्रायः यूनानी और आधुनिक यूरोपीय भाषाओं में लैटिन मध्यस्था का काम करती है। अरबी और हेब्रू की भी यूनानी भाषा मूल भाषा है फारसी और स्वाहिली में भी यूनानी के शब्द आये हैं, पर वे वैज्ञानिक आवश्यकता की अपेक्षा यूनान के राजनीतिक प्रभुत्व के कारण ही आये हैं। फारसी बड़ी समृद्धशाली भाषा थी पर मुस्लिम विजय के पश्चात् उसे अरबी के सामने झुकना पड़ा।

चीनी भाषा को लीजिये। उसने जापान की सारी वैज्ञानिक शब्दावली के विकास करने में सहायता दी है। यूनानी के पश्चात् दूसरा स्थान चीनी भाषा का आता है।

हमारे देश की मूलभाषा संस्कृत है।

यदि अपक्षपात रूप से कहा जाय कि ग्रीक की भी मूल भाषा संस्कृत है तो पाठकों को आश्चर्य होगा। उदाहरणार्थ बेरोमीटर शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक 'बेरोज' अर्थात् 'भार' से हुई है पर 'बेरोज' की व्युत्पत्ति तो संस्कृत शब्द 'भार' से हुई है। यूनानी लैटिन और अरबी भाषाओं की अपेक्षा हम नए शब्दों का निर्माण अधिक स्वच्छन्दता, अधिक सरलता और अधिक शुद्धता पूर्वक कर सकते हैं। वैज्ञानिक शब्दावली बनाने के कारण लैटिन और यूनानी क्रमशः मिश्रित लैटिन और मिश्रित यूनानी बन गई हैं। व्याकरण के सब नियमों का उल्लंघन किया गया है। संस्कृत के एक बड़े संहिताकार हो चुके हैं उनका नाम पाणिनी था, वे पंजाब के रहने वाले थे। उनकी प्रणाली कामधेनु समान है। किसी भी शब्द की इच्छा करिये और वह आपको उसके द्वारा मिल जायगा। संसार में संस्कृत सब से पारदर्शी (ट्रान्सपेरेंट) भाषा है इसके द्वारा प्रचुर भावों की व्यक्ति हो सकती है, दस पृष्ठों में लिखे जाने योग्य लंबा वाक्य हो सकता है और दो सौ अक्षरों का अकेला एक समास मिल सकता है।

इस शब्द बहुल्यता और विपुलता के साथ हमारे सूत्रों की संक्षिप्तता भी देखने योग्य है। दो, तीन अथवा चार शब्दों में ही सारा संसार समा सकता है।

"अणोः अणोयान् महतो महीयान् ।" जिस तरह ब्रह्मा के लिये कहा गया है उसी तरह संस्कृत भाषा के लिये भी कहा जा सकता है। आप वैज्ञानिक शब्दावली बिना प्रयास के सीख सकते हैं। सीखते समय आपको पता भी न चलेगा कि आप सीख रहे हैं। मस्तिष्क ज्ञान के एक शिखर से दूसरे तक स्वयं ही चला जायगा।

जहां तक सम्भव हो प्राथमिक ज्ञान सामान्य साहित्य की भांति सरलता पूर्वक मिलना चाहिये। आग्ल, फ्रेंच, जापानी अथवा चीनी की अपेक्षा हमारे लिए इसका प्राप्त होना अधिक सरल है। हम संसार की आधुनिक भाषाओं को निम्न लिखित क्रम में रख सकते हैं—

[१] संस्कृत और उससे व्युत्पन्न अथवा अनुप्राणित आधुनिक भाषायें—
[२] चीनी, जापानी।
[३] जर्मन, रशियन, डच, नारवेजियन, डेनिश, आदि।
[४] आंग्ल और फ्रेंच, पोर्तुगिज और इटालियन
[५] अरबी, फारसी, टर्की और उर्दू।

उर्दू शीघ्र ही यूरोपीय शब्दावली से भर जायगी और इस कारण शिक्षितों और अशिक्षितों में एक भित्ति खड़ी हो जायगी।

अपनी भाषा को जो ऊंचा स्थान हमने दिया है उसके योग्य उसे बनाने के लिये हमें प्रयत्न करना होगा। यदि हम असफल रहे तो हमारा स्थान सबसे उच्च न रहकर सबसे गिरा हुआ होगा। तब हमारी भाषा दासों, सेवकों, उजड्ड, अपढ़ और असभ्य मनुष्यों की भाषा कहलायेगी। मध्य में हमारा कोई स्थान नहीं है। सहस्रों वर्षों पूर्व पाणिनी ने हमें सबसे उच्च स्थान पर रखा था और यदि अभी भी हम उनका अनुसरण करें तो वही स्थान प्राप्त कर सकते हैं। हम शताब्दियों तक दास रहे और आलसी बने रहे। अब कर्मण्यता ही हमारा मूलमंत्र होना चाहिये। हम उस स्थान से आरम्भ करेंगे जहां हमारे विकास को रुद्ध कर दिया गया था। तब हम कुछ ही समय में विज्ञान के क्षेत्र में संसार में अपना उचित स्थान पा लेंगे।

निर्भयता

श्री रामनाथ वेदालङ्कार

अभयं नो अस्तु
हमें निर्भयता प्राप्त हो।
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि
जिससे हम डरते हों उससे हे इन्द्र हमें निर्भय कर
अभयं नः करत्यन्तरिक्षम्
अन्तरिक्ष हमें निर्भयता दे
अभयं द्यावापृथिवी उभे इमे
भूमि-आकाश हमें निर्भयता दें।

अभयं पश्चादभयं पुरस्तात्
हम पश्चिम में निर्भय हों, पूर्व में निर्भय हों
उत्तरादधरादभयं नो अस्तु
हम उत्तर में निर्भय हों, दक्षिण में निर्भय हों
अभयं मित्रादभयममित्राद्
हम मित्र से निर्भय हों, अमित्र से निर्भय हों
अभयं ज्ञातादभयं पुरो यः
हम परिचित से निर्भय हों, अपरिचित से निर्भय हों

श्रुति

श्री स्वामी कृष्णानन्द जी

श्रुति और ईश्वर विषयक अन्योऽन्याश्रय का आरोपण तथा उसका परिहार—इसमें यह आक्षेप हो सकता है कि सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म की सिद्धि के लिए श्रुति और वेद को उपस्थित करना और वेद के परम प्रमाणार्थ ईश्वरीय वचन या ज्ञान रूप होने का हेतु देना अन्योऽन्याश्रय दोषयुक्त' हेतु है। इसी को अंग्रेजी में Arguing in a circle कहते हैं। परन्तु विवेक पुरस्सर स्वल्प विवेचन से ही यह प्रतीत होता है कि यहां पर इस आक्षेप का अवसर ही नहीं और न अन्य ही कोई आक्षेप इसमें हो सकता है। जैसे रूप मात्र के बोधार्थ केवल चक्षु ही प्रमाण है, और रूप प्रतीति ही चक्षु इन्द्रिय के अस्तित्व की बोधक है। यदि जगत में रूप का अभाव होता तो चक्षु इन्द्रिय के अस्तित्व का बोध भी असंभव हो जाता। यही दशा सब इन्द्रियों तथा उनके शब्द स्पर्श आदि विषयों की है। ये परस्पर ही एक दूसरे के सद्भाव को प्रमाणित करते हैं। साधारणतया जगत् में यही प्रचलित तथा प्रसिद्ध है कि चक्षु इन्द्रिय द्वारा रूप का बोध होता है। ऐसा कोई नहीं कहता कि रूप द्वारा चक्षु का बोध होता है। परंन्तु फिर भी चक्षु आदि इन्द्रियों के सद्भाव की प्रमाणता तो रूपादि उनके विषयों से ही संभव है।

यदि हम शब्द रहित निर्जन स्थल में हों तो श्रवणेन्द्रिय युक्त होने पर भी श्रवण इन्द्रिय की श्रवण शक्ति रूप सम्पत्ति का हमें कुछ बोध न होगा। क्योंकि शब्द ही उसके बोध का एक मात्र हेतु है।

इसी प्रकार जगत् में यही विख्यात है कि चुम्बक लोहे को खींचता है। परन्तु यह भी तथ्य है कि लोहा भी चुम्बक को खींचता है। यह उनका आकर्षण पारस्परिक है। आकर्षण का अधिक बल या नियामकता गुरुत्व (भारीपन) में है। उन दोनों में जो भारी होगा वह दूसरे को अपनी ओर खींच लेगा। लोहा हो अथवा चुम्बक दोनों में आकर्षण शक्ति विद्यमान है। लोहे के अभाव में चुम्बक का निर्णय असंभव है। ऐसी परिस्थिति में चुम्बक के बोध में लोहा ही एक मात्र कारण तथा हेतु ठहरता है। ऐसे ही ईश्वर तथा वेद के विषय में उपर्युक्त दोष भी निर्मूल है। अनन्त संसार की विचित्र रचना तथा वेद का ज्ञान उस सर्व शक्तिमान् सर्वज्ञ ईश्वर के अस्तित्व के बोधक हैं। ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार किये बिना वेद का अस्तित्व तथा प्रामाण्य सिद्ध नहीं होता। ईश्वर, ईश्वरीय-ज्ञान वेद तथा ईश्वरीय शक्ति को पृथक् २ नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार अग्नि तथा उसकी दाहक शक्ति को। एक के अभाव (ध्वस) से दोनों का अभाव हो जाता है। दाह शून्य अग्नि कोई सच्चा पदार्थ नहीं हो सकता। वह तो नाम मात्र खःपुष्प के समान ही होगा। इसी प्रकार बृहत् वेद ज्ञान तथा अनन्त सामर्थ्य रहित ईश्वर भी नाम मात्र का ही ईश्वर होगा। अनन्त ज्ञान वेद तथा सामर्थ्य (शक्ति) की अपने आधार ईश्वर के बिना (अग्नि की बिना दाह की तरह) कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसी लिए ऊपर उद्धृत ब्रह्मसूत्र (शास्त्र योनित्वात्) वेदान्त (१.१.३) के प्रायः दो प्रकार के अर्थ किये जाते हैं।
[१] ब्रह्म बृहत् वेद का कारण होने से स[र्वज्ञ]

तथा (२) ईश्वर (ब्रह्म) के ज्ञान में परम प्रमाण रूपी कारण (योनि) वेद है।

श्रुति का परम प्रामाण्य

हमारा गुरु हमारे ज्ञान का स्रोत है। जहां पर यह गुरु परम्परा समाप्त होती है। जो केवल गुरु ही है किसी का शिष्य नहीं है; जिसका स्वरूप निरपेक्ष सत्तावान्, स्वतः सिद्ध, स्वतः प्रकाश (Self-existent,self-evident-self-Luminous),स्वतन्त्र अद्वितीय ज्ञानका भण्डार, सच्चिदानन्द घन है, वह परमेश्वर है। जिस प्रकार सूर्य नभोमण्डल तथा भूमण्डल के प्रकाश तथा गर्मी का एक मात्र हेतु है उसी प्रकार भगवद्ज्ञान ज्योति रूप वेद प्राणी मात्र के ज्ञान का आधार तथा मूल स्रोत है। अतएव वेद की परम प्रमाणता भी स्वतंत्र सिद्ध है "तमेवभान्तमनुभांतिसर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।" कठोपनिषद् (५- ५) "उस परम परमेश्वर के ज्ञानमय प्रकाश के अनन्तर अन्य सब का प्रकाश है। उस भगवती ज्ञान ज्योति से सब स्थावर जंगम जगत् सत्ता वाला तथा प्रकाशित हो रहा है। भगवान् की ज्ञान ज्योति का नाम ही वेद है। उस स्वतः सिद्ध ज्ञान के बिना जगत् के सर्वविध पदार्थ अपनी सत्ता तथा प्रमाणत्व को ही सिद्ध नहीं कर पाते। ईश्वरीय ज्ञान ही प्रमाणों का प्रमाण है।

यह हमारा कितना अज्ञान तथा भ्रम है कि हम अल्पज्ञ, मूढ़ तथा नाशवान् प्राणियों की चञ्चल, मलिन तथा स्थूल बुद्धि, विषय लोलुप मन, बहिर्मुख चक्षु, आदि इन्द्रियों को स्वतः सिद्ध स्वतः प्रकाश और असंदिग्ध प्रमाण मानते हैं। और इन के आधार पर नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सदा मुक्त स्वभाव, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् स्वतः प्रकाश, स्वतः सिद्ध, स्वतन्त्र, सच्चिदानन्दैक रस स्वरूप ईश्वर की सिद्धि करना चाहते हैं। क्या यह सूर्य को प्रदीप से प्रकाशित करने के समान मूर्खता नहीं है। इसी विषय में न्याय कुसुमाञ्जलि कार कहते हैं-

"साक्षात्कारिणि नित्य योगिनि परद्वारानपेक्षस्थितौ।
भूतार्थानुभवे निविष्टनिखिल प्रस्ताविवस्तु क्रमः॥
लेशाद्दृष्टिनिमित्त दुष्टिविगम् प्रभृष्ट शंकातुषः
शङ्कोन्मेषकलङ्किभि किमपरैस्तन्मे प्रमाणं शिवः॥
न्यायकु० ४-६

"अनन्त, अचिन्त्य तथा अमोघ ज्ञान-शक्ति से परमेश्वर को त्रैकालिक पदार्थों के साक्षात्कार का अनुभव तथा ज्ञान सदा एक रस तथा अविच्छिन्न बना रहता है। उनका ज्ञान हमारे सदृश आगमापायी, सादि, सान्त, सापेक्ष तथा वृद्धि ह्रासयुक्त नही होता। प्रत्युत स्वतः सिद्ध, निरपेक्ष्य, सदा एक रस रहने वाला होता है। परमेश्वर के पूर्व ज्ञानमय संकल्प में प्रलय के अनन्तर, सर्ग के आरम्भ में पूर्ववर्ति सर्वविध स्थावर जंगम पदार्थों को याथातथ्य उत्पन्न करने की सामर्थ्य रहती है। सर्वविध सृष्टि उसी ईश्वरीय संकल्प से उत्पन्न होती है। उसी में स्थिर रहती है तथा अन्त में उसी में लीन हो जाती है। "जन्माद्यस्य यतः" ब्रह्मसूत्र १. १.२, "जिस ईश्वर के ज्ञानमय संकल्प मात्र से सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय होती है उसीकी शरण लेनी चाहिए।" इसी बातको श्रुति कहती है- "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्य भिविशंति तद्विजिज्ञासस्व"-तैत्तिरीयोपनिषद् (३ १ इस लिए अज्ञान जन्य सर्वविध दोषों से मुक्त,

वसुन्धरा गोमाता और उस का दूध

डाक्टर रामस्वरूप

भारत में जब गोमाता का मान था तब आर्यावर्त्त सब देशों का गुरु था और उच्च शिखर पर था। अब तो योरुप और अमरीका में गो दुग्ध की नदियां बह रहीं हैं। वहां गौ मान्य है। वहीं बुद्धि, सरस्वती, लक्ष्मी और सभी सम्पत्ति तथा विजय है।

जिस समय भारत में दूध की नदियां बहती थीं यहां के निवासी हृष्ट पुष्ट वीर बलिष्ठ वा सभी तरह की सम्पत्तियों से भरपूर थे। अब भी दूध दही मक्खन और घी का अभाव दूर होने से अधिकतर कष्ट दूर हो सकते हैं। गौ वंश की वृद्धि से राजा व प्रजा जा कल्याण हो सकता है। आज कल यूरोप और अमेरिका में गौ के दूध की वैज्ञानिक जानकारी ज्यों ज्यों बढ़ती जा रही है त्यों त्यों गौ के मान से देश की विशेष उन्नति होती जा रही है।

आर्य परिवार में गाय सदा से एक प्रधान और आवश्यक अंग रही है। राजभवन अथवा एकान्तवासी मुनियों की कुटियों में दोनों स्थानों पर गाय का आदर व मान था। श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने गौ रक्षा के लिए आवाज़ उठाई। प्रोफेसर राममूर्ति ने गो रक्षा के लिए पर्याप्त प्रयत्न किया था। श्री पूज्य महात्मा गांधी ने गो सेवा के विषय में अपने विचार अपनी "गो सेवा" पुस्तक में इस तरह प्रकट किये हैं "मेरी गहरी से गहरी दो मनोकामनाएं हैं—एक छुआछूत को दूर करना और दूसरी गो सेवा। इन कामनाओं में जब सफलता मिलेगी तब स्वराज्य मिलेगा, इन दोनों की सिद्धि में मुझे मोक्ष दिखाई देता है। यह अकेला गो सेवा का काम ही स्वराज्य को समीप लाने वाला है। मुझे रह रह कर इस बात का दुःख होता है कि मैंने गो रक्षा का काम अपने जीवन के आखिरी वर्षों में हाथ में लिया है और दुःख की बात है, कि गाय का दूध छोड़ कर भैंस का दूध पीने की प्रथा सर्वमान्य हो चली है जो कि बच्चों, गर्भवती स्त्रियों, रोगियों, कमजोरों, बुड्ढों और विद्यार्थियों के लिए अति हानिकारक है। अब तो भगवान् की दया से अपना राज्य है। भारत सरकार को जैसी कि इस समय देश की रक्षा के लिए सेना वा युद्ध सामग्री की जरूरत है, फौज के सिपाहियों को मज़बूत और वीर बनाने के लिए गो दुग्ध मक्खन और घी की उससे ज्यादह जरूरत है। गो रक्षा ही देश की हर प्रकार की उन्नति का मूल साधन है। हिन्दू शास्त्रों में गोमूत्र, गोबर, मक्खन घी तथा दूध की अपार प्रशंसा है। प्राचीन आर्य लोग इन के गुणों की जानकारी पूरे तौर पर रखते थे। विदेशी वैज्ञानिकों (अमेरिका-फ्रांस-रूस आदि) ने भी अब सिद्ध किया है और दुनिया को आश्चर्य में डाल दिया है कुछ विदेशी वैज्ञानिकों के विचार दूध व गोबर और गो मूत्र के बारे में निम्न लिखित हैं :

१—इटली के वैज्ञानिक प्रोफेसर जी. जी. बिगेंड़ ने गोबर के अनेक प्रयोग करके सिद्ध किया है, कि ताजे गोबर से तपेदिक, मलेरिया, और हैजे के जन्तु तुरन्त मर जाते हैं। प्रोफेसर

का मत है कि प्रारम्भिक अवस्था में तो गन्ध से ही मर जाते हैं। इटली में सनिटोरियम में गोबर का ही प्रयोग किया जाता है। हैजा व अतिसार रोगियों को ताजा गोबर पानी में घोल कर दिया जाता है। जिस तालाब में हैजे के कीड़े पैदा हो जावें ताज़ा गोबर घोल कर डाल दिया जावे तो रोगजन्तु तुरन्त मर जाते हैं।

२—न्यूयार्क टाईम्स भी लिखता है कि रोग जन्तु नाश करने के लिए गोमय का बहुत ही महत्त्व है।

३—मद्रास के डाक्टर कींग का कहना है कि अब तो यह बात सिद्ध हो चुकी है कि गउ के गोबर में हैज़े के जन्तुओं को नष्ट करने की विचित्र शक्ति है। मिर्गी, हीस्टीरिया, न्यूरिसथिनिया, चित्त भ्रम, मस्तक चक्र, मूर्छा, खुजली, चकत्ते, पित्त, जल जाने, फोड़ा फुन्सी तथा कोढ़ में लाभदायक है।

४-बलफास्ट के प्रोफेसर सरमस तथा अलस्टर के प्रोफेसर कूर्क ने गौमूत्र की बड़ी महिमा गाई है। गोमूत्र में रक्त में रहने वाले दूषित कीटाणुओं को नाश करने की शक्ति होती है। यह हृदय रोग, गठिया, टी॰ बी॰ पाण्डु रोग, अर्श त्वचा रोग, जिगर, तिल्ली तथा खुजली में लाभ दायक है।

५—डाक्टर हापकिन् (प्लेग के टीके के आविष्कारक) कहते हैं कि गाय का घी प्लेग के दिनों में प्रातः प्रत्येक व्यक्ति को इस्तेमाल करने से प्लेग के कीटाणु तुरन्त मर जाते हैं तथा प्लेग नहीं होता।

६—रूम के प्रसिद्ध डक्टर पिलिप माखन निकाले हुए दूध की एक से तीन छटांक की मात्रा पुराना अतिसार तथा हिस्टीरिया में लाभदायक बतलाते हैं।

७—डाक्टरस्काट डनकन साहब का अनुभव है कि डायबिटीज के रोगी को केवल गाय का दूध सेवन कराने से २४ घण्टे में उसका सात सेर पेशाब तथा १६३ ग्रेन चीनी कम हो गई।

८—१९सवीं सदी के मध्य सन् १८८८ में फ्रान्स में पासचर संस्था बिकटोरिया यानी कीटाणु विशारद लूईपासचर साहब ने गाय के दूध के गुणों का नया आविष्कार किया। डाक्टर मकनिकाफ प्रोफेसर पासचर संस्था, फ्रांस "नेचर ओफ मेन" पुस्तक में लिखते हैं कि मनुष्य तीनसौ वर्ष तक जिन्दा रह सकता है। अगर मनुष्य दीर्घ आयु भोगना चाहते हैं तो गो के दूध, दही, मलाई, मक्खन तथा पनीर का प्रयोग करें। इस से स्वास्थ्य बना रहता है तथा बहुत सी बीमारियां जैसे इसहाल, टाइफाइड, हैज़ा, तपेदिक, कमजोरी, नर्व, तथा आंतों के मरीज़ों को बहुत फायदा पहुँचता है।

९-प्रोफेसर गेटी अपनी पुस्तक विज़डम ऑफ दी एन्शैन्ट ब्रहमन में लिखते हैं कि हम ३० वर्ष संस्कृत पढ़ने पर भी प्राचीन समय के ग्रन्थों की रचना तो दूर रही उन्हें समझने की योग्यता भी नहीं रखते। उस काल में गौ के दूध, माखन तथा फल का प्रयोग करते थे-तथा शुद्ध वायु में बैठ कर सात्विक भोजन से मेधा बुद्धि बढ़ाते थे।

१०—श्रीयुत मैकालम का गो के दूध क जांच का नतीजा जिसने सारे सभ्य संसार का विचार बदल दिया है—मनुष्य की जंगली

अवस्था से उठने के इतिहास में गोपालन का मुख्य हाथ है। दुनिया में शरीर की मानसिक और आत्मिक उन्नति में बढ़ती हुई वही जातियां हैं जिन का गो पालन तथा खेती पर आधार है। गाय एक अद्भुत रसायनशाला है। गौ के ही प्रताप से युरोप तथा अमेरिका ने इतनी उन्नति की है।

११–डाक्टर वार्नियर मैकफैडन अपनी पुस्तक मिरेकल ऑफ मिल्क में लिखते हैं कि गौ के दूध में स्वास्थ्य के बनाये रखने और रोगी हो जाने पर स्वास्थ्य को फिर से ठीक ठीक अवस्था में ले आने की अद्भुत शक्ति है। अगर तुम हलके दुबले हो तो गौ का दूध तुम्हारी कमी को पूरा कर देगा अगर तुम भारी व मोटे हो गये हो तो गौ का दूध तुम्हें साधारण दशा में ला देगा। अगर तुम कमजोर हो और तुम्हारा स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिरता जा रहा है तो गौ दूध का सेवन तुम्हारे शरीर में शक्ति का सञ्चार कर देगा। यदि तुम्हारे शरीर में किसी भी प्रकार की कोई बीमारी है तो गौ दूध का सेवन रोग रहित कर देगा। मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि जो रोगी एक दो दिन का व्रत रख कर केवल दूध का एक या दो सप्ताह तक विधि पूर्वक गौ के दूध का सेवन करे तो उस की नई पुरानी बीमारी पर सफलता के साथ काबू पाई जा सकती है, आगे को कभी बीमार भी नहीं होगा और रोग रहित होकर बीमारियों से मुकाबला करने की शक्ति बढ़ जाती है। शारीरिक व मानसिक दुःखों की निवृत्ति के लिए गौ का दूध अमृत है। शरीर का और चेहरे का रंग निखर आता है जो कि शक्ति उत्पन्न करने वाली औषधियों से कभी भी नहीं हो सकता है। गाय के दूध के गुणों और भैंस के दूध के अवगुणों पर फिर कभी ध्यान दिलाऊंगा।

(पृष्ठ ५ का शेष)

व्यर्थ शङ्कारूप तुषविहीन, नित्य, शुद्ध, स्वतः, प्रकाश, सर्वज्ञ, सच्चिदानन्द घन स्वरूप ईश्वर तथा उसका वेद रूप ज्ञान ही हमारे लिए परम प्रमाण है; न कि सर्वविध दोष तथा शङ्काओं का स्थल भूत और अज्ञान जन्य अनेक विभ्रमादि त्रुटियों का आगार अल्पज्ञ मनुष्यों का प्रत्यक्ष, अनुमानादि। तात्पर्य यह है कि हमारे लिए सदा सर्वदा, सर्वत्र सर्वावस्था में निरपेक्ष निष्कलङ्क तथा परम प्रमाण शिव (ईश्वर) ही है।

आर्य समाज

क्या ? क्यों ? कैसे ?

श्री राजा महेन्द्रप्रताप

सो वर्ष पहले आर्य समाज नहीं था । वेद थे । परन्तु वेदों का वह अर्थ न था जो स्वामी दयानन्द जी ने किया मैं यह नहीं कह रहा कि अच्छा हुआ या बुरा हुआ । परन्तु हुआ. यह हुआ कि स्वामी दयानन्द जी ने कहा लोग भूल कर रहे हैं, अर्थ यह है । उन्होंने अपने ढंग से अर्थ किया और शास्त्रार्थ करके सिद्ध किया कि वह जो कहते हैं वह ही ठीक है । कुछ लोगों ने माना । बहुत थोड़े से लोग आर्यसमाज में शामिल हुए । हिन्दुस्तान के करोड़ों मनुष्यों पर तनक भी असर न पड़ा । स्वामी जी ने मूर्त्ति खण्डन किया । परन्तु मूर्त्तिपूर्ण मन्दिर वैसे ही रहे । लाखों मनुष्य गंगा यमुना पहले की भांति ही आज तक जाते हैं ।

बुद्ध भगवान ने यह नहीं कहा कि वेदों का यह अर्थ है । उन्होंने कहा मुझे ज्ञान हो गया है, मैं बुद्ध हो गया हूं, मनुष्यों को मेरी बात माननी चाहिये । लोगों ने वेदों को छोड़ा और बुद्ध भगवान् की शिक्षा ग्रहण की । लोग बुद्ध धर्मावलम्बी बन गये ।

बुद्ध भगवान् से पहले श्री कृष्ण ने भी गीता में ऐसा कुछ कहा था । वेद मार्ग छुड़ा कर अर्जुन को ईश्वर भक्ति सिखाई थी । वेद पढ़ना, पुस्तकें पढ़नी जन साधारण के लिए कठिन हैं इस भक्ति मार्ग को बहुत लोगों ने बहुत अपनाया ।

स्वामी दयानंद जी ने श्री कृष्ण अथवा बुद्ध भगवान की भांति यह न कह कर कि तुम्हारी पोथियों में घुन लग गया है कहा यह कि मैं तुम्हारी पुरानी पुस्तकों को फिर से ठीक समझता हूँ. शुद्ध अर्थ कहता हूं ।

यह बराबर होता आया है । या तो यह कह कर कि मैं जो बताता हूँ यह ही ठीक है और यह कह कर कि मैं फिर से वह ही प्राचीन ज्ञान देता हूँ । लोग नये विचार देते रहे हैं और आज भी दे रहे हैं । जैसे मनुष्य जन्म ले रहे हैं विचार जन्म लेते रहते हैं । यह क्यों होता है ? श्री कृष्ण तो यह बताते हैं कि जब जब दुनिया में बुराई बढ़ जाती है तो मैं आता हूँ । अर्थात् कुछ बुरे विचारों को दूर करने के लिए अच्छे विचार उत्पन्न होते रहते हैं । यह अटल नियम है ।

चलते फिरते रेत शरीर पर पड़ता ही है । कहीं और कभी यात्रा में मनुष्य कम मैला होता है और कभी वा कहीं अधिक मैला होता है । इस मैले पन को धोने की आवश्यकता पड़ती है । इसी प्रकार इस जीवन की यात्रा में हम सभी कुछ मैले होते हैं । उस को हम भजन वा ध्यान से धोते हैं । समाज की समाज भी मैली हो जाती है । बुरी आदतें फैल जाती हैं. उन को दूर करने के लिए ही नवीन शिक्षा की आवश्यकता होती है ।

अब आप समझे, यह है "क्या. क्यों और कैसे" आर्य समाज की । उन विचारों की समाज को आवश्यकता थी जो स्वामी दयानन्द जी ने दिये । उन विचारों ने अनेक सुधार किये । परन्तु आज हम देखते हैं कि स्वयं आर्यसमाज उन बातों को छोड़ बैठा जिन का उस ने प्रचार आरम्भ किया था । उस ने एक ईश्वर की शि

मेध्यातिथि

पण्डित भगवद्दत्त वेदालङ्कार

आसंग (तन्मयता) के रथ में मेध्यातिथि अर्थात् बुद्धि के घोड़े जुते हैं। वे रथ को ध्येय वस्तु तक ले जाते हैं, और उसकी गहराई तक पहुँच जाते हैं। इस अवस्था में, बुद्धि में जो सूक्ष्म रहस्यों को देखने की शक्ति है, वह पदार्थों के गुह्य रहस्यों को जान लेती है।

मन्त्र इस प्रकारः —

आयदश्वान् वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम्।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः।
ऋ० ८।१।३१

हे मेध्यातिथि! (वनन्वतः) पदार्थों का सम्यक् प्रकार से सेवन करने वाले, तेरे (अश्वान्) अश्वों को (अहं) मैंने (यत्) जब (श्रद्धया) श्रद्धा से (रथे आरुहम) रथ में लगाया अथवा चढ़ाया है। [उस समय पदार्थ तक पहुँच कर] (यः याद्वः पशुः अस्ति) जो तेरा यदु सम्बन्धी पशु अर्थात् सूक्ष्म तत्त्वों को देखने की शक्ति [सूक्ष्मस्य द्रष्टा,–सायण] है, वह (वामस्य वसुनः चिकेतति) पदार्थ में निहित वांछनीय वसु को जान लेती है।

यहां अश्व मेध्यातिथि के हैं, और रथ आसंग का है। आसङ्ग कहता है कि हे मेध्यातिथि! मैंने तेरे अश्वों को श्रद्धा से अपने रथ में [जो]ता है। यहां मन्त्र में अश्वों को रथ में जोतने [के] लिए "आरुहम्" धातु का प्रयोग हुआ है। सायणाचार्य ने इस धातु के प्रयोग में णिजर्थ का अन्तर्भाव मान कर इस का अर्थ रथ में घोड़ों को जोतना ऐसा किया है। हम भी यह मान लेते हैं। परन्तु एक विचारणीय बात यह है कि 'रुह' धातु का प्रमुख अर्थ 'चढ़ना' होता है। यदि हम रुह' धातु का चढ़ना अर्थ करें तो हमें मन्त्र का यह अर्थ करना पड़ेगा कि इस रथ में आसङ्ग ने घोड़ों को चढ़ाया है। इस में कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये। यह रथ ही ऐसा है, जिस पर घोड़े चढ़ते हैं। आसंग अर्थात् तन्मयता के ऊपर बुद्धि के घोड़े चढ़ कर ध्येय विषय के प्रति जाते हैं, यह भाव यहां दिखाया जा सकता है। इस लिये 'आरुहम्' का अर्थ 'जोतना' या 'चढ़ाना' कर देवें बात एक ही है। आसंग कहता है कि मैंने इन घोड़ों को श्रद्धा से चढ़ाया है या जोता है। बुद्धि के घोड़े किधर जा रहे हैं, और किधर जाना चाहिये इत्यादि बातों से आसंग को तो कोई सरोकार नहीं, वह तो आसङ्ग अर्थात् तन्मयता की अवस्था बनाये रखता है। इस से एक ध्वनि निकलती है कि जो व्यक्ति अनुसन्धान करने वाले हैं, या किसी प्रकार का बौद्धिक अन्वेषण करने वाले हैं उन पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होना चाहिये और बौद्धिक नियन्त्रण तो किसी प्रकार होना ही नहीं चाहिये।

इस अवस्था में जिस समय कि आसंग के रथ में जुते हुए बुद्धि के घोड़े ध्येय विषय के प्रति जाते हैं, और उस विषय में प्रवेश कर जाते हैं, तो उस विषय का सम्पूर्ण रहस्य उनके सामने खुल जाता है। इसी बात को मन्त्र के उत्तरार्ध में इस प्रकार कहा कि मेध्यातिथि का यदु नामक पशु वांछनीय रहस्य (वसु) व ऐश्वर्य को जान लेता है। यदु सम्बन्धी पशु क्या है? यह तो हम फिर कभी आपके सामने रक्खेंगे परन्तु इसका भाव यह है कि ध्येय

विषय या वस्तु के अन्दर निहित रहस्य व ऐश्वर्य को देखने की शक्ति (पश्यतीति पशुः) जब मनुष्य में जागृत हो जाती है तब वह यदु नामक पशु कहलाता है।

आसङ्ग का रथ: --

अब संक्षेप में हम आसङ्ग के रथ के संबन्ध में कुछ विचार करते हैं। आसङ्ग का रथ कैसा है यह अगले मन्त्र में बताया गया है।

य ऋज्रा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासंगस्य स्वनद्रथः ।
ऋ. ८। १। ३२

(यः) जिस आसङ्ग ने (मह्यं) मुझे (हिरण्यया त्वचा सह) हिरण्यमय त्वक् अर्थात् प्रकाश के साथ (ऋज्रा ममहे) सरलताओं को प्रदान किया है। (एष आसङ्गस्य स्वनद्रथः) यह आसङ्ग का शब्दायमान रथ (विश्वानि सौभगा) सम्पूर्ण सौभगों को (अभ्यस्तु) अभ्यास करे अर्थात् बार २ दोहरावे।

आसङ्ग अर्थात् तन्मयता की अवस्था से दो बातें मनुष्य में पैदा होती हैं। एक (ऋज्रा) सरलता और दूसरे (हिरण्यत्वक्) प्रकाश। मनुष्य की चञ्चलावस्था में बुद्धि की विषय के प्रति गति सरल नहीं होती है। वह ध्येय विषय के प्रति जाती हुई इधर उधर के पदार्थों व विषयों को भी छूती जाती है। बुद्धि की सरल गति भी तभी समझनी चाहिये जब कि वात रहित स्थान में रक्खे हुए दीपक की ज्योति की तरह वह सीधी रेखा में जावे। परन्तु ज्यों २ मनुष्य में आसङ्ग भाव अर्थात् तन्मयता व समाहित की अवस्था बढ़ती जाती है त्यों २ बुद्धि की गति भी सरल होती जाती है। ऐसा आदमी शरीर की दृष्टि से भी ऋजुकाय बन जाता है। यह सरलता का होना आसङ्ग के ही कारण हैं। दूसरी वस्तु जो आसङ्ग देता है वह है 'हिरण्यत्वक' अर्थात् प्रकाश। संसार में जितने भी ज्योतिर्मय तत्व हैं, सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् इत्यादि ये सब ज्योति व प्रकाश के कारण हिरण्यत्वक् वाले हैं। हिरण्य ज्योति को कहते हैं। ये ज्योतियां कई तो चक्षु द्वारा देखी जा सकती है, परन्तु कई ज्योतियां मन व बुद्धि आदि द्वारा दिखाई देती हैं। बुद्धि को किसी विषय का रहस्य मिल जाना-इसे हम दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि बुद्धि का हिरण्मय त्वचा के साथ सम्पर्क हुआ है। इस लिए आसङ्ग अवस्था में ये दो बातें मनुष्य को प्राप्त होती हैं, एक तो सरलता दूसरा प्रकाश। इनकी प्राप्ति ठीक प्रकार से हो इसका साधन मन्त्र के उत्तरार्ध में इस प्रकार बताया कि आसङ्ग का शब्दायमान रथ तत्तत् विषय का अभ्यास करे अर्थात् उसे बार २ दोहरावे। हम संसार में यह देखते हैं कि मनुष्य जब किसी गहन विषय का चिन्तन कर रहा होता है, तो कभी २ गुनगुनाने, शब्द करने या गाने लगता है। ध्येय विषय पर मन के टिकाये रखने में यह गुनगुनाना या मुंह से किसी प्रकार का स्वर निकालना बहुत सहायक है। चिन्तन की अवस्था में मुंह से स्वर निकालते रहना ही आसङ्ग का (स्वनद्रथ) शब्दायमान रथ है। भगवान् के चिन्तन में जप व स्वर आदि आसङ्ग के ही शब्दायमान रथ है। यह रथ करता क्या है कि जो जो (सौभग) ध्येय विषय में निहित रहस्य हैं, उनको बार २ दोहराता है। इस प्रकार आसङ्ग अर्थात् तन्मयता का रथ गुनगुनाते व स्वर निकालते हुए ध्येय विषय की तरफ जाता है

उपवास का नैतिक मूल्य

प्रोफ़ेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.

उपवास द्वारा मनुष्य की नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है, उसका बुद्धि और विवेक जाग्रत होता है—यह देख कर ही हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने उपवास को धर्म के अन्तर्गत विशेष स्थान प्रदान किया है। इस से मनुष्य के मानसिक और वासनाजन्य विकार शान्त हो जाते हैं और विवेक तीव्र हो उठता है।

हिन्दू धर्म में प्रत्येक १५ दिन पश्चात् व्रत का विधान रक्खा गया है। एकादशी के अतिरिक्त प्रदोष, और रविवार, भिन्न-भिन्न पुण्य तिथियां तथा पर्वों पर व्रत किया जाता है। हिन्दू धर्म में आन्तरिक शुद्धि के लिए व्रत प्रधान तत्त्व माना गया है। इसी कारण व्रतों की सख्या संसार के अन्य सब धर्मों से अधिक है। हमारे यहां निर्जल तथा चान्द्रायण आदि अनेक प्रकार के दूसरे उपवास भी हैं; किसी की मृत्यु पर लंघन करना शोक मनाने का चिन्ह है। क्या प्रसन्नता, क्या क्लेश सभी में उपवास को प्रधानता दी गई। जैन धर्म में लम्बे उपवासों पर आस्था है। जैन धर्म के ग्रन्थों में केवल नाना प्रकार के उपवासां का ही विधान नहीं, प्रत्युत बहु-काल व्यापी उपवासों का विधान है। जैनियों के उपवास सप्ताहों और महीनों तक चलते हैं। मिश्र में प्राचीन काल में कई धार्मिक पर्वों पर उपवास किया जाता था; किन्तु वह जन साधारण के लिए अनिवार्य नहीं था। यहूदी अपने सातवें महीने के दसवें दिन उपवास रखते हैं। उन के धर्म में जो इस उपवास का उल्लंन करता है वह दण्डनीय है। इसमें प्रात: से सायंकाल तक निराहार रहना पड़ता है। ईसाई धर्म में, तथा ईसा की पांचवीं शताब्दी से पूर्व महात्मा सुकरात ने उन दिनों यूनान में प्रचलित कितने ही उपवासों का जिक्र किया है। रोमन जाति के व्यक्ति ईस्टर से पूर्व के तीन सप्ताहों में शनिवार और रविवार के अतिरिक्त अन्य दिनों में उपवास किया करते थे। महात्मा ईसा ने स्वयं एक बार चालीस दिन और चालीस रात्रियों का उपवास किया था। योरोप में जब पोपों का प्रभाव बढ़ा तो उपवासों को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया। लेन्ट के उपवास न करने पर मृत्यु दंड तक का विधान रक्खा गया। थोरोनियस ने उल्लेख किया है कि लेन्ट का उपवास न रखने वाले के दांत तोड़ दिये जाते थे। इस्लाम में उपवास का महत्त्व रमज़ान के महीने से स्पष्ट होता है। रमज़ान का धार्मिक महत्त्व है। इस महीने में हज़रत मुहम्मद के नाती हुसेन कर्बला के मैदान में कत्ल किये गये थे! मुसलमान रमज़ान के महीने में अपने धर्म ग्रन्थों के अनुसार तीस दिन तक रोज़े रखते हैं। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में कुछ खा कर सूर्य्यास्त के पश्चात् रोज़ा टूटता है। तात्पर्य यह कि सभी प्रधान धर्मों में उपवास को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। सभी ने एकस्वर से उसकी उपयोगिता स्वीकार की है। उपवास के शरीर, मन, तथा आत्मा पर लाभदायक प्रभाव को देख कर ही उसे धर्म के अन्तर्गत स्थान दिया गया है।

बाबू रामचन्द्र वर्मा ने निर्देश किया है, "भारत के प्राचीन ऋषियों की तपस्या उपवास एक प्रधान अंग था। बड़े बड़े धर्माचार्य स्वयं बहुत दिनों तक उपवास करके अपने अनुयायियों और भक्तों को उसका लाभ बतलाते थे और उनका स्वयं आदर्श बनते थे पर आज कल जो लोग धार्मिक दृष्टि से उपवास करते हैं, प्रायः सभी देशों में उन्हें धर्मान्ध बतलाया जाता है और उसकी हंसी उड़ाई जाती है। इसका कारण यही है कि आजकल लोग प्राकृतिक नियमों से एक दम अनभिज्ञ हो गये हैं। जो व्यक्ति अन्न को ही प्राण समझते हैं, उन्हीं की आंखें खोलने के लिए उपवास के सिद्धान्तों का फिर से प्रचार होने लगा है।"

उपवास के दो प्रधान उद्देश्य हैं। (१) शारीरिक स्वच्छता, आन्तरिक विकारों, विजातीय द्रव्यों, सञ्चित विषों का निराकरण तथा (२) आध्यात्मिक उपयोग, नैतिक बुद्धि की जागृति आत्मिक और मानसिक शुद्धि। उपवास न केवल शरीर शोधक है, प्रत्युत साथ साथ आत्म-परिशोधक भी है। हमारे पूज्य महात्मा गांधी जी ने उपवास के आध्यात्मिक उद्देश्यों, आत्मिक चमत्कारों तथा दूरदर्शी प्रभाव को अपने चौदह पन्द्रह उपवासों द्वारा स्पष्ट किया है। उन का २१ दिन का उपवास सरकार के विरुद्ध शरीर की आहुति थी। अपमान जनक या अमानुषिक व्यवहार के विरोध में सत्याग्रही कैदियों का उपवास करना गांधी जी उचित मानते थे। यखदा-उपवास के अवसर पर महर्षि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उपवास को विश्व-योजना के विरोध में भगवान् को शरीर पीड़न की चुनौती बतलाया था।

उपवास की आध्यात्मिक शक्तियों के चमत्कारों का उपयोग यथा सम्भव सत्य, न्याय, तथा मानवता के बचाव के लिए होना चाहिये अन्यथा उपवास आतंक बन जायगा और लोग दूसरों को डराने धमकाने में उसका उपयोग करने लगेंगे। यही दुरुपयोग देख कर मार्च १९३३ में जार्ज अरंडेल ने कहा था कि "उपवास आतंकवाद है जिस में विरोधी के लिए आत्म-समर्पण करने या सत्याग्रही का आत्मघात देखने के अलावा कोई चारा नहीं।"

पृष्ठ ९ का शेष

दी परन्तु वह मुसलमानों से ही अधिक लड़ गया जो स्वयं एक ही ईश्वर के पूजक हैं। हिन्दुओं का सुधार करना उसने छोड़ दिया।

मैं चाहता हूँ कि हम सब यह समझ लें कि एक ही कर्त्ता, जिस ने मनुष्य मात्र को बनाया है वह हम सब का ही भला चाहता है। वह हम को अच्छे से अच्छे विचार देता है। अच्छे विचार हमको बुराई से बचाते हैं। बुराई को मिटाते हैं। हिल मिल कर रहना सिखाते हैं और बुरे विचार बीमारी हैं। आज हमको न्याय वा प्रेम पूर्ण समाज बनाना है।

जन्तु-शास्त्र के पारिभाषिक शब्द

श्री चम्पत स्वरूप

Fabella शिम्बिका
Facet पहल
Facet (of a bone) स्थालक
Facial वक्त्रीय
Faeces पुरीष
False rib गौण पशु का
Family वंश
Fang आशी
Fascia मांसावरक कला
Fasciola पट्टक
Fasciola hepatica पट्टक यांकृत
Fat स्नेह, मेद
Fat body मेदकाय
Fat cell मेदकोष्ठ
Fatty acid स्नेहाम्ल
Fatty tissue मेदधातु
Feather पर
Feather-star परतारा
Feeding canal परिपोषक स्रोत
Femoral औौर्वी
Femur ऊर्विका
Fenestra गवाक्ष
Fenestra ovalis अंडगवाक्ष
Fenestra rotunda वृत्तगवाक्ष
Ferment किण्व
Fermentation किण्वन
Fertile फलद, फलप्रद
Fertilisation फलप्रदकरण
Fertilise फलप्रद करना
Fertilised फलप्रदकृत
Fertility फलदता, अवंध्यत्व
Fibre सूत्र
Fibrin सूत्रिन
Fibrinogen सूत्रिनोजन
Fibula कुड्डपिका
Fibulare कुड्डपक
Filaria सूत्रिया
Filariasis सूत्रियारुक
Filum terminale अन्त्य सूत्रिका
Fimbria hippocampi नीराश्वकीय धारा
Fingers अंगुलियां
Fin पत्त्रक, वाज
Fin-rays वाजरश्मियां
Fish मत्स्य, मछली
Fission विभाजन
Fissure सीता
Five-rayed पंचकिरण
Flagellum कशा
Flagellata कशी, कशावान
Flame cell ज्वालाकोष्ठ
Flap पत्रक, लोलक
Flat fish चपटी मछली
Flat worm चपटे कृमि
Flea फुदकु, पिस्सू
Flesh fly मांस मक्खी
Flipper क्षेपणी
Float प्लव
Floating rib अलग्न पशुका

Floccular fossa तूलपिंडिका खात
Floccular lobe तूलपिंडिका पिंड
Flocculus तूलपिंडिका
Flying fish उड़ाकू मछली
Flying lizard उड़ाकू छिपकली
Fold लपेट
Foliate papilla पत्रोपम पिप्पल
Follicle पुटक
Fontanelle ब्रह्मरन्ध्र
Food vacuole बुद्बुद
Foot पैर, पाद, पद
Foramen छिद्र
Foramen lacerum anterius अग्रिम दीर्ण छिद्र
Foramen lacerum medium मध्य दीर्ण छिद्र
Foramen lacerum posterius पश्चिम दीर्ण छिद्र
Foramen magnum महा छिद्र
Foramen of monroe मोनरो का छिद्र
Foramen ovale अंड छिद्र
Foramen rotundum वृत्त छिद्र
Foraminifera बहुछिद्री
Fore-arm प्रकोष्ठ
Fore-brain अग्रिम मस्तिष्क
Fore-limb अग्रिम शाखांग
Forked द्विधाकृत
Fornix तोरणिका
Fossa ovalis अंडखात
Fossil जीवाश्म
Frog मेंढक
Frontal पूर्विका
Fronto-perietal पूर्वपार्श्विका

गुरुकुल को राष्ट्र-पिता का आशीर्वाद

हम सब गुरुकुल-विश्व-विद्यालय की स्वर्ण-जयन्ती अगले वर्ष होली के अवसर पर मनाने जा रहे हैं। इस समय हमें लोक-प्रिय एवं शांति के पुजारी महात्मा गांधी जी का आशीर्वाद और अपील, जो उन्हों ने गत रजत-जयन्ती के अवसर पर की, अकस्मात् स्मरण हो आते हैं। खेद है वह विभूति आज हमारे बीच में नहीं है और उनके परम-पुनीत आशीर्वाद से हम वञ्चित हो रहे हैं। महात्मा गांधी की जो श्रद्धा स्वामी श्रद्धानन्द जी के लिए थी एवं जो प्रेम गुरुकुल विश्व-विद्यालय के प्रति था वह उनके एक-एक शब्द से टपकता है।

गांधी जी का आशीर्वाद

"आज तो मेरे मन में ऐसा प्रतीत होता है कि साधु वास्वानी के जैसे मैं भी प्रणाम करके बैठ जाऊं। पर यों हर किसी की नकल नहीं कर सकता। अनुकरण भी स्वाभाविक होना चाहिये, इस से मुझे तो जो कहना है, वह कह ही दूंगा।"

"स्वामी जी का देहान्त तो तब होगा, जब हम उनकी सची देह को मिटाने की कोशिश करेंगे, अगर्चे कि सची बात तो यह है कि हमारी कोशिश से भी उनकी देह का नाश होने को नहीं है—जब तक यह गुरुकुल कायम है, जब तक एक भी स्नातक गुरुकुल की सेवा करता है तब तक स्वामी जी जीते हैं। स्वामी जी का शरीर तो किसी दिन गिरने को था ही, पर स्वामी जी का सब से बड़ा काम गुरुकुल है, उन्होंने अपनी सारी शक्ति इस में लगा दी थी, इसे पैदा करने में उन्होंने अधिक से अधिक तपश्चर्या की थी, तुम ने सत्य की प्रतिज्ञा ली है। अगर तुम अपने बचन का पालन करोगे तो किसी की हिम्मत नहीं कि वह गुरुकुल को मिटा देवे।" "पर गुरुकुल को चिरस्थायी रखने के लिए, उस वीरता, ब्रह्मचर्य और क्षमा की जरूरत है, जो हमने उन के जीवन में देखी। वीरता का लक्षण क्षमा और ब्रह्मचर्य, और वीर्य का सयंम है। वीरता और वीर्य की रक्षा से तुम देश और धर्म की पूरी पूरी रक्षा कर सकोगे। मैं जानता हूं कि यह काम मुश्किल है। तुम्हारे यहां के बहुत से विद्यार्थियों के पत्र मेरे पास पड़े हुए हैं। कोई मेरी स्तुति करता है तो कोई गाली देते हैं। स्तुति तो नाकाम चीज है। उसका असर मेरे ऊपर नहीं होता। परन्तु जब विद्यार्थी चिढ़ कर गाली देते हैं तो मुझे चिन्ता होती है। क्यों कि क्रोध से वीर्य का नाश होता है। स्वामी जी के सामने मैंने ब्रह्मचर्य की व्याख्या रक्खी थी और वे मेरे साथ सम्मत थे, किसी स्त्री का मलिन स्पर्श न करने में ही ब्रह्मचर्य नहीं होता, हां ब्रह्मचर्य वहां से ज़रूर होता है। पर क्षमा की पराकाष्ठा ब्रह्मचर्य का लक्षण है, पिछले साल स्वामी जी जब टंकारा से पीछे लौटते समय मुझ से मिलने गये थे तो उन्होंने मुझे कहा कि 'हिन्दू धर्म की रक्षा नीति से ही सम्भव है।' अगर तुम वैदिक आचार और विचार की रक्षा करना चाहते हो तो यह बात याद रखो कि तुम्हें पग २ पर रुपये मिल जायेंगे,

मगर ब्रह्मचर्य का, नीति का पाया यहां पर न होगा तो तुम्हारा गुरुकुल मिट्टी में मिल जायगा। इस भूमि के तो आत्मा नहीं है, इसकी आत्मा तुम्हीं हो. अगर तुम आत्मबल खो दोगे और "उदरनिमित्तं बहुकृतवेशः" जैसे बन जाओगे तो तुम्हारी सारी शिक्षा बेकार जायगी, मैं आज तुम्हारे आगे चर्खा और खादी की बात करने नहीं आया हूं। तुम्हारा पहला काम ब्रह्मचर्य और वीरता का—क्षमा का है, उसे भूल जाओगे तो स्वामी जी का काम कायम नहीं रहेगा, अब्दुल रशीद की गोली से स्वामी जी का क्या हुआ ? वे तो उस गोली से ही अमर हुए।

स्वामी जी का दूसरा काम अछूतोद्धार था, जिन शब्दों में मालवीय जी ने खादी की बकालत की, मैं नहीं कर सकता। पर इतना ज़रूर कहूँगा कि अगर हम हमेशा गरीबों और अछूतों की फिक्र रखेंगे तो खादी से अलग नहीं रह सकते, अगर किसी अमली काम में वीर्य की रक्षा का उपयोग करना हो तो खादी से बढ़ कर दूसरा कोई काम नहीं है। खादी के कार्य के साथ मैं स्वामी जी का नाम नहीं जोड़ना चाहता, क्यों कि उनका मुख्य काम यह नहीं था, पर तुम स्नातक विदेशी कपड़े से अपना शरीर सजाने का विचार न करोगे पर अपने गरीबों और अछूतों की रक्षा के लिए केवल खादी ही धारण करोगे।

ईश्वर तुम सब के ब्रह्मचर्य, और सत्य तुम्हारी प्रतिज्ञाओं की रक्षा करें, गुरुकुल का कल्याण करें और स्वामी जी का हर एक काम परमात्मा चालू रक्खे।"

गांधी जी की अपील

दीक्षान्त—संस्कार के दिन सायंकाल अपील हुई। आचार्य रामदेव जी की अपील के बाद महात्मा गांधी भाषण देने के लिए उठे। उन्हों ने कहा "आर्य समाज की मैं टीका करता हूँ। पर स्तुति भी करता हूँ, और जो हार्दिक स्तुति करता है, उसे टीका करने का अधिकार होता ही है। मैं मानता हूं कि ब्रिटिश राज्य स्थापित होने के बाद शिक्षितों का जनता के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध नहीं रहा और उस सम्बन्ध का पुनरुद्धार करने वाला आर्य समाज है।"

"आज जो दृश्य यहां दिखलाई पड़ता है वैसे दृश्य भाग्य से ही कहीं दूसरी जगह देखने में आते हैं। मैं आपका कुछ अनुकरण करता हूँ पर मुझे बालटियों में पैसे नहीं मिलते। मैं तो रुमालों में पैसा इकट्ठा करता हूँ। मुझे तो पैसा मिलता है। और आपको रुपये मिलते हैं, सभी के सभी पंजाबी कुछ धनिक नहीं हैं, आप में भी गरीब लोग तो हैं ही, पर आपका दिल उदार है। मैं आर्य समाज की टीका करता हूं। आपको झगड़ालू कहता हूं, पर आज आप का काम करने आया हूं। उदार पञ्जाबियों को कहता हूं कि जो वो पैसा दे चुके हैं, वे फिर से देवें। क्यों कि मैं यहां स्वीकार करना चाहता हूं कि गुरुकुल की मार्फत हिन्दुस्तान की सेवा हो रही है। मैं ऐसा नहीं मानता कि आपकी टीका करते हुए मैं आपका त्याग न समझता होऊंगा, आप में त्याग तो भरा हुआ है ही पर इस त्याग पर सन्तुष्ट न हो जाओ। जो त्याग आगे दिखलाया है। उसके मुकाबले में, यह

त्याग कुछ भी नहीं है। पर मैं आपके त्याग की स्तुति करता हूं। क्यों कि आपके बराबर दूसरे में त्याग शक्ति नहीं है। काम तो वही है जो त्यागवृत्ति से किया जाता है। बाकी तो स्वच्छन्द है। 'आपकी स्तुति करता हूं तो इससे सन्तुष्ट न हो जाना। आप ने दिया तो इस से यह न समझना कि पूरा दे दिया।

दान का अर्थ ही है कि वह अधिक से अधिक दिया जाय, जिस संस्था के लिए स्वामी श्रद्धानन्द के सर्वस्व का त्याग था, उसके लिए जितना दे सको दो, और कुछ परिणाम न भी निकले तो भी गुरुकुल ने संस्कृत के अभ्यास को स्थान दिया है। यह क्या कुछ छोटी बात है? जब किसी पंजाबी को मैं देवनागरी पढ़ते देखता हूं तो अटकल करता हूं कि वह गुरुकुल का पढ़ा होगा। दोष किस संस्था में नहीं होते? पर दोषों के होते हुए भी गुरुकुल संस्था की सेवा बहुत बड़ी है। इस गुरुकुल की आप सेवा करो और इसे जीवत रखो। स्वामी श्रद्धानन्द का कहना है कि इस संस्था के लिए उन्हों ने ब्रह्मचर्य और तपश्चर्या के दो दान दिये थे। आप कहो कि इस संस्था को जीती रखने के लिये हम से जितना हो सकेगा हम दान करेंगे।

अनुपम विश्व-भारती देखी

श्री देवराज

जन हंसते थे तुझ पर स्वामी! "यह कैसा दम्भी संन्यासी!
चला लूटने भोली दुनिया माल मारने बन विश्वासी"!
पर तुम तरुण तपस्वी! उन की सुन सुन बातें हंस देते थे
और सोचते अपने मन में सदा दीन हो यूं कहते थे

इस नश्वर जीवन से कोई काम किसी का नहीं सरेगा?
यूं ही पाया जग में जीवन और व्यर्थ तू हाय! मरेगा!
नहीं नहीं हे ईश! मुझे दो, बल अपार अपना बल सागर!
जिस से मैं सर्वस्व मिटा कर करूं देश पै देह निछावर।

आह! युवा संन्यासी! तेरी दीन-विनय में कितना बल था
कितना था विश्वास भरा और कितनी श्रद्धा का संबल था।
तेरा बल साकार खड़ा है गंगा के उस पावन तट पर,
और चिनौती देता वह उन हंसने वालों को जी भर कर।

देखो हंसने वालो! "मैंने माल मार कर क्या कर डाला।
लाखों के मन्दिर रच डाले जङ्गल में मङ्गल कर डाला॥
कितने अलंकार निकले हैं स्वर्ण-मयी इस शुभ्र खान से।
सत्यदेव-से रत्न तथा श्री भीमसेन, वागीश शान से॥

तक्ष शिला की विश्व-भारती सम्भवतः यह है ओजस्वी,
चन्द्रगुप्त से कथा-राज्य निर्माता उपजे यहां मनस्वी।
मालवीय और विश्व-कवि-ठाकुर की विश्व-भारती देखी॥
पर भारत में गंगा तट पर अनुपम विश्व-भारती देखी॥

संसार सुखमय है या दुःखमय

श्री वागीश्वर विद्यालङ्कार

विस्मृति में अनन्त विरह की अनुभूति

किन्तु जीवन के किन्हीं प्रशान्त क्षणों में हमारा पुरातन प्रेम, अतीत स्मृतियां हृदय में उस पारलौकिक विरह की वेदना को ताज़ा कर जाते हैं जो धीरे २ मूर्छित हो गई थी, और तब हम अपने खोये हुवे प्रिय के लिये व्याकुल हो जाते हैं। उसके लिये दौड़-धूप करते हैं, पर वह हाथ नहीं आता। अपने इस विफल प्रयास को ही, संभवतः, उसने अपनी 'कोकिल' नामक कविता में प्रकट किया है। वह कहता है कि उसके जीवन-उपवन में जो आनन्द एक दिन कोकिल बनकर कुहुक उठा था, वह शीघ्र ही उड़ गया। उसकी कुहुक अब भी वहां सुनाई दे जाती है और स्वप्न-लोक के किन्हीं सुनहरे क्षणों का कहानी कह जाती है। आज वह उसके लिए एक ध्वनि, एक रहस्य मात्र रह गया है, जिसे ढूँढने को वह व्यर्थ ही वनों और मैदानों में भटकता है। वह कवि के लिये अब भी एक आशा, एक प्रेम की वस्तु बना हुआ है जिसकी चाह उसे सदा सताती है, पर जो दीखता कभी नहीं। कवि उस ध्वनि को सुनता-सुनता भावना-विभोर हो एक स्वर्णीय युग का निर्माण कर डालता है और उस कोकिल से कहता है कि यह संसार फिर से अप्सरियों के लोक के समान कमनीय होकर तुम्हारे आवास के योग्य बन गया है। तुम आओ!१ किन्तु निश्चय ही वह

१—O blithe new-comer ! I have heard
I hear thee and rejoice:
O cuckoo ! shall I call thee Bird.
Or but a wandering voice ?
... ...
Thrice welcome, darling of the spring !
Even yet thou art to me
No bird but an invisible thing.
A voice, a mystery
... ...
To seek thee did I often rove
Through woods and on the green;
And thou west still a hope, a love;
Still longed for, never seen.

परदेसी फिर वहां नहीं आता । इस अनन्त विरह की वेदना से मूक प्राण, विश्व वीणा की एक सुकुमार तन्त्री अपने गायक के कर का निर्मम आघात पाकर करुण झङ्कार में कह रही है—

कहीं से, आई हूँ कुछ भूल !
कसक कसक उठती सुधि किसकी ?
रुकती सी गति क्यों जीवन की ?
क्यों अभाव छाये लेता—
विस्मृति सरिता के कूल ?

किसी अश्रुमय धन का हूँ कन,
टूटी स्वर लहरी की कंपन,
या ठुकराया गिरा धूलि में
हूं मैं नभ का फूल !

दुख का युग हूं या सुख का पल,
करुणा का धन या मरु निर्जल,
जीवन क्या है मिला कहा
सुधि भूली आज समूल !

प्याले में मधु है या आसव,
बेहोशी है या जागृति नव,
बिन जाने पीड़ा पड़ता है
ऐसा विधि प्रतिकूल ॥ यामा पृ. १०३ ॥

अनन्त विरह की अनुभूति के दो भेद

१—साक्षात् अर्थात् सीधी अनन्त के प्रति जो भक्तों को होती है । इस अनन्त पारलौकिक विरह की अनुभूति दो प्रकार की है। एक साक्षात् - जिसमें आत्मा सीधी उस अनन्त से ही मिलने को व्याकुल होती है जो इस दृश्यमान विश्व के पीछे, इसका छिपा हुआ सूत्रधार है । जिसकी छाया इसके कण कण में प्रतिबिम्बित होकर इसे कमनीय बना रही है—

And I can listen to thee yet;
Can lie upon the plain
And listen, till I do beget
That golden time again.
O blessed Bird ! the earth we pace
Again appears to be
An unsubstantial fairy place
That is fit home for thee.

तेरी आभा का कण नभ को देता अगणित दीपक दान;
दिन को कनक राशि पहनाता विधु को चांदी सा परिधान;
करुणा का लघु बिन्दु युगों से भरता छलकाता नव घन;
समा न पाता जग के छोटे प्याले में उसका जीवन ।
तेरी महिमा की छाया छवि छू होता वारीश अपार;
घन सा तमसा अन्तहीन विस्तार;
सुषमा का कण एक खिलाता राशि राशि फूलों के वन
शत शत झंझावात प्रलय बनता पल में भ्रू संचालन ॥

धन्य हैं वे आत्माएं जिनमें यह विरह की चिनगारी सुलग जाती है और अन्त में उन्हें भस्म कर डालती है। उस भस्म को उनका प्रियतम अपने शरीर पर इस प्रकार मल लेता है जैसे भगवान् शंकर ने यज्ञाग्नि में दग्ध हुई सती की भस्म को मल लिया था। यह विरह सब मलिनताओं, सब पापों को नष्ट कर देता है। यह वह सम्राट् है जिसके चरणों के स्पर्श से कृतार्थ हुवे बिना यह देह श्मशान है—

विरहा विरहा ना कहो, विरहा है सुलतान ।
जा घट विरह न संचरै सो घट जान मसान ॥

मिलन मन्दिर में प्रियतम का दर्शन पाने के लिये भाग्यशालिनी मीरा ने शरीर के दीपक में प्रेम का तेल डाल अपनी मनसा की बत्ती को इसी अग्नि से प्रज्वलित किया था—

या तन का दिपना करौं, मनसा करौं बाती, हो ।
तेल भरावों प्रेम का, बारों सारी राती, हो ॥

कबीर भी कुछ ऐसा ही दीपक बाल कर प्रिय का मुख देखने को आतुर हैं—

यहि तन का दिवला करौं, बाती मेलों जीव ।
कोहू संचों तेल ज्यों, कब मुख देखों पीव ?

किन्तु प्रिय नहीं आ रहा। उसका पथ निहारते २ उनकी आंखों में जाला पड़ गया और नाम रटते २ जीभ में छाले। वे सूख कर कांटा हो गये। विरह उनके तन को सारंगी बना कर बजा रहा है। रग-रग से प्रिय प्रिय का राग निकल रहा है—

सब रग तांत रबाव तन विरह बजावे नित्त ।
और न कोई सुन सकै कै सांई कै चित्त ॥

धीरे २ इस दीपक राग की तीन आरोह की चरम सीमा पर जा पहुँचती है और भीतर ही भीतर एक ज्वाला प्रकट हो जाती है। उसका धूँआ बाहर नहीं निकलता। उसे या तो जलने वाला जानता है या वह जिसने उसे जलाया है—

हिरदय भीतर दव बले, धुँआ न परगट होय ।
जाके लागे सो लखे या जिन लाई होय ॥

भक्त मीरा भी इस पीड़ा से छटपटा रही है और उसकी कथा को समझने वाला कोई नहीं।

वह 'दरद दिवाणी' बन-बन डोलती है पर कोई वैद्य नहीं मिलता। उसकी सेज सूली पर बिछी है, वहां सोये तो कैसे? सांवलिया वैद्य तो है पर बड़ा ही वज्र-हृदय। अपने रोगी को तड़पाने में उसे असीम सुख मिलता है—

हे! री! मैं तो दरद दिवानी मेरा दरद न जाने कोय।
घायल की गति घायल जाने, की जिन लाई होय।
जौहरि की गति जौहरि जाने की जिन जौहर होय।
सूली ऊपर सेज हमारी सोना किस विध होय?
गगन मण्डल में सेज पिया की किस विध मिलना होय?
दरद की मारी बन-बन डोलूँ, वैद मिला नहीं कोय,
मीरा की प्रभु! पीर मिटेगी, जब वैद सँवलिया होय॥

प्रेम वियोगिनी को नींद कहां? उसके नेत्रों में प्रियतम का रूप समाया हुवा है, वहां नींद के लिये ठौर ही नहीं।

आठ पहर चौंसठ घड़ी, मेरे और न कोय।
नैना मांही तू बसे, नींद को ठौर न होय॥

इस प्रकार जलते जलते एक दिन वेदना असह्य हो जाती है तब उसे मृत्यु का ध्यान आता है। कविवर मैथिली शरण जी के शब्दों में—

मरण सुन्दर बन आया री!
शरण मेरे मन भाया री!
आली मेरे मनस्ताप से वह पिघला इस बार।
रहा कराल कठोर काल सो हुवा सदय सुकमार॥
नर्म सहचर सा छाया री! मरण सुन्दर०।
अपने हाथों किया विरह ने उसका सब शृङ्गार,
पहना दिया उसे उसने मृदु मानस मुक्ता हार।
विरुद विहगों ने गाया री। मरण सुन्दर०॥
फूलों पर पद रख, फूलों पर रच लहरों से रास,
मन्द पवन के स्पन्दन पर चढ़ बढ़ आया सविलास।
भाग्य ने अवसर पाया री। मरण सुन्दर०॥
फिर भी गोपा के कपाल में कहां आज यह भोग?
प्रियतम का क्या यम का भी है दुर्लभ उसे सुयोग—
बनी जननी भी जाया री। मरण सुन्दर०॥

इस लिये— स्वामी मुझको मरने का भी दे न गये अधिकार,
छोड़ गये मुझ पर अपने उस राहुल का सब भार।
जिये जल जल कर काया री। मरण सुन्दर०॥

पर कबीर जी की विरहिन जाया और जननी— दोनों होने की दुविधा से मुक्त है। वह केवल विरहिणी है। अतः—

कै विरहिन को मीच दे, कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना मो पै सहा न जाय॥

वह सत करने का निश्चय कर लेती है और कांटों की सेज बिछा, उसे इसी अग्नि से प्रज्वलित कर, अपने प्रियतम के ध्यान में मग्न हो उस पर सो जाती है—

सती बिचारी सत किया, कांटों सेज बिछाय।
लै सूती पिय आपना चँहुँ दिशि अगिन लगाय॥

अनन्त विरह की समाप्ति

भक्त की आत्मा वह सीता है जो इस अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण होकर ही अपने राम के पूर्ण प्रेम की अधिकारिणी बनती है। नित्य का विरह नित्य मिलन में परिवर्तित हो जाता है। अब वे ही दृश्य, वही सामग्री जो वेदना को बढ़ा दिया करते थे सुखमय हो जाते हैं। जो मीरा कुछ घड़ी पहले कह रही थी कि इस श्याम घटा को[1] देख कर उसे डर लग रहा है। ये काली पीली मेघ मालाएं उमड़-उमड़ कर बरस रही हैं, सब ओर पानी ही पानी हो रहा है। प्रिय परदेस गये हैं, वह उनकी राह देखती बाहर खड़ी भीग रही है। वही अब सावन की झुकी बदरिया को देख कर उसका अभिनन्दन करती है— हे मन भावन सावन की सुहावनी घटा! तू बरस और खूब बरस। मेरा प्यारा आ पहुँचा है, उसकी आहट मैंने पा ली है। आनन्द का मेघ चारों ओर उमड़ घुमड़ रहा है। रह-रह कर बिजली कौंधती है। झर हो रहा है। नन्हीं-नन्हीं फुआरें पड़ रही हैं। शीतल समीर चल रहा है। गिरिधर प्रभु के शुभागमन से मोद-मग्न हो मीरा आनन्द मंगल गा रही है।[2]

---

१ बादल देख डरी, हो स्याम! मैं बादल देख डरी।
काली पीली घटा ऊमठी बरस्यो एक घड़ी।
जित जाऊं तित पानी पानी, हुई हुई भोम हरी।
जा को पिय परदेस बसत है भीजूँ बाहर खरी।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी! कीज्यो प्रीत खरी।

२ बरसौ बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन में उमग्यो मोरा मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।
उमड़ घुमड़ चँहु दिस से आयो, दामन दमक, झर लावन की।
नन्हीं नन्हीं बूँदन मेहा बरसै, सीतल पवन सोहावन की।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आनन्द मंगल गावन की॥

स्वर्गीय श्री पण्डित विश्वम्भर नाथ जी

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

गत प्रथम अप्रेल की रात्रि को पूज्य पण्डित विश्वम्भरनाथ जी का हृदय गति रुक जाने के कारण अकस्मात् देहावसान हो गया। पण्डित जी के आकस्मिक देहावसान का यह समाचार गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी और पंजाब के आर्यसामाजिक जगत् में बड़े दुःख के साथ सुना गया। आप गुरुकुल कांगड़ी के भूतपूर्व मुख्यअधिष्ठाता और गुरुकुल की स्वामिनी सभा आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के भूतपूर्व प्रधान और वर्तमान उप-प्रधान एवं कार्यकर्ता प्रधान थे। पण्डित जी उन व्यक्तियों में से थे जो प्रसिद्धि से परे भागा करते हैं और पीछे रह कर मौन रूप से जनता की निःस्वार्थ सेवा किया करते हैं। इस लिए गुरुकुल कांगड़ी और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से बाहर के क्षेत्र में पण्डित जी बहुत कम ज्ञात रहे हैं। आप प्लेटफार्म और प्रेस से सदा परे रहते थे इस लिए उनके परिचय का क्षेत्र उना बड़ा नहीं था जितना प्रसिद्धि के उन दोनों साधनों का आश्रय लेने वाले नेताओं का हुआ करता है। परन्तु जो लोग उनके निकट सम्पर्क में रहे हैं वे जानते हैं कि पण्डित जी कितने श्रेष्ठ और महान् व्यक्ति थे। उनमें जो उच्चता और श्रेष्ठता थी वह बहुत कम लोगों में पाई जाती है और बहुत बार तो प्रसिद्धि प्राप्त बड़े समझे जाने वाले लोगों में भी नहीं पाई जाती। जो जितना ही उनके निकट सम्पर्क में रहता था वह उतना ही उनके गुणों की महत्ता से प्रभावित होता था। अपने इन गुणों के कारण ही वे पिछले लगभग ३०-३५ वर्षों से पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के वास्तविक सचालक और सूत्रधार रहे हैं। पिछले २०-२५ वर्षों से तो उनकी पंजाब प्रतिनिधि सभा में जो स्थिति थी उसे देखते हुए बिना किसी प्रतिवाद के भय से कहा जाता है कि पण्डित जी और प्रतिनिधि सभा परस्पर पर्यायवाची हो गये हैं।

पण्डित जी को आर्यसमाज के अतिरिक्त और किसी भी सभा से तनिक भी लगाव न था। आर्य समाज से बाहिर के किसी भी क्षेत्र को अपना क्रिया क्षेत्र बनाना वे सोच भी नहीं सकते थे। अपने बाल्यकाल में उनको स्वामी श्रद्धानन्द जी (उस समय महात्मा मुन्शीराम जी) और पं० गुरुदत्त जी आदि महापुरुषों की संगति मिली थी। इन महा पुरुषों के संगत से आपने आर्य समाज और ऋषि दयानन्द के लिए अगाध प्रेम उत्पन्न हो गया। और उन्होंने जीवन भर आर्यसमाज की यथाशक्ति सेवा करने का निश्चय कर लिया। जब वे अपने यौवनकाल में गुरुदासपुर नगर में वकालत किया करते थे तब भी आर्य समाज के लिए अधिक से अधिक समय देने का प्रयत्न किया करते थे और आर्यप्रतिनिधि सभा के बहुत से कामों को सम्भाले हुए थे। महात्मा मुन्शीराम के संन्यास लेकर गुरुकुल कांगड़ी का आचार्यत्व और मुख्यअधिष्ठातृत्व परित्याग कर चले जाने के कुछ साल पश्चात्

जब प्रतिनिधि सभा ने आपको गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता बना कर भेजा तो आपने गुरुकुल की सेवा करते हुए गुरुकुल या प्रतिनिधि सभा से कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया और सर्वत्र अवैतनिक रूप में गुरुकुल की सेवा करते रहे। गुरुकुल की पच्चीस वर्षीय रजत जयन्ती आपके मुख्याधिष्ठातृत्व में हुई थी।

जब ६-७ साल गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता रहने के बाद आपने उस पद को छोड़ने का निश्चय किया तो एक दिन चुपचाप गुरुकुल से चले गए। गुरुकुल में किसी को अपने इस निश्चय का पता भी नहीं दिया कि कहीं ब्रह्मचारी और दूसरे कार्यकर्ता अभिनन्दन-पत्र आदि देने का झंझट न करने लग जायें।

गुरुकुल से आने के बाद आपने वकालत का कार्य फिर प्रारम्भ नहीं किया और न ही कोई और कार्य आजीविका के लिए शुरु किया। आपने अपने मन में सोचा कि गुरुकुल जैसी ब्राह्मण संस्था का सर्वप्रमुख अधिकारी रहने के बाद अब फिर नये सिरे से कमाने और दुनियादारी के झंझट में पड़ना शोभा नहीं देता है। अपने इस विचार के अनुसार उन्होंने फिर कमाने का कोई कार्य नहीं किया। गुरुकुल में आने से पहले वकालत के समय जो थोड़ी सी पूंजी एकत्र कर ली थी उसी से अपना निर्वाह करते रहे। इस प्रकार निर्वाह करते हुए उनका जीवन एक आदर्श ब्राह्मण का, पूर्ण गरीबी का-स्वेच्छापूर्वक स्वीकार की हुई गरीबी का-जीवन रहा है। अब उन्होंने लाहौर में रहना प्रारम्भ कर दिया। लाहौर में ही प्रतिनिधि सभा का प्रधान कार्यालय था। अब आप चौबीसों घण्टे आर्यसमाज और प्रतिनिधि सभा का ही कार्य करने लगे। इसके बाद सभा में कोई प्रधान बनता रहा हो और सभा में कोई मंत्रीमण्डल आता रहा हो—आप सदा कार्यकर्त्ता उपप्रधान बनते रहे हैं। और सभा का सारा संचालन आपके ही कन्धों पर रहा है। सभा और गुरुकुल आदि संस्थाओं का कार्य करते हुए (आप गुरुकुल के अतिरिक्त कन्या गुरुकुल के भी मुख्याधिष्ठाता रहे थे और सभा के अधीनस्थ स्कूल और कालेजों के काम का निरीक्षण तो आप ही करते थे)। आप में और और गुणों के साथ जो एक बड़ी विशेषता थी वह यह थी कि आप हरेक बात की तह में जाया करते थे और आपको इसी लिए प्रत्येक प्रश्न की सालों पुरानी पृष्ठभूमि का पता रहता था। अंग्रेज़ी में जिसे 'मास्टर ऑफ डिटेल" कहते हैं उस प्रकार के व्यक्ति आप थे। इसी से आपकी सम्मति की बड़ी कीमत होती थी और सभा में प्रायः आपकी मानी जाती थी। पण्डित विश्वम्भरनाथ जी के हाथ में अपनी बागडोर सौंप कर प्रतिनिधि सभा निश्चिन्त थी।

पण्डित जी आर्य प्रतिनिधि सभाके मान्य बुजुर्ग थे। सभा के सब दलों को मिलाकर रखने का कार्य पण्डित जी को ही आता था और वे इस में सफल होते थे क्यों कि उनके गुणों के कारण सब उनका अत्यधिक आदर करते थे।

पण्डित जी का शरीर ब्रह्मचर्य, व्यायाम और तपस्या से सधा हुआ था। ७१ वर्ष की आयु में भी वे पूर्ण स्वस्थ और शक्तिमान थे। और जवानों जैसी उनमें काम करने की शक्ति थी। ख्याल भी नहीं होता था कि वे १० साल से पहले मर भी सकते हैं। आप पक्के इमानदार और सत्य प्रिय थे। किसी प्रकार की

धोखा धड़ी आपके पास नहीं फटक सकती थी। आप वकालत के समय भी कभी झूठे मुकद्मे नहीं लेते थे। सदा खरी बात करते थे। अपने विचारों के पक्के थे। अपने विचारों को प्रकट करने में कभी झिझकते नहीं थे। परन्तु अपने विचार और निश्चय बहुत सोच समझ कर बताते थे। जल्दबाजी में अपने विचार नहीं बनाते थे। बड़े मिलनसार थे। सबके साथ स्नेह और प्रेम का बर्ताव करते थे। जो कोई उनके सम्पर्क में आता था वह यही समझता था कि शायद पंडित जी उससे ही सब से अधिक स्नेह करते हैं। गुरुकुल के स्नातकों से तो उनका बड़ा प्रेम था। किसी नगर में जांय और वहां कोई स्नातक हो तो यह हो नहीं सकता था कि पंडित जी उससे मिल कर न आएं। समाज और सभा के रुपये को बड़ी किफायत से खर्च करते थे। तीसरे दर्जे में सफर करने की कोशिश करते थे। ड्योढ़े दर्जे से ऊपर दर्जे में कभी चलते ही नहीं थे। सामान इतना कम रखते थे कि कुली करने की आवश्यकता न पड़े। तांगा भी यथासंभव बहुत कम करते थे। पैदल ही चलने का प्रयत्न करते थे।

प्लेटफार्म और प्रेस में आप कभी जाते ही न थे। वार्तालाप द्वारा अपने विचारों का अपने परिचित वर्ग में प्रसार किया करते थे। आप के विचार बड़े बारीक और सुलझे हुए हुआ करते थे। हरेक समस्या पर आपके विचार दार्शनिकों को और गहराई तक पहुँचाने वाले होते थे। अपने ढंग पर उनका स्वाध्याय भी बहुत गहरा था। पंडित जी आदर्श ब्राह्मण थे। शास्त्रों में निष्कारण वेद का स्वाध्याय करना ब्राह्मण का एक लक्षण लिखा है। पंडित जी ३-४ घंटे प्रति दिन वेद का स्वाध्याय किया करते थे। कभी २ आग्रह करने पर लाहौर समाज के साप्ताहिक सत्संग में आप उपदेश किया करते थे। आपके उपदेश वेदमन्त्रों के आधार पर होते थे। उनके उपदेश सुनने से पता लगता था कि वे मन्त्र को हृदय में कितना गहरा ले जाते हैं। जैसा उनका आत्मा सुन्दर था वैसा ही सुन्दर उनका शरीर भी था। वे हमारी सभा में पूर्ण निष्काम कर्मयोगी थे।

उनके दिवंगत होने से गुरुकुलीय जगत् और पंजाब के आर्यसामाजिक जगत् में जो स्थान खाली हुआ है उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। भगवान् उन्हें वह गति प्रदान करें जो ऐसे पवित्र, धर्मपरायण, निष्काम, कर्मठ और तपस्वी पुरुषों को प्राप्त हुआ करती है।

विश्वविद्यालय गुरुकुल-पत्रिका का अनुकरण करें

साधना, कलकत्ता (चैत्र, वैशाख २००६) में प्रकाशित समालोचना

यह पत्रिका गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका है, इसकी सभी सामग्री पठनीय है। फाल्गुन २००५ का अङ्क समालोचनार्थ एवं सम्मत्यर्थ मेरे पास आया है। इसमें "पलमें शाश्वतता" "दैनिक जीवनमें आत्मनिर्देश का प्रयोग". "पेड़ पौदों का भारतीय वैज्ञानिक नामकरण", "मध्यकालीन भारत में डाक व्यवस्था" आदि निबन्ध विचारणीय हैं। सामग्री की दृष्टि से यह पत्रिका उच्चकोटि की है। इस में शक की गुञ्जायश नहीं । अन्य विश्वविद्यालयों की मासिक पत्रिकाएं इस पत्रिका का अनुकरण करें और ऐसी गठित सामग्री दें, तो प्रत्येक विश्वविद्यालयों विद्यार्थियों में का दृष्टिकोण ऊंचा हो। इस पत्रिकाका बाहर भी प्रचार होना चाहिये।

गुरुकुल की स्वर्ण-जयन्ती

अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा सन् १६०० में संस्थापित गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी अगले वर्ष सन् १६५० के मार्च महीने में अपनी स्वर्ण-जयन्ती मनाने जा रहा है। आगामी वर्ष के ग्रीष्म-काल में इस राष्ट्रीय-शिक्षा मंदिर की स्थापना को आधी शती हो जायगी। भारत भूमि का यह अपूर्व शिक्षा तीर्थ अपने स्थापना काल से लेकर अब तक भारत के तरुणों में अतीत के गौरव के साथ साथ नवीन विद्या-विज्ञानों के प्रति अनुराग पैदा करता हुआ उनके चरित्रों का निर्माण करता रहा है।

प्राचीन भारत की आर्य शिक्षाविधि के आदर्शरूप ब्रह्मचर्य और तपोमय जीवन पर गुरुकुल विशेष बल देता है। आर्यावर्त के प्राचीन महापुरुषों और मेधावी ऋषि-मुनियों की जीवन सिद्धि और महत्ता की मूल कुँजी यह ब्रह्मचर्य पूर्वक ज्ञानोपासना ही थी।

प्रकृति के शान्त पावन वातावरण में बसा हुआ यह शिक्षा तपोवन छात्रों की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों के शुभंकर विकास और उद्बोधन में प्रयत्नशील रहा है। आश्रम विद्यापीठ की यही विशेषता है कि उसके छात्र नगरों के कोलाहल पूर्ण एवं विक्षोभजनक प्रभावों से बचकर समुचित रूप से अपना विकास और निर्माण करते हुए सुसंस्कृत नागरिक बन कर देश, धर्म और राष्ट्र के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकें। गुरुकुल की समस्त शिक्षा विधि का माध्यम हिन्दी भाषा रखा गया है। इससे छात्र सहज और सरल रीति से विभिन्न शास्त्रों और विज्ञानों के मर्म को अवगत कर पाते हैं।

विश्वविद्यालय के शिक्षा-क्रम में प्राचीन भारतीय इतिहास, वैदिक साहित्य तथा दार्शनिक वाङ्मय के साथ तथा कथित आधुनिक विद्याओं और विज्ञानों के अध्यापन का सुभग समन्वय किया गया है जिससे निजू संस्कृति के उपासक होने के साथ साथ बौद्धिक संतुलन द्वारा जीवन और जगत की विविध समस्याओं का ठीक ठीक मूल्यांकन कर सकें।

उस प्रकार की जीवन दायिनी और सदाचार-मूलक शिक्षा दीक्षा पाए हुए युवक प्रति वर्ष यहां से स्नातक होते हैं। ये स्नातक समाज सेवा, राष्ट्र सेवा, साहित्य सेवा और औषध सेवा आदि के द्वारा विभिन्न रूप में मातृ-भूमि की सेवा के लिये तैयार किये जाते हैं। इस प्रकार का यह राष्ट्रीय शिक्षा सदन उन सभी सहृदय जनों के स्नेह, सहयोग और सहायता का अधिकारी है जो राष्ट्रीय शिक्षा और राष्ट्रीय जागरण के कार्य में अनुकरण और अभिरुचि रखते हैं।

श्री मुख्याधिष्ठाता जी की अपील

गुरुकुल महायज्ञ को रचे ५० वर्ष व्यतीत होने का सुअवसर भारत वर्ष में आनन्द और उल्लास का प्रवाह करने वाला होगा।

गुरुकुल की स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने अपने प्रस्ताव सं० २४ तिथि १५ चैत्र २००४ द्वारा निश्चय किया है कि आगामी होलियों में गुरुकुल की स्वर्ण-जयन्ती मनाई जावे। इस शुभावसर पर हमारी जाति समूह रूप से मिल कर यह घोषणा कर सकेगी कि उसने दिन रात जाग कर अपनी तुच्छ परन्तु विद्यावासित आहूतियों से जातीय शिक्षा की यज्ञाग्नि को अब

तक प्रदीप्त रखा है।

गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के आधारभूत सिद्धान्तों ने आज भारत के शिक्षा-क्षेत्र में हलचल मचा दी है, और ऋषि दयानन्द के प्रतिपादित किए हुए उन मौलिक सिद्धान्तों के सन्मुख भारत के ही नहीं संसार भर के शिक्षा-विज्ञ झुक रहे हैं। ऐसी अवस्था में हृदयों में उत्साह भर कर अभी से आर्य जनता को स्वर्ण-जयन्ती उत्सव के आशातीत सफल बनाने की चिन्ता प्रारम्भ कर देनी चाहिये ताकि यह सुअवसर आर्य जाति के लिए नवयुग का सन्देश लाने वाला हो।

गुरुकुल स्वर्ण-जयन्ती की सफलता के जहां अन्य अनेक प्रोग्राम जनता के सामने रखे जावेंगे, वहां उनमें से एक महत्वपूर्ण प्रोग्राम गुरुकुल के लिए तीस लाख रुपया एकत्रित किये जाने का है।

इस राशि को एकत्रित करना प्राचीन शिक्षा-प्रणाली के प्रेमियों के लिए कोई कठिन काम नहीं है।

धन एकत्रित करने के लिए दो प्रकार के डेपुटेशन भारत भर फिरेंगे। एक बड़े-बड़े शहरों में, दूसरे छोटे-छोटे स्थानों पर। अतः कृपया आप अपने नगर, अपने निकटस्थ स्थानों, ग्रामों और कस्बों के निवासी, धनिक विद्या-प्रेमी सज्जनों के पते लिखने का कष्ट करें, जिनको हम स्वर्ण-जयन्ती सम्बन्धी विज्ञप्तियां भेज सकें तथा दान के लिए प्रेरणा कर सकें।

२. उन सज्जनों के पते जो इस महान यज्ञ में साधारणतया धन की आहुति दे सकते हों।

३. उन सज्जनों के पते जो गुरुकुल से अगाध प्रेम रखते हों और जिन से निरन्तर वार्षिक सहायतायें मिलने की आशाएं हों।

आशा है स्वर्ण-जयन्ती को हर प्रकार से सफल बनाने के लिए तीस लाख रुपये की पूर्ति के निमित्त आप भरसक प्रयत्न कर दानी सज्जनों के पतों से शीघ्र सूचित कर कृतार्थ करेंगे।

अन्य समाचार

स्वर्ण जयन्ती का कार्य आरम्भ हो चुका है। इसके लिये नया कार्यालय खोल दिया गया है, कार्य बड़ी धूम-धाम से हो रहा है।

२. आज कल महाविद्यालय के ब्रह्मचारी ग्रीष्मावकाश पर घर गये हुए हैं, और वे धन संग्रह के कार्य कर रहे हैं। आर्य-जनता से प्रार्थना है कि उनकी धन संग्रह में सहायता करें।

३. संरक्षक महोदयों, आर्य समाज के अधिकारियों तथा अन्य गुरुकुल प्रेमियों से हमारा नम्र निवेदन है कि स्वर्ण-जयन्ती को सफल बनाने में हमारी सहायता करें। दानियों के हमें ऐसे पते संग्रह करके भेजें जो अपने तथा अपने कुटुम्बी जनों के स्मारक हेतु गुरुकुल में कमरा इत्यादि बनवाने के इच्छुक हों।

४. ऐसे भी दानियों की आवश्यकता है जो निर्धन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देकर पुण्य लाभ प्राप्त करना चाहते हों।

५. गुरुकुल में शिल्प महाविद्यालय खोलने का निश्चय हो चुका है। उसके लिए धन की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा-निधि, श्रद्धानन्द-प्रतिष्ठान तथा वैदिक-अनुसन्धान के कार्य के लिए दान की आवश्यकता है।

६. देश के विभाजन होने के कारण हमारे बहुत से प्रेमी और प्रतिज्ञा-दानी जो पाकिस्तान में रहते थे अस्तव्यस्त हो गये हैं। उनसे हमारी सानुरोध प्रार्थना है कि वे कृपा कर अपना पूरा पता "मंत्री, स्वर्णजयन्ती, गुरुकुल कांगड़ी" के पास शीघ्र भेज दें ताकि उनके पास स्वर्णजयन्ती की विज्ञप्तियां तथा अन्य आवश्यक समाचार भेजे जा सकें।

राष्ट्रपति के सुन्दर उद्गार

राष्ट्रपति डॉक्टर पट्टाभि सीतारामय्या ने हाल ही में गुरुकुल पधारने पर निम्नलिखित उद्गार व्यक्त किये थे--

मेरे मन में यह आकांक्षा चिरकाल से बसी हुई थी कि हरिद्वार के समीप स्थित गुरुकुल विद्यातीर्थ का अति निकट से अवलोकन करूं। इस शिक्षा संस्था के विषय में बहुत कुछ सुन रखा था। सन् १९३६ में एक बार ऐसा सुअवसर हाथ में आ गया था कि यहां पहुंच गया था। परन्तु एकाएक रोगी हो जाने से घूम फिर कर संस्था को नहीं देख पाया।

इस वर्ष मेरी यह महेच्छा पूर्ण हो सकी है। खुले और विशाल स्थान में बसे हुए इस ज्ञान तीर्थ के भव्य निर्माण की परिक्रमा करके निहारते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है जहां पर हमारे राष्ट्र के उदीयमान छात्रों को विशुद्ध भारतीय राष्ट्रीयता के वातावरण में शिक्षा-दीक्षा दी जाती है।

एक सच्चे विश्वविद्यालय का महत्व उसके पाठ्यक्रम में नहीं अपितु उसके वातावरण में होता है। वहां के छात्रों के बौद्धिक निर्माण ही में नहीं होता अपितु उनके चरित्र निर्माण में निहित होता है। गुरुकुल विश्वविद्यालय अपने अन्तेवासी के अन्दर जिस प्रकार के विशिष्ट चरित्र का निर्माण करता हुआ अपने स्नातकों के मनों में सेवा की जैसी सद्भावनाएं प्रबोधित करता है उसके लिये यह अच्छी कीर्ति प्राप्त कर चुका है।

भारतवर्ष के स्वाधीनता प्राप्त कर चुकने पर भी ऐसे विश्वविद्यालयों की महत्ता कुछ कम नहीं हुई है जो अपने युवकों को राष्ट्र के निर्माण के लिये उद्बोधित करते हुए अपनी संस्कृति के पुनर्जागरण के लिए तैयार करते हैं। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि मैं एक दिन तक इस पावन ज्ञानतीर्थ में रह कर यहां के प्रेरणाप्रद वातावरण से अपने को लाभान्वित कर सका।

इस महान् ज्ञानतीर्थ को स्थापित हुए आगामी मार्च में आधी शती हो रही है अतः इसका स्वर्णजयन्ती महोत्सव मनाने की तैयारी हो रही है।

सम्पादक के नाम पत्र

शुद्धि कार्य को बढ़ाइये

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने आर्यसमाज तथा देश की जो अपूर्व सेवाएं की वे सब बड़े महत्व की थी। उनमें गुरुकुल की स्थापना का कार्य निःसन्देह प्रमुख स्थान रक्खेगा जिसके लिए श्री स्वामी जी की कीर्ति भारतवर्ष के इतिहास में सदा अमर बनी रहेगी।

शुद्धि का कार्य भी जो स्वामी जी ने किया बड़े महत्व का था। स्वामी जी जानते थे कि वह आर्यसमाज के लिये कितना उपयोगी है। जिस लगन के साथ स्वामी जी ने उसको किया वह उसी से स्पष्ट है कि उसके लिये उनको अपने प्राण तक अर्पण करने पड़े।

शुद्धि कार्य में एक बड़ी रुकावट हिन्दुओं की जन्मगत जाति भेद की कुप्रथा हुई। जो लोग मुसलमान मन से शुद्ध होकर आर्यसमाज में आये उनमें से बहुतों को अपने वा अपने सन्तान के विवाह करने में कठिनाई हुई। ऐसी दशा में शुद्धि का कार्य कैसे चल सकता है। मलकाना तथा अन्य राजपूत जो मुसलमानों के राज्य में मुसलमान हो गये थे हजारों की संख्या में शुद्ध हो गये जब कि उनके सजातीय हिन्दू राजपूतों ने उनको अपना लिया। सहस्रों की संख्या में और भी ऐसे मुसलमान शुद्धी को तैयार थे, परन्तु उनके साथ कोई रोटी बेटी का व्यवहार करने को तैयार न हुए, इस लिए वे रुक गये। आर्यों तथा हिन्दुओं को चाहिये कि इस झूठी जाति भेद की प्रथा को दूर करें तो शुद्धि का मार्ग साफ हो सकता है।

भारतवर्ष के दो टुकड़े हो जाने से जो विकट समस्या पैदा हो गई है उससे पश्चिमी पञ्जाब व सीमाप्रान्त में लाखों हिन्दू मुसलमान बना लिये गये। पाकिस्तान से बाहर के प्रान्तों में जो मुसलमान रह गये हैं उनकी संख्या भी कई करोड़ है, उनमें अधिकांश (सौ में लगभग ६०) ऐसे ही हैं जिनके पूर्वज हिन्दू थे। देश का विच्छेद होने के कारण उनको मन परिवर्तन करने में पहले जितनी आशङ्का थी अब नहीं रही। यदि उनको शुद्ध करने का प्रयत्न किया जाय तो सफलता हो सकती है, परन्तु यह काम केवल व्याख्यान आदि से नहीं होगा इसके लिये यह आवश्यक है कि शुद्धिसभा तथा आर्य समाज के प्रचारक समुचित केन्द्र स्थापन करके और वहां रह कर लगन के साथ कार्य करें, और जो लोग अपना मत परिवर्तन करें उनकी नाममात्र शुद्धि करके उनको न छोड़ देवें किन्तु उनके आचार व विचार सुधारने का प्रयत्न करें, और सम्भव हो तो उनकी शिक्षा को भी अपने हाथ में ले लेवें, क्योंकि शिक्षा का बहुत प्रभाव होता है और ऐसे लोग जो अधिकतया ग्रामीण होंगे अशिक्षित ही होते हैं। आशा है कि शुद्धिसभा व आर्यसमाजें इस पर ध्यान देंगी।

वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर। गंगाप्रसाद [रिटायर्ड जज]

पुस्तक परिचय

वैदिक स्वप्न विज्ञान

लेखक, पं० भगवद्दत्त वेदालङ्कार। पृष्ठ संख्या २६८, मूल्य २)। प्रकाशक--प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

पुस्तक को श्रुतिभाग और उपनिषद् भाग करके दो भागों में विभक्त किया गया है। पुस्तक के पढ़ने से हमें यह पता चलता है कि वैदिक साहित्य का स्वप्न सम्बन्धी विचार बहुत व्यापक हैं। इसमें संगत व असगत सभी प्रकार के विचारों का समावेश हो जाता है। लेखक ने जो यह लिखा है कि बाह्य जगत् से सम्बन्ध न रख कर मन की जो भी क्रियाएं हैं वे सब स्वप्न हैं, यह हमें बिल्कुल ठीक प्रतीत होता है। और विचार तल्लीनता से समाधि तक सभी अवस्थाओं को स्वप्न के अन्तर्गत मानने पर ही ब्रह्म की स्वप्नावस्था, स्वप्नावस्था में ब्रह्मवित् होना, रात्रि-स्वप्न, दिवा-स्वप्न, तथा मृत्यु-स्वप्न आदि ये सब अवस्थाएं स्वप्न के अन्तर्गत आ सकती हैं। स्वप्न-सम्बन्धी आधुनिक विचारक से तुलनात्मक विवेचन होना अत्यन्त आवश्यक है। यह पुस्तक बहुत गवेषणापूर्ण लिखी गई है। विद्वानों के अतिरिक्त सर्वसाधारण जनता भी इसे पूरे मनोयोग से पढ़ सकती है। वैदिक दृष्टि से स्वप्नावस्था पर कोई स्वतन्त्र पुस्तक हमारी दृष्टि में नहीं आई! लेखक महोदय का इस गवेषणापूर्ण कृति के लिए हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

कल्याण का उपनिषद् अङ्क

कल्याण के वार्षिक विशेषांक सदैव स्थायी साहित्य की संग्रहणीय वस्तु होते हैं। इस वर्ष का अङ्क उपनिषद् अंक के रूप में निकला है। इस में ८०० पृष्ठों में उपनिषदों के सम्बन्ध में अधिकारी विद्वानों के विचारोत्तेजक, विद्वत्ता एवं गवेषणापूर्ण लेख हैं और साथ ही ५४ उपनिषदों का मूल तथा सरल हिन्दी अनुवाद है। कई स्थानों पर अनुवाद के आशय को स्पष्ट करने के लिए उपयोगी टिप्पणियां भी हैं। ईश केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय और श्वेताश्वतर नामक नौ प्रसिद्ध उपनिषदों की तो पदच्छेद व अन्वय सहित व्याख्या है और शेष ४५ उपनिषदों का भाषान्तर मात्रा है। उपनिषदों के गूढ़ दार्शनिक तत्वों का अनेक उपयोगी लेखों में प्रतिपादन है। यह अंक उपनिषदों का रहस्य समझने वालों के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु—आषाढ़ उतर चुका है, पर व्योम और धरती बराबर वैसी ही तप रही है जैसी जेठ में तप रही थी। दस बजते बजते दिन गरम। जाता है और लूएं चलनी शुरू हो जाती है। कुल के आम्रोद्यानों में फल प्रेमियों की चहल पहल प्रारम्भ हो चुकी है। अमराईयों से टपके टपकने लगे हैं। पावस का पदार्पण होते ही आमों की अपूर्व बहार आ जाएगी। वर्षा के अभाव में जामुनें भी लू के मारे सूख कर गिरी जा रही हैं। वनकुञ्जों में पपीहे की पुकार और कोयल का कूजन अनुदिन बढ़ता जा रहा है। गर्मी अधिक होने से नहर स्नान और तैरने के लिए गुरुकुल घाट पर स्नानार्थियों की बड़ी रौनक रहती है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य प्रशंसनीय है।

मान्य अतिथि

पिछले दिनों हमारे प्रान्त के स्वास्थ्य-मन्त्री श्री चन्द्रभानु जी गुप्ता तथा सभा-सचिव श्रीयुत चरणसिंह जी गुरुकुल पधारे। दोनों महानुभावों ने गुरुकुल के पाठभवनों और ग्रन्थालय आदि को निहार कर बड़ी प्रसन्नता और परितोष अनुभव करते हुए वार्तालाप के सिलसिले में मनोहर उद्गार प्रकट किए— "कैसा शांतिमय और सात्विक वातावरण है। कहां लखनऊ का कोलाहल पूर्ण वातावरण और राजनैतिक कार्य कलापों की सरगर्मियाँ और कहां यह तपोवन की शांति: पवित्रता और प्राकृतिक सुषमा से मण्डित दिव्य वातावरण !!"

बदरीनाथ की यात्रा से लौटते हुए गुरुकुल के पुराने सन्मित्र भिषग् वरेण्य आचार्य त्रिक्रम जी पुनः कुल में पधारे। इस बार आप ने प्रेम पूर्वक कुलवासियों द्वारा प्रस्तुत फलफूलों का अर्घ्य स्वीकार किया और आयुर्वेद शिक्षा, औषध निर्माण, पाठ्य ग्रन्थों का निर्माण आदि विषयों पर विस्तार से चर्चाएं करके अपने कीमती परामर्श और सुझाव प्रदान किये। फार्मेसी के विषय में भी आपने बहुत सी उपयोगी बातें बताईं।

हिन्दी जगत् के माने हुए कलाकार और सुलेखक श्री जैनेन्द्र कुमार जी उसदिन सपत्नीक गुरुकुल में पधारे और दिन भर गुरुकुल के शान्त पावन वातावरण का लाभ उठाते रहे। साहित्य जगत् की सामान्य गति-विधियों पर तथा विशेषतया हिन्दी-साहित्य संसार की वर्तमान अवस्था पर चर्चा और वार्तालाप के सिलसिले में आप ने बताया कि युद्ध के कारण हमारे समसामयिक जीवन प्रवाह पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा है। प्रत्येक दिशामें जीवन विच्छिन्न,अनुदार, विदग्ध और हार खाया हुआ सा प्रतीत हो रहा है। साहित्य निर्माण के क्षेत्र में भी यही अवस्था है। सस्ती, और घटिया दरजे की कृतियां से बेशुमार कागज काले हो रहे हैं। आत्मा को शान्ति, जीवन को समाधान और चित्त को आश्वासन प्रदान करने वाली कृतियां मुश्किल से दीख पाती हैं। प्रगतिवाद के नाम पर समसामयिक सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की तीखी और ध्वंसक समालोचना करने मात्र से तो काम नहीं चलेगा ! जीवन को केवल उत्तेजित करना ही साहित्य का श्रेय नहीं है। उसे तो शुभकर और आश्वासनकारी निर्माणमयी दृष्टि भी प्रदान करनी होगी. यही सच्चे साहित्यकार का धर्म है, कर्म है और ध्येय होना चाहिये। युद्ध के बाद से हिन्दी के अच्छे से अच्छे और साधन सम्पन्न पत्र-पत्रिकाएं हलकी कथा पर उतर आई हैं। अधिकतर सामयिक व्यवसाय परायण हो गये हैं। साहित्यकार की विमल और ध्येय परायण दृष्टि उनमें नहीं रही है। यह बड़े खेद का विषय है।

तैरी प्रतियोगिता

अभी हाल में ही सहारनपुर जिले की तैरी प्रतियोगिता का एक बड़ा समारोह रुड़की में हुआ था। उस में गुरुकुल के विद्यालय विभाग के छात्रों ने भी भाग लिया था। जिस में गुरुकुल के ५म श्रेणी के ब्रह्मचारी बलराज को सिंह तैरी में सर्वप्रथम आने का पुरस्कार मिला है। ब्रह्मचारी धर्मपाल और ब्र० दयाकर ६ष्ठ श्रेणी को विशेष इनाम दिए गए हैं। गुरुकुल के अध्यापक श्री पं० वासुदेव जी को तैरी विद्या के विभिन्न प्रकार के प्रयोग प्रदर्शित करने के उपलक्ष में अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

समाप्त

हिमालय की पवित्र गोद में गंगा के तट पर विद्यमान

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी के अमूल्य उपहार

ब्राह्मी तेल

मस्तिष्क को शक्ति व तरावट देता है। सुगन्धित एवं केश-वर्धक है।

मूल्य १।=) शीशी २॥) पात्र

भीमसेनी सुरमा

आंख से पानी आना, खुजली, सुर्खी, दृष्टि की निर्बलता आदि आंखों के सब रोगों में अकसीर है। लगातार प्रयोग से उमर भर नेत्र-ज्योति बनी रहती है।

मूल्य १। प्रति शीशी, नमूना ॥=)

भीमसेनी नेत्रबिन्दु

यह आखों में डालने की द्रव औषध है। दुखती आखों में भी इस का प्रयोग किया जा सकता है। कुकरों के लिए बहुत उत्तम है।

मूल्य १) शीशी

सुखधारा

अजीर्ण, अतिसार, आनाह उदरशूल उत्क्लेद तथा वमन, एवं अन्य उदर विकारों में अनुपान भेद से अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ॥=) ड्राम

आँवला तेल

बालों का गिरना, छोटी आयु में सुफ़ेद हो जाना व गज आदि रोग दूर हो जाते हैं। बालों को रेशम की तरह मुलायम कर काला करता है।

मूल्य १) शीशी

पायोकिल

पायोरिया की रामबाण दवा है। प्रति दिन प्रयोग के लिए उत्तम मञ्जन है।

मूल्य १॥) शीशी

भीमसेनी दन्त मंजन

दांतो में कीड़ा लग जाना, दांतों का हिलना मसूड़ों का खुजलाना, पीप बहना, मुंह से दुर्गन्ध आना इत्यादि सब रोगों के लिए लाभदायक है।

मूल्य प्रति शीशी ॥=)

पामाहर

खुजली व चम्बल को अति उत्तम औषधि है। रोगी स्थान पर इसे मलना चाहिए।

मूल्य ।=) शीशी

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

एजेन्टों की हर जगह आवश्यकता है।

मुद्रक—श्री [illegible] गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
वैदिक विनय, पहला, दूसरा, और तीसरा भाग	श्री अभय २), सजिल्द, १॥)	
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	"	२)
ब्राह्मण की गौ	"	॥
वैदिक स्वप्न विज्ञान	श्री भगवद्दत्त	२)
वेदगीताञ्जली (वैदिक गीतियाँ)	श्री वेदव्रत	२)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द	श्री चमूपति	२), १॥)
वरुण की नौका (दो भाग)	श्री प्रियव्रत	६)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१॥)
सन्ध्या सुमन	श्री नित्यानन्द	१)
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश (तीन भाग)	श्री लब्भूराम नय्यड़	३॥)
आत्ममीमांसा	श्री नन्दलाल	२)
प्रार्थनावली (प्रेरणा देने वाली प्रार्थनाएं और गीतियां)	श्री वागीश	।)
भारत वर्ष का इतिहास [तीन भाग]	श्री रामदेव	७)
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द, अजिल्द	श्री चन्द्रगुप्त	७), ६)
अपने देश की कथा (दूसरा संस्करण) -बच्चों के लिए	श्री सत्यकेतु	१।=)
ऋषिदयानन्द का पत्र व्यवहार	श्री श्रद्धानन्द	।॥)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव	श्री क्षितीश	॥)
बालनीति कथामाला ॥=)	रघुवंश, संशोधित (तीन सर्ग)	।)
नीतिशतक (संशोधित) ≠)	साहित्य-दर्पण, संशोधित	२)
संस्कृत प्रवेशिका, प्रथम भाग, द्वितीय भाग		॥=), ॥=)
साहित्य-सुधासंग्रह, प्रथम, द्वितीय, और तृतीय बिन्दु		१), १), १)
विज्ञान प्रवेशिका (दो भाग) —मिडिल स्कूलों के लिए	श्री यज्ञदत्त	२॥)
गुणात्मक विश्लेषण (बी. एस. सी. के लिए)	श्री रामशरण दास	२)
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार)	श्री ओम्प्रकाश	॥)
आर्यभाषा पाठावली (आठवां संस्करण)	श्री भवानीप्रसाद	१॥)
आहार (भोजन सम्बन्धी पूर्ण जानकारी के लिए)	श्री रामरक्षपाठक	५)
जलचिकित्सा (पानी से ही रोगों को दूर करने के उपाय)	श्री देवराज	२॥)
लहसुन: प्याज (दूसरा परिवर्द्धित संस्करण)	श्री रामेश वेदी	२॥)
तुलसी (दूसरा परिवर्द्धित संस्करण)	"	२)
सोंठ (तीसरा परिवर्द्धित संस्करण)	"	१॥)
देहाती इलाज (दूसरा परिवर्द्धित संस्करण)	"	१)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल-पत्रिका

श्रावण २००६

तमसो मा ज्योतिर्गमय ।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

वर्ष १, # गुरुकुल-पत्रिका अङ्क १२

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति।
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

गुरु-शिष्य	मुनि देवराज विद्यावाचस्पति
फनियर	श्री रामेश बेदी
संसार सुखमय है या दुःखमय	श्री वागीश्वर विद्यालङ्कार
गौ का दूध	श्री राम स्वरूप
अनुमान प्रमाण	श्री स्वामी कृष्णानन्द
ॐ-निचोड़ा नही जा सकता	श्री भगवद्दत्त वेदालङ्कार

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक — एक प्रति
विदेश में ८) वार्षिक — ६) आने

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

संसार सुखमय है या दुःखमय

श्री वागीश्वर विद्यालङ्कार

इस मिलन का वर्णन ज़रा कबीर जी से भी सुनिये—

हरि मोर पिया मैं राम की बहुरिया ।
राम मोर बड़ा, मैं तन की लहुरिया ॥

यह तो हुवा कबीर जी का नाता राम के साथ। वे फिर कहते हैं—मेरा प्यारा मुझे बहुत दिनों में मिला है। मेरे अहो भाग्य कि मैंने उसे घर बैठे ही पा लिया है। अब मैं मंगलाचार करुंगी और जिह्वा से राम रसायन पीऊगी। आज मेरा भवन नूतन ज्योति से जगमगा रहा है। मैं और मेरा प्रियतम मिलकर एक हो गये हैं किन्तु इस का श्रेय मुझे कुछ भी नहीं। मेरे राम ने ही कृपा करके मुझे यह सौभाग्य प्रदान किया है—

बहुत दिनन थे मैं प्रीतम पाये,
भाग बड़े, घर बैठे आये ।
मंगलाचार मांहि मन राखौं
राम रसायन रसना चाखौं ।
मंदिर मांहि भया उजियारा
लै सूती अपना पिय प्यारा ।
मैं रनि रासी जो निधि पाई
हमहिं कहा ? यह तुमहिं बड़ाई ।
कहै कबीर मैं कछू न कीन्हा
सखी ! सुहाग राम मोंहि दीन्हा ॥

रवि बाबू भी कबीर की तरह, नव-बधू बनकर अपने वर की आतुर प्रतीक्षा कर रहे हैं—

"मैं, मेरा सर्वस्व, मेरी आशाएं और मेरा प्रेम—ये सब बड़ी गम्भीरता से, सदा तुम्हारी ओर प्रवाहित होते रहते हैं। तुम्हारी एक शुभ-दृष्टि से मेरा और तुम्हारा पूर्ण मिलन संपन्न हो जायेगा और तब मैं सदा के लिये तुम्हारी हो जाऊंगी।

पुष्प पिरो लिये गये और वर के लिये माला तय्यार है। विवाह होते ही बधू अपने घर से विदा होगी और शून्य रात्रि में अपने स्वामी से अकेली मिलेगी।

स्वामी के दर्शन करके वह फिर कहती है—मैंने जो कुछ देखा है उस से बढ़कर कुछ नहीं। मैंने इस कमल के गुप्त मधु का आस्वादन कर लिया है जो इस प्रकाश-सागर पर फैल रहा है और इस प्रकार मेरा जीवन धन्य है········असंख्य रूपों के इस क्रीड़ा-क्षेत्र में मैंने अपना खेल खेल लिया और वहां मुझे उसके दर्शन हो गये जो दर्शन-रहित है। मेरा सारा शरीर और अंग उसके स्पर्श से पुलकित हो रहे हैं जो स्पर्श से परे हैं।"

इसके पश्चात् वह स्थिति आ जाती है जिसमें प्रेमी और प्रेम भाजन दोनों मिल कर एक हो जाते हैं। वहां द्वित्व का भान नहीं होता। 'तू' 'मैं' मिट जाते हैं--

'तू' 'तू' करता 'तू' भया, मुझ में रहो न 'हूँ'।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित 'तू'॥

मिलन की इस दशा का आनन्द वर्णन का विषय नहीं। वह तो गूँगे का गुड़ है। 'न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते।' बड़े-बड़े महात्मा, भक्त और परमहंस जब इसमें लीन हो जाते हैं उन्हें संसार के सुख-दुःख स्पर्श नहीं करते।

अविगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै।
परम स्वाद सब ही सु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर, सो जाने, जो पावै।

यह नशा एक बार चढ़कर फिर नहीं उतरता।

इस नशे में दीन-दुनिया की खबर नहीं रहती। मंसूर को सूली पर चढ़ने का पता न चला। प्रह्लाद ने अपने पिता द्वारा दी गई नृशंस यातनाओं को हँसते-हसते झेल लिया। प्रेम दिवानी मीरा अपने साँवलिया वर के ध्यान में ऐसी विभोर हुई कि उसने हलाहल विष को भी अमृत की तरह पी लिया—

मेरे राणा जी मैं गोविन्द के गुण गाना
राजा रूठे नगरी राखे, हरि रूठे कहँ जाना ?
राणा भेजा जहर पियाला, अमृत कर पी जाना,
डिबिया में काला नाग जो भेजा शालग्राम कर जान।
मीराबाई प्रेम दिवानी—साँवलिया वर पाना॥

फिर थोथी लोक निन्दा की तो बात ही क्या ?

आली री मेरे नैनन बान पड़ी।
चित्त चढ़ी मेरे मधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाढ़ी पंथ निहारूं, अपने भवन चढ़ी।
कैसे प्राण पिया बिन राखूं ? जीवन सूर जड़ी।
मीरा गिरिधर हाथ बिकानी, लोग कहें बिगड़ी॥

पारलौकिक विरह की अनुभूति

पारलौकिक विरह के कारण उत्पन्न होने वाली इस वेदना का दूसरा रूप असाक्षात् अर्थात् व्यवहित होता है। इस में प्रेमी सीधा उस अनन्त ही के लिये व्याकुल नहीं होता किन्तु किसी अन्य के लिये। यह वेदना भी दो प्रकार की है—(क) जिसमें प्रेमी इहलोक की किसी ऐसी 'विभूति' से प्रेम करता है जिसमें उसे अनन्त के ही सौन्दर्य का प्रकाश प्रति-बिम्बित होता हुवा दीखता है। (ख) इसमें प्रेमी इहलोक की ही किसी वस्तु से इस लिये प्रेम करता रहता है कि वह उस अनन्त विरह की वेदना को भूला रहे। (क) प्रकार में माध्यम के प्रकाश से चौंधिया कर ही प्रेमी की आंखें वहां देख नहीं पातीं जहां के अनन्त सौन्दर्य की एक किरण मात्र से वह विभूति चकाचौंध कर रही है और उसके हृदय का समस्त आकर्षण, सारा प्रेम, सब वृत्तियां वहीं केन्द्रित हो जाती हैं। जिस प्रकार लोहा चुम्बक की ओर तथा समुद्र पूर्णचन्द्र की ओर आकृष्ट हुवे बिना रह नहीं सकते, वह भी उस विभूति की ओर खिंचे बिना नहीं रहता। वह सदा उसे अपने नेत्रों के सामने, अपने हृदय से लगा कर, एक मात्र अपना ही बना कर रखना चाहता है। उसे वह अपने अमूल्य धन की तरह मानता है। 'तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियोजनः।' उसके प्रेम-भाजन को कोई दूसरा ललचाई आंखों से देखे—यह उसे सह्य नहीं होता। इसी लिये किसी ने तो उसे पर्दे के पीछे छिपा दिया, और कोई कहता है—

नैनों अन्तर आव तू नयन झांप तोहि लेंव।
ना मैं देखों और को, ना तोहि देखन देवँ॥

वह उसे अपने नेत्रों की कोठरी में, पलकों की चिक डाल और पुतली के पलंग पर उसे बिठाकर प्रेमालाप करना चाहता है—

नैनन की करि कोठरी पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि कै पिय को लिया रिझाय॥

असाक्षात अनुभूति साक्षात् बन जाती है

कभी कभी इस विरह की अनुभूति अपना मार्ग अकस्मात् बदल लेती है। जीवन की किसी घटना से ठोकर खा कर ऊपर को वह हिरण्मय पात्र हट जाता है और प्रेमी की दृष्टि उसके नीचे छिपे हुवे परम तत्त्व पर जा पड़ती है। भक्त कवि तुलसी दास के जीवन में क्या हुवा ? उनकी

प्रेममयी पत्नी के—

लाज न आवत आपको दौरे आयहु नाथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहौ मैं नाथ ?
अस्थि चर्ममय देह में या में जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम में, तौ न होति भव-भीति ॥

इन शब्दों ने उनकी आंखें खोल दीं। वह विरह-वेदना जिसके कारण वे अपनी पत्नी का पल भर के लिये आंखों से ओझल होना न सह सकते थे—एक दम श्रीराम की ओर प्रवाहित हो गई।

यहां माध्यम सर्वथा हट गया है

श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के अलौकिक प्रेम की कथा सुनकर रसखान का उत्कट प्रेम मानवती प्रेमिका से हटकर भगवान् से जा लगा और वे उद्दण्ड पठान से प्रेमी रसखान बन गये—

तोरि मानिनी ते हियो, फोरि मोहिनी-मान।
प्रेम देव की छविहि लखि मियाँ भये रसखान ॥

नारी रूप का लोभी मधुकर सहसा श्रीकृष्ण चन्द्र के मुख चन्द्र का चकोर बन गया। अब उसकी एकमात्र आकांक्षा है—

मानुष हौं तो वही रसखान बसौं संग गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन।
पाहन हौ तो वही गिरि को, जो कियो हरि छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरौ करौं मिलि कालिंदि कूल कदंब के डारन ॥

यही दशा घनानन्द जी की भी है। उन्होंने अपनी प्रेमिका सुजान से तिरस्कृत हो कर अपनी समस्त भावनाओं, वृत्तियों को भगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया। प्रेम की जो पीर पहले जो धूल में लोट रही थी वही घनश्याम सौंदर्य की कालिन्दी में हिलोरने लगी। जो जल गन्दी नालियों में पड़ा सड़ रहा था वही अनुताप रूपी सूर्य की किरणों द्वारा ऊपर चढ़ अमृत हो गया। वे भी कालिदास के विरही यक्ष की तरह किसी मेघ को दूत बना कर उसे अपने प्रेमभाजन-विश्वास घातिनी सुजान के नहीं किन्तु भगवान् के आंगन में भेज रहे हैं ताकि वह वहां जाकर उनके अमूल्य अश्रुओं को प्रिय के चरण स्पर्श से पवित्र पृथवी पर बरसा दे और इस प्रकार वे, दीर्घ परम्परित सम्बन्ध से ही सही, अपने प्रिय के स्पर्श से पुलकित हो सकें—

पर कारज देह को धरि फिरौ, परजन्म यथारथ ह्वै दरसौ
निधि नीर सुधा के समान करौ, सब ही विधि सुन्दरता सरसौ।
घन आनन्द जीवन दायक हो, मेरी ये पीर हिये सरसौ
कबहूँ वा बिसासी 'सुजान' के आंगन मों अंसुवान कों लै बरसौ ॥

[शेष पृष्ठ पांच पर]

ब्रह्मचर्य

मुनि देवराज विद्यावाचस्पति

भगवद्गीता में बतलाया है कि नरक (जीवन के अधः पतन) के तीन द्वार हैं—काम, क्रोध और लोभ। इन तीन वृत्तियों में से किसी वृत्ति का मन में उदय होने से मनुष्य को नरक प्राप्त होता है, अर्थात् उसका जीवन पतित हो जाता है, उसका आत्मविनाश हो जाता है।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

यह उपदेश वा विधान केवल ब्रह्मचारी के लिये नहीं है किन्तु मानव मात्र के लिये है। यह आज्ञा ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वनस्थी और संन्यासी सब आश्रमियों के लिये हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम तो सब आश्रमों का मूल है अतः ब्रह्मचारी को तो काम-विकार से और इसको उत्पन्न करने के कारण शृङ्गार से दूर रहना चाहिए। गृहस्थी ने ब्रह्मचारी उत्पन्न करने हैं। यदि गृहस्थी काम-विकारों से पराभूत रहेगा तो वह ऐसे बालक उत्पन्न नहीं कर सकेगा जो ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण रीति से पालन करने में समर्थ हों। वानप्रस्थी और संन्यासी ने तो अपने अनुभव से ऐसा उदाहरण मानव-समाज के सामने उपस्थित करना है जिससे मानवी काम-विकार पर विजय पाना सीख लें। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि काम-विकार पर विजय प्राप्त करना चारों आश्रम-वासियों का ही कर्तव्य है।

संयम का जीवन व्यतीत करने की आदत न होने से महान् शक्तिशाली दवाओं का कुछ असर नहीं होता, उलटा हानि होती है क्योंकि उनकी दी हुई शक्ति को झेलने के लिये शरीर और मन दोनों असमर्थ होते हैं।

इन बातों का ध्यान रखा जाय

१ अपना समय विविध विद्याओं की ज्ञानवृद्धि करने में लगाया जाय।
२ हीन प्रकृति लोगों के सङ्ग को छोड़ कर उत्तम प्रकृति के लोगों के सत्सङ्ग में हमेशा अपने आपको रक्खा जाय।
३ सदाचार सम्बन्धी नैतिक पुस्तकों के अध्ययन वा चिन्तन में प्रति दिन कुछ न कुछ समय दिया जाय।
४ अपनी दुर्बलताओं को दूर करने के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करके सबल उत्साही धैर्य-शील बना जाय।
५ ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन के लिये दृढ़ निश्चय किया जाय।
६ सर्वदा किसी उत्तम प्रकृति मनुष्य के आधीन अपने आपको करके अपनी दुर्बलताओं का निवेदन और उनकी निवृत्ति का उपाय पूछते रहने का आदत डाली जाय।
७ गम्भीर ज्ञान के अध्ययन और मनन में अधिक समय व्यतीत किया जाय।
८ मन, वाणी और शरीर-चेष्टा में संयम रक्खा जाय।
९ आप्त वचनों पर श्रद्धा की जाय।

पृष्ठ पांच का शेष—

'सुजान' से नाता तोड़कर भी घनानन्द 'सुजान' नाम को न भुला सके। इस से ही वे भगवान् को स्मरण करने लगे। कवि श्रेष्ठ सूरदास जी के विषय में भी कुछ ऐसी ही किंवदन्ती प्रसिद्ध है। वह पूर्णरूप से भले ही विश्वसनीय न हो तो भी इतना तो सूचित करती ही है कि कवि के जीवन-प्रवाह में सहसा महान् परिवर्तन हुवा था।

अञ्जीर का इतिहास

(२५०० ईस्वी पूर्व से १९०० ईस्वी पश्चात् तक)

प्रोफेसर पी. के. गोडे एम. ए.

सन् १९४१ में मैंने न्यू इण्डियन एन्टीक्वेरी (वॉल्यूम ४, पृष्ठ स० १७५-१३६) में अञ्जीर पर एक लेख प्रकाशित किया था। इस लेख में मैंने १००० वर्ष ई० पू० से ले कर १८०० ई० तक के इस पौधे के इतिहास की खोज की थी जिसका आधार भारतीय और विदेशी उभयविध तत्व थे। हाल ही में मेरा ध्यान अञ्जीर पर लिखी गई एक विशेष पुस्तक की ओर आकृष्ट किया गया जो यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोनिया साइट्रस ऐक्सपैरिमैन्ट स्टेशन रिवरसाइड के डा० इराजे कॉण्डिट ने लिखी थी। यह अञ्जीर के विषय में एक ऐतिहासिक पर्यवेक्षण है जो कि लेखक के "कैलिफोर्निया में विगत ३० वर्ष के अध्ययन और गवेषणा' का परिणाम कहा जा सकता है। वनस्पति विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए इस के प्रथम और द्वितीय अध्याय विशेष महत्त्व वा आकर्षण रखते हैं। इस लिये इस लेख में मैं उन अध्यायों में से कुछ ऐसी बातें उद्धृत करने का विचार रखता हूं जो भारतीय विद्यार्थियों के लिये जहां लाभदायक होंगी वहां मेरे उपर्युक्त लेख में अङ्कित अञ्जीर के इतिहास की पूरक वा पुष्टि करने वाली भी हो सकेंगी।

(१) श्री काण्डिट द्वारा दिये गये उद्धरणों में से निम्न लिखित विशेष उल्लेखनीय हैं—

प्राचीन मिश्र में अञ्जीर तोड़ना (पृष्ठ १८)

१२वें राजवंश (२५००—२४०० वर्ष ई० पू०) में समाधि सं० २ बनीहसन की पश्चिमी दीवाल पर का यह एक दृश्य है। दो व्यक्ति एक अंजीर के वृक्ष से अञ्जीर तोड़ रहे हैं और उस पेड़ पर तीन बन्दरों को अञ्जीर का फल खाते हुए हम देखते हैं।

पृष्ठ १९—यह पुस्तक के मुख पृष्ठ का एक सुन्दर चित्र है जिसमें मिश्र देश का एक किसान अञ्जीर वृक्ष-साइकोमोरको भेंट देता हुआ दिखाया गया है। इस चित्र में अञ्जीर का वृक्ष अञ्जीर से लदा हुआ प्रगट किया गया है। (जैसर वैरसेनेब के समाधिस्थान के एक दृश्य से)।

---

१. मैं रॉयल बॉटनिक गार्डन कलकत्ता के श्री पी० वी० बोले का अत्यन्त कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मेरा ध्यान इस पुस्तक की ओर आकृष्ट किया।

२. 'दि फिग', लेखक डा० इराजे कान्डिट और प्रकाशक 'दी कालिफोर्निया बाटनिका को०, वाल्थम, मास. यू. एस. ए., १९४७, पृ० १८ २२२. मूल्य ५ डालर। मैं रायल बॉटनिक गार्डन कलकत्ता के अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी का आभारी हूं कि उन्होंने मुझे स्वाध्याय के लिए इस पुस्तक की एक प्रति प्रदान की।

पृष्ठ १७–यह सुन्दर अग्रचित्र भी उपरोक्त समाधिस्थान से सम्बन्ध रखता है। इस में एक मिश्र देश का दम्पती पवित्र साइकोमोर के सम्मुख बैठा हुआ है और उससे परलोक सम्बन्धी भोज्य एवं पेय प्राप्त कर रहा है।

प्राचीन मिश्र के ये चित्र अंजीर और उसके इतिहास को प्राचीन–यदि अधिक नहीं तो २५०० वर्ष ई० पू० का–सिद्ध करने के लिये प्रत्यक्ष प्रमाण समझे जा सकते हैं।

(२) प्रथम अध्याय "काव्य और कथानक साहित्य में अञ्जीर" इस विषय पर लिखा गया है।

—पार्सेनियस नामक इतिहास लेखक ने सन् १६० और १८० ईस्वी के मध्य में यूनान में यात्रा करते हुए राजा फाइटेलस की समाधि पर के एक पाषाण लेख को अंकित किया जिस में "पवित्र अंजीर" को 'शरत्कालीन फल' कहा गया है।

—रोमका नाम और मूल दोनों ही फ़िकस रुमिनलिस से सम्बन्धित किये गये हैं जिस का नामकरण रुमिना देवी की संस्कृति को दृष्टि में रखते हुए किया गया है।

—रोमन लोग बैकस को मनुष्य जाति को अंजीर का देने वाला या ज्ञान कराने वाला मानते हैं और कहते हैं कि बैकस की स्थूलता अञ्जीर खाने से ही प्राप्त हुई हैं।

—समस्त दक्षिण पश्चिमी एशिया, मिस्र यूनान और इटली में अञ्जीर का वृक्ष बहुत पवित्र समझा जाता था।

—अंजीर के वृक्ष की लकड़ी से पवित्र मूर्तियां बनाई गईं। थियोक्रीटस नामी प्रसिद्ध ग्राम गीत लेखक(२८५ई०पू०)अपनी एक सुहास्य-कविता में 'अञ्जीर की लकड़ी की बनी प्रतिमा' का निर्देश करता है। यूनान में प्लाइन्टरिया के उत्सव में पैलस की मूर्ति के साथ सूखी अंजीर की टिकियां भी उस की सवारी (यात्रा) में ले जाई जाती थीं।

—बाइबल में अनेकों बार अञ्जीर का उल्लेख मिलता है। कारिडटका विश्वास है कि जेनेसिस में जिस अञ्जीर का वर्णन मिलता है वह फ़िकस कैरिका से भिन्न एक अन्य अञ्जीर के भेद से संबन्ध रखता है।

बाइबल में अञ्जीर विषयक अन्य वर्णनों से भी यहूदियों का अञ्जीर के वृक्ष और फल के प्रति अत्यधिक आदर का भाव सिद्ध होता है।

—'सिकोफॉन्ट' शब्द की यूनानी साइकोन (अञ्जीर) और फेनेन (दिखाना) इन दो शब्दों से व्युत्पत्ति हुई है। इंगलैंड की महारानी ऐलिज़ाबेथ द्वारा अनूदित प्लूटार्च की 'डीस्यूरि ऑसिटेट' के एक उद्धरण से भी सिकोफॉन्ट्ज़' और 'फिग्यूत' का निर्देश मिलता है।

अञ्जीर, उर्वरता का चिन्ह और इसका लिंग पूजा सम्बन्धी महत्व

—एग्रीमान्ट (१६०८)के अनुसार अञ्जीर पूर्वीय देशों में उर्वरता और समृद्धि का प्रतिनिधित्व करता है। हैलन लोगों में अंजीर उत्पत्ति के देवता डायोनीसस के प्रति पवित्र माना जाता था। अञ्जीर उसी प्रकार भारत३के लिङ्ग-पूजकों का भी वृक्ष बन गया जिस प्रकार इटली के लिंग पूजकों का था जहां लोग अब तक भी 'फ़िको' संकेत का प्रयोग करते हैं जो

३. मैं नहीं जानता कि डा० कारिडट ने किस आधार पर यह बात कही है।

कि दो अंगुलियों के मध्य में अंकित अंगुष्ठ के रूप में होता है। यह चिन्ह मध्य प्रदेश के अंजीर वाले सब ज़िलों में सुविज्ञात हैं।

इस अंगुष्ठ ने लिङ्ग अथवा लिङ्ग पूजा का चिन्ह होने के कारण कामोद्दीपक रूप ग्रहण कर लिया। डेन्टे ने अपनी इन्फर्नों के २५ वें कैन्टो (सर्ग के १-३ पद्यों में इस चिन्ह का संकेत किया है और शैक्सपियर भी 'ऐण्ड फिगमी लाइक दी ब्रैगिङ्ग स्पेनिआर्ड'' अपने इस कथन में इसी की ओर इशारा करता है। क्योटो (जापान) में शिन्टो-श्राइन के शारदीय उत्सव के अवसर पर भी मिश्री के बने हुए लिङ्गाकार अञ्जीर किसी समय बेचे जाते थे।

साहित्य में अञ्जीर

डा० कान्डिट निम्न लिखित उद्धरण पेश करते हैं :—

(१)कविवर आर्शीलोशस ने लगभग७००ई० पू० पैरोस के महाद्वीप में फ़िग संस्कृति के विषय में कथन किया है।

(२) महाकवि होमर ने भी अपने महा-काव्य 'इलियड' में वन्य अञ्जीरवृक्ष के स्थान' का उल्लेख किया है। अपनी पुस्तक (ओडीसे) में भी उसने उन पंक्तियों में जो कि बाद में प्रक्षेपयुक्त कर दी गई तीन वार अञ्जीर का वर्णन (ज़िक्र) किया है।

(३) ईस्वी पूर्व ५वीं शती के ग्रीक कवि अरिस्टोफेन्स ने कई वार अञ्जीर की चर्चा की है (देखो उसकी अचार्नियन्स)। अपनी पुस्तक 'दी बर्ड्स' में वह ऐसी घातक वस्तुओं का निर्देश करता है जो अञ्जीर के फलों को झट हड़प जाती थीं।

(४) ऐथेनिअस (ईसाकी ३रीशती) ने एलैक्सिस (ईसा पूर्व ४थी शती) जो मिडल एटिक कॅमिडी का बहुत सफल लेखक हुआ है-निम्न पंक्तियां लिखी हैं।

"हमें ऐसे लोगों के बारे में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है जो सब जगह टोकरियों में अञ्जीर भर कर विक्रय के लिये लिये फिरते हैं। ये लोग कच्ची और गली सड़ी अञ्जीरें नीचे दबा कर ऊपर पकी और सुन्दर अंजीरें धर देते हैं जिससे गाहक यह विश्वास करके कि वह सब अच्छी ही ख़रीद रहा है कीमत चुका देता है और अञ्जीर बेचने वाला सब फलों को बढ़िया बताते हुए सब रद्दी और गली सड़ी अञ्जीरें भी बेच देता है। और इस तरह गाहक की खूब मुंडाई करता है।'

(ठीक इसी प्रकार प्राचीनकाल के फल विक्रेता भी ऐसे ही बुद्धिमान थे जैसे कि आज कल के)।

—केटो (जन्म २३४ ई० पू०) नेजोकि तृतीय कार्थेजियन युद्ध के उत्तेजकों में से एक था, 'कार्थेज में एकत्र हुए अञ्जीर' इस शब्दावली का प्रयोग रोमन सभासदों को युद्ध प्रारम्भ करने के लिए प्रेरणा देने में किया है।

—अञ्जीर श्रीमती क्लियोपैट्रा का प्रिय फल था। वह फनियर सांप जिससे उसके प्राणों का अन्त हुआ एक अञ्जीरों की टोकरी में ही उसके पास लाया गया था।

—शैक्सियर ने अपने बहुत से नाटकों में अंजीर की चर्चा की है। चार्ल्स डिकन्स भी अपने (डाम्बे ऐण्डसन) नामक नाटक में इस का उल्लेख करता है।

१००--फिग सण्डे--इङ्गलैंड के कुछ भागों में यह सर्व साधारण प्रथा है कि वहां क्रिश्चियन लोगों के चालीस दिनों के व्रत में एक संडे के दिन अंजीरों की टिकियां परोसी जाती हैं और उस संडे को 'फ़िग सडे' के नाम से पुकारते हैं।

२ रा अध्याय अंजीर के इतिहास तथा प्रसार के वर्णन से संबन्धित है--

शब्द व्युत्पत्तिः--लेटिन--फिकस, इटैलियन-फिको, पोर्त्तगीज़-फ़िगो, स्पैनिश-हिगो, फ्रैन्च-फिग्यू, जर्मन-फेज़न, डच-विज्ग, प्रारम्भिक इङ्गलिश-फिगो या फैग्गे, ग्रीक-ऐरेनियॉस (जंगली अंजीर) और साइकोन (भोज्यअंजीर), हिब्रू-टीना, अरैमेक-टेना, अरैबिक-टिन, फ्यूनिश-पैग्गम, उत्तरी सीरियन-पैग्गा, पर्शियन-अंजीर, इटालियन-जंगली अंजीर को प्रोफिको और कैप्रिफ़िकस कहते हैं।

भूगर्भस्थ (या कन्द) अञ्जीर

ये अञ्जीर फ्रान्स और इटली के चतुर्थ और तृतीय श्रेणी के सैकत प्रदेशों में पाये गये। सन् १८६४ और १८७३ ई० में इस फल के खोखले चिन्ह प्राप्त हुए और उन से पलस्तर के सांचे तैयार किये गये। ये अञ्जीरें आज कल की अंजीरों से मिलती जुलती थीं। कैरिका टाइप की अंजीर का एक पत्ता कैलिफ़ोर्निया यूनीवर्सिटी के आर० डब्ल्यू० चेने को दक्षिणी कैलिफ़ोर्निया के माइओकेने नामक स्थान में मिला जो कि फ़िकस कैरिका सेबनिष्ट संबन्ध रखता था।

मूल उत्पत्ति स्थान

सम्भवतः अञ्जीर की खेती सर्व प्रथम दक्षिणी अरेबिया में शुरू हुई जहां कि इसके जंगली नमूने अब (सन् १९२३ ई०) तक भी पाये जाते हैं। इस स्थान से इस पौधे का प्रसार पश्चिमी एशिया (मैसोपोटामियां, एनेटोलिया, टांस्का केशिया, आरमीनिया, फ़ारस और अफ़गानिस्तान) की ओर को हुआ। ग्रीक भूगोल-शास्त्री स्ट्रेबो स्मरना ज़िले के एडिन स्थान की अञ्जीरों के विषय में लिखता है कि वहां इनकी अत्यधिक उपादेयता थी और बाज़ार में ये फल सर्वाधिक मूल्य में उपलब्ध होते थे। "अंजीर फलों के उद्योग के संबन्ध में सब से अधिक प्राचीन लेखबद्ध उल्लेख इस प्रकार मिलता है--

लगभग २००० वर्ष ई० पू० की एक बेबीलोनियन स्तुति-गीतों की पुस्तक में "अंगूरों या अंजीरों से भी मधुर" (एरिचलेक, १९२४) इन शब्दों में एक टिप्पणी की गई है।--राजा उरुकेजिना (२९०० वर्ष ई० पू०) ने औषध रूप में अंजीर के प्रयोग का वर्णन किया है। (ब्रूनो मेसनर, १९२०-१९२५)। असीरियन स्मारकों में अंजीर के पत्ते और फल पाये गये हैं। और नाइनवाह में लेयार्ड के चित्रों में अंजीर के पौधे भी दिखाये गये हैं।

प्राचीन प्रसार--अंजीर एशिया से पश्चिम की ओर मनुष्यों की एक बस्ती से दूसरी बस्ती के लिए सूखे फलों के रूप में स्थानान्तरित हुई। मध्य सागर के किनारों पर निश्चित रूप से इस के चिन्ह प्राप्त हो सकते हैं क्योंकि ये व्यापार के प्राचीनतम केन्द्र थे। प्राचीन मिश्र के स्मारकों और समाधिस्थानो के ऊपर भी

अंजीर के पौधों और फलों की शकलें देखी जा सकती हैं। अंजीर की उपज ग्रीस में बहुत पहले-ई० पू० ९वीं शताब्दी में ही और शायद इससे भी पहले-शुरू हो गई थी। क्रीटे के स्वर्णयुग (ई० पू० १६००-१५००) में अंजीर के पौधे का ज्ञान था और यह पाला पोसा जाता था यूनानी कवि हीसिग्रद (लगभग ७३५ ई० पू०) एक अंजीर वृक्ष का उल्लेख करता है जिसका आशय इलियड में होमर के उल्लेख की भांति जंगली अंजीर से होगा। अरिस्टाटल और थियोफ्रास्टस अंजीर और कैप्रिकेशन से सुपरिचित थे। ग्ज़ैनोफ़ोन जो कि सुकरात के शिष्यों में से एक था, "आर्ट ऑव रोज़ङ् रेन्स फ़िग्स' इन शब्दों में चर्चा करता है। प्लेटो फिलासीकोस (अंजीरों का मित्र) होने का दावा करता था। पर्शियन राजा ग्ज़रक्सिस (४८० वर्ष ई० पू०) के प्रत्येक भोजन में ऐटिका की अंजीरें परोसीं जाती थीं जिससे उसे यह तथ्य सदा ध्यान में रहे कि एटिका उसके कब्जे में नहीं था। ऐसन (१९३० ई०) का कहना है कि इटली में अञ्जीर का ज्ञान ८०० पू० में हुआ। मूर लोगों ने अञ्जीर की पैदावार को उत्तरी अफ्रीका, स्पेन और पुर्तगाल में विकसित किया और बढ़ाया। अरब लोग अञ्जीर को सर्व श्रेष्ठ फल समझते थे। पैगम्बर मुहम्मद साहब अंजीर को स्वर्ग में ले जाने योग्य फल कहते थे।

एशिया में अञ्जीर की पैदावार धीरे धीरे ही बढ़ पाई। क्योंकि अञ्जीर का वृक्ष शुष्क प्रदेशों के अनुकूल था और भारतवर्ष के नमी वाले प्रदेशों में या दक्षिण पूर्वीय एशिया में विकसित नहीं हो सकता था।

बर्थोल्ड लॉफ़रक (सन् १९१९) को चीन में सन् १२७ ई० में कल्पना किये गये अञ्जीर के प्रवेश में सन्देह है। उनका मत है कि अंजीर टांगपीरियड (६१८-९०७ ई०) से पूर्व फ़ारस और भारत से इधर नहीं पहुँचा था। अंजीर के लिए जो चीनी नाम मिलता है उस का अभिप्राय 'पुष्प हीन फल' इस प्रकार है। अंजीर की उपज पर्शिया, अफ़गानिस्तान, बलूचिस्तान, उत्तरी भारत और चीनी तुर्किस्तान के तुर्फान प्रदेश में भी बाद में विकसित हुई।

अञ्जीर का आधुनिक प्रसार

फ़िलस्तीन में लेबनान से मुर्दा सागर तक चट्टानों के दरारों में अञ्जीर के कोमल कोमल अंकुर उग आते हैं। बाइबल के उल्लेखों से प्राचीन समय में अंजीरों की उपज के प्रसार का पता चलता है। अंजीर के पौधे रूस (क्रीमिया और काकेशस) ट्रान्स्काकेशिया, कृष्ण सागर के किनारे के प्रदेशों, काखेटिया, और एश्शिरोन में पैदा होते हैं। ई० ए० बनियर्ड (१९३४) के अनुसार अंजीर के पौधे इङ्गलैण्ड में सर्व प्रथम रोमन लोगों ने ही लगाये थे। इङ्गलैण्ड में अंजीर की उपज के विषयेहमें साक्षियाँ उपलब्ध होती हैं, सन् १२५७, १५३३ ई० में (इटली से अंजीर की कलम लगाई गई) १७९० ई० और १५२९-१८१३ ई० में (लेगलीथ के महल में अंजीर का वृक्ष) —इसी प्रकार फ्रांस में भी अंजीरों की कृषि होती थी।

चार्लीमेने ने ८१२ ई० में नीदरलैण्ड में अञ्जीर की उपज को वहां के जलवायु के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया था। जर्मनी के

शेष पृष्ठ बारह पर

मुझे उबारो

श्री विष्णुमित्र

बालक बड़ा सुन्दर था उसे माता ने सुन्दर वस्त्र पहिना दिये भोले बालक ने अपने साथियों से मिल मट्टी में खेल कर सब कपड़े मैले कर दिये। अब वह माता की गोदी में आना चाहता है। माता मट्टी में लथपथ बालक को उठाने में झिझकती है। बालक को झिड़कती है। मूर्ख! कितने सुन्दर वस्त्र दिये थे अब मट्टी में सने हुए तुझे कैसे उठाऊं। बालक रूठ जाता है। हठ करता है। दयनीय अवस्था में विलाप करता है। बालक के हठ के सामने माता को झुकना पड़ता है। वह अपने वस्त्रों की परवाह न कर उसे झाड़ पोंछ गोदी में उठा लेती है। बच्चे की जीत, माता की हार।

भक्त भी कभी हठ कर बैठता है। कभी रूठ भी पड़ता है। कभी कोरी २ सुना भी देता है। वह निराश हो कह उठता है--

ओ जननी? मुझ में न तपबल। न जप-बल। न बाहुबल। न धनबल। किस के सहारे तेरे पास आऊं। प्यारी मां तुझे कैसे पाऊं। मुझे कोई उपाय नहीं सूझता। जननी! रोना भी तो मुझे नहीं आता। यदि रोऊं तो क्या कह कर रोऊं। कैसे रोऊं।

न ही संयम न ही साधना न ही तीर्थ व्रत दान।
मात भरोसे रहत है ज्यों बालक नादान ॥

मात: मैंने सुन रखा है कि जब तक तू किसी को अपनी कृपा का पात्र नहीं बना लेती तब तक न उसकी मेधा काम करती है न वेद पढ़ा काम आता है।

नायमाता प्रवचनेनलभ्यः न मेधया न
बहुना श्रुतेन यमेष वृणुते तेन लभ्यः
तस्यैष आत्मा वृणुते तनू स्वाम्।

तुम स्वयं जिसको चुन लो उसे ही तुम दर्शन देती हो। जगदम्बे? ऐसे तो मेरी बारी कब आयेगी। कब कृपा दृष्टि करोगी। कब तक तेरे द्वार पर खड़ा २ मां-मां पुकारता रहूं। जगज्जननि! तूने अपनी वेदवाणी में कह रखा है कि—न ऋते श्रान्तस्य सखाय। अर्थात् पूर्ण प्रयत्न करके जब तक कोई थक नहीं जाता तब तक मुझे कोई नहीं पाता।

अच्छा माता अब तो मैं थक गया हूं। कितनी दूर से चला हूँ। हारके अब तेरे चरणों में आ पड़ा हूं। मेरी प्यारी मां! मेरे जल भरे नेत्र, मेरा मलिन मुख, मेरी शिथिल भुजाएं. क्या तेरे हृदय को पिघलाने के लिये पर्याप्त नहीं। माता का हृदय तो इतना कठोर नहीं होता। सच्ची माता तो बच्चे को दुःखी देख कर एक क्षण की भी देरी नहीं करती। सौ काम छोड़ कर उसे गोद में उठा प्यार करती है। पवित्र स्तनों से अमृत पिलाती है। मां ले ले अपनी गोद में। उठाले अब मुझे भी इस हीन अवस्था से। पिला दे अमृत। अब बहुत प्रतीक्षा न कराओ।

हरि जननी मैं बालक तेरा। काहे न अवगुण बगस हुँ मेरा। सुत अपराध करे दिन केते। जननी के चित रहे न तेते।

यदि तेरी जैसी दयालु माता ने भी बच्चे की टेर न सुनी तो और कौन सुनेगा।

जननी तुम दीनदयालु हो, आय पड़ा हूँ द्वार।
जैसा कैसा हूं मात, कीजिये यह न विचार ॥

माता यदि मैं अपने अपराध देखूं तो कुछ बनता दिखाई नहीं देता। तेरी अपार कृपा की ओर निहारूं तो एक क्षण में बेड़ा पार होता दीखता है।

मां पापों की गठरी भारी हो गई है अब तो उठने की शक्ति नहीं रही। मुझे मेरे साथी भक्तों ने बताया है कि तू पतितों को उठाती है। यह सब बातें योंही कही नहीं जातीं। यदि ऐसा न हीं तो मुझ से अधिक इस समय दयनीय कौन है। हे पतित पावनी! मेरे जैसे पतित का उद्धार करके तुम बहुत बड़ी पतित पावनी कहलाओगी। और यदि तेरे द्वार से अच्छे मन वाले तथा योगियों को ही सहारा मिलता है, केवल ज्ञानी ही तृप्त होते हैं तो मैं व्यर्थ ही चिल्ला रहा हूं। एक बार तू जरा सोच तो सही। स्वस्थ पुरुष को वैद्य के पास जाने की क्या जरूरत है। स्वयं धनी पुरुष धनी के द्वार पर क्यों भीख मांगने जायगा। जिसके वस्त्र स्वच्छ हैं, वह धोबी के पास क्यों जायगा। मेरा मन रोगी है तू उसकी चिकित्सा कर दे। मेरे आर्त नाद सुन। मेरी पीड़ा हर दे। यदि तूने गुण अवगुण देख कर ही चिकित्सा करनी है तो तुझे समदर्शिनी कौन कहेगा।

यदि तूने तोल माप से ही काम लेना है तो हमें कोई और द्वार बता दे। पर यह सच जान हमतो तेरी चौखट न छोड़ेंगे। तेरे द्वार पर ही इन प्राणों का अन्त कर देंगे। कब तक तू न सुनेगी।

इहासने शुष्यतु मे शरीरं त्वगस्थिमांसं, विलयं च यातु। अप्राप्य बोधिं बहुकल्प दुर्लभां नैवाऽऽसनात्कायमतश्चलिष्यते।

पृष्ठ १० का शेष

उद्यान डिसी बोडन (६७५ ई० में स्थापित) में अंजीर के पौधे सन् ११५० ई० में लगाये गये थे। और ब्यूटल्सबैक (जर्मनी) के ऐतिहासिक अञ्जीर के वृक्ष के बारे में कहा जाता है कि वह सन् १३२१ से १८०० ई० के मध्य में जिन्दा रह सका।

दक्षिणी अफ्रीका में अञ्जीर का आगमन वा आरम्भ कब हुआ यह ज्ञात नहीं है। टैसमेनिया में कैप्टेन बिघ द्वारा अंजीर का वृक्ष सर्व प्रथम सन् १७७२ ई० में लगाया गया और आस्ट्रेलिया में सन् १८०३-१८२४ के आसपास अंजीर की उपज प्रारम्भ होती गई।

पोर्त्तगीज़ लोगों ने सन् १६६० ई० में जापान में अंजीर की पैदावार आरम्भ की जहां कि इसे 'इची जी कु' और 'टोगागी' (विदेशी परसिम्मन) कहते हैं।

अञ्जीर—नवीन जगत् में

अञ्जीर के वृक्ष की योरोपियन किस्में या नसलें वैस्ट इण्डीज़ में सन् १५२० ई० में पहले पहल भेजी गईं। ये अञ्जीर द्वीप इस्पेनोला या हाइति में सन् १५२६ ई० में, पर्न में १५६० में, निम्न कैलिफ़ोर्निया में १६८३ में और मैक्सिको में १७३६ ई० में पैदा होने लगे थे।

अञ्जीर की नूतन जगत् में उपज संबन्धी बाद के उल्लेख सन् १७६३, १७८२, १७६१, १८३०, १८५६ और १६०० ई० आदि के हैं।

मुझे पूर्ण आशा है कि २५०० ई० पू० से १६०० ई० तक का अञ्जीर का उपयुक्त इतिहास जो कि अञ्जीर सम्बन्धी मेरे लेख में दी गई जानकारी की पुष्टि करने वाला है, विगत ५००० वर्षों से खाये जा रहे सर्वप्राचीन और मधुरतम फल अञ्जीर के प्रेमियों द्वारा बहुत रुचि के साथ पढ़ा जायेगा।

मूल लेख अंग्रेज़ी में प्राप्त]

अनु.—ओम्प्रकाश वेदालङ्कार

सिंहली भाषा

डाक्टर रघुवीर, एम. ए. पी. एच. डी. (लंदन), डी. लिट् एट फिल (हालैंड)

सीलोन शब्द सिंहल से लिया गया है। यह छोटा द्वीप भाषा और सांस्कृतिक दृष्टि से भारत का ही भाग है। उत्तरीय भाग में भारतीय-प्रवासी बसे हैं। शेष भाग में सिंहली बोली जाती है। इस भाषा का इतिहास बहुत प्राचीन है। हमारे प्रसिद्ध सम्राट् अशोक के समय से भारतीयों और सिंहल निवासियों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया। जिस तरह हमारी अन्य प्रान्तीय भाषाओं ने अपने साहित्यिक शब्द संस्कृत से लिये उसी तरह सिंहली ने भी लिये हैं। आज मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि संस्कृत से साहित्यिक शब्द ग्रहण करने में सिंहली भी हमारी अन्य प्रान्तीय भाषाओं के ही सदृश है।

यद्यपि जन-साधारण की भाषा अपनी कुछ विशेषताओं के कारण प्रथम प्रयास में कठिनता से समझ में आती है फिर भी इस भाषा में प्राचीन तत्व रह गये हैं जिनके कारण उत्तर भारतीय इसे समझ सकते हैं। यदि कोई उत्तर भारतीय तीन मास ही सिंहल में निवास करें तो वह इस भाषा को समझ सकता है। साहित्यिक भाषा सीखने में अधिक समय नहीं लगता क्योंकि उसकी शब्दावली संस्कृत और पाली से ली गई है। यद्यपि स्यामी बौद्धों की भांति, सिंहली बौद्धों की धार्मिक भाषा भी पाली है, फिर भी अन्य सिंहली विद्वान आज तक अपनी भाषा के शब्द-भंडार को संस्कृत शब्दों से समृद्ध बनाते रहे हैं। आयुर्वेद चिकित्सा-प्रणाली वहां पर प्रचलित है और केवल इसी कारण कई सहस्र शब्द संस्कृत से सिंहली में आ गये हैं। संस्कृत भाषा सम्मान की दृष्टि से देखी जाती है और बोलचाल की संस्कृत को बौद्ध विद्वान् समझ सकते हैं। साहित्यिक भाषा में ही नहीं किन्तु बोलचाल की भाषा में भी संस्कृत का विस्तृत प्रभाव दिखाई देता है।

एक छोटी सी पुस्तक से कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं। पाठकों को यह निश्चय हो जायेगा कि सिंहली हमारे कितने समीप है। नदी के लिये सामान्य शब्द 'गंगा' है। 'प्रपातय' जल प्रपात को कहते हैं। पशु, पक्षी, मत्स्य और कीड़ों को क्रमशः मृग, पक्षी, मत्स्य और कृमि जाति कहते हैं। पशु के लिये उनके साहित्यिक शब्द 'मृग' अथवा बोलचाल के शब्द मृगया पर ध्यान दीजिये। यह वैदिक कालीन प्रयोग है पीछे की भाषा में मृग का अर्थ केवल हिरण ही किया गया है। सांड के लिये उनका शब्द 'गौना' है जिसका उल्लेख पतंजली के महाभाष्य में मिलता है। यह एक अप्राप्य शब्द है और भाषा वैज्ञानिकों के लिए विशेष महत्व का है। खच्चर के लिए उनका शब्द अश्वतर है, जिसका प्रयोग उत्तर भारत की बोल-चाल की भाषा में अब लुप्त हो गया है। भेड़िये के लिये साधारण शब्द 'वृकया' है (स वृक)। काल और ऋतुओं के लिये सिंहली शब्द 'काल-ऋतु विशेष' है। अर्ध-रात्री 'मध्य-रात्रीय' और ग्रीष्म ऋतु का मध्य,

ग्रीष्मकालय' कहलाता है। 'विनाडी और मोहोत' (मुहूर्त), सेकंड और मिनिट के लिये उनके शब्द हैं। ऋतुओं के सिंहली नाम हमारे ही समान वसंत, ग्रीष्म, शरद, हेमंत, शीत, वर्षा हैं। ईसाईयों तक ने संस्कृत नामों का प्रयोग उपयुक्त समझा है। कैथिड्रल, प्रधान देवस्थानय है और चर्च देव स्थानय है। पाठशाला को 'पाठशालाव' और पथ निर्देशक स्तम्भ (साइन पोस्ट) को 'संज्ञाकणव' कहा जाता है। (टाउन हाल) नगर शाला को 'नागरिक शालाव' कहा जाता है। पत्नी को 'स्त्री और भार्या' भी कहते हैं। उसके सुन्दर वर्ण को वे 'शरीर वर्ण' कहते हैं। स्वास्थ्य को 'शरीरस्थिति' कहते हैं। सांप के काटने को 'सर्पदष्टय' कहते हैं। अतिसार को 'पाचनयय' कहते हैं और इस लिये विशूचिका 'वमन-पाचनयय' हुआ। Surgeon को शल्य-वैद्य' और लेप को 'विलेपनय' कहते हैं। Parasol अथवा छतरी को प्राचीन संस्कृत की भांति 'आत पत्र' कहा जाता है। दोनों शब्दों का एक ही अर्थ होता है। पैरासोल ग्रीक से लिया गया है। (पेरा का अर्थ दूर और सोल अर्थात् सूर्य) ये दोनों शब्द वास्तव में संस्कृत के परा और सूर्य है। उसी तरह आतपत्र में आतप का अर्थ हुआ धूप और त्र का अर्थ हुआ रक्षक।

बैठक के लिये उनका शब्द संग्रहशालाव बड़ा रोचक है। गैस को वे अग्नि वायु कहते हैं। तूर्यमांडय का पियानो के अर्थ में प्रयोग होता है। तूर्य एक वाद्य और मांड पात्र है।

व्यवसाय और व्यापार के लिये वे 'कमति' शब्द का प्रयोग करते हैं। रसायन-शास्त्रज्ञ को 'रसायनकारया,' अभियंता 'यंत्रकारया,' ज्वेलर 'आभरणसादना,' प्रिंटर 'मुद्रांकणकारया,' साइकल मेकर रथचक्रसादना,' विद्यार्थी 'शिष्य और अध्यायी,' बिल 'गणनपत्रय,' बुककीपर 'गणकारया,' एवरेज 'सामान्यगणन,' एवरेज-शीट आ य-व्यय लेखनये,' क्लर्क 'लिपिकरुवा,' लिमिटेड कंपनी 'सीमासहित समागम' डायरेक्टर 'क्रियाधिकारया,' एंजिन 'यंत्रय,' स्टीमर 'धूमनाव,' फैक्टरी 'कर्मांत शालाव,' इन्शुअरन्स 'उपद्रवारक्षय' या 'सत्यापनय,' इन्शुअरन्स पालिसी 'उपद्रवारक्षक पत्रय' कहलाते हैं। स्टाक एक्सचेंज के लिये वे बहुत ही सुन्दर शब्द 'परिपण व्यापार' और टेलिफोन के लिये 'दूर-शब्दनयंत्रय' प्रयोग में लाते हैं। कारडिनल नंबर को 'मूलसंख्या' और आरडीनल नंबर को 'क्रमवाचक संख्या' कहते हैं। विशेषण गुणवचन और क्रिया क्रियावचन कहलाता है पर क्रिया-विशेषण, संयोजक आदि के लिये एक ही सामूहिक शब्द 'निपातपद' का प्रयोग होता है। यह यास्क के निरुक्त के परम प्राचीन भारतीय व्याकरण के विभागीकरण के अनुरुप हैं।

'उपयोगी और आवश्यक मुहावरों और पद' नामक अध्याय का अनुवाद उद्धरित किया जाता है।

"अवश्ययेन् प्रयोजनन्त्वु भाषा रीत्यनुकूल कियमन् सह वाक्ययम्" 'और' के लिये संस्कृत शब्द सह' पर ध्यान दीजिये। यह बोलचाल की सिंहली है। सिंहली में निःसंकोचता और विशुद्धता-पूर्वक संस्कृत शब्दों का प्रयोग होता है क्योंकि हमारी भाषाओं की तरह संस्कृत, सिंहली की भी जननी है।

बीसवीं शताब्दि में प्रकाशित कुछ सिंहली पुस्तकों के नाम दिये जाते हैं। अरबी निशो-

...ासव, अरेबियन नाइट्स का अनुवाद है। गुण... र्धन द्वारा लिखित आरोग्य दर्पणय, आतसार ...दान १९१४, १९३१ में अमर सूर्य द्वारा ...लिखित अधिराज्य ये इतिहासय, १९२७ में ...गुरुसिंह द्वारा लिखित चित्रादर्शय, लक्षणविधाव ...१९२१, १९१६ में गुणवर्धन द्वारा लिखित ...धनोपायनक्रम, गद्यविनिश्चय १९२७, गाणतम ...१९२६, रणसिंह द्वारा लिखित गणितशास्त्रय, ...१९१७ में पेरेरा द्वारा लिखित गीतशिक्षा, गीत-विनोदय १९२७, गर्भद्वारय १९२१, ज्योतिष-कथोपकथनय १९२६, १९१९ में गुणरत्न द्वारा लिखित 'अभिनव शारीरिक विद्याव पिलिवंद क्रीडा, महामरीरोगविभागय १९१४, १८८३ में धर्मरत्न द्वारा लिखित मैथुन संयोग सूत्र, मनुष्याभिवर्धनये, मद्यविभागय, बीजगणितय आदि आदि। इन पुस्तकों के नामों से ही पता लग जाता है कि वे भिन्न-भिन्न विषयों की हैं। आधुनिक सिंहली साहित्य को देखने से पता चलेगा कि प्रकाशित पुस्तकों के लगभग पचास प्रतिशत नाम साधारण उत्तर भारतीय बिना सिंहली का ज्ञान प्राप्त किये समझ सकता है।

भारतीय यात्रियों से भाषण करने में सिंहल निवासी संस्कृत शब्दों के प्रयोग करने में गौरव का अनुभव करते हैं।

एक प्राचीन विद्यालय से आते समय मुझे एक मित्र ने संस्कृत शब्दों में 'पुनर्दर्शनाय' कह कर विदा दी। इसका अर्थ है 'हम पुनः मिलने के लिये विदा होते हैं।

क्या शहद भी आदमी की जान ले सकता है ?

श्री रामेश बेदी

इस में ज़रा भी सन्देह प्रतीत नहीं होता कि कुछ प्रकार के शहदों में या कुछ फूलों से मकरंद (पुष्परस) इकट्ठा करके बनाये हुए शहदों में कम या अधिक ज़हरीलापन होता है। इन शहदों को जब मनुष्य खाते हैं तो बहुत कष्टदायक लक्षण पैदा हो जाते हैं। लगभग दो हज़ार साल पहले के चरक, सुश्रुत आदि के विवरणों से हमें विषैले शहदों की ओर संकेत मिलता है (देखें : च., सू., अ. २७; २४३ और सु., सू., अ, ४५. मधुवर्गः)। १३७४ में मदनपाल ने लिखा था कि विषैले फूलों से ये विषैली मक्खियां जब शहद इकट्ठा करती हैं तब वह शहद स्वभाव से ही विषैला होता है (म. पा. नि., इक्षुकादि. ६; ३१)। उस के बाद भावमिश्र (भा. प्र., पू. ख., मधुवर्ग २२; २७) और कैयदेव (क. दे. नि., ओ. व; १८८) ने भी उस का समर्थन किया था। डिओडोरस, डियोस्कोराइड्स, स्ट्रैबो ईलियन और प्रोकोपियस ये सब अपनी रचनाओं में विषैले शहद का उल्लेख करते हैं।

पागल बना देने वाला शहद

प्लीनी ने रहोडोडेण्ड्रोन के फूलों से प्राप्त किये गये सान्नी देश के पागल कर देने वाले मधु का वर्णन किया है। जॉर्जिया निवासी एक नशीले मधु से परिचित हैं जिसका उद्गम रहोडोडेण्ड्रोन पोण्टिकम है। प्लीनी और डियोस्कोराइड्स की कृतियों में इस का वर्णन है। एरिस्टोटल एक शहद का जिक्र करता है जिसने लोगों को पागल बना दिया था, पर बाद में वे उपचार से ठीक हो गये थे।

सिपाही बेहोश हो गये

ट्रेबिजोंद के विषैले मधु की कहानी बहुत प्रसिद्ध हुई है। क्सेनोफ़ोन लिखता है कि ट्रेबिज़ोंद के समीप एक स्थान पर बहुत से छत्ते लगे हुए थे। सिपाहियों ने तोड़ कर इन छत्तों में से रस चूस लिया। परिणामतः उन पर नशा चढ़ गया और वे उलटियां तथा दस्त करने लगे। उन में से बहुत सों पर तो ऐसा बुरा असर हुआ कि वे खड़े होने में भी असमर्थ हो गये और लड़खड़ा कर गिरने लगे। उन के शरीर भूमि पर ऐसे बिछ गये कि इस की तुलना लड़ाई के बाद के रणक्षेत्र से की जा सकती थी। यद्यपि कोई सिपाही मरा तो नहीं परन्तु ऐसा मालूम होता था जैसे कि ये भयङ्कर दस्तों से अचानक निर्बल बना दिए गये हों। चौबीस घण्टे तक तो उन्हें होश नहीं आई और तीन-चार दिन तक वे ऐसी हालत में रहे जैसे कि उन के अन्दर से शक्ति खींच ली गई हो।

वानर सेना भी प्रलाप-ग्रस्त

बाल्मीकि ने मधुवन के कुछ इस प्रकार के शहदों का वर्णन किया है जिसके खाने से वानर-सेना के सिपाहियों में प्रलाप की सी अवस्था पैदा हो गई थी। यद्यपि, कुमार ने जामवान् आदि बूढ़े वानरों को उनकी आवश्यकता के अनुसार परिमित मात्रा में ही प्रकृति में पैदा

हुए शहदों दिये थे। उन शहदों को खा कर वे अत्र अत्यन्त प्रसन्न हो गये। हर्षोन्माद में वे नाचने गाने लगे और इधर-उधर कूदने फांदने लगे। उन में से कुछ तो बेतहाशा हंसते जाते थे। कुछ पढ़ने और व्याख्यन झाड़ने लगे, कुछ तैरने लगे। कुछ आपस में खूब वादविवाद करने में लग गये। कुछ बहुत अधिक बोलते थे, जैसे कि बेहोश रहने पर प्रलाप में व्यक्ति बोलता है। कुछ एक वृक्ष से दूसरे पर छलांगे मारने लगे। एक दूसरे को खुशी में कभी हंसते और कभी रोते देख कर वे आपस में हंसते और रोते थे। बाल्मीकि जी लिखते हैं कि उन में कोई भी बन्दर ऐसा नहीं था जो मस्तिया न गया हो और आपे से बाहर न हो गया हो (बाल्मीकीय रामायण, सुन्दर-काण्ड, सर्ग ६१; ८-१९)। जिन छत्तों को निचोड़ कर उन्हों ने शहद पिया था उस की मोम को वे उच्छृङ्खल बन्दर आपस में गालियां निकालते हुए एक दूसरे को मारते थे। बहुत अधिक मस्त हुए-हुए कुछ बन्दर तो वृक्षों के नीचे ही पत्तों को फैला कर या वैसे ही सो गये (बाल्मीकीय रामा. सु. का. अ. ६२; १०-१४)। कई बन्दरों ने तो इतना अधिक शहद पी लिया कि उनके पेशाब में भी शहद आने लगा था (बा. रामा, सु. का., अ. ६४; ४)।

विषैला शहद धतूरे का नहीं

बहुत समय तक यह समझा जाता था कि विषैला मधु धतूरे के फूलों से सञ्चित किये गये रस से बनता है। बाद में यह ग़लत सिद्ध हुआ और पता किया गया कि अज़ेलिया पोण्टिका के फूलों का शहद ज़हरीला होता है। 'युनाइटेड स्टेट्स डिस्पेन्सरी' (उन्नीसवां संस्करण, पृष्ठ ७७३) जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों में भी लिखा है कि धतूरे से इकट्ठा किया गया शहद ज़हरीला होता है। हैरोल्ड डीन ने १९१३. की ब्रिटिश फार्मास्युटिकल कान्फ्रेन्स में इसी विषय पर एक निबन्ध पढ़ा था जिस में बताया था कि यह बात कई बार साबित की जा चुकी है कि मधुमक्खियां इस पौदे के फूल से रस ले नहीं सकतीं, और ट्रेबिज़ोंद के विषैले मधु का स्रोत अज़ेलिया पोण्टिका था।

अमेरिका में मौतें

अमेरिका के कुछ प्रान्तों का शहद हानिकारक कहा जाता है। 'अमेरिकन फ़िलॉसोफ़िकल ट्रांसलेशन्स' में डाक्टर बार्टन बताते हैं कि '१७९० की पतझड़ और सरदियों में फ़िलैडेल्फ़िया के पास-पड़ौस में इकट्ठा किये गये शहद ने बहुतों की जान ले ली थी। अमेरिकन सरकार के अनुसन्धान ने खोज निकाला कि यह मारक शहद काल्मिया लेटिफ़ोलिया के फूलों से निकाला गया था।'

न्यूज़ीलैण्ड की वनस्पतियों में दो पौदे ऐसे हैं। जिन के मकरन्दों से मक्खियां जो शह बनाती हैं वह मनुष्यों के लिए निश्चित रूप से विषैला सिद्ध किया जा चुका है। इन पौदों के नाम हैं—ब्रैचिग्लॉट्टिस रिपण्डा और रनकुलस रिवुलेरिस।

दो मेओरी मौत का शिकार

न्यूज़ीलैण्ड से हमें यह वर्णन मिलता है—'१८८९ की पतझड़ में तीन जवान मेओरी लोग मटाटा के समीप सूअर का शिकार कर रहे थे। टॉहिरो वृक्ष में उन्हों ने जंगली

मक्खियों के एक घोंसले का पता किया। इस में से उन्हों ने छत्तों को तोड़ लिया और तीनों ने करीब एक-एक पाव शहद खाया। प्रायः दो घण्टे बाद विष के लक्षण प्रकट होने लगे। पहले सिर में चक्कर, और उलटियां आईं। फिर प्रलाप की अवस्था आई, और अन्त में शरीर की मांसपेशियां ऐंठी जाने लगीं। अचानक बीमार पड़ जाने पर जल धाराओं का पानी पीने लगने की पुरानी प्रथा के अनुसार वे एक धारा की ओर लपके। एक तो रास्ते में ही बेहोश हो कर गिर पड़ा और शेष दो धारा में मरे हुए पाये गये। रास्ते में जो गिर पड़ा था वह अगले दिन तड़के होश में आ गया।'

पांच और मरे

१९०२ का जिक्र है ! आठ साहसी मेओरी लोगों ने शहद खाया। वे झट बीमार हो गये क्योंकि शहद ज़हरीले वृक्षों के फूलों का था। आठ में से पांच तो मर गये। भयङ्कर कष्ट पाने के बाद तीन राज़ी हो गये। आक्षेपों के कारण एक की जीभ बुरी तरह कट गई थी।

एक चम्मच शहद ने रोगी कर दिया

हेम्पसॉल (१९३७) ने एक बार केण्ट में लॉर्ड डार्नले के ग्राउण्ड में उगे हुए र्होडोडेण्ड्रोन के फूलों से एक शहद प्राप्त किया था। इस शहद का केवल एक चाय का चम्मच भर ही खाने वाले प्रत्येक आदमी की करीब पन्द्रह मिनिट तक तबियत ख़राब रही थी।

छपाकी निकल आई थी

एन्सले एक विचित्र गहरे हरे रंग की किस्म के शहद का ज़िक्र करते हैं जो इतना अधिक खराब होता है कि वैद्य इसे खाने के योग्य नहीं समझते। थोड़े से परिमाण में कुर्ग के जंगलों से प्राप्त एक शहद का डॉक्टर विदी उल्लेख करते हैं जिसे खाने से छपाकी निकल आई थी, और सिर दर्द, अत्यन्त जी मचलाना, शिथिलता तथा तीव्र पिपासा जैसे लक्षण पैदा हो गये थे।

विशेष ऋतु में विषैला शहद

हूकर ने हिमालय जर्नल में विषैले शहदों का वर्णन किया है। वह लिखता है कि पूर्वीय नेपाल में वसन्त में शहद इकट्ठा नहीं किया जाता क्योंकि इस समय इस में र्होडोडेण्ड्रोन के फूलों का रस मिला होने से यह विषैला हो जाता है। स्ट्रैट्टल ने लिखा है कि बर्मा में किन्हीं खास मौसमों में प्राप्त किया गया शहद विषैला होता है। लङ्का में रबड़ के फूलने की मौसम में शहद का स्वाद कड़वा हो जाता है। शिमला और उस के आसपास के पहाड़ों में रहने वाले मधुमक्खी-पालकों का विश्वास है कि रात में बारिश हुई हो और अगले दिन शेगुल के फूलों में से मक्खियां रस ले कर लौट रही हों तो उन में से अनेक उसे खाती हैं और उस के विषैले प्रभाव के कारण मर जाती हैं। यह भी उन लोगों का विश्वास है कि जब मक्खियां देवदार के नरपुष्पों से शहद और पराग इकट्ठा करती हैं तो छत्ते में दो-तिहाई शहद सर्वथा कड़वा और निकम्मा होता है। ब्रिटिश मधुमक्खी-पालक सङ्घ की ओर से १९३७ में एक बृहदाकार ग्रन्थ दो जिल्दों में प्रकाशित हुआ है। उस में श्रीयुत हेरॉड-हेम्पसॉल लिखते हैं कि 'आश्चर्य की बात तो यह है कि विषैले मकरन्द का न तो मक्खी पर कोई हानिप्रद प्रभाव पड़ता है और न ही उस के शिशुओं पर।'

विषैले पौदों का शहद भी निरापद

यहां हम एक बात स्पष्ट करना चाहते हैं।

एक पौदे के पत्ते, शाखाएं या जड़ें यदि विषैली हैं—जैसे एकोनाइट (अतीस), वेलाडोना, विष(एकोनाइटस नेपिल्लम)आदि के पौदे तो यह ज़रूरी नहीं होता कि ऐसे पौदों के फूलों से मक्खियां जो मकरन्द लेंगी वह भी ज़हरीला ही हो।

कड़वे और विषैले शहद

सम्राट् डायोक्लीशियन के राज्य (ई० पू० ३०३) में रेवेन्यू के स्रोत के रूप में शहद पर बड़ा भारी कर था (गिब्बसन्स हिस्ट्री, १,३६४)। रोमन साम्राज्य के कई प्रान्तों में मोम और शहद के ऊपर कर लगाये गये थे। कोर्सिका का शहद कड़वा और उपयोग करने के अयोग्य होता था इस लिए कोर्सिका को केवल मोम पर ही कर देना पड़ता था। डिओडोरस इस बात को पुष्ट करता है कि कोर्सिका में मिलने वाले मधु में बॉक्स वृक्षों का पुष्परस होने से सारा शहद ख़राब और कड़वा हो जाता है। इस फूल के रस में कड़वी सी गन्ध आया करती है। प्लीनी हमें बताता है कि पोएटस के पास रहने वाले सान्नी लोग शहद के ऊपर लगाये गये कर को नहीं दे पाते। क्योंकि यह शहद ज़हरीला होता है। ये लोग केवल मोम पर ही कर देते हैं। स्ट्रैबो ने बताया है कि पोएटस में एक शहद होता है जो तीव्र विष है क्योंकि मक्खियां इसे एकोनाइट और हेमलौक से इकट्ठा करती हैं। किन्तु लैम्बर्टि का विचार इस से विपरीत है। वह इसे संसार में सब से अच्छा शहद बताता है। सार्डीनिया के दक्षिण में मिलिस नाम का एक छोटा सा कस्बा है। यह मीठी नारंगियों और कड़वे शहद के लिए प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि यह कड़वा शहद नारंगी और निम्बू के फूलों के मकरन्दों को इकट्ठा कर के बनाया गया होता है। इन वृक्षों के वहां बड़े-बड़े कुंज हैं। पसन्द न किया जाने के कारण साधारण व्यापार में यह बिक नहीं पाता; परन्तु उस कस्बे के लोग इसे बहुत चाव से खाते हैं। इस का कारण यही है कि उस कड़वे से विचित्र प्रकार के स्वाद के लिए उनकी जिह्वा अभ्यस्त हो गई है। दक्षिणीय इङ्गलैंड के रहने वाले हीदर-मधु (एरिका साइनेरिया) के के कड़वे से मीठे और तेज़ स्वाद वाले शहद को बुरा नहीं मानते परन्तु उत्तरीय इङ्गलैंड के निवासी इसे नापसन्द करते हैं। क्लोवर या सेनफ़ोयन से लिए गये दक्षिणीय मधु, को उत्तर वाले निस्स्वाद समझते हैं। बकह्वीट या फ़ैगोपाइरम का मधुकोष एक तीव्र गन्ध उच्छ्वसित करता है और मैथी का जी मचलाने वाली। बकह्वीट के मकरन्द से बने शहद को अधिक लोग घृणास्पद समझते हैं परन्तु इङ्गलैंड में रहने वाले यहूदी इसे अधिक पसन्द करते हैं। हॉलैंड और स्वीडन में भी यह शहद बहुत प्रशंसित है। विशालकाय युकलिप्टस के पुष्परस में से बकबकी तथा मसाले की सी गन्ध निकलती है और हॉर्स चेस्टनट में से कड़वी। आस्ट्रेलियन मधु का युकलिप्टस का सा स्वाद आस्ट्रेलियावासियों को ही अच्छा लगता है, ब्रिटिश द्वीपों में रहने वाले इसके स्वाद पर प्रायः ऐतराज़ करते हैं क्योंकि उन्हें यह शहद की अपेक्षा औषध-द्रव्य अधिक लगता है।

नन्ही सी बून्द—एक सुन्दर मूक कविता

विविध प्रकार के इन घिनोने शहदों की कोई कल्पना नहीं करेगा परन्तु वास्तव में ये सब होते हैं। मधुलता, नागरमोथा, आरग्वध

श्रुति की अपूर्वता

प्रत्यक्ष, अनुमान तथा श्रुति के तुलनात्मक विचार द्वारा

श्री स्वामी कृष्णानन्द

यहां पर यह प्रश्न होता है कि श्रुति तथा उपनिषद् आदि में ब्रह्मविषयक अनेक प्रमाण मिलते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणों का भी इस विषय में कुछ विवेचन होना चाहिए।

प्रत्यक्ष

वैदिक प्रत्यक्ष—(आप्त पुरुष का प्रत्यक्ष) ऐसे आप्त पुरुषों के प्रत्यक्ष के विषय में, जिनका अन्तःकरण भगवदर्पण बुद्धि से वर्णाश्रमोचित शास्त्रोक्त कर्म करते हुए तथा योगादि द्वारा शुद्ध हो चुका है, हम पूर्व भी कुछ लिख चुके हैं। उनके अनुभव-युक्त वचन तो उसका समर्थन करते ही हैं। परन्तु उनके वचनों की सार्थकता तथा प्रमाणत्व की झलक उनके निर्भीक, आनन्दमय, मस्तीमय जीवनों तथा विषय-लोलुप अज्ञानियों और नास्तिकों के दुःखमय शोक-ग्रस्त, भयभीत जीवनों के भेद से स्पष्ट प्रकट होती है। ऐसे आप्त पुरुषों का मौनमय संग तथा एक दो वचन कट्टर नास्तिकों के जन्म-जन्मान्तरों के संशय तथा अश्रद्धा आदि दोषों को कालिमा को धो डालते हैं। उनका मुख-मण्डल सदा आनन्दमय ज्योति, तेज तथा ओज से देदीप्यमान रहता है। वे आध्यात्मिक आकर्षण शक्ति की साक्षात् मूर्ति होते हैं। प्राणीमात्र

---

१६ पृष्ठ का शेष—

आदि की भीनी मीठी सुगन्धें पुष्परस के साथ मक्खियां अपने साथ लाती हैं। एक ही छत्ते में जब सारिवा, लैवेण्डर, पोदीना, तुलसी, जामुन, अजवायन आदि अनेक प्रकार के हज़ारों पौदों के स्वादु और प्रसादकर शहद बहुतायत में होते हैं और दूषित-मधु अल्प परिमाण में, तो इन घिनौने शहदों की अप्रिय और अरुचिकर गन्ध और स्वाद उन में ही एकाकार हो जाते हैं। वास्तव में किसी दूसरे भोजन का ऐसा रोमाण्टिक सम्मिश्रण न होगा जैसा शहद का। शहद की प्रत्येक बून्द एक नाजुक फूल की गोद में उदय होती है जहां यह ग्रीष्म के सूर्य की किरणों से मिलती है और प्रातःकालीन ओस-कण इसे स्नान कराते हैं। आप को महज़ अपनी आंख बन्द करनी होगी और उत्फुल्ल सरसों के खेतों का चित्र आपके सम्मुख होगा, फेफड़ों को असंख्य भोले फूलों से सुवासित वायु से भर लीजिये या अपनी स्मृति में एक बार फिर खिले हुए पद्मपुष्पों वाली झील में या सारिवा से सुवासित कुञ्जों में सैर कीजिये जिस से इस अतुलनीय भोजन के उद्भव को अनुभव कर सकें—आप मधु की अनुभूति से सराबोर हो जायेंगे। मधु की एक बून्द में कितनी सुन्दर मूक कविता है, नन्ही सी बून्द में संशक्त रागभरी ताल है, ऊष्णता और प्रकाश का संगीत है—जिस में इस बून्द की सृष्टि में सहायक सहस्रों वसन्तों की सूक्ष्म सुरभि का सार और कोमलतम वर्णों की झलकें एक सामान्य सामञ्जस्य में चमकती हैं, गाती हैं।

उनकी ओर स्वभावतः ही आकृष्ट हो जाता है। उनके वचन मधुर, प्रिय तथा मार्मिक होते हैं। वे अपने स्वतः प्रमाणत्व को सच्चे जिज्ञासुओं के हृदयों में अनायास ही स्थापित कर देते हैं। जिज्ञासु का हृदय उनके दर्शन मात्र से निःशंक होकर हर्षोत्फुल्ल हो उठता है। जैसे सूर्य के उदय होने पर सूर्यमुखी फूल स्वभावतः ही खिल उठते हैं। यदि सूर्य के उदय होने पर भी उल्लू को कुछ नहीं दीखता तो क्या इतने मात्र से सूर्य अंधकारमय सिद्ध हो जाता है ? आत्मवेत्ता पुरुषों के वचनों का प्रभाव तो अकथनीय होता ही है। उनकी मौन मुद्रा भी दर्शकों के हृदयगत अज्ञान-जन्य संशय, भ्रान्ति तथा अश्रद्धा रूपी ग्रंथियों को क्षण मात्र के संपर्क से छेदन, भेदन कर देती है और अपने स्वतः प्रमाणत्व को बिना किसी हेतु के उन पर सिद्ध करती है। उन की यह मौनमयी भाषा साधारण लौकिक भाषा से निराली होती है। इस प्रकार के महा पुरुषों का दिव्य-जीवन उनके अखण्ड तथा अद्वितीय आनन्द की अनुभूति में प्रमाण है। उनके तेजोमय पवित्र जीवन के सामने शुष्क तर्क इस प्रकार तुरन्त भस्मसात हो जाता है जैसे अग्नि के सामने तृण। वे ही सर्वविध प्रमाणों को वास्तविक प्रमाणता प्रदान करते हैं। वे इस शब्द प्रमाण की भी आधार-शिला हैं। चौंसठ विद्या विशारद शब्द ब्रह्म की साक्षात् मूर्ति तथा तर्क निपुण नारद ऋषि सरीखे भी ऐसे तत्त्ववेत्ताओं की शरण में आकर अपनी शोक ज्वाला की शान्ति तथा परम बोद्धरूप परम सुख की अभ्यर्थना करते हैं। 'अधीहि भगव इतिहोपससाद सनत्कुमारं नारदः' (७-१ छान्दोग्य) 'तरति शोकं आत्मवित्' मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयतु' (७-३)। ऐसे महा पुरुष ही संसार भर के अज्ञान, मौलिक कुरीतियों तथा अन्याय युक्त आचरण का विरोध करते हैं। उन्हें चक्रवर्ति सम्राट् का भी तनिक भय नहीं होता। वे सत्य के लिए अपने प्राणों की होली आनन्द से खेल जाते हैं। विष को अमृत के समान पी जाते हैं, कारागार को स्वर्ग के उन्नत प्रासाद समझते हैं। शीतोष्ण क्षुधापिपासा, सुख-दुःख आदि दारुण द्वन्द्व उन्हें सत्य तथा न्याय के मार्ग से विचलित नहीं कर सकते।

> निन्दन्तु नीतिनिपुणः यदि व स्तुवन्तु
> लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
> अद्यैव व मरणमस्तु युगान्तरे वा
> न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥
>
> भर्तृहरि नीति। ७४।

"धीर पुरुष को नीति विशारद जन निन्दा करें या स्तुति करें, उनके पास संसार भर की लक्ष्मी आजाए या आई हुई चली जाए, उन्हें यमराज चाहे आज ही अपना ग्रास बना ले या वे कल्पान्तर पर्यन्त जीवित रहें, परन्तु उन्हें सत्य और न्याय के मार्ग से कोई व्यक्ति, पदार्थ, दृश्य, सौन्दर्य, प्रलोभन तथा भय एक पद भी विचलित नहीं कर सकता। वे मरण पर्यन्त सत्य-मार्ग पर ही आरूढ़ रहते हैं। न्याय तथा सत्यपथ से भ्रष्ट न होने को ही वे परमार्थ का उच्च साधन तथा स्वरूप समझते हैं।

लौकिक प्रत्यक्ष

प्राकृतजन प्रत्यक्ष—विधाता ने पांच ज्ञानेन्द्रियों की रचना बहिर्मुख की है। ये अपने अपने रूपादि क्षण भंगुर तथा परिणामी विषयों को ग्रहण करती हैं। सच्चिदानंद एक रस, अपरिणामी, नित्यतत्त्व तक इनकी गति नहीं है। साधारण, अस्थिर, अस्वच्छ तथा स्थूल बुद्धि भी परतत्त्व

ग्रहण के लिए नितराम असमर्थ है। यह विचारी तो दया, लज्जा तथा भय आदि मानसिक विकारों को ही कथञ्चित ग्रहण कर सकती है। वह भूमातत्त्व इन परिच्छिन्न साधनों की पहुँच से सर्वथा परे है। वह अखण्ड तत्त्व वाङ्मनसागोचर है।

'न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो'

केनोपनिषद् १-३

'उस परतत्त्व तक मन, वाक् तथा चक्षु आदि इन्द्रियां नहीं पहुँचतीं।'

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन।'

(तैतिरीय २-९)

'सामान्य संसारी के मन, बुद्धि तथा चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियां तथा वागादि कर्मेन्द्रियां जिस सच्चिदानन्द एकरस, पर ब्रह्म को स्पर्शन, दर्शन, कथन, श्रवण, तथा अनुभव में सर्वथा असमर्थ हैं। उसी सर्वात्मभूत परमानंद भूमातत्त्व के साधन सम्पन्न स्थिर स्वच्छ सूक्ष्म बुद्धि मुमुक्षु हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा सर्वतोनिर्भय अजर अमर पद को प्राप्त करता है।'

चक्षु आदि इन्द्रियां तथा मन भी एक प्रकार का विकार ही हैं। इन का क्षण-क्षण में परिणाम अनुभव गोचर हो रहा है। जैसे परिणामशील बाह्य पदार्थों का आधार तथा मूल कारण कोई अन्य स्थिर परिवर्तन रहित, निर्विशेष निर्विकार परतत्त्व है। वैसे ही इन चक्षु आदि बाह्य करणों तथा मन आदि अन्तःकरण का मूल कारण भी यही कूटस्थ है। इस लिए यह अन्तर्बाह्य-करण उसे कैसे ग्रहण कर सकते हैं! जैसे एक पुत्र अपने पिता को उत्पन्न करने में असमर्थ होता है, उसी प्रकार ये भी उसके ज्ञान में असमर्थ हैं।

'श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचोहवाचं स उ प्राणस्य प्राणः। चक्षुषश्चक्षुरति मुच्यधीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृतास्तेभवन्ति।'

(केन. १-३)

'वह ब्रह्म कान का कान, मन का मन, वाणी की वाणी, प्राण का प्राण तथा चक्षु का चक्षु है। तात्पर्य यह है कि जो श्रोत्र आदि इन्द्रियों को अपने अपने विषय में नियमन करके उन की उपलब्धि का हेतु तथा सामर्थ्यदाता है वही ब्रह्म है। ये सब करण (ग्राम) उसके बिना स्व-विषय ग्रहण में सर्वथा निस्तेज तथा असमर्थ होते हैं।

'A pair of tongs can catch almost anything else but how can it turn back and grasp the fingers which hold it. So the mind or intellect can in no wise be expected to know the great unknowable, which is its very source.' Rama's in Woods of God realisation.' Vol. V.

'चिमटा प्रायः अन्य हरेक वस्तु को पकड़ सकता है परन्तु वह लौट कर उन उंगलियों को कैसे पकड़ सकता है जो उसको थामे हुए हैं।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की विशेषताएं

शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी का मानसिक, शारीरिक तथा आत्मिक विकास कर उत्तम नागरिक बनाना है। अब यह प्रश्न उठता है कि प्रचलित शिक्षा प्रणाली विद्यार्थी की आवश्यकताओं को कहां तक पूरा करती है हमें दुःख से कहना पड़ता है आजकल की शिक्षा प्रणाली नितान्त असमर्थ रही है। यही नहीं हमारे विद्यार्थी अनेक दोषों के शिकार बन जाते हैं जो कि उन के भावी जीवन के लिए बड़े हानिकारक सिद्ध होते हैं।

इन दोषों से विद्यार्थी को बचाने के लिये उसे एक सुन्दर तथा सच्चा नागरिक बनाने के लिये ऋषि दयानन्द द्वारा सत्यार्थप्रकाश में प्रतिपादित शिक्षा के मूल सिद्धान्तों को आधार मान कर अमर हुत आत्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी सन् १६०० में स्थापित किया था। इस की स्वर्ण-जयन्ती आगामी मार्च महीने में मनाई जायगी।

शारीरिक विकास

गुरुकुल प्रकृति सौन्दर्य की गोद में बसा हुआ है। एक ओर हिमाद्रि शुभ्र धवल आविजय पुण्य भाल उठाये खड़ा है दूसरी ओर पुण्य सलिला भगवती भागीरथी कलकल करती हुई जा रही है। समस्त आश्रम फलफूलों वालों तरुलतापल्लवों से सुशोभित है। ऐसी उत्कृष्ट परिस्थिति में सदाचारी गुरुओं का सहवास, उत्तम भोजन, व्यायाम तथा धार्मिक शिक्षा सोने में सुहागे का काम करते हैं। घी दूध, फल आदि सात्विक पदार्थ मुख्य भोजन हैं। गुरुकुल का प्रत्येक ब्रह्मचारी खेल में भाग लेता है जिस से उस में खिलाड़ी की सच्ची भावना का विकास होता है। व्यायाम, कुश्ती, आदि के अतिरिक्त गर्मियों में ब्रह्मचारी तैरने का भी अभ्यास करते हैं जो कि एक अत्यन्त उपयोगी कला है। गढ़-मुक्तेश्वर के गंगा स्नान के मेले पर प्रतिवर्ष तैरने की खुली प्रतियोगिता होती है। उस में गुरुकुल के ब्रह्मचारी ही सदा प्रथम पारितोषक प्राप्त करते हैं। गुरुकुल की हाकी टीम दूर दूर तक प्रसिद्ध है। ब्रह्मचारियों का मुख्य कार्य खेल नहीं। प्रतिवर्ष कुछ खिलाड़ी अपनी शिक्षा समाप्त कर यहां से चले जाते हैं। इस प्रकार हमारी टीम सदा बदलती रहती है। इस त्रुटि के रहते हुए भी गुरुकुल की टीम ने कई प्रसिद्ध क्रीड़ा सान्मुख्यों में आग्रहपूर्वक बुलाया जाता है। मेरठ, शाहजहांपुर, बिजनौर, सहारनपुर कलकत्ता आदि स्थानों में गुरुकुल पार्टी ने समय समय पर बहुत प्रशंसा प्राप्त की है।

मानसिक विकास

पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों के अतिरिक्त वक्तृत्व तथा लेखन कला की विशेष उन्नति करने के लिये ब्रह्मचारियों ने अपनी आश्रम सभाएं बना रखी हैं। संस्कृत, हिन्दी और आंगल तीनों भाषाओं में वादविवाद तथा वक्तृत्व का अभ्यास करने के लिए अलग २ सभाएं हैं इन सभाओं की सफलता का सब से बड़ा प्रमाण यही है कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी जब कभी हिन्दू विश्वविद्यालय आदि की हिन्दी तथा संस्कृत व्याख्यान प्रतियोगिताओं में भाग

लेने गये तभी वे सर्व प्रथम रहे। इस से यह भी सिद्ध होता है कि छात्रों के मानसिक विकास पर कहीं अधिक बल दिया जाता है। अपने इस मानसिक विकास को बढ़ाने के लिये ब्रह्मचारी समय २ पर अपने उपाध्यायों तथा बाहर के विद्वानों के विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यान भी करवाते हैं। लेखन कला की उन्नति के लिये ये सभाएं अपनी २ पत्रिकाएं भी प्रकाशित करती हैं। इनमें उच्चकोटि के निबन्ध, गल्प, कविताएं, सामयिक टिप्पणियां आदि रहती हैं। इन सभाओंकी बदौलत ही गुरुकुलके अनेक स्नातक सफल लेखक, यशस्वी कवि, कृतकार्य सम्पादक तथा प्रसिद्ध कलाकार बने हैं। तेईस चौबीस वर्ष की छोटीसी आयु में ग्रन्थ रचना कर मंगलप्रसाद पारितोषक प्राप्त करने का सौभाग्य गुरुकुल के स्नातकों को ही प्राप्त है।

गुरुकुल के स्नातक देशभक्त, ईमानदार, सदाचारी, सेवाव्रती तथा तपस्वी होते हैं। हाथ से काम करने में वे सकोच या लज्जा अनुभव नहीं करते। गुरुकुल में उन सब उपायों तथा साधनों पर विशेष बल दिया जाता है जिनसे नवयुवकों के शरीर, मन तथा आत्माका स्वाभाविक विकास अधिक से अधिक हो सके। गुरुकुल में प्राचीन शास्त्रों, वेदों के गम्भीर अध्ययन के साथ साथ आधुनिक नवीन विज्ञानों तथा आंगल भाषा और साहित्य का भी उच्च ज्ञान उन्हें करवा दिया जाता है। अभी तक यह बात भारत के किसी भी अन्य विश्वविद्यालय में नहीं है।

निःशुल्क शिक्षा

अन्य शिक्षणालयों में विद्यार्थियों को भारी शिक्षा शुल्क देना पड़ता है। किन्तु गुरुकुल में शिक्षा के लिये कोई शुल्क नहीं। भोजन वस्त्र आदि का व्यय मात्र ही यहां लिया जाता है। बाहर के विद्यार्थियों को ट्यूशन के रूप में भी बहुत व्यय करना पड़ता है। किन्तु यहां वह भी नहीं। विद्यार्थी जब भी जिस गुरु से जिस विषय में चाहे सहायता प्राप्त कर सकता है। ऐसी सुविधा भला अन्यत्र कहां है!

सदाचार शिक्षा

गुरुकुल की निचली कक्षाओं में विद्यार्थियों के साथ उनका अधिष्ठाता सदा रहता है जो उनकी देखभाल करता है उनके आचार व्यवहार पर दृष्टि रखता है। समय २ उन्हें आचार्य द्वारा सदाचार के विभिन्न अंगोंकी शिक्षा भी दी जाती है। किन्तु महाविद्यालय विभाग में आने पर उन्हें इतने कठोर नियन्त्रण में नहीं रखा जाता है। उन्हें इस बात का अवसर दिया जाता है कि वे अपनी उत्तरदायिता स्वयं समझ और नियमों का पालन कर्तव्य बुद्धि से करना सीखें इस भय से नहीं कि उन्हें कोई देख रहा है। इस प्रयोजन के लिये यहां व्रताभ्यास प्रचलित किया गया है। यह एक परीक्षा है जिससे आचार के विभिन्न अंगों के लिए अंक नियत हैं। विद्यार्थियों के व्यवहार को देख कर प्रतिमास उन्हें अक दिये जाते हैं इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए बिना कोई विद्यार्थी स्नातक नहीं बन सकता। इस परीक्षा के कुछ विषय ये हैं—आज्ञा पालन, समय पालन, सुशीलता, शिष्ट. व्यवहार, सत्यसेवा, ब्रह्मचर्य इत्यादि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरुकुल एक जीवित तथा प्रगतिशील संस्था है। जिन आदर्शों को सन्मुख रख कर इसकी स्थापना की गई थी उन्हें इसने पूर्ण किया है।

जन्तु शास्त्र के पारिभाषिक शब्द

श्री चम्पत स्वरूप

(G)

Galea खोलक
Gall bladder पित्तकोष
Gamete गमित
Gametocyte गमितधारी
Gametogenesis गमितजनन
Ganglion कन्दिका
Ganoid चकासित
Ganoidae चकासी
Gastric आमाशयिक
Gastric glands आमाशयिक ग्रन्थियां
Gastric juice आमाशयिक रस
Gastrocnemius जंघापिण्डिका
Gastral layer गस्त्रल स्तर
Gastropoda कुब्जपदी
Gastrula गस्त्रुल
Gavial घड़ियाल
Genae गल्ल
Generation संतति
Generative organs जनन अवयव
Generic name गण नाम
Geneological tree वंशपरम्परा वृक्ष
Geniclulate body जानुक विग्रह
Genital atrium जनन द्वारी
Genital cloaca जनन मलनली
Genital papilla जनन पिप्पल
Genital pore जनन छिद्र
Genital system जनन संस्थान
Genu जानु
Genus गण
Germ cells बीज कोष्ठ
Germinal बैजिक
Gestation period गर्भिण्यवस्था काल
Giant fibres दैत्य सूत्र
Gill गलफड़
Gill arch गलफड़िक चाप
Gill cleft गलफड़िक दरार
Giraffe जिराफ
Gizzard चर्वणाशय
Gland ग्रन्थि
Glandular ग्रन्थिल
Glenoid उदूखलाभ
Glenoid cavity उदूखलाभ गुहा
Globe fish गोला मछली
Glomerulus मूत्रोत्सिका
Glossina जिह्वी
Glossina palpalis जिह्वी स्पर्शशृङ्गीय
Glossina morsitans जिह्वी मोरसितनिक
Glottis श्वासनली द्वार
Glossa रसना
Glowworm जुगनु, पटबीजना
Goblet cells पिटक कोष्ठ
Gonad जनद
Gonaduct जनदप्रणाली
Gonapophysis जनदप्रसर

Gonotheca जनद्भांड
Graafian follicle ग्राफ पुटक
Grass-hopper टिड्डा
Grey matter धूसर वस्तु
Growth वृद्धि
Gubernaculum केनिपात
Gullet अन्नवह
Gymnophiona नग्नाहि

(H)

Haemamoeba शोणविपरिणामी
Haematochrome शोणवर्णक
Haemocoele शोणगह्वर
Haemoglobin शोणवर्तुलिन
Haemoproteus शोणप्रोतुस
Hag लसलस
Hair papilla रोम पिप्पल
Hair sacs रोमकूप
Halters समतोलक
Hammerhead shark घनशिर तंतुण
Hand हस्त, हाथ
Hard palate कठोर तालु
Harderian gland हारदेरियन ग्रन्थि
Hare खरगोश
Harelip cleft शशोष्ठ दरार
Head शिर, सिर
Head louse शिर जूँ
Head shield शिरफर
Heart हृदय
Headge-hog शल्यमूष
Helix कुँडलाभ
Hemichorda अर्धलगुडी
Hemi-metabola अर्धरूपान्तरणी
Hemiptera अर्धगरुत्
Hepatic caeca याकृत उण्डुक
Hepatic duct याकृत प्रणाली
Hepatic portal system याकृत प्रतिहारिक संस्थान
Hepatic portal vein याकृत प्रतिहारिणी शिरा
Hermaphrodite उभयलिंगी
Hermit crab साधु केंकड़ा
Herring लश्कर मच्छी, लश्करिया
Heterocercal tail विषमलौम पूँछ
Hetrodont विषमदन्त
Heterogamy विषमोद्वाह
Heterometabola विषमरूपान्तरणी
Hexacanth षट्कंटक
Hibernation शीतनिद्रा
Higher उच्च
Hilum नाभिका
Hind brain पश्चिम मस्तिष्क
Hind gut पश्चिम पुरीतत्
Hind limb पश्चिम शाखांग
Hip girdle श्रोणी चक्र
Hippocampus समुद्राश्वक
Hippopotamus दरियाई घोड़ा
Hirudinea जलूकिया
Histology सूक्ष्मरचना शास्त्र
Holometadola पूर्णरूपान्तरणी
Holophytic पूर्णवानस्पतिक
Holozoic पूर्णजान्तव
Homocercal tail समलौम पूँछ

[शेष पृष्ठ २८ पर]

अनुपम भानूदय

श्री देवराज

भरत-भू पर एक अनुपम भानु निकला पूर्व से था।
वेद विद्याज्ञान लाली छा गई थी,
दुष्ट कुमुद गणावली मुरझा गई थी,
और विकसित हो गये थे लोक मानस कमल-सुन्दर,
सुमन सौरभ ले सु सुरभित हो गया सब वायु मण्डल,
सुजन-भावन, परम-पावन हवन की शुभ गन्ध सारी छा गई थी देश भर में—
रोग हरती सत्य ईश्वर भाव भरती।
साम गायन सरस स्वर में द्विज गणों का था निराला,
खोलता था हृत्कपाटों को विविध शुभ भाव भर भर।
भरत–भू पर, एक अनुपम सूर्य निकला पूर्व से था।

❀ ❀ ❀

अज्ञान रजनी मिट गई मत पन्थ तारक साथ ले
आई उषा नव भाव ले कर ज्योति फैली सब भुवन में
पोप उल्लू जा छिपे अज्ञात वन में
छा गया उल्लास-हास-विकास नरनारी वदन में और मन में,
सभ्यता बाला उठी अँगड़ाई लेकर—
भरत-भू पर एक अनुपम भानु निकला पूर्व से था।

❀ ❀ ❀

नारी मानस कन्दरा से भी अविद्या तिमिर भागा—
हो गया सुन्दर सवेरा
दिव्य-शिक्षा स्वर्ण रश्मि ने किया सब जा बसेरा
घोर निद्रालु दरिद्री ने भी नव उत्साह पाया
वेद विद्या भाव पाया
उठ पड़े सब नियम पूर्वक प्रात संध्या
पाठ करने जाप करने पाप औ सन्ताप हरने,

ईश के सद्ध्यान में संलग्न हो कर।
भरत-भू पर एक अनुपम भानु निकला पूर्व से था।

❀ ❀ ❀

हो गया सारा उजाला हो गया सारा उजाला
अब अनाथों ने भी पढ़ने के लिये बस्ता सम्भाला
सज सँवर कर चल दिये सब पाठशाला
डाल गल बहियाँ परस्पर
भरत-भू पर दिव्य ऋषिवर सूर्य्य निकला
एक अनुपम भानु निकला पूर्व से था।

---

२६ पृष्ठ का शेष—

Homodont समदन्त
Homologous रचनासाम्यी
Homology रचनासाम्य
Honey bee मधुमक्खी
Honey comb मधुकोष
Honey dew मधुतुषार
Hookworm काटाकृमि
Hormones अन्तःस्राव
Horn शृङ्ग, सींग
Horny layer कादर स्तर
Horse-shoe crab अश्वखुर, केंकड़ा
Host यजमान
House fly घरेलू मक्खी
Humerus प्रगंण्डास्थि, प्रगंडिका
Hyaline cartilage शुभ्र सक्थि
Hybrid संकरज
Hydatid cyst जलस्फोट अवगुँठिका
Hydra उदोरग
Hydra fusca उदोरग पिशंग
Hydra viridis उदोरग हरित
Hydra vulgaris उदोरग प्राकृत
Hydranth उदोरग पुष्प
Hydroid उदोरगोपम, उदोरगी
Hydrotheca उदभांड
Hydrozoa उदजन्तु
Hymenoptera कला गरुत्
Hyoid कंठिका
Hyomandibular कण्ठिकाधोहन्वीय
Hypapophysis अधःप्रसर
Hypoblast अन्तःकोरक
Hypogastric अधिवस्तिक
Hypoglossal nerve जिह्वातलिका नाड़ी
Hypopharynx अधोगल
Hypostome अधोमुख
Hyrax शैलशशक

पुस्तक परिचय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के नौ प्रकाशन

प्राप्ति स्थान—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

ब्राह्मण की गौ—लेखक श्री अभय जी विद्यालङ्कार, भूतपूर्व आचार्य गुरुकुल कांगड़ी। मूल्य ।।।)।

इस पुस्तक में अथर्ववेद के ब्रह्मगवी (५. १८) सूक्त की व्याख्या की गई है। लेखक ने समयोपयोगी सूक्त की व्याख्या किस योग्यता से की है इसे पाठक पढ़ कर ही जान सकेंगे। सच्चे ब्राह्मण की वाणी में क्या जादू भरी शक्ति होती है, वह इस पुस्तक में पाठक देखेंगे। एक महाबली राजा के मुकाबले में एक गरीब ब्राह्मण की वाणी को दिखाया गया है, जिस में कि अन्त में उस ब्राह्मण की वाणी की ही अनायास विजय होती है।

महात्मा गांधी ने 'ब्राह्मण की गौ' को प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ कर इसकी बड़ी प्रशंसा की है। वेद के पवित्र उपदेशों की यह स्वाध्याय पुस्तक प्रत्येक सज्जन को अवश्य पढ़नी चाहिये।

वैदिक-विनय—लेखक श्री अभय जी विद्यालङ्कार, भूतपूर्व आचार्य गुरुकुल कांगड़ी। मूल्य प्रथम भाग २), द्वितीय भाग १।।), तृतीय भाग १।।)। पहले दो भाग समाप्त हैं।

यह पुस्तक तीन खण्डों में समाप्त हुई है। प्रत्येक खण्ड में चार चार मास के लिये वैदिक प्रार्थनायें छांट कर रख दी गई हैं। एक दिन के लिये एक प्रार्थना नियत है। पहले वेद मन्त्र दिया गया है, उसके बाद मन्त्र द्वारा एक विनय (प्रार्थना) की गई है और अन्त में शब्दार्थ दे दिया है।

इस ग्रन्थ का गुजराती भाषा में भी अनुवाद हो चुका। पिछले १५ वर्षों में इस पुस्तक की हज़ारों प्रतियां स्वाध्याय प्रेमी सज्जनों ने ली हैं। प्रत्येक आर्य घर में इसका एक सेट अवश्य रहना चाहिये।

साम सरोवर—लेखक श्री पं० चमूपति एम. ए.। मूल्य सजिल्द २), अजिल्द १।।)।

यह ग्रन्थ सामवेद के पवमान पर्व का सुललित भाष्य है। इस पुस्तक का पाठ पाठक के हृदय में कभी अद्भुत तरंग, कभी वीर तरंग और कभी शान्त तरंग प्रवाहित करके हृदय को आलोकित कर देता है। इन्हीं तीन तरंगों से अठखेलियां करता हुआ भक्त अपने प्रियतम उपास्यदेव के ध्यान में मग्न हो जाता है।

सामवेद भक्तों के लिये भक्ति का स्रोत है। पाठक भक्तिरस के इस झरने का पयःपान करें, निश्चिन्तता से अध्ययन करें, मनन करें। पुस्तक की भाषा सजीव है, बढ़िया कागज, छपाई सफाई उत्तम है।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश (तीन भाग)—मूल्य प्रथम भाग १), द्वितीय भाग १), तृतीय भाग १।।)। प्रथम भाग समाप्त है।

यह पुस्तक श्री स्वामी जी महाराज के उच्च, गम्भीर, आत्मा को उठाने वाले उपदेशों का सग्रह है। संग्रहकर्ता हैं श्री स्वामी जी के अनन्य भक्त लाला लब्भूराम जी नैय्यड़। प्रत्येक घर

और पुस्तकालय में इस पुस्तक की एक कापी का रहना आवश्यक है। पुस्तक तीन भागों में छपी है।

वेद गीताञ्जली–लेखक श्री वेदव्रत वेदालङ्कार। मूल्य २)।

इसमें ढाई सौ के लगभग वेदमन्त्र, उनका अर्थ, और उन पर एक सुन्दर हिन्दी कविता है। कविता मधुर स्वर में प्रार्थना के समय गाने योग्य है अतः इनका स्थान २ पर प्रचार भी हो रहा है। श्री सुमित्रा नन्दन पन्त, गिरिजा शंकर मिश्र, सन्तप्रसाद वर्मा, श्री चमूपति जी, प्रियहंस, परमहंस, निरीह व निश्चिन्त आदि हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों ने इस गीताञ्जलि के संकलन में सहयोग दिया है। पुस्तक की छपाई सफाई बढ़िया है।

प्रार्थनावली––मूल्य।)

आशा और उत्साह का सञ्चार करने वाले, भक्तिरस से परिपूर्ण वेद के चुने हुए मन्त्रों (हिन्दी में अर्थ सहित) और सस्वर गाये जाने वाले सुन्दर भजनों तथा गीतियों का अपूर्व संग्रह। सामूहिक प्रार्थनाओं के लिए बहुत उपयोगी है।

आत्ममीमांसा–लेखक प्रो० नन्दलालखन्ना मूल्य २)।

इस पुस्तक का विषय है 'आत्मा की सत्ता के प्रमाण।' परमात्मा और आत्मा को भूल कर बहुत से लोग प्रकृति अथवा किसी भौतिक शक्ति को ही सब कुछ मानते हैं। इस पुस्तक में नवीन विज्ञान व युक्तियों के आधार पर प्रकृतिवाद का निराकरण कर आध्यात्मिक सत्ता को स्पष्ट किया गया है और अन्त में भारतीय शास्त्रों के सिद्धान्त का समर्थन किया गया है। बड़े २ विद्वानों की राय में इस विषय की हिन्दी में यह सर्वोत्तम पुस्तक है। आप भी इसका स्वाध्याय कर आत्मा सम्बन्धी अपनी शंकाओं को दूर कीजिये।

अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या–लेखक पं० प्रियरत्न जी आर्ष। मूल्य १॥)।

'अथर्ववेद में जादू टोने, तन्त्रमन्त्र, झाड़-फूँक का विधान है' ऐसा बहुत से विद्वानों का मत है। प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेद व अन्य वैज्ञानिक साधनों द्वारा सिद्ध किया है कि वस्तुतः जिन मन्त्रों को जादू टोना, तन्त्रमन्त्र आदि से सम्बद्ध किया जाता है वे सम्मोहन विद्या व चिकित्सा शास्त्र के द्योतक हैं। पं० प्रियरत्न जी वेदों के अद्वितीय विद्वान् हैं। इस पुस्तक का पारायण करके आप भी उनकी विद्वत्ता का परिचय प्राप्त कीजिये।

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत–लेखक श्री अभय जी विद्यालङ्कार, भूतपूर्व आचार्य गुरुकुल कांगड़ी। मूल्य २)।

इस पुस्तक में अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त (११-५) की व्याख्या है। वेद में ब्रह्मचर्य की महिमा क्या बताई गई है, ब्रह्मचारी कौन होता है और ब्रह्मचारी में कितनी महान् शक्ति होती है–इसका वर्णन आपको इस पुस्तक में मिलेगा। इसमें ब्रह्मचर्य सूक्त का एक-एक मन्त्र लेकर उसकी विस्तृत व्याख्या की गई है और अन्त में शब्दार्थ दे दिया गया है। इसके लेखक श्री 'अभय' जी के नाम से स्वाध्याय प्रेमी पाठक सुपरिचित हैं। उनकी लेखनी की अमरकृति वैदिक विनय बहुत यश और विस्तार प्राप्त कर चुकी है। अपने जीवन को ऊंचा और सुखी बनाना चाहने वाले इसे अवश्य पढ़ें और अपने बच्चों के हाथ में इसकी एक प्रति अवश्य दें।

गुरुकुल की स्वर्ण-जयन्ती

गुरुकुल पत्र के गतांक से आपको ज्ञात हो चुका है कि गुरुकुल स्वर्ण-जयन्ता महोत्सव आगामी वर्ष मार्च सन् १६५० में होलियों के अवसर पर मनाया जावेगा। इस समाचार के मिलते ही जनता के अन्दर आशा और प्रसन्नता की एक लहर सी दौड़ गई है।

गुरुकुल स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव की तय्यारियां ज़ोर शोर से प्रारम्भ हो चुकीं हैं।

स्वर्ण-जयन्ती की सफलता के जहां अन्य अनेक प्रोग्राम जनता के सन्मुख रखे जावेंगे, वहां उन में से एक महत्वपूर्ण प्रोग्राम गुरुकुल के लिए तीस लाख रुपया एकत्रित करने का है। इस राशि का एकत्रित करना गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के प्रेमियों के लिए कोई कठिन नहीं है।

स्वर्ण-जयन्ती की प्रथम विज्ञप्ति का सन्तोष-जनक उत्तर जनता ने दिया है। अनेक भाईयों ने अपने नगर में धन एकत्रित करने के लिए डेपूटेशन की मांग की है। कुछ महानुभावों ने अपने भाग का धन भेज भी दिया है। कई स्थानों पर धन संग्रह का आरम्भ भी हो गया है।

भारत के प्रत्येक बड़े-बड़े शहरों में डेपूटेशन भेजने का प्रबन्ध किया जा रहा है। यह तो सम्भव नहीं होगा कि प्रत्येक छोटे-छोटे गावों, कसबों में भी गुरुकुल के भिक्षुक पहुँच सकें, अतः वहां के भाइयों से निवेदन है कि अपने अपने गांव, कसबों में धन संग्रह का कार्यारम्भ कर दें। यदि गुरुकुल से किसी सहायक की आवश्यकता हो तो स्वर्ण जयन्ती कार्यालय को लिखिये। गुरुकुल से किसी सज्जन के भेजने का प्रयत्न किया जावेगा।

गुरुकुल पत्रिका के दो विशेषांक

गुरुकुल स्वर्ण-जयन्ती के उपलक्ष में 'गुरुकुल' पत्रिका के दो विशेषांक निकालने की तय्यारियां की जा रही हैं।

प्रथम विशेषांक दीपावली के लगभग प्रकाशित होगा। इसमें देश-विदेश के माननीय महानुभावों की गुरुकुल के सम्बन्ध में सम्मतियां तथा अब तक गुरुकुल ने जो काम किया है, उसका विवरण प्रकाशित किया जावेगा।

द्वितीय विशेषांक मास फरवरी में प्रकाशित होगा, इस में गुरुकुल के पुराने कार्यकर्ताओं, कर्मचारियों और गुरुकुल के विशेष दानियों के संक्षिप्त विवरण प्रकाशित किये जावेंगे।

इन विशेषांकों को रुचिकर और आकर्षक बनाने के लिए कोई सज्जन अपनी अमूल्य सम्मति भेजेंगे तो उसका स्वागत किया जावेगा।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु—लम्बी प्रतीक्षा के पश्चात् जुलाई के प्रारम्भ के साथ ही इस प्रदेश पर मेघराज की कृपा अवतीर्ण हुई है। तृषित धरित्री पानी मिलते ही उल्लसित हो उठी है। खेतों, मैदानों उद्यानों और वनों में अपूर्व आनन्द और उल्लास छा गया है। लता, पल्लव, प्रसूनों नवजीवन का संचार हो गया है। आम्रवीथियों और जम्बू निकुञ्जों में बालकों और पक्षियों के कारण अपूर्व रौनक और आमोद छा गया है। पपीहे, और कोयल के मधुर आलापों से कुल-कानन खखरित हो रहा है। गुरुजन और अन्तेवासी गण स्वस्थ और प्रमुदित हैं। रोगीगृह खाली पड़े हुए हैं। दिवस और निशाएं सुहावनी और शीतल हो गई हैं। शिवालक के शिखरों पर मन्द-मन्द गति से इठलाती हुई मेघमालाएं बहुत भली लगती हैं।

नवीन सत्र

पावस के आगमन के साथ ही अध्ययन-अध्यापन का नवीन सत्र चार जुलाई से प्रारम्भ हो चुका है। समस्त ब्रह्मचारी और गुरुजन अवकाश से लौट आये हैं। चार जुलाई को समस्त ब्रह्मचारियों ने मिल कर नवीन सत्र के प्रारम्भ के उपलक्ष्य में बड़ी यज्ञशाला में बृहद् हवन किया और उपाचार्य श्रीयुत प्रोफेसर लालचन्द्र जी ने स्वाध्याय और प्रवचन की महत्ता पर अपनी प्रसादपूर्ण शैली में प्रवचन करते हुए छात्रों का उद्बोधन किया। तीनों महाविद्यालयों और विद्यालय विभाग की पढ़ाई नियमित प्रारम्भ हो चुकी है। उपसत्र परीक्षाएं भी समाप्त हो चुकी हैं।

श्री आचार्य जी की ज्ञानयात्रा

गुरुकुलाचार्य श्री. पं० प्रियव्रत जी वेद-वाचस्पति अवकाश के दिनों में गुरुकुल की आगामी सुवर्ण-जयन्ती के निमित्त प्रचार एवं धन संग्रह के लिए मसूरी देहरादून आदि स्थलों में भ्रमणार्थ गए थे। आपने वहां पर 'भारतीय संस्कृति और जगत् की आधुनिक समस्याओं का हल'' इस विषय पर एक व्याख्यानमाला दी थी। ये व्याख्यान सुधीजनों द्वारा बहुत पसन्द किए गए। कुछ एक जिज्ञासु-जनों ने तो श्री आचार्य जी को यहां तक निवेदन किया कि ये व्याख्यान यदि पत्रिका रूप में प्रकट कर दिये जांय तो सामान्य जनसमाज की ज्ञानवृद्धि में बहुत सहायक सिद्ध होंगे।

मान्य अतिथि

लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के विद्वान् प्रोफेसर डॉ० सत्यव्रत जी गुरुकुल के पुराने मित्र और परीक्षक हैं। वे ग्रीष्मावकाश में अपने सहृदय मित्र जे० एन० झा महोदय (लखनऊ संगीत कालेज के अध्यापक) सहित गुरुकुल में पर्याप्त समय तक रहे। एक रात्रि में श्री. झा महोदय ने समस्त कुलवासियों को अपनी शास्त्रीय संगीत माधुरी से प्रसन्न और तृप्त किया।

पिछले दिनों गांधी राष्ट्रीय विद्याश्रम सासवने (महाराष्ट्र प्रांत) के आचार्य श्री जगन्नाथ गणपति ढवण गुरुकुल पधारे आपने सूक्ष्मता

के साथ गुरुकुल के विभागों और कार्य कलापों का निरीक्षण किया। वे गुरुकुल की कार्यविधि से बहुत प्रसन्न और प्रभावित हुए और स्वयं एक राष्ट्रीय शिक्षणालय के संचालक थे अतः गुरुकुल की अनेक अनुकरणीय बातें अपनी संस्था में प्रचलित करने के लिए लिख कर ले गये हैं।

आगरा विश्वविद्यालय की एम० ए० (पूर्वार्ध) परीक्षा में पिछले सत्र गुरुकुल के कई स्नातक-बन्धु सम्मिलित हुए थे। बड़े आनन्द और परितोष का विषय है वे सब के सब स्नातक भाई खूब अच्छी तरह सफल हुए हैं। इन समस्त बन्धुओं की सफलता पर हम उनका सप्रेम अभिनन्दन करते हैं। स्नातकों के शुभ नाम ये हैं—

श्री रामनाथ जी वेदालंकार
श्री हरिदत्त जी वेदालंकार
श्री रोहिताश्व जी वेदालंकार
श्री जयदेव जी वेदालंकार
श्री ओम्प्रकाश जी वेदालंकार
श्री ज्ञानेन्द्र जी विद्यालंकार
श्री निरुपण जी विद्यालङ्कार

शोकवार्ता

शोक का विषय है कि गुरुकुल विश्वविद्या- के सन्मित्र और शुभेच्छुक तथा हरिद्वारीय ऋषि-कुल आयुर्वेद कालेज के आचार्य कविराज मणीन्द्र कुमार मुखोपाध्याय का पिछले दिनों अपनी निवास भूमि कलकत्ता में एकाएक अवसान हो गया है। दिवंगत कविराज जी का गुरुकुल से बड़ा स्नेह सम्बन्ध था।

आज से तीन वर्ष पूर्व उन्होंने गुरुकुलीय आयुर्वेद परिषद् के वार्षिक सम्मेलन का सभापतित्व किया था। उनकी सेवाएं भारत में विदित है। गुरुकुल विश्वविद्यालय विशेषतः आयुर्वेद महाविद्यालय के गुरुजन और छात्रजन उनके अवसान पर हार्दिक दुःख अनुभव करते हुए उनके आत्मीय जनों के प्रति अपनी सहानुभूति व समवेदना प्रकाशित करते हैं। परम पिता परमात्मा उनकी आत्मा को शांति व सद्गति प्रदान करें।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल मुद्रणालय।